समवाओ

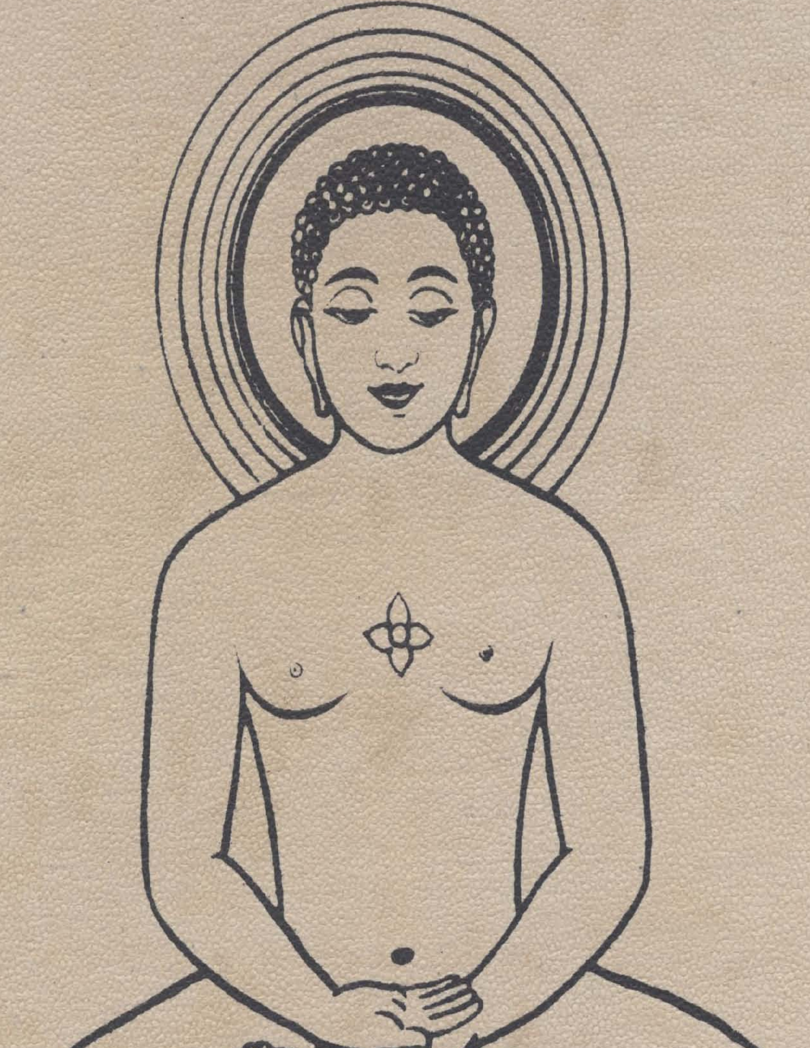

वाचना प्रमुख
आचार्य तुलसी

सम्पादक-विवेचक
युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निग्गंथं पावयणं

समवाओ

[मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट आदि]

वाचना प्रमुख

आचार्य तुलसी

सम्पादक-विवेचक

युवाचार्य महाप्रज्ञ

प्रकाशक

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

प्रबन्ध-सम्पादक :
श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन
(जैन विश्व भारती)

प्रथम संस्करण :
१९८४

पृष्ठांक :
४६८

मूल्य : १२०.००

मुद्रक :
मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

SAMAVĀO

[Text, Sanskrit Rendering and Hindi Version with notes]

Vācanā Pramukha

ĀCĀRYA TULASI

Editor and Commentator

YUVĀCĀRYA MAHĀPRAGÑA

Publisher

JAIN VISHVA BHARATI

LADNUN (Raj.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Managing Editor :
Sreechand Rampuria
Director
Agama and Sahitya Prakashan
Jain Vishwa Bharati

By munificence :
Rampuria charitable trust
Calcutta

First Edition : 1984

Pages : 468

Price : Rs. 120.00

Printers :
Jain Vishwa Bharati Press
Landnun (Raj.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

॥ १ ॥

पुट्ठो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाण पुव्वं॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से॥

॥ २ ॥

विलोडियं आगमदुद्ध मेव,
लद्धं सुलद्धं णवणीय मच्छं।
सज्झायसज्झाणरयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाण पुव्वं॥

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत।
श्रुत-सद्ध्यानलीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से॥

॥ ३ ॥

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाण पुव्वं॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में मेरे मन में।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से॥

विनयावनतः
आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तस्तोष

अन्तस्तोष अनिर्वचनीय होता है उस माली का जो अपने हाथों से उप्त और सिञ्चित द्रुम-निकुञ्ज को प्रल्लवित, पुष्पित और फलित हुआ देखता है, उस कलाकार का जो अपनी तूलिका से निराकार को साकार हुआ देखता है और उस कल्पनाकार का जो अपनी कल्पना को अपने प्रयत्नों से प्राणवान् बना देखता है। चिरकाल से मेरा मन इस कल्पना से भरा था कि जैन-आगमों का शोधपूर्ण सम्पादन हो और मेरे जीवन के बहुश्रमी क्षण उसमें लगें। संकल्प फलवान् बना और वैसा ही हुआ। मुझे केन्द्र मान मेरा धर्म-परिवार इस कार्य में संलग्न हो गया। अतः मेरे इस अन्तस्तोष में मैं उन सबको समभागी बनाना चाहता हूं, जो इस प्रवृत्ति में संविभागी रहे हैं। संक्षेप में वह संविभाग इस प्रकार है—

संपादन-विवेचन सहयोगी : **मुनि दुलहराज**

संस्कृत छाया सहयोगी : **साध्वी कनकश्री**

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिन ने इस गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सब को मैं आशीर्वाद देता हूं और कामना करता हूं कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

—आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि 'जैन विश्व भारती' द्वारा आगम प्रकाशन के क्षेत्र में जो कार्य सम्पन्न हुआ है, वह मूर्धन्य विद्वानों द्वारा स्तुत्य और बहुमूल्य बताया गया है।

हमने ग्यारह अंगों का पाठान्तर तथा 'जाव' की पूर्ति से संयुक्त सु-संपादित मूल पाठ मात्र 'अंगसुत्ताणि' भाग १, २, ३ में प्रकाशित किया है। उसके साथ-साथ आगम-ग्रन्थों का मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं प्राचीनतम व्याख्या सामग्री के आधार पर सूक्ष्म ऊहापोह के साथ लिखित विस्तृत मौलिक टिप्पणों से मंडित संस्करण प्रकाशित करने की योजना भी चलती रही है। इस शृंखला में तीन आगम-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं :—

(१) ठाणं

(२) दसवेआलियं

(३) उत्तरज्झयणाणि

प्रस्तुत आगम 'समवाओ' उसी शृंखला का चौथा ग्रन्थ है। बहुश्रुत वाचना-प्रमुख आचार्यश्री तुलसी एवं अप्रतिम विद्वान् संपादक-विवेचक युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने जो श्रम किया है, वह ग्रन्थ के अवलोकन से स्वयं स्पष्ट होगा।

संपादन-विवेचन सहयोगी मुनि दुलहराजजी ने इसे सुसज्जित करने में अनवरत श्रम किया है। विदुषी साध्वीश्री कनकश्रीजी ने संस्कृत छाया के प्रस्तुतीकरण में हाथ बंटाया है।

ऐसे सु-संपादित आगम-ग्रन्थ को प्रकाशित करने का सौभाग्य 'जैन विश्व भारती' को प्राप्त हुआ है, इसके लिए वह कृतज्ञ है।

प्रस्तुत आगम 'समवाओ' का मुद्रण श्री रामपुरिया चेरिटेबल ट्रस्ट (कलकता) द्वारा घोषित अनुदान राशि में से हुआ है। मैं उस ट्रस्ट के सभी ट्रस्टियों के प्रति संस्था की ओर से हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता हूं।

जैन विश्व सारती के अध्यक्ष श्री बिहारीलालजी सरावगी की निरन्तर और सघन प्रेरणा के कारण ही, कुछ वर्षों के व्यवधान के पश्चात्, आगम प्रकाशन का कार्य पुनः तत्परता से प्रारम्भ हुआ है। मुझे आशा है कि इस प्रकाशन कार्य की निरन्तरता बनी रहेगी और हम निकट भविष्य में और अनेक आगम-ग्रन्थ प्रस्तुत करने में सक्षम होंगे।

आशा है पूर्व प्रकाशनों की तरह यह प्रकाशन भी विद्वानों की दृष्टि में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

लाडनूं
१-१-८४

श्रीचन्द रामपुरिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

आगम-सम्पादन की प्रेरणा

विक्रम संवत् २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्य श्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पूना से नारायणगांव की ओर जाते-जाते मध्यावधि में एक दिन का प्रवास मंचर में हुआ। आचार्यश्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे। वहां मासिक पत्रों की फाइलें पड़ी थीं। गृहस्वामी की अनुमति ले, हमलोग उन्हें पढ़ रहे थे। सांझ की वेला, लगभग छह बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्यश्री के पास गया। आचार्यश्री पत्रों को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुंचा, आचार्यश्री ने धर्मदूत के सद्यस्क अंक की ओर संकेत करते हुए पूछा—"यह देखा कि नहीं ?" मैंने उत्तर में निवेदन किया—"नहीं, अभी नहीं देखा।" आचार्यश्री बहुत गम्भीर हो गए। एक क्षण रुक कर बोले—"इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बड़ी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा में पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।" आचार्यश्री की वाणी में अन्तर्-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकड़ने में समय की अपेक्षा थी।

आगम-सम्पादन का संकल्प

रात्रिकालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्यश्री ने साधुओं का आमंत्रित किया। वे आए और वंदना कर पंक्तिबद्ध बैठ गए। आचार्यश्री ने सांय-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—'जैन-आगमों का कायाकल्प किया जाय, ऐसा संकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा, पूर्ण श्रम करना होगा। बोलो, कौन तैयार है ?'

सारे हृदय एक साथ बोल उठे—'सब तैयार हैं।'

आचार्यश्री ने कहा—'महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी में लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो।'

मंचर से विहार कर आचार्य श्री संगमनेर पहुंचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियों की परिषद् बुलाई गई। आचार्यश्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-सम्पादन के संकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्य श्री ने पूछा—'क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए ?'

समलय से प्रार्थना का स्वर निकला—'अवश्य, अवश्य।' आचार्यश्री औरंगाबाद पधारे। सुराणा-भवन, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (वि० सं० २०११), महावीर-जयन्ती का पुण्य-पर्व। आचार्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध-संघ की परिषद् में आगम-सम्पादन की विधिवत् घोषणा की।

आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ

वि० सं० २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम-सम्पादन का कार्यारम्भ हो गया। न तो सम्पादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् धर्मदूत का निमित्त पा आचार्यश्री के मन में संकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिन्तन की भूमिका में इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिन्तन से कम नहीं है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

प्रथम दो तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएं और कार्य-पद्धतियां निश्चित और सुस्थिर हो गईं। आगम-सम्पादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल और गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण रहा है, यह कह कर मैं किञ्चित् भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। आचार्यश्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरन्तर गतिशील हो रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस कार्य में हमें अन्य अनेक विद्वानों की सद्भावना, समर्थन और प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्यश्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नहीं होगी।

सम्पादन का कार्य सरल नहीं है—यह उन्हे सुविदित है, जिन्होंने उस दिशा में कोई प्रयत्न किया है। दो-ढाई हजार वर्ष पुराने ग्रन्थों के सम्पादन का कार्य और भी जटिल है, क्योंकि उनकी भाषा और भावधारा से आज की भाषा और भावधारा बहुत व्यवधान पा चुकी है। इतिहास की यह अपवाद-शून्य गति रही है कि जो विचार या आचार जिस आकार में आरब्ध होता है, वह उसी आकार में स्थिर नहीं रहता, या तो वह बड़ा हो जाता है या छोटा। यह ह्रास और विकास की कहानी ही परिवर्तन की कहानी है। और कोई भी आकार ऐसा नहीं है, जो कृत है और परिवर्तनशील नहीं है। परिवर्तनशील घटनाओं, तथ्यों, विचारों और आचारों के प्रति अपरिवर्तनशीलता का आग्रह मनुष्य को असत्य की ओर ले जाता है। सत्य का केन्द्र-बिन्दु यह है कि जो कृत है वह सब परिवर्तनशील है। अकृत या शाश्वत भी ऐसा क्या है, जहां परिवर्तन का स्पर्श न हो? इस विश्व में जो है वह वही है जिसकी सत्ता शाश्वत और परिवर्तन की धारा से सर्वथा विभक्त नहीं है।

शब्द की परिधि में बन्धने वाला कोई भी सत्य क्या ऐसा हो सकता है, जो तीनों कालों में समानरूप से प्रकाशित रह सके? शब्द के अर्थ का उत्कर्ष या अपकर्ष होता है—भाषाशास्त्र के इस नियम को जानने वाला यह आग्रह नहीं रख सकता कि दो हजार वर्ष पुराने शब्द का आज भी वही अर्थ सही है, जो आज प्रचलित है। 'पाषण्ड' शब्द का जो अर्थ आगम-ग्रन्थों और अशोक के शिलालेखों में है, वह आज के श्रमण साहित्य में नहीं है। आज उसका अपकर्ष हो चुका है। आगम साहित्य के सैंकड़ों शब्दों की यही कहानी है कि वे आज अपने मौलिक अर्थ का प्रकाश नहीं दे रहे हैं। इस स्थिति में हर चिन्तनशील व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि प्राचीन साहित्य के सम्पादन का कार्य कितना दुरूह है।

मनुष्य अपनी शक्ति में विश्वास करता है और अपने पौरुष से खेलता है, अतः वह किसी भी कार्य को इसलिए नहीं छोड़ देता कि वह दुरूह है। यदि यह पलायन की प्रवृत्ति होती तो प्राप्य की संभावना नष्ट ही नहीं हो जाती किन्तु आज जो प्राप्त है, वह अतीत के किसी भी क्षण में विलुप्त हो जाता। आज से हजार वर्ष पहले नवाङ्गीटीकाकार (अभयदेवसूरि) के सामने अनेक कठिनाइयां थीं। उन्होंने उनकी चर्चा करते हुए लिखा है[1]—

१. सत् सम्प्रदाय (अर्थ-बोध की सम्यक् गुरु-परम्परा) प्राप्त नहीं है।

२. सत् ऊह (अर्थ की आलोचनात्मक कृति या स्थिति) प्राप्त नहीं है।

३. अनेक वाचनाएं (आगमिक अध्यापन की पद्धतियां) हैं।

४. पुस्तकें अशुद्ध हैं।

५. कृतियां सूत्रात्मक होने के कारण बहुत गम्भीर हैं।

६. अर्थ-विषयक मतभेद है।

इन सारी कठिनाइयों के उपरान्त भी उन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा और वे कुछ कर गए।

कठिनाइयां आज भी कम नहीं हैं, किन्तु उनके होते हुए भी आचार्य श्री तुलसी ने आगम-सम्पादन के कार्य को अपने हाथों में ले लिया। उनके शक्तिशाली हाथों का स्पर्श पाकर निष्प्राण भी प्राणवान् बन जाता है, तो भलां आगम-साहित्य, जो स्वयं प्राणवान् है, उसमें प्राण-सञ्चार करना क्या बड़ी बात है? बड़ी बात यह है कि आचार्य श्री ने उसमें प्राण-सञ्चार मेरी और मेरे सहयोगी साधु-साध्वियों की असमर्थ अंगुलियों द्वारा कराने का प्रयत्न किया है। सम्पादन कार्य में हमें आचार्यश्री का आशीर्वाद ही प्राप्त नहीं है किन्तु मार्ग-दर्शन और सक्रिय योग भी प्राप्त है। आचार्य श्री ने इस कार्य को प्राथमिकता दी है और इसकी परिपूर्णता

---

१. स्थानांगवृत्ति, प्रशस्ति श्लोक १, २:

सत्सम्प्रदायहीनत्वात्, सदूहस्य वियोगतः।
सर्वस्वपरशास्त्राणामदृष्टेरस्मृतेश्च मे॥
वाचनानामनेकत्वात्, पुस्तकानामशुद्धितः।
सूत्राणामतिगाम्भीर्याद्, मतभेदाश्च कुत्रचित्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए अपना पर्याप्त समय दिया है। उनके मार्ग-दर्शन, चिन्तन और प्रोत्साहन का संबल पा हम अनेक दुस्तर धाराओं का पार पाने में समर्थ हुए हैं।

'अंगसुत्ताणि' भाग १ में समवाओ सूत्र का संपादित पाठ प्रकाशित है। वही पाठ यहां लिया गया है। वहां पाठान्तर पाद-टिप्पणों में दिए गए हैं। उनके आगे कोष्ठक में संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों के संकेत हैं। पाठ संशोधन में प्रयुक्त आदर्शों का परिचय 'अंगसुत्ताणि' भाग १ में दिया गया है।

प्रस्तुत सम्पादन में सहयोगी

इसके अनुवाद और टिप्पण—लेख में मुनि दुलहराजजी ने निष्ठापूर्ण प्रयत्न किया है और विषय सूची भी उन्हीं के प्रयत्न से निष्पन्न हुई है। कुछ टिप्पण मुनि श्रीचन्दजी ने लिखें हैं। इसकी संस्कृत छाया साध्वी कनक श्री ने की है और इसका परिशिष्ट मुनि हीरालालजी और मुनि श्रीचन्द्रजी ने तैयार किया है। पांडुलिपि का संशोधन भी मुनि हीरालालजी ने किया। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ में अनेक साधुओं की पवित्र अंगुलियों का योग है। आचार्य श्री के वरदहस्त की छाया में बैठकर कार्य करने वाले हम सब संभागी हैं, फिर भी मैं उन सब साधु-साध्वियों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूं, जिनका इस कार्य में योग है और आशा करता हूं कि वे इस महान् कार्य के अग्रिम चरण में और अधिक दक्षता प्राप्त करेंगे।

आगमों के प्रबन्ध सम्पादक श्री श्रीचन्दजी रामपुरिया तथा स्वर्गीय श्री मदनचंदजी गोठी का भी इस कार्य में निरन्तर सहयोग रहा है।

आदर्श साहित्य संघ के संचालक व व्यवस्थापक श्री हुनूतमल जी सुराना व जयचन्दलालजी दफ्तरी का भी अविरल योग रहा है। आदर्श साहित्य संघ की सहयुक्त सामग्री ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। एक लक्ष्य के लिए समान गति से चलने वालों की सम प्रवृत्ति में योगदान की परंपरा का उल्लेख व्यवहार-पूर्ति मात्र है। वास्तव में यह हम सबका पवित्र कर्त्तव्य है और उसीका हम सबने पालन किया है।

आचार्य श्री प्रेरणा के अनन्त स्रोत हैं। हमें इस कार्य में उनकी प्रेरणा और प्रत्यक्ष योग—दोनों प्राप्त हैं, इसलिए हमारा कार्यपथ बहुत ऋजु हुआ है। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर मैं कार्य की गुरुता को बढ़ा नहीं पाऊंगा। उनका आशीर्वाद दीप बनकर हमारा कार्य-पथ प्रकाशित करता रहे, यही हमारी आशंसा है।

लाडनूं
१-१-८४

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

जैन साहित्य में द्वादशांगी को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। प्रस्तुत सूत्र उसका चतुर्थ अंग है। इसका नाम समवाय है। इसमें विविध विषय समवेत हैं, इसलिए यह सार्थक नाम है।

इसके परिच्छेदों का नाम भी समवाय है। प्रथम समवाय में एक संख्या द्वारा संगृहीत विषय प्रतिपादित हैं। इसी प्रकार दूसरे में दो और तीसरे में तीन की संख्या द्वारा संगृहीत विषय प्रतिपादित हैं। सौ समवायों तक यह क्रम बराबर चलता है। उससे आगे डेढ सौ, दो सौ, ढाई सौ, तीन सौ—इस प्रकार संख्या बढ़ती जाती है। अंत में वह एक कोटि-कोटि सागरोपम तक पहुंच जाती है। यहां संख्यापरक समवायपूर्ण हो जाता है। समवाय का मूलभाग इतना ही है। इससे आगे द्वादशांगी का प्रकरण है। उसके पश्चात् अनेक प्रकीर्ण विषयों का संकलन है।

ये दोनों प्रकरण मूल सूत्र के परिशिष्ट हैं।

प्रस्तुत सूत्र संग्रहसूत्र की कोटि का है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का संकलन हुआ है।

योग का एक सिद्धान्त है—दीर्घश्वास से आयु दीर्घ होता है। तेतीस समवायों के अंतिम सूत्रों में इसका व्यवस्थित क्रम मिलता है—

श्वास-कालमान	आयु-कालमान	आहारेच्छा-कालमान	श्वास-कालमान	आयु-कालमान	आहारेच्छा-कालमान
१ पक्ष	१ सागरोपम	१ हजार वर्ष	९ मास	१८ सागरोपम	१८ हजार वर्ष
१ मास	२ सागरोपम	२ हजार वर्ष	९॥ मास	१९ सागरोपम	१९ हजार वर्ष
१॥ मास	३ सागरोपम	३ हजार वर्ष	१० मास	२० सागरोपम	२० हजार वर्ष
२ मास	४ सागरोपम	४ हजार वर्ष	१०॥ मास	२१ सागरोपम	२१ हजार वर्ष
२॥ मास	५ सागरोपम	५ हजार वर्ष	११ मास	२२ सागरोपम	२२ हजार वर्ष
३ मास	६ सागरोपम	६ हजार वर्ष	११॥ मास	२३ सागरोपम	२३ हजार वर्ष
३॥ मास	७ सागरोपम	७ हजार वर्ष	१ वर्ष	२४ सागरोपम	२४ हजार वर्ष
४ मास	८ सागरोपम	८ हजार वर्ष	१ वर्ष १ पक्ष	२५ सागरोपम	२५ हजार वर्ष
४॥ मास	९ सागरोपम	९ हजार वर्ष	१ वर्ष १ मास	२६ सागरोपम	२६ हजार वर्ष
५ मास	१० सागरोपम	१० हजार वर्ष	१ वर्ष १॥ मास	२७ सागरोपम	२७ हजार वर्ष
५॥ मास	११ सागरोपम	११ हजार वर्ष	१ वर्ष २ मास	२८ सागरोपम	२८ हजार वर्ष
६ मास	१२ सागरोपम	१२ हजार वर्ष	१ वर्ष २॥ मास	२९ सागरोपम	२९ हजार वर्ष
६॥ मास	१३ सागरोपम	१३ हजार वर्ष	१ वर्ष ३ मास	३० सागरोपम	३० हजार वर्ष
७ मास	१४ सागरोपम	१४ हजार वर्ष	१ वर्ष ३॥ मास	३१ सागरोपम	३१ हजार वर्ष
७॥ मास	१५ सागरोपम	१५ हजार वर्ष	१ वर्ष ४ मास	३२ सागरोपम	३२ हजार वर्ष
८ मास	१६ सागरोपम	१६ हजार वर्ष	१ वर्ष ४॥ मास	३३ सागरोपम	३३ हजार वर्ष
८॥ मास	१७ सागरोपम	१७ हजार वर्ष			

प्रस्तुत सूत्र में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों की सूचना मिलती है, जैसे—भगवान् महावीर ने एक दिन में एक निषद्या में चौवन प्रश्नों के उत्तर दिए थे।[1]

---

१. समवाओ, ५४/१ :
समणे भगवं महावीरे एग दिवसेणं एग निसेज्जाए चउप्पण्णाइं वागरणाइं वागरित्था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् महावीर ने अन्तिम रात्रि में कल्याण-फलविपाक वाले पचपन अध्ययन तथा पाप-फलविपाक वाले पचपन अध्ययन प्रतिपादित कर मुक्त हो गए।[1]

इन सूत्रों को पढते ही मन जिज्ञासा से भर जाता है। कितना अच्छा होता कि इन प्रश्नों के उत्तर और ये अध्ययन आज प्राप्त होते। अन्य अनेक दृष्टियों से यह सूत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

कार्य-सम्पूर्ति

प्रस्तुत आगम की समग्र निष्पत्ति में अनेक मुनियों का योग रहा है। उन सबको मैं आशीर्वाद देता हूं कि उनकी कार्यजाशक्ति और अधिक विकसित हो।

इसकी निष्पत्ति का बहुत कुछ श्रेय शिष्य युवाचार्य महाप्रज्ञ (मुनि नथमल) को है क्योंकि इस कार्य में अहर्निश वे जिस मनोयोग से लगे हैं, उसी से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। अन्यथा यह गुरुतर कार्य बड़ा दुरूह होता। इनकी वृत्ति मूलतः योगनिष्ठ होने से मन की एकाग्रता सहज बनी रहती है। आगम का कार्य करते-करते अन्तर् रहस्य पकड़ने में इनकी मेधा काफी पैनी हो गई है। विनयशीलता, श्रम-परायणता और गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण भाव ने इनकी प्रगति में बड़ा सहयोग दिया है। यह वृत्ति इनकी बचपन से ही है। जब से मेरे पास आए, मैंने इनकी इस वृत्ति में क्रमशः वर्धमानता ही पाई है। इनकी कार्यक्षमता और कर्त्तव्य-परायणता ने मुझे बहुत सन्तोष दिया है।

मैंने अपने संघ के ऐसे शिष्य साधु-साध्वियों के बल-बूते पर ही आगम के गुरुतर कार्य को उठाया है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे शिष्य साधु-साध्वियों के निःस्वार्थ, विनीत एवं समर्पणात्मक सहयोग से इस बृहत् कार्य को असाधारणरूप से सम्पन्न कर सकूंगा।

लाडनूं
१-१-८४

—आचार्य तुलसी

---

१. समवाओ, ५५/४।
समणे भगवं महावीरे अन्तिमराइयंसि पणपण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपण्णं अज्झयणाणि पावफलविवागाणि वागरित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्गीकृत विषयानुक्रम

१. आगम

गणिपिटक (द्वादशांगी)

द्वादशांगी के नाम—१/२

तीन गणिपिटकों—आचार, सूत्रकृत और स्थान—के अध्ययनों की संख्या—५७।१

गणिपिटक के बारह अंग और उनका सम्पूर्ण वर्णन–प्र० ८८-१३४

आचार

ब्रह्मचर्य (आचार) के अध्ययनों की संख्या—९।३

चूलिका सहित परिमाण—१८।४

चूलिका सहित अध्ययनों की संख्या—२५।५

उद्देशन-काल—५१।१

चूलिका सहित उद्देशन-काल—८५।१

विषय आदि आदि का वर्णन—प्र० ८९

सूत्रकृत

अध्ययनों के नाम—१६।१

अध्ययनों की संख्या—२३।१

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९०

स्थान

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९१

समवाय

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९२

नाम—प्र० २६१

व्याख्याप्रज्ञप्ति

महायुग्मशत—८१।३

पद-परिमाण—८४।११

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९३

ज्ञाता-धर्मकथा

अध्ययनों की संख्या—१९।१

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९४

उपासकदशा

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९५

अन्तकृतदशा

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९६

अनुत्तरोपपातिकदशा

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९७

प्रश्नव्याकरण

विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० ९८

विपाकश्रुत

सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फल-विपाक वाले दस-दस अध्ययनों का वर्णन—प्र० ९९

दृष्टिवाद

सूत्र और उनका विषय—२२।२-५; ८८।२

मातृकापद—४६।१

प्रकार, भेद-प्रभेद, विषय आदि-आदि का वर्णन—प्र० १००-१३१

पूर्व

प्राणायु पूर्व के वस्तु—१३।६

पूर्वों की संख्या—१४।२

अग्रेणीय पूर्व के वस्तु—१४।३

विद्यानुप्रवाद पूर्व के वस्तु—१५।८

आत्मप्रवाद पूर्व के वस्तु—१६।५

अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व के वस्तु—१८।६

प्रत्याख्यान पूर्व के वस्तु—२०।६

लोकबिन्दुसार पूर्व के वस्तु—२५।६

वीर्य पूर्व के प्राभृत—७१।२

प्रकीर्ण

दशाश्रुतस्कंध, कल्प और व्यवहार के उद्देशन-काल—२६।१

आचार-प्रकल्प (निशीथ) के प्रकार—२८।१

उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययनों के नाम—३६।१

क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग के उद्देशन-काल—३७।४

क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग के उद्देशन-काल—३८।४

क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग के उद्देशन-काल—४०।५

महतीविमानप्रविभक्ति के प्रथम वर्ग के उद्देशन-काल—४१।३

महतीविमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग के उद्देशन-काल—४२।८

कर्मविपाक के अध्ययनों की संख्या—४३।१

महतीविमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग के उद्देशन-काल—४३।५

ऋषिभाषितों की संख्या—४४।१

महतीविमानप्रविभक्ति के चौथे वर्ग के उद्देशन-काल—४४।४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महतीविमानप्रविभक्ति के पांचवें वर्ग के उद्देशन-काल—४५।८
प्रकीर्णकों की संख्या—८४।१३

लौकिकशास्त्र

पापश्रुत के प्रसंग—२९।१

२. कर्म

ज्ञानावरणकर्म की उत्तरप्रकृतियां—३९।४; ५२।४; ५८।२; ६९।३; ९१।४
दर्शनावरणकर्म की उत्तरप्रकृतियां—९।११; ५१।५; ५५।६; ६९।३; ८७।५; ९१।४
नपुंसक वेदनीयकर्म का स्थितिबंध—२०।५
वेदनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियां—५८।२; ६९।३; ८७।५; ९१।४

मोहनीयकर्म

क्षीणमोह भगवान् के प्रकृतियों का वेदन—७।६
निवृत्तिबादर गुणस्थानवर्ती जीवों के मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों की सत्ता—२१।२
अभवसिद्धिक जीवों के मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों की सत्ता—२६।२
वेदक सम्यक्त्व-बंध का वियोजन करने वाले व्यक्ति के मोहनीयकर्म की उत्तर-प्रकृतियों की सत्ता—२७।५
कुछ भवसिद्धिक जीवों के मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियों की सत्ता—२८।२
मोहनीय के बंध-स्थान—३०।१
मोहनीयकर्म की उत्तरप्रकृतियां—३९।४; ८७।५; ९१।४
मोहनीयकर्म के अपर नाम—५२।१
मोहनीयकर्म का अबाधा-काल से न्यून निषेक-काल—७०।४
वेद के प्रकार - प्र० २०९
आयुष्य कर्म की उत्तरप्रकृतियां—३९।४; ५५।६; ५८।२; ६९।३; ८७।५
आयुष्य-बंध के प्रकार—प्र० १७६

नामकर्म

अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय के नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों का बंध—२५।६
देवगति का बंध करते हुए जीव के नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों का बंध—२८।५
नरकगति का बंध करते हुए जीव के नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों का बंध—२८।६
सम्यक्दृष्टि भविक जीव की बध्यमान नामकर्म की उत्तर-प्रकृत्तियां—२९।६
नामकर्म के प्रकार—४२।६
नामकर्म की उत्तरप्रकृतियां—५१।५; ५२।४; ५५।६; ५८।२; ६९।३; ८७।५; ९१।४
संहनन के प्रकार—प्र० १८६
संस्थान के प्रकार—प्र० १९६
गोत्रकर्म की उत्तरप्रकृतियां—३९।४; ६९।३; ८७।५
अन्तरायकर्म की उत्तरप्रकृतियां—५२।४; ५८।२; ६९।३; ९१।४

प्रकीर्ण

कर्म-बंध के प्रकार—४।५
सूक्ष्मसंपराय मुनि के कर्म-प्रकृतियों का बंध—१७।१०
आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियां—९७।३

३. कला

ब्राह्मीलिपि के लेख-विधान—१८।५
नाट्य के प्रकार—३२।६
ब्राह्मीलिपि के मातृकाक्षर—४६।२
बहत्तर कलाएं—७२।७
पूर्व से शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त गुणाकार—८४।२५

४. काल

छोटी रात, छोटा दिन—१२।८, ९
चैत्र और आश्विन मास के रात-दिन - १५।६, ७
पौष की उत्कृष्ट रात्री, आषाढ़ का उत्कृष्ट दिन—१८।८
अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का कालमान—२०।७
अवसर्पिणी के पांचवें तथा छठे आरे का कालमान—२१।३
उत्सर्पिणी के पहले तथा दूसरे आरे का कालमान—२१।४
एक प्रहर की चौबीस अंगुल प्रमाण छाया—२४।४
नक्षत्रमास का परिमाण—२७।३
सत्ताईस अंगुल प्रमाण छाया की निष्पत्ति—२७।६
आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख मास का परिमाण—२९।२-७
चन्द्रमास के दिन का परिमाण—२९।८
अहोरात्र का मुहूर्त्त-परिमाण—३०।३
अभिवर्द्धितमास का परिमाण—३१।४
आदित्यमास का परिमाण—३१।५
चैत्र और आश्विन मास का प्रहर-परिमाण—३६।४
कार्तिक कृष्णा सप्तमी का प्रहर-परिमाण—३७।५
फाल्गुन और कार्तिक पूर्णिमा का प्रहर-परिमाण—४०।६,७
अवसर्पिणी के पांचवें-छठे—दोनों आरों का कालमान—४२।९
उत्सर्पिणी के पहले-दूसरे—दोनों आरों का कालमान—४२।१०
चन्द्रसम्वत्सर की ऋतु का परिमाण—५९।१
पंचसांवत्सरिक युग के ऋतुमासों का परिमाण—६१।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसांवत्सरिक युग की पूर्णिमाएं और अमावस्याएं—६२।१
पंचसांवत्सरिक युग के नक्षत्रमासों का परिमाण—६७।१
सूर्य की सर्वबाह्यमंडल से आवृत्ति का काल—७१।१
प्रत्येक मुहूर्त्त का लव-परिमाण—७७।४
रात्रि और दिवसक्षेत्र की वृद्धि-हानि—८८।७,८; ६८।५,६
दिन के प्रथम मुहूर्त्त का छाया-परिमाण—६६।६

५. कुलकर

कुलकर अभिचन्द्र की ऊंचाई—प्र० ३५
कुलकर विमलवाहन की ऊंचाई—प्र० ५१
अतीत अवसर्पिणी के कुलकरों के नाम—प्र० २१६
अतीत उत्सर्पिणी के कुलकरों के नाम—प्र० २१७
वर्त्तमान अवसर्पिणी के कुलकरों के नाम—प्र० २१८
कुलकरों की भार्याओं के नाम—प्र० २१६
आगामी उत्सर्पिणी के कुलकरों के नाम—प्र० २४६
आगामी अवसर्पिणी के कुलकरों के नाम—प्र० २५०

६. क्रियावाद

क्रिया—१।८
क्रिया के पांच प्रकार—५।१
क्रिया के तेरह स्थान—१३।१

७. क्षेत्र

जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप का आयाम-विष्कंभ—१।२२; प्र० ७६
सुदर्शन जम्बू की ऊंचाई—८।४
जम्बूद्वीप की जगती की ऊंचाई—८।६
जम्बूद्वीप में प्रविष्ट मत्स्यों का परिमाण—६।८
विजयद्वार के भौम—६।६
विजया राजधानी का आयाम-विष्कंभ—१२।४
जम्बूद्वीप की वेदिका का मूल भाग—१२।७
जम्बूद्वीप के गणित में प्रयुक्त कला का परिमाण—१६।४
जम्बूद्वीप के प्रत्येक द्वार का व्यवधानात्मक अन्तर—७६।४
जम्बूद्वीप के चरमान्त से महापाताल कलशों की अवस्थिति—६५।२
जम्बूद्वीप की वेदिका से धातकीषण्ड का चक्रवाल—प्र० ८२

भरत-ऐरवत

जीवा की लंबाई—१४।६

महाविदेह

विष्कंभ—३३।३

हैमवत-हैरण्यवत

जीवा की लम्बाई—३७।२
जीवा के धनु:पृष्ठ का परिक्षेप—३८।२
बाहु की लम्बाई—६७।२

देवकुरु-उत्तरकुरु

जीवा की लम्बाई—५३।१

हरिवर्ष-रम्यक् वर्ष

जीवा की लम्बाई—७३।१
जीवा के धनु:पृष्ठ का परिक्षेप—८४।६
विस्तार—प्र० ७३

धातकीषण्ड

दोनों मेरु पर्वतों का पूर्ण परिमाण—८५।२
धातकीषण्ड का चक्रवाल-विष्कंभ—प्र० ७६

समयक्षेत्र

कुल पर्वतों की संख्या—३६।२
आयाम-विष्कंभ—४५।१
वर्ष और वर्षधर पर्वतों की संख्या—६६।१

दक्षिण भरत

धनु:पृष्ठ की लंबाई—६८।४
दक्षिणार्द्ध की जीवा—प्र० ७४

प्रकीर्ण

क्षेत्रों की संख्या—७५

८ क्षेत्रीय नाप

योजन का परिमाण—४।६
दंड, धनुष्य, नालिका, युग, अक्ष और मुशल का परिमाण ६६।३-८

६ गणधर

मंडितपुत्र

श्रामण्य-पर्याय-काल—३०।२
संपूर्ण आयुष्य काल—८३।३

अग्निभूति

गृहवास-काल—४७।२
संपूर्ण आयुष्य-काल—७४।१

मौर्यपुत्र

अगारवास-काल—६५।२
संपूर्ण आयुष्य-काल—६५।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचलभ्राता

संपूर्ण आयुष्य-काल—७२।४

अकंपित

संपूर्ण आयुष्य-काल—७८।२

इन्द्रभूति

संपूर्ण आयुष्य-काल—६२।२

सुधर्मा

संपूर्ण आयुष्य-काल—१००।५

१०. ज्ञान

अर्थावग्रह—६।६
आभिनिबोधिक ज्ञान के प्रकार—२८।३
आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति—६६।४
अवधिज्ञान के प्रकार—प्र० १७२

११. तिर्यञ्च

असंख्य वर्षों की आयु वाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों की स्थिति—१।३५; २।१२; ३।१७
बादर वनस्पति की स्थिति—१०।१७
जलचर पञ्चेन्द्रिय के योनि-प्रमुख—१३।५
गर्भावक्रान्तिक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों का प्रयोग—१३।७
सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति—४२।५
सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति—५३४
सम्मूर्च्छिम खेचर पञ्चेन्द्रिय की उत्कृष्ट स्थिति—७२।८
योनि प्रमुखों का परिमाण—८४।१४
तिर्यञ्चों के आवास—प्र० १४६,१४७
तिर्यञ्चों के आयुष्य के आकर्ष—प्र० १८५
पृथ्वीकायिक से गर्भावक्रान्तिक तिर्यञ्चों का संहनन—प्र० १६०,१६२
पृथ्वीकायिक से गर्भावक्रान्तिक तिर्यञ्चों का संस्थान—प्र० १६६,२०५
पृथ्वीकायिक से गर्भावक्रान्तिक तिर्यञ्चों का वेद—प्र० २१२, २१३
तिर्यञ्च गति के उपपात और उद्वर्तना का विरह-काल—प्र० १८०,१८१

१२. त्रिषष्टिशलाकापुरुष

(क) तीर्थङ्कर

१. ऋषभ

पूर्वभव—२३।३,४
महाराज-काल—६३।१
अगारवास-काल—८३।४
पूर्ण आयुष्य-काल—८४।२
गण और गणधर—८४।१६
श्रमणों की संख्या—८४।१७
परिनिर्वाण-काल—८६।१
ऊंचाई—प्र० २५
ऋषभ और महावीर का अन्तर-काल—प्र० ८७

२. अजित

गृहवास-काल—७१।३
गण और गणधर—६०।२
अवधिज्ञानियों की संख्या—६४।२; प्र० ८४
ऊंचाई—प्र० २१

३. संभव

गृहवास-काल—५६।२
ऊंचाई—प्र० १६

४. अभिनंदन

ऊंचाई—प्र० १५

५. सुमति

ऊंचाई—प्र० ६

६. पद्मप्रभ

ऊंचाई—प्र० ७

७. सुपार्श्व

वादियों की संख्या—८६।२
गण और गणधर—६५।१
ऊंचाई—प्र० ४

८. चन्द्रप्रभ

गण और गणधर—६३।१
ऊंचाई—प्र० १

९. सुविधि

केवलियों की संख्या—७५।१
गण और गणधर—८६।१
ऊंचाई—१००।३

१०. शीतल

गृहवास-काल—७५।२
गण और गणधर—८३।२
ऊंचाई—६०।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. श्रेयांस

गण और गणधर—६६।३
ऊंचाई—८०।१
पूर्ण आयुष्य-काल—८४।४

१२. वासुपूज्य

गण और गणधर—६२।२
ऊंचाई—७०।३
साथ प्रव्रजित होने वाले पुरुषों की संख्या—प्र० ३६

१३. विमल

पुरुषयुगों की संख्या—४४।२
गण और गणधर—५६।२
ऊंचाई—६०।३
उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा—६८।७

१४. अनन्त

ऊंचाई—५०।२
गण और गणधर—५४।४

१५. धर्म

ऊंचाई—४५।५
गण और गणधर—४८।२

१६. शान्ति

ऊंचाई—४०।३
गृहवास-काल—७५।३
उत्कृष्ट साध्वी-सम्पदा—८९।४
गण और गणधर—९०।३०
चौदहपूर्वियों की संख्या—९३।२

१७. कुन्थु

केवलियों की संख्या—३२।३
ऊंचाई—३५।२
गण और गणधर—३७।१
मनःपर्यवज्ञानियों की संख्या—८१।२
आधोवधिक अवधिज्ञानियों की संख्या—९१।३
सम्पूर्ण आयुष्य-काल—९५।४

१८. अर

ऊंचाई—३०।४

१९. मल्ली

ऊंचाई—२५।२
सम्पूर्ण आयुष्य-काल—५५।१
मनःपर्यवज्ञानियों की संख्या—५७।४
अवधिज्ञानियों की संख्या—५९।३

२०. मुनिसुव्रत

ऊंचाई—२०।२
साध्वियों की संख्या—५०।१

२१. नमि

ऊंचाई—१५।२
साध्वियों की संख्या—४१।१

२२. अरिष्टनेमि

ऊंचाई—१०।४
उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा—१७।२
आधोवधिक अवधिज्ञानियों की संख्या—३९।१
साध्वियों की संख्या—४०।१
छद्मस्थ-पर्याय—५४।२
कुमार-अवस्था—प्र० १०
केवल-पर्याय—प्र० ४०
उत्कृष्ट वादी-सम्पदा—प्र० ४७
सम्पूर्ण आयुष्य-काल—प्र० ६१

२३. पार्श्व

गण और गणधर—८।८
ऊंचाई—९।४
उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा—१६।४
गृहवास-काल—३०।६
उत्कृष्ट श्रमणी-सम्पदा—३८।१
श्रामण्य पर्याय-काल—७०।२
सम्पूर्ण आयुष्य-काल—१००।४
चौदहपूर्वी मुनियों की संख्या—प्र० १४
उत्कृष्ट वादी-सम्पदा—प्र० ३४
केवलियों की संख्या—प्र० ६२
परिनिर्वृत शिष्यों की संख्या—प्र० ६३
उत्कृष्ट श्राविका-सम्पदा—प्र० ७८
वैक्रियलब्धिसंपन्न मुनियों की संख्या—प्र० ६६

२४. महावीर

ऊंचाई—७।३
गणधर—११।४
उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा—१४।४
गृहवास-काल—३०-७
आर्याओं की संख्या—३६-३
श्रामण्य-पर्याय-काल—४२।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिरपन अनगार—५३।३
चौवन प्रश्न—५४।३
अन्तिम रात्री की प्ररूपणा—५५।४
वर्षाऋतु में स्थित होने वाला कालमान—७०।१
सम्पूर्ण आयुष्य-काल—७२।३
संहरण-काल—८२।२; ८३।१
परिनिर्वाण-काल—८६।२
चौदहपूर्वी मुनियों की संख्या—प्र० १२
उत्कृष्ट वादी-सम्पदा—प्र० २०
केवलियों की संख्या—प्र० ३८।
वैक्रियलब्धिसंपन्न मुनियों की संख्या—प्र० ३६
अनुत्तरोपपातिक-सम्पदा—प्र० ४५
छठा भव—प्र० ८६
गण और गणधर—प्र० २१५

प्रकीर्ण

उन्नीस तीर्थङ्करों का अगारवास—१६।५
तेईस तीर्थङ्करों के केवलज्ञान की उत्पति—२३।२
तेईस तीर्थङ्करों का पूर्वभव—२३।३,४
चौबीस देवाधिदेव—२४।१
तीर्थङ्करों के अतिशेष—३४।१
जिनेश्वरदेव की अस्थियां—३५।५
भरत-ऐरवत में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के तीर्थङ्कर—५४।१
धातकीषण्ड में अर्हतों की उत्कृष्ट संख्या—६८।२
अर्द्धपुष्करवरद्वीप में अर्हतों की उत्कष्ट संख्या—६८।५
बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी का पूर्ण आयुष्य-काल—८४।३
तीर्थङ्करों के पिता के नाम—प्र० २२०
तीर्थङ्करों की माता के नाम—प्र० २२१
तीर्थङ्करों के नाम—प्र० २२२
तीर्थङ्करों के पूर्वभविक नाम—प्र० २२३
तीर्थङ्करों की शिविकाएं—प्र० २२४
तीर्थङ्करों की निष्क्रमण भूमि—प्र० २२५
तीर्थङ्करों की निष्क्रमण अवस्था—प्र० २२६
तीर्थङ्कर कितने पुरुषों के साथ प्रव्रजित ?—प्र० २२७
तीर्थङ्करों की प्रव्रज्याकालीन तपस्या—प्र० २२८
तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षा देने वाले—प्र० २२६
तीर्थङ्करों का भिक्षा-प्राप्ति-काल तथा स्वर्ण-वृष्टि—प्र० २३०
तीर्थङ्करों के चैत्य-वृक्ष—प्र० २३१
तीर्थङ्करों के प्रथम शिष्य—प्र० २३२
तीर्थङ्करों की प्रथम शिष्याएं—प्र० २३३
ऐरवत क्षेत्र के तीर्थङ्कर—प्र० २४८
भरत में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थङ्कर—प्र० २५१
इनके पूर्वभविक नाम—प्र० २५२
इनके माता, पिता, शिष्य, शिष्या, प्रथम भिक्षादायक और चैत्य-वृक्ष—प्र० २५३
ऐरवत में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थङ्कर—प्र० २५८

(ख) चक्रवर्ती

भरत

कुमार-काल—७७।१
अगारवास-काल—८३।५
पूर्ण आयुष्य-काल—८४।३
ऊंचाई—प्र० २६
राज्य-काल—प्र० ८१

सगर

गृहवास-काल—७१।४
ऊंचाई—प्र० २२

हरिषेण

महाराज-काल—८६।३
अगारवास-काल—६७।४

प्रकीर्ण

चक्रवर्ती के चौदह रत्न—१४।७
चक्रवर्ती के विजय—३४।२
चक्रवर्ती के पत्तन—४८।१
भरत-ऐरवत में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती—५४।१
धातकीषण्ड में चक्रवर्तियों के विजयों की संख्या—६८।१
धातकीषण्ड में चक्रवर्तियों की उत्कृष्ट संख्या—६८।३
अर्द्धपुष्करवरद्वीप में चक्रवर्तियों के विजयों की संख्या—६८।४
अर्द्धपुष्करवरद्वीप में चक्रवर्तियों की उत्कृष्ट संख्या—६८।६
चक्रवर्ती के पुर—७२।६
चक्रवर्ती के ग्राम—६६।१
चक्रवर्ती के पिता के नाम—प्र० २३४
चक्रवर्ती की माता के नाम—प्र० २३५
चक्रवर्तियों के नाम—प्र० २३६
चक्रवर्तियों के स्त्री-रत्न—प्र० २३७
भरत में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले चक्रवर्ती—प्र० २५४
इनके पिता, माता और स्त्री-रत्न—प्र० २५५
ऐरवत में आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले चक्रवर्ती आदि—प्र० २५६, २६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ग) वासुदेव-बलदेव

वासुदेव :

कृष्ण

ऊंचाई—१०।५

दत्त

ऊंचाई—३५।३

पुरुषोत्तम

ऊंचाई—५०।३

त्रिपृष्ठ

ऊंचाई—८०।२

महाराज-काल—८०।४

सम्पूर्ण आयुष्य-काल—८४।५

स्वयंभू

दूसरे राज्यों को जीतने का काल—६०।४

पुरुषसिंह

सम्पूर्ण आयुष्य-काल—प्र० ८५

बलदेव :

राम

ऊंचाई—१०।६

सम्पूर्ण आयुष्य-काल—१२।५

नन्दन

ऊंचाई—३५।४

सुप्रभ

सम्पूर्ण आयुष्य-काल—५१।४

विजय

सम्पूर्ण आयुष्य-काल—७३।२

अचल

ऊंचाई—८०।३

प्रकीर्ण

भरत-ऐरवत के प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के बलदेव-वासुदेव—५४।१

धातकीषण्ड में बलदेव-वासुदेवों की उत्कृष्ट संख्या—६८।३

अर्द्धपुष्करवरद्वीप में बलदेव-वासुदेवों की उत्कृष्ट संख्या—६८।६

बलदेव-वासुदेवों के पिताओं के नाम—प्र० २३८

बलदेव-वासुदेवों की माताओं के नाम—प्र० २३६, २४०

बलदेव-वासुदेवों का वर्णन—प्र० २४१

बलदेव-वासुदेवों के पूर्वभविक नाम—प्र० २४२

वासुदेवों के पूर्वभविक धर्माचार्य—प्र० २४३

वासुदेवों की निदान-भूमियां—प्र० २४४

वासुदेवों के निदान के कारण—प्र० २४५

वासुदेवों के प्रतिशत्रु—प्र० २४६

बलदेव-वासुदेवों की गति का निरूपण—प्र० २४७

आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले बलदेव-वासुदेवों का वर्णन—प्र० २५६,२५७

१३. देव, देवलोक तथा विमानावास

सौधर्म

स्थिति—१।३६,४०; २।१४,१६; ३।१६; ४।१३; ५।१७; ६।२२; ७।१६; ८।१३; ६।१५; १०।१६; ११।११; १२।२५; १३।१२; १४।१२; १५।१३; १६।११; १७।१५; १८।१२; १६।६; २०।११; २१।८; २२।११; २३।८; २४।१०; २५।१३; २६।६; २७।१०; २८।१०; २६।१३; ३१।६; ३२।१०; ३३।६

पालक यान-विमान का आयाम-विष्कंभ—१।२४

सौधर्मावतंसक विमानों का आयाम-विष्कंभ—१२।३

सौधर्म विमानों के प्रस्तट—१३।२

सौधर्मकल्प के विमानों की पृथ्वी की मोटाई—२७।४

सौधर्मकल्प के विमानों की संख्या—३२।४; ५२।५; ६०।६; ६२।४; ६४।५; प्र० १५५

सौधर्मावतंसक विमान की बाहा के भौमों की संख्या—६५।३

शक्र के लोकपाल वैश्रमण का आधिपत्य आदि—७८।१

शक्र के सामानिक देव—८४।६

सौधर्मकल्प के विमानों की ऊंचाई—प्र० ३०

ईशान

स्थिति—१।४१,४२; २।१५,१७; ३।१६; ४।१३; ५।१७; ६।१२; ७।१६; ८।१३; ६।१५; १०।१६; ११।११; १२।१५; १३।१२; १४।१२; १५।१३; १६।११; १७।१५; १८।१२; १६।६; २०।११; २१।८; २२।११; २३।८; २४।१०; २५।१३; २६।६; २७।१०; २८।१०; २६।१३; ३१।६; ३२।१०; ३३।६

ईशानावतंसक विमान का आयाम-विष्कंभ—१२।४

ईशान विमानों के प्रस्तट—१३।२

ईशानकल्प के विमानों की पृथ्वी की मोटाई—२७।४

ईशानकल्प के विमानों की संख्या—२८।४; ६०।६; ६२।४; ६४।५; प्र० १५२

ईशान देवेन्द्र के सामानिक देव—८०।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईशानकल्प के विमानों की ऊंचाई—प्र०२०

सनत्कुमार

स्थिति—२।१८; ३।२०; ४।१४; ५।१८; ६।१३; ७।१७
विमानों की संख्या—५२।५; प्र० १५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ३१।

माहेन्द्र

स्थिति—२।१६; ३।२०; ४।१४; ५।१८; ६।१३; ७।१८
विमानों की संख्या—५२।५; प्र० ८३,१५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ३१

ब्रह्म

स्थिति—७।१६; ८।१४; ६।१६; १०।२०
देवेन्द्र ब्रह्म के सामानिक देव—६०।५
ब्रह्मकल्प के विमानों की संख्या—६४।५; प्र० ११२
गर्दतोय और तुषित देवों का परिवार—७७।३
ब्रह्मकल्प के विमानों की ऊंचाई—प्र० ३७

लान्तक

स्थिति—१०।२१; ११।१२; १२।१६; १३।१३; १४।१३
विमानों की संख्या—५०।५; प्र० १५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ३७

शुक्र

स्थिति—१४।१४; १५।१४; १६।१२; १७।१६
विमानों की संख्या—४०।८; प्र० १५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४३

सहस्रार

स्थिति—१७।१७; १८।१३
देवेन्द्र देवराज के सामानिक देव—३०।५
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४३
विमानों की संख्या—प्र० ७१,१५२

आनत

स्थिति—१८।१४; २६।१०
विमानों की संख्या—प्र० १६,१५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४८

प्राणत

स्थिति—१६।११; २०।१२
देवेन्द्र देवराज के सामानिक देव—२०।४
विमानों की संख्या—प्र० १६,१५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४८

आरण

स्थिति—२०।१३; २१।६
विमानों की संख्या—प्र० २,१५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४८

अच्युत

स्थिति—२१।१०; २२।१२
विमानों की संख्या—प्र० ३,१५२
विमानों की ऊंचाई—प्र० ४८

ग्रैवेयक

स्थिति—२२।१३; २३।६,१०; २४।११,१२; २५।१४,१५; २६।७,८; २७।११,१२; २८।११,१२; २६।१४,१५ ३०।१२,१३; ३१।११
आन-प्राण—२३।११; २४।१३; २५।१६; २६।६; २७।१३; २८।१३; २६।१६; ३०।१४; ३१।१२
भोजन-इच्छा—२३।१२; २४।१४; २५।१७; २६।१०; २७।१४; २८।१४; २६।१७; ३०।१५; ३१।१३
ग्रैवेयक विमानों की संख्या—११।६
ग्रैवेयक विमानों की ऊंचाई—प्र० ५५
ग्रैवेयक देवों के मारणान्तिक समुद्घात से समवहत तैजस-कार्मण शरीर की अवगाहना—प्र० १६६, १७१

अनुत्तर

स्थिति—३१।१०; ३२।११; ३३।१०,११; प्र० १५६, १५७
आन-प्राण—३२।१२; ३३।१२
भोजन-इच्छा—३२।१३; ३३।१३
परिनिर्वाण—३२।१४; ३३।१४
अनुत्तर विमान के राजधानियों के प्राकारों की ऊंचाई—३७।३
अनुत्तर विमानों की ऊंचाई—प्र० ६५
अनुत्तर देवों के प्रकार—प्र० १३६
अनुत्तर देवों के मारणान्तिक समुद्घात से समवहत तैजस-कार्मण-शरीर की अवगाहना—प्र० १७०,१७१
सर्वार्थसिद्ध महाविमान का आयाम-विष्कंभ—१।२५
सर्वार्थसिद्ध महाविमान से ईषत्प्राग्भारा की दूरी—१२।१०

प्रकीर्ण

वैमानिकों के विमान-प्रस्तट—६२।५
वैमानिक देवों के विमानों की संख्या—८४।१८
वैमानिक देवों के विमानों के प्राकार—प्र० ११
वैमानिक देवों के आवास—प्र० १५०
वैमानिक देवों का संहनन—प्र० १६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देवों का संस्थान—प्र० २०८
वैमानिक देवों में वेद—प्र० २१४

भवनपति

असुरकुमारों की स्थिति—१३।३२-३४; २।१०,११; ३।१६; ४।१२; ५।१६; ६।११; ७।१५; ८।१२; ९।१४; १०।१४,१६; ११।१०; १२।१४; १३।११; १४।११; १५।१२; १६।१०; १७।१४; १८।११; १९।८; २०।१०; २१।७; २२।१०; २३।७; २४।९; २५।१२; २६:५; २७।९; २८।९; २९।१२; ३०।११; ३१।८; ३२।९; ३३।८
असुरकुमारावासों की संख्या—६४।२
असुरकुमारासों का वर्णन—प्र० १४४
असुरकुमारों के प्रासादावतंसकों की ऊंचाई—प्र० ८
असुरकुमारों का संहनन—प्र० १८८
असुरकुमारों का संस्थान—प्र० १९८
असुरकुमारों में वेद—प्र० २११
चमर और बलि के अवतारिकालयन का आयाम-विष्कंभ—१६।६
राजधानी चमरचंचा के द्वारों पर स्थित भौम—३३।२
चमर के भवनावास—३४।५
चमर और बलि की सुधर्मा सभा—३६।२; ५१।२,३
चमर के सामानिक देव—६४।३
नागराज भूतानन्द के भवनावास—४०।४
नागेन्द्र धरण के भवनावास—४४।३
नागकुमार देवों की आवास-संख्या—८४।१२
वायुकुमारेन्द्र के भवनावास—४६।३
वेणुदेव (सुपर्णकुमारजातीय) के आवास की ऊंचाई—८।५
सुपर्णकुमार देवों के आवासों की संख्या—७२।१
विद्युत्कुमार देवों के आवासों की संख्या—७६।१
द्वीपकुमार आदि देवों के आवासों की संख्या—७६।२
वायुकुमार देवों के भवनावास—९६।२
परमाधार्मिकों के प्रकार—१५।१
सभी भवनपति आवासों का वर्णन—प्र० १४५
सभी भवनपति देवों का संहनन—प्र० १८९
सभी भवनपति देवों का संस्थान—प्र० १९८
सभी भवनपति देवों में वेद—प्र० २११

वानमन्तर

स्थिति—१।३७; १०।१८
वानमन्तर देवों के चैत्यवृक्ष की ऊंचाई—८।३
वानमन्तर देवों के सुधर्मा सभा की ऊंचाई—९।१०
वानमन्तर देवों के आवास—प्र० १४८
वानमन्तर देवों का संहनन—प्र० १९५
वानमन्तर देवों का संस्थान—प्र० २०८
वानमन्तर देवों में वेद—प्र० २१४

ज्यौतिषिक

स्थिति—१।३८
ज्यौतिषिक देवों के आवास—प्र० १४९
ज्यौतिषिक देवों का संहनन—प्र० १९५
ज्यौतिषिक देवों का संस्थान—प्र० २०८
ज्यौतिषिक देवों में वेद—प्र० २१४

अन्यदेव

स्थिति—१।४३; २।२०; ३।२१; ४।१५; ५।१९; ६।१४; ७।२०; ८।१५; ९।१७; १०।२२; ११।१३; १२।१७; १३।१४; १४।१५; १५।१५; १६।१३; १७।१८; १८।१५; १९।१२; २०।१४; २१।११; २२।१४
आन-प्राण—१।४४; २।२१; ३।२२; ४।१६; ५।२०; ६।१५; ७।२१; ८।१६; ९।१८; १०।२३; ११।१४; १२।१८; १३।१५; १४।१६; १५।१६; १६।१४; १७।१९; १८।१६; १९।१३; २०।१५; २१।२१; २२।१५
भोजन-इच्छा—१।४५; २।२२; ३।२३; ४।१७; ५।२१; ६।१६; ७।२२; ८।१७; ९।१९; १०।२४; ११।१५; १२।१९; १३।१६; १४।१७; १५।१७; १६।१५; १७।२०; १८।१७; १९।१४; २०।१६; २१।१३; २२।१६

प्रकीर्ण

देवताओं के इन्द्र सहित स्थान—२४।३
देवेन्द्रों की संख्या—३२।२
उडुविमान का आयाम-विष्कंभ—४५।३
देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना—प्र० १६३
देवों के आयुष्य-बंध के प्रकार—प्र० १७८
देवगति के उपपात का विरह-काल—प्र० १८०
देवगति की उद्वर्तना का विरह-काल—प्र० १८२
देवों के आयुष्य के आकर्ष—प्र० १८५

१४. द्रव्यवाद

आत्मा-अनात्मा—१।४,५
लोक-अलोक—१।१०,११
राशिद्वय—२।२; ७।१३५-१३८
अस्तिकाय—५।८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनिकाय—६।२
जीवों के समूह—१४।१
पुद्गल परिमाण के प्रकार—२२।६

१५. द्रह

पद्मद्रह और पुंडरीकद्रह की लम्बाई—प्र० ६४
महापद्मद्रह और महापुंडरीकद्रह की लम्बाई—प्र० ६७
तिगिंछद्रह और केसरीद्रह की लम्बाई—प्र० ६६

१६. नन्दनवन

नन्दनवन से सौगंधिक कांड का अन्तर—८५।४
नन्दनवन से पाण्डुवन का अन्तर—६८।१
नन्दनवन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त—६६।१,२
नन्दनवन के दक्षिणी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त—६६।१,२
नन्दनवन के कूटों की ऊंचाई आदि—प्र० २६
बलकूट पर्वतों की ऊंचाई आदि—प्र० ६०

१७. नरक तथा नैरयिक

पहली पृथ्वी

स्थिति—१।२६,३०; २।८; ३।१३; ४।१०; ५।१४; ६।६; ७।१२; ८।१०; ९।१२; १०।६,१०; ११।८; १२।१२; १३।६; १४।८; १५।१०; १६।८; १७।११; १८।६; १६।६; २०।८; २१।५; २२।७; २३।५; २४।७; २५।१०; २६।३; २७।७; २८।७; २६।१०; ३०।६; ३१।६; ३२।७; ३३।५

रत्नप्रभा और चारणमुनि—१७।६
रत्नप्रभा के नरकावास—३०।८; ३४।६; ४१।२; ४३।२, ५५।५; ५८।१; ७४।४
सीमंतक नरक का आयाम-विष्कंभ—४५।२
रत्नप्रभा के अप्कायबहुल कांड की मोटाई—८०।५
रत्नप्रभा के पंकबहुल कांड के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अंतर—८४।१०
रत्नप्रभा के अंजनकांड के नीचे के चरमान्त से वानमंतरों के भौमेय-विहारों के ऊपर के चरमान्त का व्यवधानात्मक अंतर—६६।७
रत्नप्रभा के प्रथम कांड से वानमंतरों के भौमेय विहारों की दूरी—प्र० ४४
रत्नप्रभा से ऊपर के तारागण की दूरी—प्र० ५२
रत्नप्रभा के वज्रकांड के ऊपर के चरमान्त से लोहिताक्षकांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अंतर—प्र० ६८
रत्नप्रभा के रत्नकांड से पुलककांड का व्यवधानात्मक अन्तर—प्र० ७२
रत्नप्रभा के नरकावास और उनका क्षेत्र—प्र० १४१
रत्नप्रभा के नैरयिकों के उपपात और उद्वर्तन का विरह-काल—प्र० १८३

दूसरी पृथ्वी

स्थिति—१।३१; २।६; ३।१४
नरकावासों की संख्या—२५।४; ३५।६; ३६।३; ५५।५; ५६।१; ७४।४
दूसरी पृथ्वी से दूसरे घनोदधि का अन्तर—८६।३

तीसरी पृथ्वी

स्थिति—३।१५; ४।११; ५।१५; ६।१०; ७।१३
नरकावासों की संख्या—७४।४

चौथी पृथ्वी

स्थिति—७।१४; ८।११; ९।१३; १०।११,१२
नरकावासों की संख्या—३५।६; ३६।३; ४१।२; ४३।२

पांचवीं पृथ्वी

स्थिति—९।१३; ११।६; १३।१०; १४।१०; १५।११; १६।६; १७।१२
धूमप्रभा की मोटाई—१८।७
नरकावासों की संख्या—३४।६; ३६।३; ४३।२; ५८।१; ७४।४

छठी पृथ्वी

स्थिति—१७।१३; १८।१०; १६।७; २०।६; २१।६; २२।८
नरकावासों की संख्या—३४।६; ३६।३; ४१।२; ७४।४
छठी पृथ्वी से घनोदधि का अन्तर—७६।३

सातवीं पृथ्वी

स्थिति—२२।६; २३।६; २४।८; २५।११; २६।४; २७।८; २८।८; २६।११; ३०।१०; ३१।७; ३२।८; ३३।६
नरकावासों की संख्या—३४।६; ३६।३; ४१।२; ७४।४
अप्रतिष्ठान नरक का आयाम-विष्कंभ—१।२३
नरकावास और उनका क्षेत्र—प्र० १४३

प्रकीर्ण

नरकावासों की संख्या—८४।१; प्र० १४२
नैरयिकों के प्रकार—प्र० १४०
नरकावासों का क्षेत्र और बाहल्य—प्र० १४२
नैरयिकों की स्थिति—प्र० १५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति—प्र० १५४
पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति—प्र० १५५
नैरयिकों की वेदना—प्र० १७३
नैरयिकों का आहार—प्र० १७५
नैरयिकों का आयुष्य-बंध—प्र० १७७
नरकगति के उपपात और उद्वर्तना का विरह-काल—प्र० १७९, १८२
नैरयिक के आयुष्य के आकर्ष—प्र० १८४, १८५
नैरयिकों का संहनन—प्र० १८७
नैरयिकों का संस्थान—प्र० १९७
नैरयिकों का वेद—प्र० २१०

१८. पर्वत

वर्षधर

वर्षधर पर्वतों की संख्या—७।४
क्षुल्लहिमवान् और शिखरी की जीवा की लम्बाई—२४।२
महाहिमवान् और रुक्मी की जीवा की लम्बाई—५३।२
महाहिमवान् और रुक्मी की जीवा की धनु:पृष्ठ की परिधि—५७।५
महाहिमवान् और सौगन्धिक कांड—८२।३
रुक्मी आर सौगंधिक कांड—८२।४
महाहिमवान् और रुक्मी से सौगंधिक कांड—८७।६,७
निषध और नीलवान् की जीवा की लम्बाई—९४।१
क्षुल्लहिमवान् और शिखरी की ऊंचाई—१००।७
महाहिमवान् और रुक्मी की ऊंचाई तथा गहराई—प्र० ५
निषध और नीलवान् की ऊंचाई तथा गहराई—प्र० १७
सभी वर्षधर पर्वतों की ऊंचाई और चौड़ाई—प्र० २४
निषध से रत्नप्रभा पृथ्वी—प्र० ५३
नीलवान् से रत्नप्रभा पृथ्वी—प्र० ५४
क्षुलहिमवत्कूट से क्षुल्लहिमवान् पर्वत—प्र० ३२, ४१
शिखरीकूट से शिखरी पर्वत—प्र० ३३, ४२
निषधकूट से निषध पर्वत—प्र० ४९
नीलवत्कूट से नीलवान् पर्वत—प्र० ५०
हरिकूट की ऊंचाई—प्र० ५९

मन्दर

मूल की चौड़ाई—१०।३
धरणीतल से शिखर तक की चौड़ाई—११।७
चूलिका के मूलभाग की चौड़ाई—१२।६
विभिन्न नाम—१६।३
पृथ्वीतल पर परिधि—३१।२
दूसरे कांड की ऊंचाई—३८।३
चूलिका की ऊंचाई—४०।२
मन्दर का चारों दिशाओं का व्यवधानात्मक अन्तर—४५।६
मन्दर से विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित द्वारों का व्यवधानात्मक अन्तर—५५।२,३
प्रथम कांड की ऊंचाई—६१।२
गौतम द्वीप का व्यवधानात्मक अन्तर—६७।३; ६९।२
बाहर के मन्दर पर्वतों की ऊंचाई—८४।७
आवास-पर्वतों का व्यवधानात्मक अन्तर—८७।१-४; ८८।३-६; ९२।३,४; ९७।१,२; ९८।२,३
नाभिरूप रुचक प्रदेशों से चारों दिशाओं में मन्दर का व्यवधानात्मक अंतर—प्र० ७०
धरणीतल पर मन्दर की चौड़ाई—प्र० ७५

आवास-पर्वत

वेलंधर और अनुवेलंधर नागराजाओं के आवास-पर्वतों की ऊंचाई—१७।४
जम्बूद्वीप से व्यवधानात्मक अन्तर—४२।२,३; ४३।३,४

दीर्घवैताढ्य

ऊंचाई और गहराई—२५।३
जम्बूद्वीप के दीर्घवैताढ्यों की संख्या—३४।३
मूल की चौड़ाई—५०।४
तमिस्रगुफाओं तथा खंडप्रपातगुफाओं की लम्बाई—५०।६
ऊंचाई—१००।६

वृत्तवैताढ्य

वृत्तवैताढ्य पर्वतों से सौगन्धिक कांड—९०।५
परिमाण और संस्थान—प्र० ५८

दधिमुख

आकार, चौड़ाई और ऊंचाई—६४।४

अञ्जन

ऊंचाई—४।८

मंडलिक

रुचक मंडलिक पर्वत का पूर्ण परिमाण—८५।३

उत्पात

चमर के तिगिंछिकूट उत्पात पर्वत की ऊंचाई—१७।७
बलि के रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत की ऊंचाई—१७।८

काञ्चनक

शिखरतल पर चौड़ाई—५०।७
ऊंचाई, गहराई और मूल में चौड़ाई—१००।८
जम्बद्वीप के काञ्चनक पर्वतों की संख्या—प्र० ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानुषोत्तर

ऊंचाई—१७।३

वक्षस्कार

वक्षस्कार पर्वतों की निषध और नीलवान वर्षधरों के पास की ऊंचाई और गहराई—प्र० १८

सीता, सीतोदा और मंदर के पास उनकी ऊंचाई और गहराई—प्र० २३

सौमनस आदि वक्षस्कार पर्वतों का वर्णन—प्र० २७

वक्षस्कार पर्वतों के कूट—प्र० २८

चित्रकूट और विचित्रकूट की ऊंचाई आदि—प्र० ५७

हरिस्सहकूट की ऊंचाई आदि—प्र० ५६

यमक पर्वत

यमक पर्वतों की ऊंचाई आदि—प्र० ५६

१९. भवसिद्धिक जीवों का परिनिर्वाण

परिनिर्वाण—१।४६; २।२३; ३।२४; ४।१८; ५।२२; ६।१७; ७।२३; ८।१८; ९।२०; १०।२५; ११।१६; १२।२०; १३।१७; १४।१८; १५।१८; १६।१६; १७।२१; १८।१८; १९।१५; २०।१७; २१।१४; २२।१७; २३।१३; २४।१५; २५।१८; २६।११; २७।१६; २८।१५; २९।१८; ३०।१६; ३१।१४

२०. मनुष्य

असंख्य वर्षों की आयु वाले गर्भज संज्ञी मनुष्यों की स्थिति—१।३६; २।१३

मनुष्यों के प्रयोगों के प्रकार—१५।९

मनुष्यों के आवास—प्र० १४७

मनुष्य गति के उपपात और उद्वर्तना का विरह-काल—प्र० १८०,१८२

मनुष्यों के आयुष्य के आकर्ष—प्र० १८५

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का संहनन—प्र० १९३

गर्भावक्रान्तिक मनुष्यों का संहनन—प्र० १९४

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का संस्थान—प्र० २०ण

गर्भावक्रान्तिक मनुष्यों का संस्थान—प्र० २०७

सम्मूर्च्छिम मनुष्यों का वेद—प्र० २१२

गर्भावक्रान्तिक मनुष्यों का वेद—प्र० २१३

२१. मृत्यु

मरण के प्रकार—१७।९

२२. मोक्ष

मोक्ष—१।१७

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नाम—१२।११

सिद्धि के आदि-गुण—३१।१

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी का आयाम-विष्कंभ—४५।४

चरम-शरीरी जीवों के जीव-प्रदेशों की अवगाहना—प्र० १३

सिद्धिगति का विरह-काल—प्र० १८१

२३. राजर्षि

अंगवंश के प्रव्रजित राजे—७७।२

२४. लेश्या

लेश्या के प्रकार—६।१

२५. शरीर

शरीर के प्रकार—प्र० १५८

औदारिक शरीर के प्रकार और अवगाहना—प्र० १५९-१६१

वैक्रिय शरीर के प्रकार और अवगाहना—प्र० १६२,६३

आहारक शरीर के प्रकार, संस्थान और अवगाहना—प्र० १६४ १६६

तैजस और कार्मण शरीर के प्रकार आदि-आदि-प्र० १६७,१६८ १७१

२६. संघ-व्यवस्था

संभोग सामुदायिक व्यवहार—१२।२

कृतिकर्म के आवर्त—१२।३

२७. समवाय का उत्क्षेप

समवाय का उत्क्षेप—१।१,३

२८. समवाय का निक्षेप

समवाय का निक्षेप—प्र० २६१

२९. समुद्घात

छाद्मस्थिक समुद्घात के प्रकार—६।५

समुद्घात के प्रकार—७।२

३०. समुद्र और नदियां

जम्बूद्वीप की चौदह नदियां—१४।८

लवणसमुद्र में उत्सेध और परिवृद्धि—१६।७

लवणसमुद्र की सम्पूर्ण ऊंचाई—१७।५

घनसमुद्रों की मोटाई—२०।३

गंगा और सिन्धू का प्रवाह के स्थान पर विस्तार—२४।५

रक्ता और रक्तवती का प्रवाह के स्थान पर विस्तार—२४।६

गंगा और सिन्धू का प्रपात—२५।७

रक्ता और रक्तवती का प्रपात—२५।८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालोद समुद्र में चन्द्र सूर्य—४२।४
लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला के धारक—४२।७
महापातालकलशों का व्यवधानात्मक अन्तर—५२।२, ३; ५७।२,३; ५८।३,४
लवणसमुद्र के अग्रोदक के धारक—६०।२
लवणसमुद्र के बाह्यवेला के धारक—७२।२
शीतोदा और शीता नदी—७४।२,३
पातालकलश और शीता नदी—७९।१,२
कालोद समुद्र का परिक्षेप—९१।२
लवणसमुद्र में एक-एक प्रदेश की हानि—९५।३
लवणसमुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ—प्र० ७७
लवणसमुद्र के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का अन्तर—प्र० ८०

३१. साधना

अदंड—१।७
अक्रिया—१।९
धर्म—१।१२
संवर—१।१६; ५।५
वेदना—१।२०
निर्जरा—१।२१; ५।६
गुप्तियां—३।२
ध्यान—४।२
महाव्रत—५।२
समितियां—५।७
बाह्य तपःकर्म—६।३
आभ्यन्तर तपःकर्म—६।४
प्रवचनमाता—८।२
ब्रह्मचर्य की गुप्तियां—९।१
श्रमण-धर्म—१०।१
चित्त समाधि के स्थान—१०।२
उपासक प्रतिमाएं—११।१
भिक्षु प्रतिमाएं—१२।१; ६४।१; ८१।१; १००।१
जीवस्थान (गुणस्थान)—१४।५
संयम के प्रकार—१७।२
ब्रह्मचर्य के प्रकार—१८।१
आचार के अठारह स्थान—१८।४
परीषह—२२।१
पंचयाम की पचीस भावनाएं—२५।२
मुनि के गुण—२७।१
योग-संग्रह—३२।१
सत्य-वचन के अतिशय—३५।१
वैयावृत्त्य कर्म की प्रतिमाएं—९१।१
प्रतिमाएं—९२।१

३२. साधना के विघ्न

दंड—१।६; २।१; ३।१
अधर्म—१।१३
पुण्य—१।१४
पाप—१।१४
बंधन—१।१६; २।३
आस्रव—१।१८; ५।४
शल्य—३।३
गौरव—३।४
कषाय—४।१; १६।२
विकथा—४।३
संज्ञा—४।४
कामगुण—५।३
भय के स्थान—७।१
मद के स्थान—८।१
ब्रह्मचर्य की अगुप्तियां—९।२
असंयम के प्रकार—१७।१
असमाधि स्थान—२०।१
सबल—२१।१
आशातनाएं—३३।१

३३. सूर्य, चन्द्र, ग्रह-नक्षत्र

सूर्य

सूर्यमंडल का परिमाण—१३।८
जम्बूद्वीप के सूर्यों का तपन-क्षेत्र—१९-२
सूर्य का बाह्यमंडल में उपसंक्रमण—३१।३
सूर्य की अन्तर्वर्ती तीसरे मंडल में गति—३३।४
कालोद समुद्र में चन्द्र-सूर्य—४२।२
सूर्य का आभ्यन्तरमंडल से उपसंक्रमण—४७।१
सूर्य के मंडलों का निष्पन्न-काल—६०।१
सूर्यमंडल का समांश—६१।४
सूर्यमंडलों की संख्या—६५।१
आभ्यन्तरपुष्करार्द्ध के चन्द्र-सूर्य—७२।५
उत्तरायण से निवृत्त सूर्य का रात्रि-दिवस पर प्रभाव—७८।३
दक्षिणायन से निवृत्त सूर्य का रात्रि-दिवस पर प्रभाव—७८।४
उत्तर दिशा के सूर्य का प्रथम उदय—८०।७
सूर्य के मंडलों का परिमाण—८२।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्य का परिवार—८८।१
सूर्य का अहोरात्र को विषम करना—९३।३
प्रथम सूर्यमंडल का आयाम-विष्कंभ—९९।४
द्वितीय सूर्यमंडल का आयाम-विष्कंभ—९९।५
तृतीय सूर्यमंडल का आयाम-विष्कंभ—९९।६
सूर्य की गति का क्षेत्र—प्र० ४६

चन्द्र

चन्द्रमंडल का समांश—६०।३
शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के चन्द्र की वृद्धि-हानि—६२।३
चन्द्र का परिवार—८८।१

ग्रह-नक्षत्र

आर्द्रा नक्षत्र का तारा-परिमाण—१।२६
चित्रा ,, ,, —१।२७
स्वाति ,, ,, —१।२८
पूर्वफल्गुनी ,, ,, —२।४
उत्तरफल्गुनी ,, ,, —२।५
पूर्वभाद्रपद ,, ,, —२।६
उत्तरभाद्रपद ,, ,, —२।७
मृगशीर्ष ,, ,, —३।६
पुष्य ,, ,, —३।७
ज्येष्ठा ,, ,, —३।८
अभिजित् ,, ,, —३।९
श्रवण ,, ,, —३।१०
अश्विनी ,, ,, —३।११
भरणी ,, ,, —३।१२
अनुराधा ,, ,, —४।७
पूर्वाषाढ़ा ,, ,, —४।८
उत्तराषाढ़ा ,, ,, —४।९
रोहिणी ,, ,, —५।९
पुनर्वसु ,, ,, —५।१०
हस्त ,, ,, —५।११
विशाखा ,, ,, —५।१२
धनिष्ठा ,, ,, —५।१३
कृत्तिका ,, ,, —६।७
अश्लेषा ,, ,, —६।८
मघा ,, ,, —७।७
पूर्वद्वारिक नक्षत्र—७।८
दक्षिणद्वारिक नक्षत्र—७।९
पश्चिमद्वारिक नक्षत्र—७।१०
उत्तरद्वारिक नक्षत्र—७।११
चन्द्रमा के साथ प्रमर्द-योग करने वाले नक्षत्र—८।९
अभिजित् नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग-काल—९।५
चन्द्र के साथ उत्तर दिशा से योग करने वाले नक्षत्र—९।६
उपरितन तारागणों का भ्रमण-क्षेत्र—९।७
ज्ञानवृद्धि करने वाले नक्षत्र—१०।७
लोकान्त और ज्योतिष्-चक्र के पर्यन्तों का अन्तर—११।२
ज्योतिष्-चक्र के परिभ्रमण का क्षेत्र—११।३
मूल नक्षत्र का तारा-परिमाण—११।५
ध्रुवराहु से चन्द्र का आवरण—१५।३,४
चन्द्र के साथ पन्द्रह मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्र—१५।५
शुक्र का उदय-अस्त—१९।३
जम्बूद्वीप में व्यवहृत नक्षत्र—२७।२
रेवति नक्षत्र का तारा-परिमाण—३२।५
द्वयर्द्धक्षेत्र के नक्षत्रो का चन्द्र के साथ योग-काल—४५-७
चन्द्रमा के साथ योग करने वाले नक्षत्र—५६।१
नक्षत्रों का सीमा-विष्कंभ—६७।४
उन्नीस नक्षत्रों का तारा-परिमाण—९८।७
शतभिषग का तारा-परिमाण—१००।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१

पढमो समवाओ : पहला समवाय

मूल

१. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खाय—

२. इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आदिगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसोत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपोंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगोत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोयगरेणं अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहयवरणाणदंसणधरेणं वियट्टच्छउमेणं जिणेणं जावएणं तिण्णेणं तारएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयगेणं सव्वण्णुणा सव्वदरिसिणा सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तयं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते, तं जहा—आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवा(आ?)हपण्णत्ती नायधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुए दिट्ठिवाए।

संस्कृत छाया

श्रुतं मया आयुष्मन्! तेन भगवता एवमाख्यातम्—

इह खलु श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण तीर्थंकरेण स्वयंसम्बुद्धेन पुरुषोत्तमेन पुरुषसिंहेन पुरुषवरपुण्डरीकेण पुरुषवरगन्धहस्तिना लोकोत्तमेन लोकनाथेन लोकहितेन लोकप्रदीपेन लोकप्रद्योतकरेण अभयदयेन चक्षुर्दयेन मार्गदयेन शरणदयेन जीवदयेन धर्मदयेन धर्मदेशकेन धर्मनायकेन धर्मसारथिना धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्तिना अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेण व्यावृत्तच्छद्मना जिनेन ज्ञापकेन तीर्णेन तारकेण बुद्धेन बोधकेन मुक्तेन मोचकेन सर्वज्ञेन सर्वदर्शिना शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावर्त्तकं सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्तुकामेन इदं द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचारः सूत्रकृतम् स्थानम् समवायः विवाह(व्याख्या ?) प्रज्ञप्तिः ज्ञातधर्मकथाः उपासकदशाः अन्तकृतदशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरणानि विपाकश्रुतम् दृष्टिवादः।

हिन्दी अनुवाद

१. आयुष्मन् ! मैंने सुना है, भगवान् ने ऐसा कहा है—

२. आदिकर (श्रुत-धर्म-प्रणायक), तीर्थंकर, स्वयंसंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषवरपुंडरीक, पुरुषवरगंधहस्ती, लोकोत्तम, लोकनाथ, लोकहितकर, लोकप्रदीप, लोकप्रद्योतकर, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, जीवनदाता, धर्मदाता, धर्मदेशक, धर्मनायक, धर्मसारथि, धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ती, अप्रतिहतज्ञान-दर्शनधर, व्यावृत्तछद्म (निरावरण), जिन (ज्ञाता) और ज्ञापक, तीर्ण और तारक, बुद्ध और बोधक, मुक्त और मोचक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव-अचल-अरुज-अनन्त-अक्षय-अव्याबाध-अपुनरावर्त्तक सिद्धिगति नामक स्थान की संप्राप्ति में क्षम श्रमण भगवान् महावीर ने इस द्वादशांग गणिपिटक की प्रज्ञापना की—
१. आचार, २. सूत्रकृत, ३. स्थान, ४. समवाय, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति, ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृतदशा, ९. अनुत्तरोपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकश्रुत, १२. दृष्टिवाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. तत्थ णं जेसे चउत्थे अंगे समवाए-त्ति आहिते, तस्स णं अयमट्ठे, तं जहा—	तत्र यत्तच्चतुर्थमङ्गं समवाय इत्याख्या-तम्, तस्य अयमर्थः, तद्यथा—	३. इनमें चौथा अंग समवाय कहा गया है, उसका यह अर्थ है, जैसे—
४. एगे आया।	एक आत्मा।	४. आत्मा एक है।
५. एगे अणाया।	एकोऽनात्मा।	५. अनात्मा एक है।[1]
६. एगे दंडे।	एको दण्डः।	६. दण्ड (दुष्प्रयोग अथवा हिंसा) एक है।
७. एगे अदंडे।	एकोऽदण्डः।	७. अदण्ड एक है।
८. एगा किरिआ।	एका क्रिया।	८. क्रिया (आस्तिकता) एक है।
९. एगा अकिरिआ।	एकाऽक्रिया।	९. अक्रिया (नास्तिकता) एक है।
१०. एगे लोए।	एको लोकः।	१०. लोक एक है।
११. एगे अलोए।	एकोऽलोकः।	११. अलोक एक है।
१२. एगे धम्मे।	एको धर्मः।	१२. धर्मास्तिकाय एक है।
१३. एगे अधम्मे।	एकोऽधर्मः।	१३. अधर्मास्तिकाय एक है।
१४. एगे पुण्णे।	एकं पुण्यम्।	१४. पुण्य एक है।
१५. एगे पावे।	एकं पापम्।	१५. पाप एक है।
१६. एगे बंधे।	एको बन्धः।	१६. बन्ध एक है।
१७. एगे मोक्खे।	एको मोक्षः।	१७. मोक्ष एक है।
१८. एगे आसवे।	एक आश्रवः।	१८. आस्रव एक है।
१९. एगे संवरे।	एकः संवरः।	१९. संवर एक है।
२०. एगा वेयणा।	एका वेदना।	२०. वेदना एक है।[2]
२१. एगा णिज्जरा।	एका निर्जरा।	२१. निर्जरा एक है।[3]
२२. जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।	जम्बूद्वीपो द्वीप एकं योजनशतसहस्रं आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।	२२. जम्बूद्वीप द्वीप का आयाम-विष्कंभ (लम्बाई-चौड़ाई) एक लाख योजन है।
२३. अप्पइट्ठाणे नरए एगं जोयणसय-सहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।	अप्रतिष्ठानो नरक एकं योजनशतसहस्रं आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।	२३. अप्रतिष्ठान नरक का आयाम-विष्कंभ एक लाख योजन है।
२४. पालए जाणविमाणे एगं जोयणसय-सहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।	पालकं यानविमानं एकं योजनशतसहस्रं आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।	२४. पालक यान-विमान का आयाम-विष्कंभ एक लाख योजन है।
२५. सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।	सर्वार्थसिद्धं महाविमानं एकं योजनशत-सहस्रं आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।	२५. सर्वार्थसिद्ध महा-विमान का आयाम-विष्कंभ एक लाख योजन है।
२६. अद्दानक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।	आर्द्रानक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।	२६. आर्द्रा नक्षत्र का तारा एक है।
२७. चित्तानक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।	चित्रानक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।	२७. चित्रा नक्षत्र का तारा एक है।
२८. सातिनक्खत्ते एगतारे पण्णत्ते।	स्वातिनक्षत्रं एकतारं प्रज्ञप्तम्।	२८. स्वाति नक्षत्र का तारा एक है।
२९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।	२९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति एक पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाणामुत्कर्षेण एकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है।

३१. दोच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं जहन्नेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

द्वितीयायां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन एकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३१. दूसरी पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति एक सागरोपम की है।

३२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३२. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

३३. असुरकुमाराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं साहियं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानामुत्कर्षेण एकं साधिकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३३. असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक सागरोपम की है।

३४. असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमारेन्द्रवर्जितानां भौमेयानां देवानां अस्ति एकेषां एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३४. असुरकुमारेन्द्र को छोड़कर कुछ भौमेय (भवनवासी) देवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

३५. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुःसंज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां अस्ति एकेषां एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३५. असंख्य वर्षों की आयु वाले कुछ संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकजीवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

३६. असंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियसण्णिमणुयाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुर्गर्भावक्रान्तिकसंज्ञिमनुजानां अस्ति एकेषां एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३६. असंख्य वर्षों की आयु वाले कुछ गर्भज-संज्ञी मनुष्यों की स्थिति एक पल्योपम की है।

३७. वाणमंतराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

वानमन्तराणां देवानामुत्कर्षेण एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३७. व्यंतर देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की है।

३८. जोइसियाणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिई पण्णत्ता।

ज्योतिष्काणां देवानामुत्कर्षेण एकं पल्योपमं वर्षशतसहस्रमभ्यधिकं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३८. ज्योतिषिक देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम है।

३९. सोहम्मे कप्पे देवाणं जहन्नेणं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे देवानां जघन्येन एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

३९. सौधमकल्प के देवों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की है।

४०. सोहम्मे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे देवानां अस्ति एकेषां एकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४०. सौधर्मकल्प के कुछ देवों की स्थिति एक सागरोपम की है।

४१. ईसाणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साइरेगं एगं पलिओवमं ठिई पण्णत्ता।

ईशाने कल्पे देवानां जघन्येन सातिरेकं एकं पल्योपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४१. ईशानकल्प के देवों की जघन्य स्थिति साधिक एक पल्योपम की है।

४२. ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।

ईशाने कल्पे देवानां अस्ति एकेषां एकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४२. ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति एक सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पण्णत्ता।	ये देवाः सागरं सुसागरं सागरकान्तं भवं मनुं मानुषोत्तरं लोकहितं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण एकं सागरोपमं स्थितिः प्रज्ञप्ता।	४३. सागर, सुसागर, सागरकान्त, भव, मनु, मानुसोत्तर और लोकहित विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है।
४४. ते णं देवा एगस्स अद्धमासस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।	ते देवा एकस्यार्द्धमासस्य आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।	४४. वे देव एक पक्ष से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।[४]
४५. तेसि णं देवाणं एगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुपज्जइ।	तेषां देवानामेकस्य वर्षसहस्रस्य आहारार्थः समुत्पद्यते।	४५. उन देवों के एक हजार वर्ष से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।
४६. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एगेणं भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकेन भवग्रहणेन सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	४६. कुछ भवसिद्धिक जीव[५] एक बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।[६]

टिप्पण

१. आत्मा एक है (एगे आया)

आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन अनेक नयों से किया गया है। आत्मा के अनेक प्रदेश (अवयव) होते हैं, फिर भी द्रव्यत्व की दृष्टि से वह एक है। आत्मा का प्रतिक्षण पर्याय-परिवर्तन होता है, फिर भी कालत्रयानुगामी चैतन्य की उपेक्षा से वह एक है। प्रत्येक आत्मा में पृथक् चैतन्य होता है, फिर भी संग्रहनय की दृष्टि से आत्मा एक है। इस प्रकार अनेक नयों से आत्मा का एकत्व विवक्षित है। शेष सतरह सूत्रों में भी इसी प्रकार नय-दृष्टि की योजना की जा सकती है।

विशेष विवरण के लिए देखें :—ठाणं, १/२ का टिप्पण, पृष्ठ १८, १९।

२. वेदना एक है (एगा वेयणा)

वेदना—उदयावलिका में प्रविष्ट कर्म-पुद्गलों का अनुभव करना। पहले कर्म-पुद्गलों की वेदना होती है फिर निर्जरा—कर्म-पुद्गलों का आत्मा से विलगाव।

३. सूत्र ४-२१ :

इन सूत्रों में एक-एक तत्त्व का कथन है। इसी प्रकार का प्रतिपादन स्थानांग सूत्र १/२-१९ में हुआ है। समवाओ में अणाया, अदंडे, और अकिरिया—ये तीन शब्द अधिक हैं। इन सबके विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं, पृष्ठ १९, २०।

४. सूत्र ४४. ४५ :

देवताओं का उच्छ्वास-निःश्वास और भोजन उनकी आयुष्य के कालमान के आधार पर निर्धारित होता है।

प्राचीन गाथा में कहा गया है—

'जस्स जइ सागरोवमाइं ठिई, तस्स तत्तिएहिं तत्तिएहिं पक्खेहिं।

ऊसासो देवाणं वाससहस्सेहिं आहारो तत्तिएहिं पक्खेहिं॥'

जिसकी जितने सागरोपम की आयुष्य-स्थिति होती है, उसके एक सागरोपम आयुष्य-स्थिति का एक पक्ष—इस अनुपात से श्वासोच्छ्वास की क्रिया होती है, और एक सागरोपम का एक हजार वर्ष—इस अनुपात से आहार का कालमान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे, जिसकी आयु: स्थिति एक सागरोपम की है, वह एक पक्ष से आन, पान, उच्छ्वास, निःश्वास लेगा और उसमें एक हजार वर्ष से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होगी।[1]

५. भवसिद्धिक (भवसिद्धिया)

जिनकी सिद्धि होने वाली होती है, वे जीव भवसिद्धिक कहलाते हैं। तात्पर्यार्थ में यह शब्द भव्य का वाचक है। मनुष्य का भव ही मुक्ति का उपादान कारण है, इसलिए यहां इस शब्द से मनुष्य अभिप्रेत है।

सिद्धि के अनेक अर्थ हैं। उसका एक अर्थ है—मुक्ति, और दूसरा अर्थ है—आठ प्रकार की महान् ऋद्धियों की प्राप्ति। वे आठ प्रकार ये हैं—लघिमा, वशिता, ईशित्व, प्राकाम्य, महिमा, अणिमा, यत्रकामावसायित्व और प्राप्ति।

६. सूत्र ४६ :

प्रस्तुत सूत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत—ये चार शब्द हैं। ये एकार्थक होने पर भी इनका वाच्यार्थ भिन्न-भिन्न है—

सिद्ध—ऋद्धियों की प्राप्ति।

बुद्ध—केवलज्ञान की प्राप्ति।

मुक्त—कर्मबंधन से मुक्त।

परिनिर्वृत—कर्म-कृत विकारों से वियुक्त होने के कारण परम शांत।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६,७ :
स्थित्यनुसारेण च देवानामुछ्वासादयो भवन्तीति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

बीओ समवाओ : दूसरा समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. दो दंडा पण्णत्ता, तं जहा—अट्ठादंडे चेव, अणट्ठादंडे चेव।	द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—अर्थदण्डश्चैव, अनर्थदण्डश्चैव।	१. दण्ड[1] के दो प्रकार हैं, जैसे—अर्थदण्ड और अनर्थदण्ड।
२. दुवे रासी पण्णत्ता तं जहा—जीवरासी चेव, अजीवरासी चेव।	द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—जीवराशिश्चैव, अजीवराशिश्चैव।	२. राशि के दो प्रकार हैं, जैसे—जीवराशि और अजीवराशि।
३. दुविहे बंधणे पण्णत्ते, तं जहा—रागबंधणे चेव, दोसबंधणे चेव।	द्विविधं बन्धनं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—रागबन्धनं चैव, दोषबन्धनं चैव।	३. बन्धन के दो प्रकार हैं, जैसे—राग-बन्धन और द्वेष-बन्धन।
४. पुव्वाफग्गुणीनक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।	पूर्वफल्गुनीनक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।	४. पूर्वफल्गुनी नक्षत्र के दो तारे हैं।
५. उत्तराफग्गुणीनक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।	उत्तरफल्गुनीनक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।	५. उत्तरफल्गुनी नक्षत्र के दो तारे हैं।
६. पुव्वाभद्दवयानक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।	पूर्वभद्रपदानक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।	६. पूर्वभद्रपदा नक्षत्र के दो तारे हैं।
७. उत्तराभद्दवयानक्खत्ते दुतारे पण्णत्ते।	उत्तरभद्रपदानक्षत्रं द्वितारं प्रज्ञप्तम्।	७. उत्तरभद्रपदा नक्षत्र के दो तारे हैं।
८. इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।	८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति दो पल्योपम की है।
९. दुच्चाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	द्वितीयस्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।	९. दूसरी पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति दो सागरोपम की है।
१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१०. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति दो पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. असुरिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरेन्द्रवर्जितानां भौमेयानां देवानामुत्कर्षेण देशोने द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. असुरेन्द्र को छोड़कर भौमेय (भवनवासी) देवों की उत्कृष्ट स्थिति देशोन (कुछ कम) दो पल्योपम की है।[2]

१२. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचेंदियतिरिक्खजोणिआणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुःसंज्ञि - पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां अस्ति एकेषां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. असंख्य वर्षों की आयु वाले कुछ संज्ञी-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवों की स्थिति दो पल्योपम की है।

१३. असंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियसण्णिमणुस्साणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुर्गर्भावक्रान्तिक - संज्ञिमनुष्याणां अस्ति एकेषां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. असंख्य वर्षों की आयु वाले कुछ गर्भज-संज्ञीमनुष्यों की स्थिति दो पल्योपम की है।

१४. सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे अस्ति एकेषां देवानां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. सौधर्मकल्प के कुछ देवों की स्थिति दो पल्योपम की है।

१५. ईसाणे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ईशाने कल्पे अस्ति एकेषां देवानां द्वे पल्योपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति दो पल्योपम की है।

१६. सोहम्मे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे देवानामुत्कर्षेण द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. सौधर्मकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की है।

१७. ईसाणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ईशाने कल्पे देवानामुत्कषण साधिके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. ईशानकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक दो सागरोपम की है।

१८. सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सनत्कुमारे कल्पे देवानां जघन्येन द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. सनत्कुमारकल्प के देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम की है।

१९. माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

माहेन्द्रे कल्पे देवानां जघन्येन साधिके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१९. माहेन्द्रकल्प के देवों की जघन्य स्थिति साधिक दो सागरोपम की है।

२०. जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः शुभं शुभकान्तं शुभवर्णं शुभगन्धं शुभलेश्यं शुभस्पर्शं सौधर्मावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२०. शुभ, शुभकान्त, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभलेश्य, शुभस्पर्श और सौधर्मावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति दो सागरोपम की है।

२१. तेणं देवा दोण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा द्वयोरर्द्धमासयोः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

२१. वे देव दो पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२२. तेसि णं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां आहारार्थः समुत्पद्यते।

२२. उन देवों के दो हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. **अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।**

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये द्वाभ्यां भवग्रहणाभ्यां सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२३. कुछ भव-सिद्धिक जीव दो बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. दण्ड (दंडा)

दंड के दो अर्थ हैं—हिंसा और दुष्प्रवृत्ति।

हिंसा के दो प्रकार हैं—

१. अर्थदंड—अपने प्रयोजन से अथवा दूसरे के प्रयोजन से की जाने वाली हिंसा।

२. अनर्थदंड—निष्प्रयोजन की जाने वाली हिंसा[1]।

विशेष विवरण के लिए देखें—सूत्रकृतांग, २/२/२ का टिप्पण।

२. सूत्र ११ :

यह उत्तर के नागकुमार भवनवासी देवों की स्थिति के आधार पर कहा गया है।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७ :
अर्थेन—स्वपरोपकारलक्षणेन प्रयोजनेन दण्डो—हिंसा—अर्थदण्डः एतद् विपरीतोऽनर्थदण्ड इति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ७,८ :
तथा असुरेन्द्रवर्जितभवनवासिनां द्वे देशोने पल्योपमे स्थितिरौदीच्यनागकुमारादीनाश्रित्यावसेया, यत आह—'दो देसूणुत्तरिल्लाणं' ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३
तइओ समवाओ : तीसरा समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तओ दंडा पण्णत्ता, तं जहा—मणदंडे वइदंडे कायदंडे।	त्रयो दण्डाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोदण्डः वाग्दण्डः कायदण्डः।	१. दण्ड[1] के तीन प्रकार हैं, जैसे—मनदण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड।
२. तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मणगुत्ती वइगुत्ती कायगुत्ती।	तिस्रो गुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मनोगुप्तिः वाग्गुप्तिः कायगुप्तिः।	२. गुप्तियों[2] के तीन प्रकार हैं, जैसे—मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।
३. तओ सल्ला पण्णत्ता, तं जहा—मायासल्ले णं नियाणसल्ले णं मिच्छादंसणसल्ले णं।	त्रीणि शल्यानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मायाशल्यं निदानशल्यं मिथ्यादर्शनशल्यम्।	३. शल्य[3] के तीन प्रकार हैं, जैसे—मायाशल्य, निदानशल्य और मिथ्यादर्शनशल्य।
४. तओ गारवा पण्णत्ता, तं जहा—इड्डीगारवे रसगारवे सायागारवे।	त्रीणि गौरवाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋद्धिगौरवं रसगौरवं सातगौरवम्।	४. गौरव[4] के तीन प्रकार हैं, जैसे—ऋद्धिगौरव, रसगौरव और सातगौरव।
५. तओ विराहणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणविराहणा दंसणविराहणा चरित्तविराहणा।	तिस्रो विराधनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानविराधना दर्शनविराधना चरित्रविराधना।	५. विराधना[5] के तीन प्रकार हैं, जैसे—ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना और चारित्रविराधना।
६. मिगसिरनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	मृगशिरोनक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	६. मृगशीर्ष नक्षत्र के तीन तारे हैं।
७. पुस्सनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	पुष्यनक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	७. पुष्य नक्षत्र के तीन तारे हैं।
८. जेट्ठानक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	ज्येष्ठानक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	८. ज्येष्ठा नक्षत्र के तीन तारे हैं।
९. अभीइनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	अभिजिन्नक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	९. अभिजित् नक्षत्र के तीन तारे हैं।
१०. सवणनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	श्रवणनक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	१०. श्रवण नक्षत्र के तीन तारे हैं।
११. असिणिनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	अश्विनीनक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	११. अश्विनी नक्षत्र के तीन तारे हैं।
१२. भरणीनक्खत्ते तितारे पण्णत्ते।	भरणीनक्षत्रं त्रितारं प्रज्ञप्तम्।	१२. भरणी नक्षत्र के तीन तारे हैं।
१३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. दोच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

द्वितीयस्यां पृथिव्यां नैरयिकाणामुत्कर्षेण त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. दूसरी पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है।

१५. तच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

तृतीयस्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. तीसरी पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की है।

१६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

१७. असंखेज्जवासाउयसण्णिपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुःसंज्ञि-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिकानामुत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. असंख्य वर्षों की आयु वाले संज्ञीपंचेंद्रिय-तिर्यग्योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है।

१८. असंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतिय-सण्णिमणुस्साणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असंख्येयवर्षायुर्गर्भावक्रान्तिकसंज्ञिमनुष्याणामुत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. असंख्य वर्षों की आयु वाले गर्भजसंज्ञी मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की है[१]।

१९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां त्रीणि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१९. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तीन पल्योपम की है।

२०. सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः कल्पयोः अस्ति एकेषां देवानां त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२०. सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति तीन सागरोपम की है।

२१. जे देवा आभंकरं पभंकरं आभंकर-पभंकरं चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा आभङ्करं प्रभङ्करं आभङ्कर-प्रभङ्करं चन्द्रं चन्द्रावर्त्तं चन्द्रप्रभं चन्द्रकान्तं चन्द्रवर्णं चन्द्रलेश्यं, चन्द्रध्वजं चन्द्रशृङ्गं चन्द्रसृष्टं, चन्द्रकूटं चन्द्रोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां उत्कर्षेण त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२१. आभंकर, प्रभंकर, आभंकर-प्रभंकर, चन्द्र, चन्द्रवर्त्त, चन्द्रप्रभ, चन्द्रकान्त, चन्द्रवर्ण, चन्द्रलेश्य, चन्द्रध्वज, चन्द्रशृंग, चन्द्रसृष्ट, चन्द्रकूट और चन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है।

२२. ते णं देवा तिण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवास्त्रयाणामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

२२. वे देव तीन पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२३. तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानामुत्कर्षेण त्रिभिः वर्षसहस्रैः आहारार्थः समुत्पद्यते।

२३. उन देवों के तीन हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे तिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये त्रिभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२४. कुछ भव-सिद्धिक जीव तीन बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र १ :

यहां दंड का अर्थ है—दुष्प्रवृत्ति ।[1]

२. गुप्तियों (गुत्तीओ)

गुप्ति का अर्थ है—अशुभ प्रवृति का निरोध और शुभ प्रवृत्ति का प्रवर्त्तन । गुप्ति में असम्यक् की निवृत्ति और सम्यक् की प्रवृत्ति— दोनों गृहीत हैं। देखें—ठाणं ३/२१ का टिप्पण नं० ११, पृष्ठ २६४।

३. शल्य (सल्ला)

जो चुभता रहता है वह शल्य है। उसके दो प्रकार हैं—

द्रव्यशल्य—कांटा आदि, भावशल्य—माया आदि। भावशल्य तीन प्रकार का होता है—

मायाशल्य—माया का शल्य अर्थात् अतिचार आदि का सेवन करने के पश्चात् उसे माया से छिपाना, उसका प्रायश्चित्त न करना।

निदानशल्य—निदान का अर्थ है—दिव्य ऋद्धि को देखकर या सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प करना।

मिथ्यादर्शनशल्य—मोहकर्म के उदय से होने वाला मिथ्या दृष्टिकोण।

४. गौरव (गारवा)

गौरव का अर्थ है—गुरुता। इसके दो प्रकार हैं—

द्रव्य गौरव—वज्र आदि की गुरुता।

भाव गौरव—अभिमान, लोभ आदि से होने वाली अशुभ भाव की गुरुता। यह कर्म-बंधन का कारण और संसार-परिभ्रमण का हेतु है।

भाव गौरव तीन प्रकार का है—

ऋद्धि गौरव—विभिन्न प्रकार की ऋद्धि—पूजा आदि की प्राप्ति से अभिमानग्रस्त होना और अप्राप्त ऋद्धि के लिए निरन्तर चिन्तन करते रहना ऋद्धि गौरव है।

रस गौरव—इष्ट वस्तुकी प्राप्ति से अभिमान-ग्रस्त होना, और अप्राप्त के लिए लोभाकुल होना—रस गौरव है।

सात गौरव—सात का अर्थ है सुख। प्राप्त सुख का गर्व करना और अप्राप्त की प्राप्ति के लिए निरन्तर अभिलाषा करते रहना।

संबंधित कथानकों के लिए देखें—आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति भाग २, पृष्ठ ६०।

५. विराधना (विराहणाओ)

विराधना का अर्थ है—खंडित करना, भंग करना। प्रस्तुत सूत्र में ज्ञान, दर्शन और चारित्र की विराधना का उल्लेख है।

ज्ञान-विराधना

ज्ञान की विराधना करना, उसमें तुच्छता आपादित करना ज्ञान-विराधना है। उसके पांच प्रकार हैं—

१. ज्ञान-प्रत्यनीकता—ज्ञान की निंदा करना, जैसे—

(क) आभिनिबोधिक ज्ञान अशोभन है, क्योंकि उसके द्वारा जाना गया तथ्य कभी यथार्थ होता है और कभी अयथार्थ।

(ख) श्रुतज्ञान भी अशोभन है, क्योंकि श्रुतज्ञान से संपन्न व्यक्ति भी शील-विकल होता है।

(ग) अवधिज्ञान भी अशोभन है, क्योंकि वह अरूपी द्रव्यों को साक्षात् नहीं कर सकता।

(घ) मनःपर्यवज्ञान भी अशोभन है, क्योंकि वह भी एक सीमा में प्रतिबद्ध होता है।

(ढ) केवलज्ञान भी अशोभन है, क्योंकि वह भी निरन्तर नहीं होता, एक समय में केवलज्ञान और एक समय में केवल-दर्शन होता है।

२. ज्ञान-निन्ह्वण—ज्ञान का अपलाप करना, गुरु के नाम का अपलाप करना। किसी गुरु से ज्ञान ग्रहण करना और पूछने पर दूसरे का नाम बताना।

३. ज्ञान-अत्याशातना—शास्त्रों की आशातना करना।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८ :
दण्ड्यते—चारित्रैश्वर्यापहारतोऽसारीक्रियते एभिरात्मेति दण्डा: —दुष्प्रयुक्तमन :।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. ज्ञान-अन्तराय—ज्ञान में विघ्न उपस्थित करना।

५. ज्ञान-विसंवादनयोग—अकाल में स्वाध्याय आदि का अनुष्ठान कर ज्ञान के विपरीत प्रवृत्ति करना।

दर्शन विराधना

सम्यग् दर्शन को खंडित करना दर्शन-विराधना है। इसके भी पांच प्रकार हैं—

१. दर्शन-प्रत्यनीकता—क्षायिक दर्शन का धनी श्रेणिक भी नरक में चला गया।

२. दर्शन-निन्हवन—दर्शन की प्रभावना करने वाले शास्त्र का अपलाप करना।

३. दर्शन-अत्याशातना—दर्शन शास्त्रों का तिरस्कार करना। इन शास्त्रों से क्या, जो कलहकारी हैं।

४. दर्शन-अन्तराय—दर्शन में विघ्न उपस्थित करना।

५. दर्शन-विसंवादनयोग—शंका, कांक्षा आदि दोषों के द्वारा दर्शन की विपरीत प्रवृत्ति करना।

चारित्र विराधना

व्रतों का खंडन चारित्र-विराधना है। पांच चारित्र हैं—सामायिक-चारित्र, छेदोपस्थापनीय-चारित्र, परिहार-विशुद्ध-चारित्र, सूक्ष्मसंपराय-चारित्र और यथाख्यात-चारित्र। इन पांचों में दोषापत्ति करना चारित्र-विराधना है।[1]

६. सूत्र १७-१८ :

यह कथन देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र में जन्म ग्रहण करनेवाले असंख्यात वर्ष की आयुष्यवाले पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों के लिए है।[2]

---

१. आवश्यक, हरिभद्रीया वृत्ति, भाग २, पृ० ६०।

२ समवायांगवृत्ति, पत्र ६ :
तथा असङ्ख्यातवर्षायुषां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां देवकुरूत्तरकुरुजन्मनां त्रीणि पल्योपमानीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४

चउत्थो समवाओ : चौथा समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चत्तारि कसाया पण्णत्ता, तं जहा—कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए।	चत्वारः कषायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्रोधकषायः मानकषायः मायाकषायः लोभकषायः।	१. कषाय के चार प्रकार हैं, जैसे—क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषाय।
२. चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा—अट्टे झाणे रोद्दे झाणे धम्मे झाणे सुक्के झाणे।	चत्वारि ध्यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आर्त्तं ध्यानं रौद्रं ध्यानं धर्म्यं ध्यानं शुक्लं ध्यानं।	२. ध्यान के चार प्रकार हैं, जैसे—आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यान।
३. चत्तारि विगहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा देसकहा।	चतस्रो विकथाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रीकथा भक्तकथा राजकथा देशकथा।	३. विकथा के चार प्रकार हैं, जैसे—स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा और देशकथा।
४. चत्तारि सण्णा पण्णत्ता, तं जहा—आहारसण्णा भयसण्णा मेहुणसण्णा परिग्गहसण्णा।	चतस्रः संज्ञा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आहारसंज्ञा भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा परिग्रहसंज्ञा।	४. संज्ञा के चार प्रकार हैं, जैसे—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा और परिग्रहसंज्ञा।
५ चउव्विहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा—पगडिबंधे ठिइबंधे अणुभावबंधे पएसबंधे।	चतुर्विधो बन्धः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—प्रकृतिबन्धः स्थितिबन्धः अनुभावबन्धः प्रदेशबन्धः।	५. बंध के चार प्रकार हैं, जैसे—प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभावबन्ध और प्रदेशबन्ध।
६. चउगाउए जोयणे पण्णत्ते।	चतुर्गव्यूतिकं योजनं प्रज्ञप्तम्।	६. चार गाउ का एक योजन होता है।
७. अणुराहानक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।	अनुराधानक्षत्रं चतुस्तारं प्रज्ञप्तम्।	७. अनुराधा नक्षत्र के चार तारे हैं।
८. पुव्वासाढनक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।	पूर्वाषाढानक्षत्रं चतुस्तारं प्रज्ञप्तम्।	८. पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के चार तारे हैं।
९. उत्तरासाढनक्खत्ते चउत्तारे पण्णत्ते।	उत्तराषाढानक्षत्रं चतुस्तारं प्रज्ञप्तम्।	९. उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चार तारे हैं।
१०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चार पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

तृतीयस्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चत्वारि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. तीसरी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चार सागरोपम की है।

१२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति चार पल्योपम की है।

१३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां चत्वारि पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की है।

१४. सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां चत्वारि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति चार सागरोपम की है।

१५. जे देवा किट्ठिं सुकिट्ठिं किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिकंतं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः कृष्टि सुकृष्टि कृष्टिकावर्त्तं कृष्टिप्रभं कृष्टिकान्तं, कृष्टिवर्णं कृष्टिलेश्यं कृष्टिध्वजं कृष्टिशृङ्गं कृष्टिसृष्टं कृष्टिकूटं कृष्ट्युत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण चत्वारि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. कृष्टि, सुकृष्टि, कृष्टिकावर्त्त, कृष्टिप्रभ, कृष्टिकान्त, कृष्टिवर्ण, कृष्टिलेश्य, कृष्टिध्वज, कृष्टिशृङ्ग, कृष्टिसृष्ट, कृष्टिकूट और कृष्ट्युत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति चार सागरोपम की है।

१६. ते णं देवा चउण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाश्चतुर्णामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१६. वे देव चार पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१७. तेसि देवाणं चउहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां चतुर्भिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१७. उन देवों के चार हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८. अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे चउहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये चतुर्भिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव चार बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. कषाय (कसाया)

कषाय, कषाय के आधार, कषाय की उत्पत्ति के कारण तथा उनके अनन्तानुबंधी आदि भेद के लिए देखें—ठाणं, ४/७५-६१ तथा टिप्पण पृष्ठ ५०४, ५०५।

२. ध्यान (झाणा)

चेतना के दो प्रकार हैं—चल और स्थिर। चल चेतना को चित्त और स्थिर चेतना को ध्यान कहा जाता है।[1]

ध्यान के चार प्रकार हैं—

१. आर्त्तध्यान—मनोज्ञ संयोगों का वियोग न हो, उसके लिए सतत चिन्तन करना तथा अमनोज्ञ के वियोग के लिए सतत चिन्तन करना आर्त्तध्यान है। इसमें कामाशंसा और भोगाशंसा की प्रधानता होती है। इसके चार लक्षण हैं—आक्रन्द करना, शोक करना, आंसू बहाना, विलाप करना।

२. रौद्रध्यान—जिसका चित्त क्रूर और कठोर हो, वह रुद्र होता है। उसके ध्यान को रौद्र ध्यान कहते हैं। इसके चार प्रकार हैं—

  १. हिंसानुबंधी—हिंसा का सतत प्रवर्तन।
  २. मृषानुबंधी—मृषा का सतत प्रवर्तन।
  ३. स्तैन्यानुबंधी—चोरी का सतत प्रवर्तन।
  ४. संरक्षणानुबंधी—विषय के साधनों के संरक्षण का सतत प्रवर्तन। इसमें क्रूरता की प्रधानता होती है।

३. धर्मध्यान—इसके चार भेद हैं—

  १. आज्ञाविचय—प्रवचन के निर्णय में संलग्न चित्त।
  २. अपायविचय—दोषों के निर्णय में संलग्न चित्त।
  ३. विपाकविचय—कर्मफल के निर्णय में संलग्न चित्त।
  ४. संस्थानविचय—विविध पदार्थों के आकृति-निर्णय में संलग्न चित्त।

इसके चार लक्षण हैं—आज्ञारुचि, निसर्गरुचि, सूत्ररुचि और अवगाढ़रुचि।

४. शुक्लध्यान—यह उच्चतम ध्यानावस्था है। इसके चार प्रकार हैं—पृथक्त्ववितर्कसविचारी, एकत्ववितर्कअविचारी, सूक्ष्म-क्रिय-अनिवृत्ति तथा समुच्छिन्नक्रिय-अप्रतिपाति। धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान के लक्षण, आलंबन, तथा अनुप्रेक्षा के लिए देखें—ठाणं, ४/६५-७२ तथा टिप्पण पृष्ठ ५००-५०३।

३. विकथा (विगहाओ)

कथा का अर्थ है—वचन पद्धति। जिस कथा से संयम में बाधा उत्पन्न होती है[2]—जो चारित्र के विपरीत या विरुद्ध होती है उसे विकथा कहते हैं।[3] विकथा के मुख्य भेद चार है—

१. स्त्रीकथा—स्त्री संबंधी कथा करना। उनके जाति, कुल, रूप तथा नेपथ्य की चर्चा करना।

२. भक्तकथा—भोजन के विषय में चर्चा करना। उसके स्वादिष्ट होने या अस्वादिष्ट होने, मूल्यवान् होने या अमूल्यवान् होने, अनेक द्रव्यों से निष्पन्न होने या अल्पद्रव्यों से निष्पन्न होने की चर्चा करना।

३. देशकथा—देश का अर्थ है जनपद। देश संबंधी चर्चा करना। देश के विधि-विधानों, रीति-रिवाजों, वस्त्र, आभूषण, वैवाहिक रिवाज आदि की चर्चा करना।

४. राजकथा—राजा के विषय में चर्चा करना। उसकी सेना, कोश, कोष्ठागार, ऋद्धि आदि की चर्चा करना।

इन चार कथाओं के चार-चार प्रकार ठाणं, ४/२४१-२४५ में उल्लिखित हैं। इन विकथाओं में होने वाले दोषों के लिए देखें—ठाणं, टिप्पण पृष्ठ ५०५-५०७।

---

१. ध्यानशतक, २ :
जं थिरमज्झवसाणं झाणं, जं चलं तयं चित्तं।

२. स्थानांगवृत्ति, पत्र १९९ :
विरुद्धा संयमबाधकत्वेन कथा—वचनपद्धतिर्विकथा।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ९ :
विरुद्धाश्चारित्रं प्रति स्त्र्यादिविषयाः कथा विकथाः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांग ७/८० में सात विकथाओं का उल्लेख है। स्त्रीकथा आदि चार के अतिरिक्त तीन विकथाएं और हैं— मृदुकारुणिकी, दर्शनभेदिनी और चारित्रभेदिनी।

४. संज्ञा (सण्णा)

संज्ञा के दो अर्थ हैं—आभोग— संवेगात्मक ज्ञान या स्मृति और मनोविज्ञान।[1] संज्ञाएं दस हैं[2]— आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, लोकसंज्ञा, ओघसंज्ञा।

इनमें प्रथम आठ संवेगात्मक तथा अंतिम दो ज्ञानात्मक हैं। प्रस्तुत प्रकरण में चार संज्ञाएं निर्दिष्ट हैं। ये संवेगात्मक हैं—

१. आहार संज्ञा— इसका शब्दार्थ है आहार की अभिलाषा। यह क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से होनेवाला आत्म-परिणाम है। इसकी उत्पत्ति के चार कारण ये हैं—१. पेट के खाली हो जाने से २. क्षुधा वेदनीय के उदय से ३. आहार की मति से ४. आहार के सतत चिन्तन से।

२. भय संज्ञा—इसका अर्थ है—भय का अभिनिवेश। यह भय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला आत्म-परिणाम है। इसकी उत्पत्ति के चार कारण ये हैं—१. सत्वहीनता २. भय वेदनीय (मोहनीय) के उदय से ३. भय की मति से ४. भय के सतत चिन्तन से।

३. मैथुन संज्ञा—मैथुन की अभिलाषा वेद मोहनीय का परिणाम है। इसकी उत्पत्ति के चार हेतु ये हैं—१. अत्यधिक मांसशोणित का उपचय हो जाने से २. मोहनीय कर्म के उदय से ३. मैथुन की बात सुनने से ४. मैथुन का सतत चिन्तन करने से।

४. परिग्रह संज्ञा—तीव्र लोभ के उदय से होनेवाली परिग्रह की अभिलाषा परिग्रह संज्ञा है। इसकी उत्पत्ति के चार कारण ये हैं—१. अविमुक्तता २. लोभ वेदनीय के उदय से ३. परिग्रह की मति से ४. परिग्रह का सतत चिन्तन करने से।[3]

विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं, टिप्पण पृष्ठ ९९८-१०००।

५. बंध (बंधे)

कषाय के कारण जीव-प्रदेशों के साथ कर्म-पुद्गलों का बंध जाना बंध कहलाता है। उसके चार प्रकार हैं—

१. प्रकृतिबंध —इसका अर्थ है—कर्म-पुद्गलों का स्वभाव। कर्म पुद्गलों का जीव के साथ संबंध होने पर, ज्ञान को रोकने का स्वभाव, दर्शन को रोकने का स्वभाव—इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्वभाव का होना प्रकृतिबंध है।

२. स्थितिबंध —इसका अर्थ है—पुद्गलों की कालमर्यादा। कर्मों का निश्चित कालावधि तक जीव के साथ बंधे रहना, स्थितिबंध है।

३. अनुभागबंध—इसका अर्थ है—कर्म-पुद्गलों का सामर्थ्य। कर्मों का रस विपाक या फल देने की शक्ति अनुभाग-बंध है।

४. प्रदेशबंध —इसका अर्थ है—कर्म-पुद्गलों का संचय। बंधने वाले कर्म-पुद्गलों के परिमाण को प्रदेशबंध कहते हैं।

६. योजन (जोयणे)

प्रस्तुत प्रसंग में चार गाउ—गव्यूति का एक योजन माना है। गव्यूत का अर्थ है—वह दूरी जिसमें गाय का रंभाना सुना जा सके।[4]

विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं, ८/६२ का टिप्पण नं० ३४ पृष्ठ ८३८-८३९।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४७८ :
संज्ञानं संज्ञा आभोग इत्यर्थः मनोविज्ञानमित्यन्ये।

२ ठाणं १०/१०५।

३. ठाणं ४/५७९-५८२।

४. बुद्धिस्टइंडिया, पृष्ठ ४१ :
Gavyuta, A Cow's Call.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५
पंचमो समवाओ : पांचवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पंच किरिया पण्णत्ता, तं जहा—काइया अहिगरणिया पाउसिआ पारियावणिआ पाणाइवाय-किरिया।	पञ्च क्रियाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कायिकी आधिकरणिकी प्रादोषिकी पारितापनिकी प्राणातिपातक्रिया।	१. क्रिया[1] के पांच प्रकार हैं, जैसे— १. कायिकी—काय-चेष्टा। २. आधिकरणिकी—शस्त्र-निर्माण की क्रिया। ३. प्रादोषिकी—प्रद्वेष से निष्पन्न क्रिया। ४. पारितापनिकी—परितापन से निष्पन्न क्रिया। ५. प्राणातिपात क्रिया—जीव-घात से निष्पन्न क्रिया।
२. पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।	पञ्च महाव्रतानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सर्वस्मात् प्राणातिपाताद् विरमणम्, सर्वस्मान्मृषावादाद् विरमणम्, सर्वस्माददत्तादानाद्विरमणम्, सर्वस्मान्मैथुनाद् विरमणम्, सर्वस्मात् परिग्रहाद् विरमणम्।	२. महाव्रत के पांच प्रकार हैं, जैसे—सर्व प्राणातिपात-विरमण, सर्व मृषावाद-विरमण, सर्व अदत्तादान-विरमण, सर्व मैथुन-विरमण और सर्व परिग्रह-विरमण।
३. पंच कामगुणा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा रूवा रसा गंधा फासा।	पञ्च कामगुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शब्दाः रूपाणि रसाः गन्धाः स्पर्शाः।	३. कामगुण[2] के पांच प्रकार हैं, जैसे—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श।
४. पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा।	पञ्चाश्रवद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यात्वं अविरतिः प्रमादाः कषायाः योगाः।	४. आस्रव-द्वार[3] के पांच प्रकार हैं, जैसे—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।
५. पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मत्तं विरई अप्पमाया अकसाया अजोगा।	पञ्च सम्वरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—सम्यक्त्वं विरतिः अप्रमादाः अकषायाः अयोगाः।	५. संवर-द्वार[4] के पांच प्रकार हैं, जैसे—सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय और अयोग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. पंच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिन्नादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं।

पञ्च निर्जरास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—प्राणातिपाताद् विरमणम् मृषावादाद् विरमणम् अदत्तादानाद् विरमणम् मैथुनाद् विरमणम् परिग्रहाद् विरमणम्।

६. निर्जरा के स्थान[५] पांच हैं, जैसे—प्राणातिपात-विरमण, मृषावाद-विरमण अदत्तादान-विरमण, मैथुन-विरमण और परिग्रह-विरमण।

७. पंच समिईओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिई उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिई।

पञ्च समितयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ईर्यासमितिः भाषासमितिः एषणासमितिः आदान-भाण्डाऽमत्र-निक्षेपणासमितिः उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिकीसमितिः।

७. समितियां[६] पांच हैं, जैसे—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान-भाण्ड-अमत्र निक्षेपणासमिति, उच्चार-प्रश्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-पारिस्थापनिकीसमिति।

८. पंच अत्थिकाया पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए।

पञ्चास्तिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—धर्मास्तिकायः अधर्मास्तिकायः आकाशास्तिकायः जीवास्तिकायः पुद्गलास्तिकायः।

८. अस्तिकाय[७] पांच हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

९. रोहिणीनक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते।

रोहिणीनक्षत्रं पञ्चतारं प्रज्ञप्तम्।

९. रोहिणी नक्षत्र के पांच तारे हैं।

१०. पुणव्वसुनक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते।

पुनर्वसुनक्षत्रं पञ्चतारं प्रज्ञप्तम्।

१०. पुनर्वसु नक्षत्र के पांच तारे हैं।

११. हत्थनक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते।

हस्तनक्षत्रं पञ्चतारं प्रज्ञप्तम्।

११. हस्त नक्षत्र के पांच तारे हैं।

१२. विसाहानक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते।

विशाखानक्षत्रं पञ्चतारं प्रज्ञप्तम्।

१२. विशाखा नक्षत्र के पांच तारे हैं।

१३. धणिट्ठानक्खत्ते पंचतारे पण्णत्ते।

धनिष्ठानक्षत्रं पञ्चतारं प्रज्ञप्तम्।

१३. धनिष्ठा नक्षत्र के पांच तारे हैं।

१४. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पांच पल्योपम की है।

१५. तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

तृतीयस्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्च सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. तीसरी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पांच सागरोपम की है।

१६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति पांच पल्योपम की है।

१७. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां पञ्च पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति पांच पल्योपम की है।

१८. सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां पञ्च सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति पांच सागरोगम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. जे देवा वायं सुवायं वातावत्तं वातप्पभं वातकंतं वातवण्णं वातलेसं वातज्झयं वातसिंगं वातसिट्ठं वातकूडं वाउत्तरवडेंसगं सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पंच सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा वातं सुवातं वातावर्त्तं वातप्रभं वातकान्तं वातवर्णं वातलेश्यं वातध्वजं वातशृङ्गं वातसृष्टं वातकूटं वातोत्तरावतंसकं सूरं सुसूरं सूरावर्त्तं सूरप्रभं सूरकान्तं सूरवर्णं सूरलेश्यं सूरध्वजं सूरशृङ्गं सूरसृष्टं सूरकूटं सूरोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण पञ्च सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१९. वात, सुवात, वातावर्त्त, वातप्रभ, वातकान्त, वातवर्ण, वातलेश्य, वातध्वज, वातशृङ्ग, वातसृष्ट, वातकूट और वातोत्तरावतंसक तथा सूर, सुसूर, सूरावर्त्त, सूरप्रभ, सूरकान्त, सूरवर्ण, सूरलेश्य, सूरध्वज, सूरशृङ्ग, सूरसृष्ट, सूरकूट और सूरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति पांच सागरोपम की है।

२०. ते णं देवा पंचण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः पञ्चानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

२०. वे देव पांच पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२१. तेसि णं देवाणं पंचहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां पञ्चभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

२१. उन देवों के पांच हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२२. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे पंचहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये पञ्चभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२२. कुछ भव-सिद्धिक जीव पांच बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. क्रिया (किरिया)

क्रियाओं का विशद वर्णन सूत्रकृतांग २/२/२ तथा स्थानांग सूत्र के २/२-३७ तथा ५/११२-१२२ आलापकों में आया हुआ है। वहां विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख है। प्रस्तुत आलापक में जो पांच क्रियाओं का उल्लेख है वह स्थानांग ५/११५ में है।

इन सबकी तुलनात्मक जानकारी के लिए देखें, सूत्रकृतांग २/२/२ के टिप्पण तथा ठाणं २/२-३७ के टिप्पण, पृष्ठ ११३-११६।

२. कामगुण (कामगुणा)

वृत्तिकार ने 'काम' का अर्थ—अभिलाषा और 'गुण' का अर्थ—शब्द आदि पुद्गल किया है। उन्होंने वैकल्पिक रूप में कामवासना को उत्तेजित करने वाले शब्द आदि को 'कामगुण' माना है।[1] इसका सामान्य अर्थ है इन्द्रियों के विषय तथा काम को उद्दीप्त करने वाले साधन—शब्द आदि।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १० :
काम्यन्ते—अभिलष्यन्ते इति कामास्ते च ते गुणाश्च—पुद्गलधर्माः शब्दादय इति कामगुणाः, कामस्य वा—मदनस्योद्दीपका गुणाः कामगुणाः—शब्दादय इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांग की वृत्ति में इसके ये दो अर्थ हैं[1]—

१. मैथुन-इच्छा उत्पन्न करनेवाले पुद्गल।

२. इच्छा उत्पन्न करने वाले पुद्गल।

३. आस्रव-द्वार (आसवदारा)

आस्रव का अर्थ है कर्म को आकृष्ट करनेवाली आत्मा की अवस्था। वह जीव की अवस्था है अतः जीव है। आस्रव के पांच प्रकार हैं—

१. मिथ्यात्व —विपरीत दृष्टिकोण, विपरीत तत्त्वश्रद्धा।

२. अविरति —अत्याग वृत्ति। पौद्गलिक सुखों के प्रति अव्यक्त लालसा।

३. प्रमाद —धर्म के प्रति अनुत्साह। योग आस्रव और प्रमाद आस्रव में यही अन्तर है कि प्रमाद आस्रव नैरन्तरिक है। यह आत्म प्रदेशवर्ती अनुत्साह है। योग आस्रव नैरन्तरिक नहीं होता।

४. कषाय —आत्मा का राग-द्वेषात्मक उत्ताप।

५. योग — मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। योग आस्रव के दो भेद हैं—शुभयोग आस्रव और अशुभ योग आस्रव शुभ योग से निर्जरा होती है, इस अपेक्षा से वह आस्रव नहीं है किन्तु उससे शुभ कर्म का बंध होता है, इसलिए वह आस्रव है।

विशेष विवरण के लिए देखें— उत्तरज्झयणाणि भाग २, पृष्ठ २१६।

४. संवर-द्वार (संवरदारा)

कर्म का निरोध करनेवाली आत्मा की अवस्था का नाम है संवर। यह आस्रव की विरोधी अवस्था है। आस्रव कर्म-ग्राहक अवस्था है और संवर कर्म-निरोधक अवस्था है। इसके भी पांच प्रकार हैं—

१. सम्यक्त्व संवर—विपरीत श्रद्धान का त्याग करना सम्यक्त्व संवर है। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी त्याग किए बिना सम्यक्त्व संवर नहीं हो सकता।

२. व्रत संवर —व्यक्त, अव्यक्त आशा का परित्याग।
सम्यक्त्व संवर और व्रत संवर—ये दोनों संवर त्याग करने से होते हैं, अन्यथा नहीं।

३. अप्रमाद संवर—आत्मिक अनुत्साह का क्षय हो जाना।

४. अकषाय संवर—राग-द्वेष से निवृत्ति।

५. अयोग संवर —प्रवृत्ति निरोध।

अप्रमाद संवर, अकषाय संवर और अयोग संवर—ये तीन संवर परित्याग करने से नहीं होते, किन्तु तपस्या आदि साधनों के द्वारा आत्मिक उज्ज्वलता संपादित होने पर ही होते हैं।[2]

५. निर्जरा के स्थान (निज्जरट्ठाणा)

तपस्या आदि के अनुष्ठान से कर्मों की क्षीणता होती है और उससे आत्मा की निर्मलता संपादित होती है। यही निर्जरा है। यद्यपि निर्जरा एक ही प्रकार की होती है, फिर भी कारण को कार्य मानकर उसके बारह प्रकार किए जाते हैं। वे बारह प्रकार तपस्या के भेद हैं। तपस्याओं के भेद से निर्जरा भी बारह प्रकार की कही जाती है। वे बारह प्रकार ये हैं—

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २७७ :
कामगुण'त्ति कामस्य—मदनाभिलाषस्य अभिलाषमात्रस्य वा संपादकाः गुणा—धर्माः पुद्गलानां, काम्यन्त इति कामाः ते च ते गुणाश्चेति वा कामगुणा इति।

२. नवपदार्थ, संवर, ढाल १, गाथा ६ :

प्रमाद आस्रव ने कषाय योग आस्रव,
ये तो नहीं मिटे कियां पच्चक्खाण।
ये तो सहजे मिटे छै कर्म अलगा हुयां,
तिण री अंतरंग कीजो पहिचाण।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. अनशन	७. प्रायश्चित्त
२. ऊनोदरी	८. विनय
३. भिक्षाचरी	९. वैयावृत्य
४. रस-परित्याग	१०. स्वाध्याय
५. कायक्लेश	११. ध्यान
६. प्रतिसंलीनता	१२. व्युत्सर्ग ।

इनमें प्रथम छह बाह्य तप के और शेष छह आभ्यन्तर तप के प्रकार हैं।

प्रस्तुत आलापक में निर्जरा के जो पांच प्रकार बताए हैं, वे इनसे सर्वथा भिन्न हैं। वृत्तिकार का कथन है कि ये पांचों स्थान आंशिक कर्म-निर्जरा के कारण हैं। ये पांचों स्थान जब 'सर्व' शब्द से जुड़ते हैं तब इनकी संज्ञा महाव्रत हो जाती है (देखें—सूत्र संख्या २), और जब ये स्थूल शब्द से जुड़ते हैं तब इनकी संज्ञा 'अणुव्रत' हो जाती है। ये पांचों निर्जरा के सर्व साधारण स्थान हैं, इसलिए इनका यहां ग्रहण किया गया है।[1]

प्रस्तुत आलापक का संवादी आलापक स्थानांग ५/१२८ में है। उसकी भाषा यह है कि जीव प्राणातिपात विरमण आदि पांच स्थानों से कर्मों का वमन (निर्जरण) करता है।

प्रश्न होता है कि विरमण या विरति निर्जरा का कारण कैसे बनती है? विरति संवर है। यहां दोनों स्थानों में उसे निर्जरा का हेतु या निर्जरा माना है। इसकी संगति क्या है?

जब व्यक्ति विरति या प्रत्याख्यान करता है, उस क्षण की प्रवृत्ति निर्जरा का हेतु बनती है। उस प्रवृत्ति-क्षण के पश्चात् वह विरमण संवर की कोटि में चला जाता है। इसी प्रवृत्ति-क्षण की अपेक्षा से यहां 'विरमण' को निर्जरा माना है।

इस विषय पर आचार्य भिक्षु और श्रीमज्जयाचार्य ने बहुत प्रकाश डाला है।

देखें—नव पदार्थ की चौपई, सटिप्पण संस्करण।

६. समितियां (समिईओ)

समिति का अर्थ है—सम्यक् प्रवर्तन। सम्यक् और असम्यक् का मापदंड है—अहिंसा। जो प्रवृत्ति अहिंसा से संवलित है वह समिति है।

हरिभद्र के अनुसार आत्मा के एकाग्र परिणाम से की जाने वाली प्रवृत्ति को समिति कहा जाता है।[2] समितियां पांच हैं—

१. ईर्यासमिति —गमन और आगमन में अहिंसा का विवेक। इसकी भावना यह है कि यान-वाहनों से आकीर्ण पथ पर तथा शून्य और प्रासुक मार्गों पर चलते समय भी मुनि युगप्रमित भूमि को देखकर चले।

२. भाषा समिति—भाषा संबंधी अहिंसा का विवेक। इसका तात्पर्य यह है कि मुनि हितकारी, परिमित और असंदिग्ध अर्थ-वाली अर्थात् स्पष्ट भाषा बोले।

३. एषणा समिति—जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक उपकरणों—आहार-वस्त्रों आदि के ग्रहण और उपभोग संबंधी अहिंसा का विवेक। भिक्षाचर्या के लिए गया हुआ मुनि सम्यग् उपयोग रखता हुआ नवकोटि परिशुद्ध भिक्षा की एषणा करे, ग्रहण करे।

४. आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति—दैनिक व्यवहार में आने वाले पदार्थों के व्यवहार संबंधी अहिंसा का विवेक। उपकरण तथा पात्र आदि लेते समय सावधानी पूर्वक प्रवर्तन करना।

५. उच्चारप्रस्रवणक्ष्वेडसिंघाणजल्लपरिस्थापनिका समिति—उत्सर्ग संबंधी अहिंसा का विवेक। मल, मूत्र, कफ, श्लेष्म, मैल आदि के परिस्थापन में संयत चेष्टा करना।[3]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १० :
निजरा—देशत: कर्मक्षपणा तस्या: स्थानानि—आश्रया: कारणानीति यावन्निर्जरास्थानानि—प्राणातिपातविरमणादीनि, एतान्येव च सर्वशब्दविशेषितानि महाव्रतानि भवन्ति, तानि च पूर्वसूत्राभिहितानि स्थूलशब्दविशेषितानि अणुव्रतानि भवन्ति, निर्जरास्थानत्वं पुनरेषां साधारणमिति तदिहैषामभिहितम्।

२. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ ८४ :
सम्—एकीभावेनेति: समिति:, शोभनैकाग्रपरिणामचेष्टेत्यर्थ:।

३. देखें—आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ ८४, ८५; तथा उत्तरज्झयणाणि, अध्ययन २४ का आमुख तथा मूल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तराध्ययन में पांच समितियों तथा तीन गुप्तियों का संयुक्त नाम 'समिति' दिया है।[1]

७. अस्तिकाय (अत्थिकाया)

अस्तिकाय का अर्थ है—प्रदेश प्रचय। अस्तिकाय पांच हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव। ये तिर्यक् प्रचय स्कन्ध रूप में हैं, इसलिए इन्हें अस्तिकाय कहा जाता है। धर्म, अधर्म, आकाश और एक जीव एक स्कन्ध हैं। इनके देश या प्रदेश—ये विभाग काल्पनिक हैं। ये अविभागी हैं। पुद्गल विभागी है। उसके स्कन्ध और परमाणु—ये दो मुख्य विभाग हैं। परमाणु उसका अविभाज्य भाग है।

लोक-अलोक की व्यवस्था पर दृष्टिपात करने से भी धर्म और अधर्म के अस्तित्व की जानकारी मिलती है। आचार्य मलयगिरि ने इनका अस्तित्व सिद्ध करते हुए लिखा है—'इनके बिना लोक-अलोक की व्यवस्था नहीं होती।'[2] जिसमें जीव आदि सभी द्रव्य होते हैं वह लोक है। जहां केवल आकाश का ही अस्तित्व है, वह अलोक है। अलोक में जीव और पुद्गल नहीं होते। इसका कारण है कि वहां गति और स्थिति के हेतुभूत द्रव्य—धर्म और अधर्म नहीं हैं। इसलिए ये दोनों द्रव्य लोक-अलोक के विभाजक बनते हैं।

भगवती सूत्र में इन पांचों अस्तिकायों के विषय में सुन्दर प्रतिपादन प्राप्त होता है।

गौतम ने पूछा—'भगवन्! गति सहायक तत्त्व (धर्मास्तिकाय) से जीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान् ने कहा—गौतम! गति का सहारा नहीं होता तो कौन आता और कौन जाता? शब्द की तरंगें कैसे फैलतीं? आंख कैसे खुलती? कौन मनन करता? कौन बोलता? कौन हिलता-डुलता? यह विश्व अचल ही होता। जो चल है, उन सबका आलम्बन गति सहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय ही है।

गौतम—भंते! अधर्मास्तिकाय (स्थिति सहायक द्रव्य) से जीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान्—गौतम! स्थिति का सहारा नहीं होता तो खड़ा कौन रहता? कौन बैठता? सोना कैसे होता? कौन मन को एकाग्र करता? मौन कौन करता? कौन निस्पन्द बनता? निमेष कैसे होता? यह विश्व चल ही होता। जो स्थिर हैं, उन सबका आलंबन स्थिति-सहायक तत्त्व ही है।

गौतम—भंते! आकाश तत्त्व से जीवों और अजीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान्—गौतम! आकाश नहीं होता तो ये जीव कहां होते? ये धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय कहां व्याप्त होते? काल कहां बरतता? पुद्गल का रंगमंच कहां बनता? यह विश्व निराधार ही होता।

गौतम—भंते! जीवास्तिकाय से जीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान्—गौतम! जीव का लक्षण है उपयोग। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल—इन पांचों ज्ञानों के अनंत-अनंत पर्याय, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंग अज्ञान के अनन्त-अनन्त पर्याय तथा चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन के अनन्त-अनन्त पर्याय—इन सबका उपयोग जीव में होता है।

गौतम—भंते! पुद्गल से जीवों को क्या लाभ होता है?

भगवान्—गौतम! जीवों के औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण—ये पांचों शरीर तथा पांचों इन्द्रियां और मनोयोग, वचनयोग, काययोग तथा श्वासोच्छ्वास—ये सारे पुद्गल से ही संचालित होते हैं। पुद्गलास्तिकाय का लक्षण है ग्रहण करना।[3]

पुद्गल में संयोजक और वियोजक—दोनों शक्तियां हैं। यदि उसमें वियोजक शक्ति नहीं होती तो सब अणुओं का एक पिण्ड बन जाता और यदि संयोजक शक्ति नहीं होती तो एक-एक अणु अलग-अलग रहकर कुछ नहीं कर पाते। प्राणी जगत् के प्रति परमाणु का जितना भी कार्य है, वह सब परमाणुसमुदायजन्य है, अनन्त परमाणु-स्कन्ध ही प्राणी जगत् के लिए उपयोगी होते हैं।[4]

---

१. उत्तरज्झयणाणि २४/३ :
एयाओ अट्ठ समिईओ …………।

२. प्रज्ञापना पद १ वृत्ति—
लोकालोकव्यवस्थानुपपत्तेः।

३. भगवई, १३/५५-६०।

४. जैन दर्शन : मनन और मीमांसा, पृष्ठ २०१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६
छट्ठो समवाओ : छठा समवाय

मूल

१. छल्लेसा पण्णत्ता, तं जहा— कण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा।

२. छज्जीवनिकाया पण्णत्ता, तं जहा—पुढवीकाए आउकाए तेउकाए वाउकाए वणस्सइकाए तसकाए।

३. छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणे ओमोदरिया वित्तिसंखेवो रसपरिच्चाओ कायकिलेसो संलीणया।

४. छव्विहे अब्भिंतरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं उस्सग्गो।

५. छ छाउमत्थिया समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतिय-समुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए।

६. छव्विहे अत्थुग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—सोइंदियअत्थुग्गहे चक्खिंदियअत्थुग्गहे घाणिंदियअत्थुग्गहे जिब्भिंदियअत्थुग्गहे फासिंदिय-अत्थुग्गहे नोइंदियअत्थुग्गहे।

संस्कृत छाया

षड् लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्ण-लेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या।

षड् जीवनिकायाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— पृथ्वीकायः अप्कायः तेजस्कायः वायु-कायः वनस्पतिकायः त्रसकायः।

षड् विधं बाह्यं तपःकर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—अनशनं अवमोदरिका वृत्ति-संक्षेपः रसपरित्यागः कायक्लेशः संलीनता।

षड् विधमाभ्यन्तरं तपःकर्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—प्रायश्चित्तं विनयः वैयावृत्यं स्वाध्यायः ध्यानं उत्सर्गः।

षट् छाद्मस्थिकाः समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषाय-समुद्घातः मारणान्तिकसमुद्घातः वैक्रियसमुद्घातः तेजस्समुद्घातः आहारसमुद्घातः।

षड् विधोऽर्थावग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः चक्षुरिन्द्रियार्था-वग्रहः घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः जिह्वेन्द्रिया-र्थावग्रहः स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः नोइन्द्रिया-र्थावग्रहः।

हिन्दी अनुवाद

१. लेश्या[1] के छह प्रकार हैं, जैसे—कृष्ण-लेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजो-लेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या।

२. जीव-निकाय के छह प्रकार हैं, जैसे— पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय।

३. बाह्य तपःकर्म के छह प्रकार हैं, जैसे— अनशन, अवमोदरिका, वृत्तिसंक्षेप, रस-परित्याग, कायक्लेश और संलीनता।

४. आभ्यन्तर तपःकर्म के छह प्रकार हैं, जैसे—प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग[2]।

५. छाद्मस्थिक समुद्घात[3] के छह प्रकार हैं, जैसे—वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिकसमुद्घात, वैक्रियसमुद्घात, तेजस्समुद्घात और आहारसमुद्घात।

६. अर्थावग्रह[4] के छह प्रकार हैं, जैसे— श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षुइन्द्रिय अर्था-वग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह और नो-इन्द्रिय अर्थावग्रह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. कत्तियानक्खत्ते छतारे पण्णत्ते ।

कृत्तिकानक्षत्रं षट्तारं प्रज्ञप्तम् ।

७. कृत्तिका नक्षत्र के छह तारे हैं ।

८. असिलेसानक्खत्ते छतारे पण्णत्ते ।

अश्लेषानक्षत्रं षट्तारं प्रज्ञप्तम् ।

८. अश्लेषा नक्षत्र के छह तारे हैं ।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां षट् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति छह पल्योपम की है ।

१०. तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

तृतीयस्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां षट् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

१०. तीसरी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति छह सागरोपम की है ।

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां षट् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

११. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति छह पल्योपम की है ।

१२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां षट् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

१२. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति छह पल्योपम की है ।

१३. सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां षट् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

१३. सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति छह सागरोपम की है ।

१४. जे देवा सयंभुं सयंभुरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्ठिघोसं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं वीरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

ये देवाः स्वयंभुवं स्वयंभूरमणं घोषं सुघोषं महाघोषं कृष्टिघोषं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरश्रेणिकं वीरावर्त्तं वीरप्रभं वीरकान्तं वीरवर्णं वीरलेश्यं वीरध्वजं वीरशृङ्गं वीरसृष्टं वीरकूटं वीरोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण षट् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

१४. स्वयंभू, स्वयंभूरमण, घोष, सुघोष, महाघोष, कृष्टिघोष, वीर, सुवीर, वीरगत, वीरश्रेणिक, वीरावर्त्त, वीरप्रभ, वीरकान्त, वीरवर्ण, वीरलेश्य, वीरध्वज, वीरशृङ्ग, वीरसृष्ट, वीरकूट और वीरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति छह सागरोपम की है ।

१५. ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

ते देवाः षण्णामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा ।

१५. वे देव छह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ।

१६. तेसि णं देवाणं छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

तेषां देवानां षड्भिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते ।

१६. उन देवों के छह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है ।

१७. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे छहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये षड्भिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति ।

१७. कुछ भव-सिद्धिक जीव छह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. लेश्या (लेसा)

जीव के शुभ-अशुभ परिणामों को लेश्या कहा जाता है। कर्मयुक्त आत्मा के द्वारा पुद्गलों का ग्रहण होता है और वे पुद्गल भाव और चिंतन को प्रभावित करते हैं। पौद्गलिक सहायता के बिना भाव और चिन्तन का प्रवर्तन नहीं होता। अच्छे पुद्गल अच्छे भावों और विचारों के और बुरे पुद्गल बुरे भावों और विचारों के सहायक बनते हैं। जैन परिभाषा के अनुसार आत्मीय भावों और विचारों को भावलेश्या और उनके सहायक पुद्गलों को द्रव्यलेश्या कहा जाता है।

कर्मजन्य विकृति की न्यूनाधिकता के आधार पर आत्मा के परिणाम अच्छे बुरे बनते हैं। परिणामों की शुद्धि एवं अशुद्धि में अनन्त तरतमताएं होती हैं। पुद्गल जनित इन तरतमताओं को संक्षेप में छह भागों में बांटा जाता है। ये विभाग लेश्या शब्द से व्यवहृत हैं। विभाग या लेश्याएं छह हैं। पहली तीन अधर्म लेश्याएं हैं और शेष तीन धर्म लेश्याएं हैं। लेश्याओं के नाम द्रव्य लेश्याओं के आधार पर रखे गए हैं।

लेश्या एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलों के अनेक वर्ग हैं। उनमें एक वर्ग का नाम "लेश्या" है। लेश्या शब्द का अर्थ है—आणविक आभा, कान्ति, प्रभा या छाया। छाया पुद्गलों से प्रभावित होने वाले जीव परिणामों को भी लेश्या कहा गया है। प्राचीन साहित्य में शरीर के वर्ण, आणविक आभा और उससे प्रभावित होने वाले विचार—इन तीनों अर्थों में लेश्या की मार्गणा की गई है। शरीर के वर्ण और आणविक आभा को द्रव्यलेश्या (पौद्गलिक लेश्या), तथा भाव और विचार को भावलेश्या (मानसिक लेश्या) कहा गया है।

प्रस्तुत आलापक में छह लेश्याओं के नामों का उल्लेख मात्र है। उत्तराध्ययन सूत्र के चौतीसवें अध्ययन में इन सभी लेश्याओं के नाम, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य का लेखा-जोखा है। लेश्या की पूरी जानकारी के लिए प्रज्ञापना का लेश्या पद बहुत महत्त्वपूर्ण है।

आधुनिक खोजों के आधार पर जो रंग चिकित्सा का प्रवर्तन हुआ है, उसका मूल लेश्याध्यान में खोजा जा सकता है। लेश्या ध्यान व्यक्तित्व के रूपान्तरण का घटक है और इसी स्तर पर रूपान्तरण हो सकता है। प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

२. सूत्र ३, ४ :

इन दो आलापकों में तपस्या के बारह प्रकार निर्दिष्ट हैं। तप के दो प्रकार हैं—बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। प्रथम आलापक में बाह्य तप के छह प्रकार और दूसरे में आभ्यन्तर तप के छह प्रकार निर्दिष्ट हैं। इनके आचरण से देहाध्यास छूट जाता है, और आत्मा की सन्निधि में रहने का अभ्यास हो जाताहै। इन बारह प्रकार के तपों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है—

१. अनशन—काल की निश्चित अवधि तक चतुर्विध आहार का त्याग करना।
२. अवमोदरिका—अपनी भूख से कुछ कम खाना।
३. वृत्तिसंक्षेप (भिक्षाचरी)—अभिग्रह करना।
४. रस-परित्याग—दूध, दही, घृत आदि तथा प्रणीत पान-भोजन और रसों का वर्जन करना।
५. कायक्लेश—आसन आदि करना तथा शरीर के ममत्व का परिहार करना।
६. संलीनता—एकान्त या अनापात स्थान में रहना, इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से दूर रखना।

उपर्युक्त छह बाह्य तप हैं। इनका परिणाम इस प्रकार है—

- अनशन और अवमोदरिका से भूख और प्यास पर विजय पाने की ओर गति होती है।
- वृत्तिसंक्षेप और रस-परित्याग से आहार की लालसा सीमित होती है। जिह्वा की लोलुपता मिटती है तथा निद्रा आदि प्रमाद को प्रोत्साहन नहीं मिलता।
- कायक्लेश से सहिष्णुता आदि का विकास होता है।
- संलीनता से आत्मा की सन्निधि में रहने का अभ्यास होता है।

आन्तरिक तप और उनके परिणाम

१. प्रायश्चित्त—दोष-विशुद्धि के लिए यथोचित अनुष्ठान करना।
इससे दोष-भीरुता का विकास होता है, जागरूकता बढ़ती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. विनय—मानसिक, वाचिक और कायिक अभिमान का परिहार करना ।
इससे अभिमान-मुक्ति और परस्परोपग्रह का विकास होता है ।
३. वैयावृत्य—आचार्य आदि से संबंधित दस प्रकार की सेवा करना ।
इससे सेवाभाव पनपता है ।
४. स्वाध्याय—काल-मर्यादा के अनुसार सद् ग्रन्थों का स्वाध्याय करना ।
इससे विकथा त्यक्त हो जाती है ।
५. ध्यान—चित्त को अशुभ परिणामों से हटाकर शुभ परिणामों में एकाग्र करना । आर्त्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म और शुक्ल ध्यान की साधना करना ।
इससे मनोनिग्रह और इन्द्रिय-निग्रह सधता है ।
६. व्युत्सर्ग—काया की प्रवृत्ति (हलन-चलन) तथा क्रोध आदि का परिहार करना ।
इससे शरीर, उपकरण आदि पर होने वाले ममत्व का विसर्जन होता है । विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग २, पृ० २५१-२८५ ।

३. समुद्घात (समुग्घाया)

देखें—प्रस्तुत आगम के ७/२ का टिप्पण ।

४. अर्थावग्रह (अत्थुग्गहे)

इन्द्रिय और मन का ज्ञान अल्प विकसित होता है । इसलिए पदार्थ के ज्ञान में उनका एक निश्चित क्रम है । हमें उनके द्वारा पहले पहल वस्तु के सामान्य रूप या एकता का बोध होता है । उसके बाद क्रमशः वस्तु की विशेष अवस्थाएं ज्ञात होती हैं । ज्ञान के इस क्रम के चार घटक तत्व हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा । इनका न उत्क्रम होता है और न व्यतिक्रम । पहले अर्थ (वस्तु) का ग्रहण होगा । अर्थग्रहण के बाद ही विचार होगा और विचार के बाद निश्चय और निश्चय के बाद धारणा । पहले अवग्रह, फिर ईहा, फिर अवाय और अंत में धारणा ।

अवग्रह का अर्थ है—पहला ज्ञान, इन्द्रिय और वस्तु के संबंध से होने वाला सत्तात्मक पहला ज्ञान । यह सामान्य होता है । अवग्रह के दो भेद हैं—व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह । व्यंजनावग्रह अव्यक्त ज्ञान है । उसके बाद अर्थ का अवग्रह होता है । यह व्यंजनावग्रह के आगे का ज्ञान है । उससे कुछ स्पष्ट होता है, जैसे 'कुछ है' । अर्थावग्रह का विषय अनिर्देश्य-सामान्य होता है । किसी भी शब्द के द्वारा कहा नहीं जा सके, वैसा सामान्य होता है । दर्शन के द्वारा 'सत्ता' का बोध होता है, और अर्थावग्रह के द्वारा 'वस्तु है' का ज्ञान होता है । 'सत्ता' के ज्ञान से यह इतना-सा आगे बढता है । इसमें अर्थ के स्वरूप, नाम, जाति, क्रिया, गुण आदि का निर्देश नहीं होता ।

अवग्रह—यह शब्द है ।
ईहा—शब्द पशु का है या मनुष्य का ? स्पष्ट भाषात्मक है, इसलिए मनुष्य का होना चाहिए ।
अवाय—(विशेष परीक्षा के बाद) यह मनुष्य का ही है ।
धारणा—अवाय द्वारा किए गए निर्णय को संस्कार रूप में बदल देना । उसे स्मृति का हेतु बना देना ।

प्रस्तुत आलापक में पांच इन्द्रियों तथा मन के आधार पर अवग्रह के छह भेद निर्दिष्ट हैं ।

अवग्रह के दो भेद और हैं—
१. नैश्चयिक अवग्रह—एक सामयिक ।
२. व्यावहारिक अवग्रह—असंख्य सामयिक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७

सत्तमो समवाओ : सातवां समवाय

मूल

१. सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—इहलोगभए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवभए मरणभए असिलोगभए।

संस्कृत छाया

सप्त भयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—इहलोकभयं परलोकभयं आदानभयं अकस्माद्भयं आजीवभयं मरणभयं अश्लोकभयम्।

हिन्दी अनुवाद

१. भय के स्थान सात हैं, जैसे—
   १. इहलोक भय—सजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को मनुष्य से और देव को देव से भय।
   २. परलोक भय—विजातीय से भय, जैसे—मनुष्य को देव, तिर्यंच आदि से भय।
   ३. आदान भय—धन आदि के अपहरण से होने वाला भय।
   ४. अकस्मात् भय—किसी बाह्य निमित्त के बिना ही अपने विकल्पों से होने वाला भय।
   ५. आजीव भय[1]—आजीविका का भय।
   ६. मरण भय—मृत्यु का भय।
   ७. अश्लोक भय—अकीर्ति का भय।

मूल

२. सत्त समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए केवलिसमुग्घाए।

संस्कृत छाया

सप्त समुद्घाताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वेदनासमुद्घातः कषायसमुद्घातः मारणान्तिकसमुद्घातः वैक्रियसमुद्घातः तेजःसमुद्घातः आहारसमुद्घातः केवलिसमुद्घातः।

हिन्दी अनुवाद

२. समुद्घात[2] के सात प्रकार हैं, जैसे—
   १. वेदना समुद्घात—असात-वेदनीय कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
   २. कषाय समुद्घात—कषाय-मोहकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।
   ३. मारणान्तिक समुद्घात—आयुष्य के एक अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रहने पर उसके आश्रित होने वाला समुद्घात।
   ४. वैक्रिय समुद्घात—वैक्रिय नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. तैजस समुद्घात—तैजस नामकर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

६. आहार समुद्घात—आहारक नाम-कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

७. केवली समुद्घात—वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के आश्रित होने वाला समुद्घात।

३. समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

श्रमणः भगवान् महावीरः सप्त रत्नीरूर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

३. श्रमण भगवान् महावीर सात रत्नि[1] ऊंचे[2] थे।

४. सत्त वासहरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—चुल्लहिमवंते महाहिमवंते निसढे नीलवंते रुप्पी सिहरी मंदरे।

सप्त वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—क्षुल्लहिमवान् महाहिमवान् निषधः नीलवान् रुक्मी शिखरी मन्दरः।

४. वर्षधर पर्वत[3] सात हैं, जैसे—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नीलवान्, रुक्मी, शिखरी और मन्दर।

५. सत्त वासा पण्णत्ता, तं जहा—भरहे हेमवते हरिवासे महाविदेहे रम्मए हेरण्णवते एरवए।

सप्त वर्षाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—भरतं हैमवतं हरिवर्षं महाविदेहः रम्यक हैरण्यवतं ऐरवतम्।

५. क्षेत्र सात हैं, जैसे—भरत, हैमवत, हरिवर्ष, महाविदेह, रम्यक्, हैरण्यवत और ऐरवत।

६. खीणमोहे णं भगवं मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ वेएई।

क्षीणमोहो भगवान् मोहनीयवर्जाः सप्त कर्मप्रकृतीर्वेदयति।

६. क्षीणमोह भगवान् मोहनीय को छोड़कर सात कर्म-प्रकृतियों का वेदन करते हैं[6]।

७. महानक्खते सत्ततारे पण्णत्ते।

मघानक्षत्रं सप्ततारं प्रज्ञप्तम्।

७. मघा नक्षत्र के सात तारे हैं।

८. कत्तिआइया सत्त नक्खत्ता पुव्वदारिआ पण्णत्ता।

कृत्तिकादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि।

८. कृत्तिका जिनके आदि में है वे सात नक्षत्र पूर्व-द्वारिक हैं।

९. महाइया सत्त नक्खत्ता दाहिणदारिआ पण्णत्ता।

मघादिकानि सप्त नक्षत्राणि दक्षिणद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि।

९. मघा जिनके आदि में है वे सात नक्षत्र दक्षिण-द्वारिक हैं।

१०. अणुराहाइया सत्त नक्खत्ता अवरदारिआ पण्णत्ता।

अनुराधादिकानि सप्त नक्षत्राणि अपरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि।

१०. अनुराधा जिनके आदि में है वे सात नक्षत्र पश्चिम-द्वारिक हैं।

११. धणिट्ठाइया सत्त नक्खत्ता उत्तरदारिआ पण्णत्ता।

धनिष्ठादिकानि सप्त नक्षत्राणि उत्तरद्वारिकाणि प्रज्ञप्तानि।

११. धनिष्ठा जिनके आदि में है वे सात नक्षत्र उत्तर-द्वारिक हैं[7]।

१२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सात पल्योपम की है।

१३. तच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

तृतीयस्यां पृथिव्यां नैरयिकाणामुत्कर्षेण सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. तीसरी पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

१४. चउत्थीए णं पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. चौथी पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति सात पल्योपम की है।

१६. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां सप्त पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति सात पल्योपम की है।

१७. सणंकुमारे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सनत्कुमारे कल्पे अस्ति एकेषां देवानामुत्कर्षेण सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. सनत्कुमारकल्प के कुछ देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

१८. माहिंदे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

माहेन्द्रे कल्पे देवानामुत्कर्षेण सातिरेकाणि सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. माहेन्द्रकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक सात सागरोपम की है।

१९. बंभलोए कप्पे देवाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे देवानां जघन्येन सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१९. ब्रह्मलोककल्प के देवों की जघन्य स्थिति सात सागरोपम की है।

२०. जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमारवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः समं समप्रभं महाप्रभं प्रभासं भासुरं विमलं काञ्चनकूटं सनत्कुमारावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण सप्त सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२०. सम, समप्रभ, महाप्रभ, प्रभास, भासुर, विमल, कांचनकूट और सनत्कुमारावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

२१. ते णं देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः सप्तानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

२१. वे देव सात पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२२. तेसि णं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां सप्तभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

२२. उन देवों के सात हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२३. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे सत्तहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये सप्तभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२३. कुछ भव-सिद्धिक जीव सात बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. आजीव भय (आजीवभए)

स्थानांग ७/२७ में 'आजीव भय' के स्थान पर 'वेदना भय' है।

२. समुद्घात (समुग्घाया)

इसमें तीन शब्द हैं—सम्, उद् और घात। सम का अर्थ है—एकीभाव, उद् का अर्थ है—प्राबल्य और घात के दो अर्थ हैं—हिंसा करना, जाना। सामूहिक रूप से बलपूर्वक आत्म-प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालना या उनका इतस्ततः विक्षेपण करना अथवा कर्म पुद्गलों का निर्जरण करना, समुद्घात का शाब्दिक अर्थ है।

इसके सात प्रकार यहां निर्दिष्ट हैं। इनमें पहले छह छद्मस्थ अर्थात् अवीतराग व्यक्ति के होते हैं और अंतिम समुद्घात—केवली समुद्घात केवल केवलियों के ही होता है। इन सातों समुद्घातों में भिन्न-भिन्न कर्मों का शाटन होता है।

१. वेदना समुद्घात से वेदनीय कर्म-पुद्गलों का शाटन होता है।

२. कषाय समुद्घात से कषाय (मोह) के कर्म-पुद्गलों का शाटन होता है।

३. मारणान्तिक समुद्घात से आयुष्य कर्म-पुद्गलों का शाटन होता है।

४.५.६. वैक्रिय, आहारक और तैजस समुद्घात में तद्-तद् नामकर्म का शाटन होता है।

सभी समुद्घातों में आत्म-प्रदेश शरीर से बाहर निकलते हैं और उनसे संबंधित कर्म-पुद्गलों का विशेष रूप से परिशाटन (निर्जरण) होता है।

७. केवली समुद्घात के समय आत्मा समूचे लोक में व्याप्त होती है। उसका कालमान आठ समय का है। केवली समुद्घात के समय केवली समस्त आत्म-प्रदेशों को फैलाता हुआ चार समय में क्रमशः दण्ड, कपाट, मंथान और अन्तरावगाह (कोणों का स्पर्श) कर समग्र लोकाकाश को उनसे पूर्ण कर देता है। और अगले चार समयों में क्रमशः उन आत्म-प्रदेशों को समेटता हुआ पूर्ववत् देहस्थित हो जाता है। वह पूरी प्रक्रिया इस प्रकार है—

आयुष्य कर्म की स्थिति और दलिकों से जब वेदनीय कर्म की स्थिति और दलिक अधिक होते हैं तब उनको आपस में बराबर करने के लिए केवली समुद्घात होता है। जब सिर्फ अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य बाकी रहता है तभी समुद्घात होता है। समुद्घात में आठ समय लगते हैं। पहले समय में आत्म-प्रदेश शरीर के बाहर निकलकर दण्डाकार फैल जाते हैं। वह दण्ड ऊंचाई-निचाई में लोक-प्रमाण होता है। पर उसकी मोटाई शरीर के बराबर ही होती है। दूसरे समय में उक्त दण्ड पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण फैलकर कपाटाकार (किंवाड के आकार का) बन जाता है। तीसरे समय में कपाटाकार आत्म-प्रदेश पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में फैलकर मन्थानाकार (मन्थनी के आकार के) बन जाते हैं। चौथे समय में खाली भागों में फैलकर आत्म-प्रदेश समूचे लोक में व्याप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार प्रथम चार समयों में आत्म-प्रदेश क्रमशः फैलते हैं वैसे ही अन्त के चार समयों में क्रमशः सिकुड़ते हैं। पांचवें समय में फिर मन्थानाकार, छठे समय में कपाटाकार, सातवें समय में दण्डाकार और आठवें समय में पहले की भांति शरीरस्थ हो जाते हैं।

इन आठ समयों में पहले और आठवें समय में औदारिक योग, दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र योग तथा तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मणयोग होता है।[1]

दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार समुद्घात का अर्थ इस प्रकार है—

१. वेदना आदि निमित्तों से कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है।

२. घात का अर्थ है—कर्मों की स्थिति और अनुभाग का विनाश। उत्तरोत्तर होने वाले घात को उद्घात कहते हैं और समीचीन उद्घात को समुद्घात कहते हैं।

३. मूल शरीर को न छोड़कर तैजस और कार्मण शरीर के साथ-साथ जीव-प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात है।

समुद्घात सात हैं—

१. वेदनीय समुद्घात—वात, पित्त आदि विकारजनित रोग या विषपान आदि की तीव्र वेदना से आत्म-प्रदेशों का बाहर निकलना वेदना समुद्घात है। इसमें उत्कृष्टतः शरीर से तिगुने प्रमाण के आत्म-प्रदेश बाहर विसर्पण करते हैं।

२. कषाय समुद्घात—कषायों की तीव्रता से जीव-प्रदेशों का अपने शरीर से तिगुने प्रमाण में बाहर निकलना कषाय समुद्घात है।

---

१. जैन सिद्धान्त दीपिका ७/२९, ३०, पृष्ठ १४१-१४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मारणान्तिक समुद्घात— यह मरण के अंतिम समय में होता है। इसमें जीव-प्रदेश आगामी उत्पत्ति के स्थान तक फैलते हैं। धवला के अनुसार जीव के आत्म-प्रदेश ऋजुगति या विग्रहगति के द्वारा अपने उत्पत्ति क्षेत्र तक फैलकर, वहां अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं। यह मारणान्तिक समुद्घात है।

४. वैक्रिय समुद्घात—किसी भी प्रकार की विक्रिया उत्पन्न करने के लिए, मूल शरीर का त्याग न कर, आत्म-प्रदेशों का बाहर जाना वैक्रिय समुद्घात है।

५. तैजस समुद्घात— तैजस शरीर का विसर्पण करना तैजस समुद्घात है। इसका प्रयोजन है अनुग्रह और निग्रह।

६. आहारक समुद्घात— आहारक ऋद्धि से संपन्न मुनि अपने संशय के निवारण के लिए, मूल शरीर को छोड़े बिना, अपने मस्तिष्क से एक निर्मल स्फटिक के रंग का, एक हाथ का पुतला निकालते हैं। वह पुतला जहां कहीं केवली होते हैं वहां संशय का निवारण कर, प्रश्नकर्ता को समाधान दे, पुनः अपने शरीर में प्रवेश कर जाता है। यह आहारक समुद्घात है। इसका कालमान है अन्तर्मुहूर्त्त।

७. केवली समुद्घात— दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण रूप जीव-प्रदेशों की अवस्था को केवली समुद्घात कहते हैं। यह सभी केवलियों के नहीं होती।[1]

३. रत्नि (रयणीओ)

रत्नि का अर्थ है—फैली हुई अंगुलियों सहित हाथ।[2] भगवान् इस माप से सात हाथ ऊंचे थे।

४. ऊंचे (उड्ढं उच्चत्तेणं)

उच्चत्व दो प्रकार से होता है—ऊर्ध्व उच्चत्व और तिर्यग् उच्चत्व। प्रस्तुत आलापक में भगवान की ऊंचाई ऊर्ध्व उच्चत्व के माप से है।[3]

५. वर्षधर पर्वत (वासहरपव्वया)

इसका अर्थ है सीमा करने वाले पर्वत। ये सात हैं। ये सात पर्वत अगले आलापक में वर्णित सात क्षेत्रों की सीमा करते हैं, जैसे—

१. भरत और हैमवत	क्षुल्लहिमवान्
२. हैमवत और हरिवर्ष	महाहिमवान्
३. हरिवर्ष और महाविदेह	निषध
४. महाविदेह और रम्यक्	नील
५. रम्यक् और हैरण्यवत्	रुक्मी
६. हैरण्यवत् और ऐरवत	शिखरी

६. सूत्र ६ :

मोहनीय कर्म का पूरा क्षय बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में होता है। उस अवस्था के धनी छद्मस्थ वीतराग कहलाते हैं। तदनन्तर वे शेष सात कर्म-प्रकृतियों का वेदन करते हैं और तेरहवें गुणस्थान में तीन कर्म-प्रकृतियां—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय—एक साथ पूर्णतः क्षीण हो जाती हैं। तब वे केवली होकर केवल चार कर्म-प्रकृतियों [वेदनीय, नाम, गोत्र और आयुष्य] का वेदन करते हैं।

७. पूर्व-द्वारिक (पुव्वदारिआ)...उत्तर-द्वारिक (उत्तरदारिआ)

इन चार आलापकों [८-११] में पूर्वद्वारिक आदि नक्षत्रों का उल्लेख है। सूर्यप्रज्ञप्ति (१०/१३१) में इनका विस्तार से प्रतिपादन हुआ है। वहां छह वर्गीकरण प्राप्त होते हैं। उनमें पांच वर्गीकरण मतान्तर के रूप में तथा एक छठा वर्गीकरण सैद्धान्तिक रूप में स्वीकृत है। सूर्यप्रज्ञप्ति में उल्लिखित अन्यतीर्थिकों की प्रथम प्रतिपत्ति समवायांग में निर्दिष्ट मूल प्रतिपत्ति है। वह इस प्रकार है—

---

१. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष, १/३११; २/४०, ४१, १६६, १६६, ३६४; ३/२६७, ५६६, ६१२।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र १३ : रत्निः—विततांङ्गुलिर्हस्त इति।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र, १३ : ऊर्ध्वोच्चत्वेन न तिर्यगुच्चत्वेनेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व-द्वारिक नक्षत्र— कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा।

दक्षिण-द्वारिक नक्षत्र—मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा।

पश्चिम-द्वारिक नक्षत्र—अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण।

उत्तर-द्वारिक नक्षत्र— धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वप्रोष्ठपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी।

सूर्यप्रज्ञप्ति में प्राप्त छह वर्गीकरणों का स्वरूप इस प्रकार है—

पूर्व-द्वारिक

१. कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा।
२. मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा।
३. धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरभद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी।
४. अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, और पुनर्वसु।
५. भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य।

दक्षिण-द्वारिक

१. मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा।
२. अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण।
३. कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा।
४. पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त और चित्रा।
५. अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा और स्वाति।

पश्चिम-द्वारिक

१. अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण।
२. धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वप्रोष्ठपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी।
३. मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति और विशाखा।
४. स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा।
५. विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा और अभिजित्।

उत्तर-द्वारिक

१. धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वप्रोष्ठपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी।
२. कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा।
३. अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित् और श्रवण।
४. अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरभद्रपदा और रेवती।
५. श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वप्रोष्ठपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती और अश्विनी।[1]

सूत्रकार ने छठी प्रतिपत्ति को मान्य किया है, उसके अनुसार—

पूर्व-द्वारिक—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वप्रोष्ठपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा और रेवती।

दक्षिण-द्वारिक—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, संस्थान (मृगशिर), आर्द्रा और पूनर्वसु।

पश्चिम-द्वारिक—पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी, हस्त और चित्रा।

उत्तर-द्वारिक—स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा।[2]

---

१. सूरपण्णत्ती १०/१३१ : तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ,······
·········एते एवमाहंसु।

२. वही, १०/१३१ : ·····वयं पुण एवं वदामो ता अभिईयादि······
·········उत्तरासाढा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांग[1] सूत्र में भी पूर्व-द्वारिक आदि नक्षत्रों का कथन है और वह सैद्धान्तिक मत के अनुसार है। किन्तु समवायांग में जो प्रतिपादन हुआ है वह मतान्तर का वर्गीकरण है। इस तथ्य की सूचना स्वयं वृत्तिकार ने दी है।[2]

पाठ संशोधन में प्रयुक्त 'ख, ग' संकेत की प्रतियों तथा वृत्ति में छट्ठी प्रतिपत्ति का पाठ पाठान्तर के रूप में उल्लिखित है। इससे पता चलता है कि एक वाचना में छट्ठी प्रतिपत्ति का पाठ सम्मत्त था और दूसरी वाचना में प्रस्तुत पाठ रहा है। यह वाचनाभेद प्रतीत होता है। इसका कारण पाठ की विस्मृति नहीं है।

पूर्व-द्वारिक आदि नक्षत्रों के विधान का तात्पर्यार्थ यह है कि पूर्व आदि दिशा में यात्रा के लिए ये नक्षत्र प्रायः शुभ होते हैं।[3]

---

१. ठाणं, ७/१४६-१४६।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र १३ :
इह तु मतान्तरमाश्रित्य कृत्तिकादीनि सप्त सप्त पूर्वद्वारिकादीनि भणितानि।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र १३ :
पूर्वद्वारिकाणि—पूर्वदिशि येषु गच्छतः शुभं भवति ;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८

अट्ठमो समवाओ : आठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. अट्ठ मयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—जातिमए कुलमए बलमए रूवमए तवमए सुयमए लाभमए इस्सरियमए।	अष्ट मदस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—जातिमदः कुलमदः बलमदः रूपमदः तपोमदः श्रुतमदः लाभमदः ऐश्वर्यमदः।	१. मद के स्थान[1] आठ हैं, जैसे—जातिमद, कुलमद, बलमद, रूपमद, तपोमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद।
२. अट्ठ पवयणमायाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—इरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिई उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिई मणगुत्ती वइगुत्ती कायगुत्ती।	अष्ट प्रवचनमातरः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ईर्यासमितिः भाषासमितिः एषणा-समितिः आदान-भाण्डाऽमत्र-निक्षेपणा-समितिः उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-पारिष्ठापनिकीसमितिः मनो-गुप्तिः वाग्गुप्तिः कायगुप्तिः।	२. प्रवचन-माता[2] के आठ प्रकार हैं, जैसे—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा-समिति, आदान-भांड-अमत्र-निक्षेपणा-समिति, उच्चार-प्रश्रवण-क्ष्वेल-सिंघाण-जल्ल-पारिस्थापनिकीसमिति, मनो-गुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।
३. वाणमंतराणं देवाणं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	वानमन्तराणां देवानां चैत्यवृक्षाः अष्ट योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।	३. व्यन्तर देवताओं के चैत्य-वृक्ष[3] आठ योजन ऊंचे हैं।
४. जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	जम्बूः सुदर्शना अष्ट योजनानि ऊर्ध्व-मुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।	४. सुदर्शन जम्बू-वृक्ष की ऊंचाई आठ योजन की है।
५. कूडसामली णं गरुलावासे अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।	कूटशाल्मली गरुडावासः अष्ट योज-नानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।	५. गरुड़जातीय वेणुदेव के आवास कूट-शाल्मली की ऊंचाई आठ योजन की है।[4]
६. जंबुद्दीवस्स णं जगई अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	जम्बूद्वीपस्य जगती अष्ट योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।	६. जम्बूद्वीप की जगती (प्राकार) की ऊंचाई आठ योजन की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते, तं जहा—
पढमे समए दंडं करेइ,
बीए समए कवाडं करेइ,
तइए समए मंथं करेइ,
चउत्थे समए मंथंतराइं पूरेइ,
पंचमे समए मंथंतराइं पडिसाहरइ,
छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ,
सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ,
अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ,
तत्तो पच्छा सरीरत्थे भवइ।

अष्ट सामयिकः केवलिसमुद्घातः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
प्रथमे समये दण्डं करोति,
द्वितीये समये कपाटं करोति,
तृतीये समये मन्थं करोति,
चतुर्थे समये मन्थान्तराणि पूरयति,
पञ्चमे समये मन्थान्तराणि प्रतिसंहरति,
षष्ठे समये मन्थं प्रतिसंहरति,
सप्तमे समये कपाटं प्रतिसंहरति,
अष्टमे समये दण्डं प्रतिसंहरति,
ततः पश्चात् शरीरस्थो भवति।

७. केवली-समुद्घात[५] आठ समय का होता है, जैसे—आत्म-प्रदेशों का प्रथम समय में दण्डाकार निर्माण होता है, दूसरे समय में कपाटाकार निर्माण होता है, तीसरे समय में मंथाकार निर्माण होता है, चौथे समय में मंथ के अन्तरालों की पूर्ति होती है, पांचवें समय में मंथ के अन्तरालों में परिव्याप्त आत्मप्रदेशों का प्रतिसंहरण होता है, छट्ठे समय में मंथाकार का प्रतिसंहरण होता है, सातवें समय में कपाटाकार का प्रतिसंहरण होता है, आठवें समय में दण्डाकार का प्रतिसंहरण होता है, तत्पश्चात् आत्मा शरीरस्थ हो जाती है।

८. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—

संगहणीगाहा—

सुंभे य सुंभघोसे य,
वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिधरे चेव,
वीरभद्दे जसे इ य॥

पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य अष्ट गणाः अष्ट गणधरा आसन्, तद्यथा—

संग्रहणी गाथा—

शुम्भश्च शुम्भघोषश्च,
वशिष्ठो ब्रह्मचारी च।
सोमः श्रीधरश्चैव,
वीरभद्रो यशोऽपि च॥

८. पुरुषादानीय[६] अर्हत् पार्श्व के आठ गण और आठ गणधर[७] थे। जैसे—

१. शुंभ ५. सोम
२. शुंभघोष[८] ६. श्रीधर
३. वशिष्ठ ७. वीरभद्र
४. ब्रह्मचारी ८. यश[९]।

९. अट्ठ नक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमद्दं जोगं जोएंति, तं जहा—कत्तिया रोहिणी पुणव्वसू महा चित्ता विसाहा अणुराहा जेट्ठा।

अष्ट नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्द्धं प्रमर्दं योगं योजयन्ति, तद्यथा—कृत्तिका रोहिणी पुनर्वसू मघा चित्रा विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा।

९. आठ नक्षत्र चन्द्रमा के साथ प्रमर्दयोग[१०] करते हैं, जैसे—कृत्तिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा।

१०. इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्ट पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति आठ पल्योपम की है।

११. चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्ट सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. चौथी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति आठ सागरोपम की है।

१२. असरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां अष्ट पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति आठ पल्योपम की है।

१३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां अष्ट पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति आठ पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे अस्ति एकेषां देवानां अष्ट सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. ब्रह्मलोककल्प के कुछ देवों की स्थिति आठ सागरोपम की है।

१५. जे देवा अच्चिं अच्चिमालिं वइरोयणं पभंकरं चंदाभं सूराभं सुपइट्ठाभं अग्गिच्चाभं रिट्ठाभं अरुणाभं अरुणुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा अर्चिसं, अर्चिर्मालिनं वैरोचनं प्रभंकरं चन्द्राभं सूराभं सुप्रतिष्ठाभं अग्न्यर्चाभं रिष्टाभं अरुणाभं अरुणोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण अष्ट सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभंकर, चन्द्राभ, सूराभ, सुप्रतिष्ठाभ, अग्न्यर्चाभ, रिष्टाभ, अरुणाभ और अरुणोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति आठ सागरोपम की है।

१६. ते णं देवा अट्ठण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा अष्टानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१६. वे देव आठ पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१७. तेसि णं देवाणं अट्ठहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां अष्टभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१७. उन देवों के आठ हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये अष्टभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव आठ बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. मद के स्थान (मयट्ठाणा)

देखें—ठाणं ८/२१, टिप्पण पृ. ८३५।

२. प्रवचन-माता (पवयणमायाओ)

पांच समितियों और तीन गुप्तियों को प्रवचन-माता कहा जाता है। इसके दो कारण है—(१) इन आठों में सारा प्रवचन समा जाता है और (२) आठों से प्रवचन का प्रसव होता है। पहले में 'समाने' का और दूसरे में 'मां' का अर्थ है। विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि (सानुवाद), अ० २४ तथा उत्तरज्झयणाणि (टिप्पण), पृष्ठ १७१-१७३।

३. सूत्र ३:

व्यन्तर देव आठ हैं। प्रत्येक देव के एक-एक चैत्यवृक्ष है—

पिशाच	कदंब
भूत	तुलसी
यक्ष	वट
राक्षस	काण्डक
किन्नर	अशोक
किंपुरुष	चम्पक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महोरग	नागवृक्ष
गंधर्व	तेंदुक ।[1]

४. सूत्र ४-५ :

इन दो आलापकों में सुदर्शन जम्बू तथा कूटशाल्मली की ऊंचाई आठ योजन बताई गई है। स्थानांग ८/६३,६४ के आलापकों में "सातिरेगाइं" शब्द अधिक है। उसका स्पष्टीकरण जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (४/१४६,२०८) के आधार पर हो जाता है। वहां कहा गया है कि ये वृक्ष आधे-आधे योजन भूमि में हैं तथा इनके तने की मोटाई आधे-आधे योजन की है। इस आधे-आधे योजन के कारण ही "सातिरेक" शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी आधार पर सर्व परिमाण में ये वृक्ष आठ-आठ योजन से कुछ अधिक हैं।

५. केवली समुद्घात (केवलिसमुग्घाए)

केवली समुद्घात का यह आलापक ठाणं ८/११४ में भी है। उसके टिप्पण में हमने विस्तार से इसकी चर्चा की है। देखें—ठाणं ८/११४, टिप्पण पृ० ८३९-८४०।

दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण—ये चार केवली समुद्घात के प्रकार हैं। इनके अवांतर भेद इस प्रकार हैं—

दंड समुद्घात—१. स्थित और २. उपविष्ट।

कपाट समुद्घात—१. पूर्वाभिमुख स्थित, २. पूर्वाभिमुख उपविष्ट, ३. उत्तराभिमुख स्थित, ४. उत्तराभिमुख उपविष्ट।

प्रतर—एक ही प्रकार।

लोकपूरण—एक ही प्रकार।[2]

दिगम्बरों की यह मान्यता है कि जिनका आयुष्यकाल केवल छह महीनों का अवशिष्ट रहा हो और तब उन्हें केवल-ज्ञान हुआ हो तो निश्चित ही उनके समुद्घात होता है। शेष केवलियों के लिए यह निश्चित नियम नहीं है। उनके समुद्घात होता भी है और नहीं भी होता है।[3]

यतिवृषभाचार्य के अनुसार क्षीणकषाय गुणस्थान (बारहवें) के चरम समय में अघात्य कर्मों की स्थिति सम न होने के कारण सभी केवली समुद्घात करके ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार दिगम्बर साहित्य में केवलियों के समुद्घात होने या न होने, आत्म-प्रदेशों का विस्तार, समय की नियामकता, प्रतिष्ठापन का विधिक्रम, समुद्घात के समय होने वाले योग तथा आहारक-अनाहारक आदि-आदि अनेक विषयों की विशद जानकारा प्राप्त होती है।

देखें—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-२, पृष्ठ १६६-१६९।

६. पुरुषादानीय (पुरिसादाणिअस्स)

आगम-साहित्य में 'पुरुषादानीय' शब्द का प्रयोग विशेषत: भगवान् पार्श्व के लिए होता रहा है और वह उनकी लोक-प्रियता का सूचक है। वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'आदानीय पुरुष'—ग्राह्य-पुरुष किया है।[4] कहीं-कहीं इस शब्द का प्रयोग साधु के विशेषण के रूप में भी उपलब्ध होता है। सूत्रकृतांग (१/९/३५) में 'पुरिसादानीय' शब्द प्रयुक्त है। वहां चूर्णिकार ने उसके तीन अर्थ किये हैं—सेव्यपुरुष, ग्राह्यपुरुष और ग्रहणशीलपुरुष।[5]

विशेष विवरण के लिए देखें, इसी स्थल का टिप्पण नं० ११५।

---

१. ठाणं ८/११६, ११७।

२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग २, पृष्ठ-१६६।

३. भगवती आराधना, गाथा २१०९ :
उक्कस्सएण छम्मासाउगसेसम्मिकेवली जादा।
वच्चंति समुग्धादं, सेसा भज्जा समुग्घादे॥

४. समवायांगवृत्ति, पत्र १४।

५. सूत्रकृतांगचूर्णि, पृष्ठ १८३ :
पुरुषादानीया: सेव्यन्त इत्यर्थ:।.....प्रव्रज्यामुपेत्य पुरुषादानाया यदा संवृता भवन्ति धर्मलिप्सुभि: पुरुषैरादानीया:। अथवा ग्राह्या: पुरुषा इत्यादानीया:।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. गणधर (गणहरा)

गण और गणधर का नाम समान ही था। स्थानांग (८/३७) में भी आठ गणधरों का उल्लेख है। आवश्यक निर्युक्ति (गाथा २६८) में पार्श्व के दस गणधर माने हैं। सम्भव है दो गणधरों का काल अत्यल्प होने के कारण उनकी विवक्षा न की गई हो, ऐसा वृत्तिकार ने माना है।[1]

८. शुंभघोष (सुंभघोसे)

स्थानांग (८/३७) तथा कल्पसूत्र (सूत्र ११६) में इसके स्थान पर 'आर्यघोष' है। लिपि-दोष या वाचनान्तर के कारण यह भेद हुआ हो, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अधिक सम्भावना लिपि-दोष की ही की जा सकती है।

९. यश (जसे)

भावदेवसूरी कृत पार्श्वनाथ चरित्र में पार्श्वनाथ के दस गणधरों के नाम इस प्रकार हैं—आर्यदत्त, आर्यघोष, वशिष्ठ, ब्रह्म, सोम, श्रीधर, वारिसेन, भद्रयश, जय और विजय।[2]

१०. प्रमर्दयोग (पमद्दं जोगं)

प्रमर्दयोग का अर्थ है—स्पर्शयोग। प्रस्तुत सूत्रगत आठ नक्षत्र उभययोगी होते हैं। ये चन्द्रमा का उत्तर और दक्षिण—दोनों ओर से स्पर्श करते हैं। चन्द्रमा इनके बीच से निकल जाता है।

प्रस्तुत आगम के वृत्तिकार ने 'लोकश्री' तथा उसकी टीका का उद्धरण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार प्रमर्दयोग वाले ये नक्षत्र कभी-कभी चन्द्रमा का योग करते हैं। लोकश्री के टीकाकार ने इसको स्पष्ट करते हुए लिखा है—ये आठों नक्षत्र उभययोगी होते हैं। चन्द्रमा के उत्तर में तथा दक्षिण में योग करते हैं (होते हैं)। कभी-कभी चन्द्रमा इनका भेद भी कर देता है (स्पर्श कर देता है)।[3]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १४ :
अष्टौ गणाः—समानवाचनाक्रियाः साधुसमुदायाः, अष्टौ गणधराः—तन्नामकाः सूरयः, इदं चैतत् प्रमाणं स्थानाङ्गे पर्युषणाकल्पे च श्रूयते, केवलमावश्यके अन्यथा, तत्र ह्युक्तम्—'दस नवगं गणाण माणं जिणिदाणं' ति कोऽर्थः ?—पार्श्वस्य दस गणाः गणधराश्च, तदिह द्वयोरल्पायुष्कत्वादिना कारणेनाविवक्षाऽनुगन्तव्येति।

२. पार्श्वनाथ चरित्र, सर्ग ७, श्लोक १३५२, १३५३।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र १४ :
अष्टौ नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्धं प्रमर्दं—चन्द्र (:) मध्येन तेषां गच्छतीत्येवंलक्षणं योगं—सम्बन्धं योजयन्ति—कुर्वन्ति, अत्रार्थेऽभिहितं लोकश्रियां—'पुणव्वसु रोहिणी चित्ता मह जेट्ठणुराह कित्तिय विसाहा। चंदस्स उभयजोग" न्ति, यानि च दक्षिणोत्तरयोगीनि तानि प्रमर्दयोगीन्यपि कदाचिद् भवन्ति, यतो लोकश्रीटीकाकृतोक्तम्—"एतानि नक्षत्राण्युभययोगीनि चन्द्रस्योत्तरेण दक्षिणेन च युज्यन्ते, कदाचिच्चन्द्रेण भेदमप्युपयान्तीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९
नवमो समवाओ : नौवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. नव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	नव ब्रह्मचर्यगुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. ब्रह्मचर्य की गुप्तियां नौ[1] हैं, जैसे—
नो इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ।	नो स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शय्यासनानि सेवयिता भवति।	१. ब्रह्मचारी स्त्री, पशु और नपुंसक से संयुक्त शय्या और आसन का सेवन नहीं करता।
नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ।	नो स्त्रीणां कथाः कथयिता भवति।	२. वह स्त्री की कथा नहीं करता।
नो इत्थीणं ठाणाइं सेवित्ता भवइ।	नो स्त्रीणां स्थानानि सेवयिता भवति।	३. वह स्त्रियों के स्थानों का सेवन नहीं करता।[2]
नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ।	नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निध्याता भवति।	४. वह स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को नहीं देखता और एकाग्रचित्त से उनका निरीक्षण नहीं करता।
नो पणीयरसभोई भवइ।	नो प्रणीतरसभोजी भवति।	५. वह प्रणीतरसभोजी नहीं होता।
नो पाणभोयणस्स अतिमायं आहारइत्ता भवइ।	नो पानभोजनस्य अतिमात्रं आहर्त्ता भवति।	६. वह पान-भोजन का अतिमात्र आहार नहीं करता।
नो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकोलियाइं सुमरइत्ता भवइ।	नो स्त्रीणां पूर्वरतानि पूर्वक्रीडितानि स्मर्त्ता भवति।	७. वह पूर्व अवस्था में आचीर्ण भोग और क्रीडाओं का स्मरण नहीं करता।
नो सद्दाणुवाई नो रूवाणुवाई नो गंधाणुवाई नो रसाणुवाई नो फासाणुवाई नो सिलोगाणुवाई।	नो शब्दानुपाती नो रूपानुपाती नो गन्धानुपाती नो रसानुपाती नो स्पर्शानुपाती नो श्लोकानुपाती।	८. वह शब्दानुपाती (शब्दों में आसक्त), रूपानुपाती, गन्धानुपाती, रसानुपाती, स्पर्शानुपाती और श्लोकानुपाती (श्लाघानुपाती) नहीं होता।
नो सायासोक्ख-पडिबद्धे यावि भवइ।	नो सातसौख्य-प्रतिबद्धश्चापि भवति।	९. वह सात और सुख में प्रतिबद्ध नहीं होता।
२. नव बंभचेरअगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	नव ब्रह्मचर्यागुप्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	२. ब्रह्मचर्य की अगुप्तियां नौ हैं, जैसे—
इत्थी-पसु-पंडग-संसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ।	स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्तानि शय्यासनानि सेवयिता भवति।	१. ब्रह्मचारी स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन का सेवन करता है।
इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ।	स्त्रीणां कथाः कथयिता भवति।	२. वह स्त्री की कथा करता है।
इत्थीणं ठाणाइं सेवित्ता भवइ।	स्त्रीणां स्थानानि सेवयिता भवति।	३. वह स्त्रियों के स्थानों का सेवन करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ।

पणीयरसभोई भवइ।

पाणभोयणस्स अतिमायं आहारइत्ता भवइ।

इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरइत्ता भवइ।

सद्दाणुवाई रूवाणुवाई गंधाणुवाई रसाणुवाई फासाणुवाई सिलोगाणुवाई।

सायासोक्ख-पडिबद्धे यावि भवइ।

स्त्रीणामिन्द्रियाणि मनोहराणि मनोरमाणि आलोकयिता निर्ध्याता भवति।

प्रणीतरसभोजी भवति।

पानभोजनस्य अतिमात्रं आहर्त्ता भवति।

स्त्रीणां पूर्वरतानि पूर्वक्रीडितानि स्मर्त्ता भवति।

शब्दानुपाती रूपानुपाती गंधानुपाती रसानुपाती स्पर्शानुपाती श्लोकानुपाती।

सातसौख्य-प्रतिबद्धश्चापि भवति।

४. वह स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखता है और एकाग्र-चित्त से उनका निरीक्षण करता है।

५. वह प्रणीतरसभोजी होता है।

६. वह पान-भोजन का अतिमात्र आहार करता है।

७. वह पूर्व अवस्था में आचीर्ण भोग और क्रीडाओं का स्मरण करता है।

८. वह शब्दानुपाती, रूपानुपाती, गन्धानुपाती, रसानुपाती, स्पर्शानुपाती और श्लोकानुपाती होता है।

९. वह सात और सुख में प्रतिबद्ध होता है।

३. नव बंभचेरा पण्णत्ता, तं जहा—
संगहणी गाहा—
सत्थपरिण्णा लोगविजओ
सीओसणिज्जं सम्मत्तं।
आवंती धुतं विमोहायणं
उवहाणसुयं महपरिण्णा॥

नव ब्रह्मचर्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—
संग्रहणी गाथा—
शस्त्रपरिज्ञा लोकविजयः
शीतोष्णीयम् सम्यक्त्वम्।
आवंती धुतम् विमोहायतनम्
उपधानश्रुतम् महापरिज्ञा॥

३. ब्रह्मचर्य—आचारांगसूत्र के अध्ययन[३]—नौ हैं, जैसे—शस्त्रपरिज्ञा, लोकविजय, शीतोष्णीय, सम्यक्त्व, आवंती, धुत, विमोहायतन, उपधानश्रुत और महापरिज्ञा।

४. पासे णं अरहा नव रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

पार्श्वः अर्हन् नव रत्नीरूर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

४. अर्हत् पार्श्व नौ रत्नि ऊंचे थे।

५. अभीजिनक्खत्ते साइरेगे नव मुहुत्ते चंदेणं सद्धिं जोगं जोएइ।

अभिजिन्नक्षत्रं सातिरेकान्नव मुहूर्तांश्चन्द्रेण सार्द्धं योगं योजयति।

५. अभिजित् नक्षत्र नौ मुहूर्त्तों से कुछ अधिक काल तक (९$\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त्त) चन्द्रमा के साथ योग करता है।

६. अभीजियाइया नव नक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति, तं जहा—अभीजि सवणो धणिट्ठा सयभिसया पुव्वाभद्दवया उत्तरापोट्ठवया रेवई अस्सिणी भरणी।

अभिजिदादीनि नव नक्षत्राणि चन्द्रस्योत्तरेण योगं योजयन्ति, तद्यथा—अभिजित् श्रवणः धनिष्ठा शतभिषग् पूर्वभद्रपदाः उत्तरप्रोष्ठपदाः रेवती अश्विनी भरणी।

६. अभिजित् आदि नौ नक्षत्र चन्द्र के साथ उत्तर से योग करते हैं[४], जैसे—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नव जोयणसए उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् नवयोजनशतमूर्ध्वं अबाधायां उपरितनं तारारूपं चारं चरति।

७. उपरीतन तारागण इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन के अन्तर से भ्रमण करता है।

८. जंबुद्दीवे णं दीवे नवजोयणिया मच्छा पविसिंसु वा पविसंति वा पविसिस्संति वा।

जम्बूद्वीपे द्वीपे नवयोजनिका मत्स्याः प्राविशन् वा प्रविशन्ति वा प्रवेक्ष्यन्ति वा।

८. जम्बूद्वीप द्वीप में नौ योजन के मत्स्य प्रविष्ट हुए थे, होते हैं और होंगे।[५]

९. विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए बाहाए नव-नव भोमा पण्णत्ता।

विजयस्य द्वारस्य एकैकस्यां बाहौ नव-नव भौमानि प्रज्ञप्तानि।

९. विजयद्वार के प्रत्येक पार्श्व में नौ-नौ भौम[६] हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुधम्माओ नव जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ताओ।

वानमन्तराणां देवानां सभाः सुधर्माः नव योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।

१०. व्यन्तर देवों के सुधर्मा सभा की ऊंचाई नौ योजन की है।

११. दंसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स नव उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—निद्दा पयला निद्दानिद्दा पयलापयला थीणगिद्धी चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे।

दर्शनावरणीयस्य कर्मणो नव उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—निद्रा प्रचला निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिः चक्षुर्दर्शनावरणं अचक्षुर्दर्शनावरणं अवधिदर्शनावरणं केवलदर्शनावरणम्।

११. दर्शनावरणीय कर्म की उत्तर प्रकृतियां नौ हैं, जैसे—निद्रा, प्रचला, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण।

१२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां नव पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति नौ पल्योपम की है।

१३. चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां नव सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. चौथी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति नौ सागरोपम की है।

१४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां नव पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति नौ पल्योपम की है।

१५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं नव पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां नव पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति नौ पल्योपम की है।

१६. बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे अस्ति एकेषां देवानां नव सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. ब्रह्मलोककल्प के कुछ देवों की स्थिति नौ सागरोपम की है।

१७. जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पहं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडेंसगं सुज्जं सुसुज्जं सुज्जावत्तं सुज्जपभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्जसिंगं सुज्जसिट्ठं सुज्जकूडं सुज्जुत्तरवडेंसगं रुइल्लं रुइल्लावत्तं रुइल्लप्पभं रुइल्लकंतं रुइल्लवण्णं रुइल्ललेसं रुइल्लज्झयं रुइल्लसिंगं रुइल्लसिट्ठं रुइल्लकूडं रुइल्लुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं (उक्कोसेणं ?) नव सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः पक्ष्म सुपक्ष्म पक्ष्मावर्त्तं पक्ष्मप्रभं पक्ष्मकान्तं पक्ष्मवर्णं पक्ष्मलेश्यं पक्ष्मध्वजं पक्ष्मशृङ्गं पक्ष्मसृष्टं पक्ष्मकूटं पक्ष्मोत्तरावतंसकं सूर्यं सुसूर्यं सूर्यावर्त्तं सूर्यप्रभं सूर्यकान्तं सूर्यवर्णं सूर्यलेश्यं सूर्यध्वजं सूर्यशृङ्गं सूर्यसृष्टं सूर्यकूटं सूर्योत्तरावतंसकं रुचिरं रुचिरावर्त्तं रुचिरप्रभं रुचिरकान्तं रुचिरवर्णं रुचिरलेश्यं रुचिरध्वजं रुचिरशृङ्गं रुचिरसृष्टं रुचिरकूटं रुचिरोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां (उत्कर्षेण ?) नव सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. पक्ष्म, सुपक्ष्म, पक्ष्मावर्त्त, पक्ष्मप्रभ, पक्ष्मकान्त, पक्ष्मवर्ण, पक्ष्मलेश्य, पक्ष्मध्वज, पक्ष्मशृङ्ग, पक्ष्मसृष्ट, पक्ष्मकूट, पक्ष्मोत्तरावतंसक तथा सूर्य, सुसूर्य, सूर्यावर्त्त, सूर्यप्रभ, सूर्यकान्त, सूर्यवर्ण, सूर्यलेश्य, सूर्यध्वज, सूर्यशृङ्ग, सूर्यसृष्ट, सूर्यकूट, सूर्योत्तरावतंसक तथा रुचिर, रुचिरावर्त्त, रुचिरप्रभ, रुचिरकान्त, रुचिरवर्ण, रुचिरलेश्य, रुचिरध्वज, रुचिरशृङ्ग, रुचिरसृष्ट, रुचिरकूट और रुचिरोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की (उत्कृष्ट ?) स्थिति नौ सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. ते णं देवा नवण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

ते देवा नवानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा ।

१८. वे देव नौ पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं ।

१९. तेसि णं देवाणं नवहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ ।

तेषां देवानां नवभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते ।

१९. उन देवों के नौ हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है ।

२०. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे नवहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये नवभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति ।

२०. कुछ भव-सिद्धिक जीव नौ बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे ।

टिप्पण

१. सूत्र १.२ :

प्रस्तुत दो आलापकों में ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों तथा नौ अगुप्तियों का उल्लेख है । स्थानांग ९/३,४ में भी नौ गुप्तियों तथा नौ अगुप्तियों का उल्लेख हुआ है । दोनों में भाषागत और भावगत ऐक्य है ।

आवश्यक सूत्र में "नवहिं बंभचेर गुत्तीहिं" की वृत्ति करते हुए आचार्य हरिभद्र ने ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों का एक प्राचीन गाथा के आधार पर निम्न प्रकार से उल्लेख किया है—[1]

"वसहिकह निसिज्जिंदिय कुड्डुंतरपुव्वकीलियपणीए ।
अइमायाहारविभूसणा य नव बंभगुत्तीओ ॥"

१. ब्रह्मचारी स्त्री-पशु और नपुंसक से संसक्त वसति का सेवन न करे ।
२. अकेली स्त्रियों में कथा न करे ।
३. स्त्रियों की निषद्या (स्थान) का सेवन न करे । स्त्रियों के चले जाने पर (तत्काल) उस स्थान पर न बैठे ।
४. स्त्रियों की इन्द्रियों को आसक्तदृष्टि से न देखे ।
५. भींत आदि के छिद्रों से मैथुन-संसक्त स्त्रियों की क्वणित—ध्वनि को न सुने ।
६. पूर्व अवस्था में आचीर्ण भोगों की स्मृति न करे ।
७. प्रणीत [स्निग्ध, गरिष्ठ] भोजन न करे ।
८. अतिमात्रा में आहार का उपभोग न करे ।
९. विभूषा न करे ।

इनमें तथा समवायांग और स्थानांग में प्रतिवादित नौ गुप्तियों में अन्तर है ।

२. वह स्त्रियों के स्थानों का सेवन नहीं करता (नो इत्थीणं ठाणाइं सेवित्ता भवइ)

टीकाकार अभयदेव सूरी ने समवायांग की वृत्ति में 'नो इत्थीणं गणाइं सेवित्ता भवइ'—पाठ माना है । उसका अर्थ है—ब्रह्मचारी स्त्री-समुदाय का उपासक न हो ।[2]

स्थानांग की वृत्ति के अनुसार उन्होंने उत्तराध्ययन के आधार पर 'इत्थिगणाइं' के स्थान पर 'इत्थिठाणाइं' पाठ स्वीकार किया है । उन्होंने लिखा है—कहीं-कहीं 'इत्थिगणाइं' पाठ भी उपलब्ध होता है, किन्तु यहां 'इत्थिठाणाइं' पाठ अधिक उपयुक्त लगता है । उत्तराध्ययन में भी यही पाठ उपलब्ध है । उन्होंने इसका अर्थ—'स्त्रियां जहां बैठती हैं वैसे स्थान'

१. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ १०४ ।
२ समवायांगवृत्ति, पत्र १५ :
[illegible]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है और उसकी व्याख्या करते हुए बताया है—स्त्रियों के साथ एकासन पर न बैठे और ऐसे स्थानों पर भी न बैठे जहां स्त्रियां पहले बैठी हुई हों। स्त्रियों के उठ जाने पर, एक मुहूर्त्त के बाद वहां बैठा जा सकता है।[1]

३. ब्रह्मचर्य—आचारांग सूत्र के अध्ययन [बंभचेर]

वृत्तिकार अभिदेवसूरी ने ब्रह्मचर्य का अर्थ—कुशल अनुष्ठान तथा संयम किया है। उन्होंने इन अनुष्ठानों का वर्णन आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के नौ अध्ययनों में प्रतिबद्ध माना है। इस उपलक्षण से आचारांग के नौ अध्ययनों को अथवा आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध को "ब्रह्मचर्य" शब्द से अभिहित किया है।[2] इसी आगम में अन्यत्र इसे ब्रह्मचर्य से ही उल्लिखित किया है।[3]

प्रस्तुत आलापक में अध्ययनों का जो क्रम दिया है, उसमें सातवां "विमोहायतन" और नौवां "महापरिज्ञा" है। वास्तव में "महापरिज्ञा" सातवां अध्ययन है।

इसकी व्यवच्छित्ति हो जाने के कारण इसको अन्त में गिनाया गया है। यह बात वृत्तिकार ने इक्यावनवें समवाय की वृत्ति में कही है।[4]

देखें—समवाय ५१/१ का टिप्पण।

४. योग करते हैं (जोगं जाएंति)

ये नक्षत्र उत्तर दिशा में रहकर दक्षिण दिशा में स्थित चन्द्रमा के साथ योग करते हैं।

सूर्यप्रज्ञप्ति (१०/७५) तथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (७/१२८) में चन्द्र के साथ उत्तर से योग करनेवाले १२ नक्षत्रों का उल्लेख है—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषग्, पूर्वभद्रपदा, उत्तरप्रोष्ठपदा, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वफल्गुनी, उत्तर-फल्गुनी और स्वाती।

किन्तु यहां नौ नामों का उल्लेख है। स्थानाङ्ग (९/१६) में भी नौ नामों का उल्लेख है। नवें स्थान में और नवें समवाय में नौ ही नाम हो सकते हैं, इस दृष्टि से नौ नामों का उल्लेख है, यह संभावना नहीं की जा सकती। बारहवें समवाय में भी बारह नामों का उल्लेख किया जा सकता था, किन्तु वैसा नहीं किया गया। इससे सहज ही सम्भावना की जा सकती है कि इस विषय में नौ नक्षत्रों की कोई प्राचीन परम्परा रही है।

५. नौ योजन के मत्स्य (नवजोयणिया मच्छा)

यद्यपि लवण समुद्र में पांच सौ योजन के मत्स्य हैं, किन्तु नदियों के मुहानों पर जम्बूद्वीप की जगती का द्वार **नौ योजन** का है, इसलिए उसमें इससे बड़े मत्स्य प्रवेश नहीं कर सकते। क्या यह क्षेत्रगत प्रभाव तो नहीं है?[5]

६. भौम (भोमा)

वृत्तिकार के अनुसार कुछ आचार्य भौम का अर्थ 'नगर' और कुछ 'विशिष्ट स्थान' करते हैं।[6]

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४२२ :
'नो इत्थिगणाइं' तीह सूत्रं दृश्यते केवलं 'नो इत्थिठाणाइं' ति सम्भाव्यते उत्तराध्ययनेषु तथाऽधीतत्वात् प्रक्रमानुसारित्वाच्चास्येतीदमेव व्याख्यायते—'नो स्त्रीणां, तिष्ठन्ति येषु तानि स्थानानि निषद्याः स्त्रीस्थानानि तानि सेविता भवति ब्रह्मचारी, कोऽर्थः ? स्त्रीभिः सहैकासने नोपविशेद्, उत्थितास्वपि हि तासु मुहूर्त्तं नोपविशेदिति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र १६ :
कुशलानुष्ठानं ब्रह्मचर्यं तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि ब्रह्मचर्याणि तानि चाचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धप्रतिबद्धानीति।

३. समवाओ ५१/१ :
नवण्हं बंभचेराणं............ ।
—वृत्ति पत्र ६७ : बंभचेराणं—आचारप्रथमश्रुतस्कंधाध्ययनानां··· ।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र ६७।

५. समवायांगवृत्ति, पत्र १६ :
लवणसमुद्रे यद्यपि पञ्चयोजनशतिका मत्स्याः संभवन्ति, तथापि नदीमुखेषु जगतीरन्ध्रौचित्येनैतावतामेव प्रवेश इति, लोकानुभावो वाऽयमिति।

६. समवायांगवृत्ति, पत्र १६।
भौमानि—नगराणीत्येके वशिष्टस्थानानीत्यन्ये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०

दसमो समवाओ : दसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—खंती मुत्ती अज्जवे मद्दवे लाघवे सच्चे संजमे तवे चियाए बंभचेरवासे।	दशविधः श्रमणधर्मः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—क्षान्तिः मुक्तिः आर्जवं मार्दवं लाघवं सत्यं संयमः तपः त्यागः ब्रह्मचर्यवासः।	१. श्रमण-धर्म दस प्रकार का[1] है, जैसे—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्यवास।
२. दस चित्तसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा— धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जिज्जा, सव्वं धम्मं जाणित्तए।	दश चित्तसमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— धर्मचिन्ता वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वा समुत्पद्येत, सर्वं धर्मं ज्ञातुम्।	२. चित्त की समाधि के स्थान (हेतु)[2] दस हैं, जैसे—१. किसी को अभूतपूर्व धर्म-चिन्ता उत्पन्न होती है, उससे वह सब धर्मों (वस्तु-स्वभावों) को जानकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।
सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, अहातच्चं सुमिणं पासित्तए।	स्वप्नदर्शनं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, यथातथ्यं स्वप्नं द्रष्टुम्।	२. किसी को अभूतपूर्व स्वप्न-दर्शन होता है। वह यथार्थ-स्वप्न देखकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।
सण्णिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, पुव्वभवे सुमरित्तए।	संज्ञिज्ञानं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, पूर्वभवान् स्मर्तुम्।	३. किसी को अभूतपूर्व संज्ञी-ज्ञान (जाति-स्मृति) उत्पन्न होता है। उससे वह पूर्व जन्मों को जानकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।
देवदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए।	देवदर्शनं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, दिव्यां देवर्द्धिं दिव्यां देवद्युतिं दिव्यं देवानुभावं द्रष्टुम्।	४. किसी को अभूतपूर्व देव-दर्शन होता है, उससे वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव को देखकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।
ओहिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, ओहिणा लोगं जाणित्तए।	अवधिज्ञानं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, अवधिना लोकं ज्ञातुम्।	५. किसी को अभूतपूर्व अवधिज्ञान प्राप्त होता है। उससे वह लोक को जानकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।
ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, ओहिणा लोगं पासित्तए।	अवधिदर्शनं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, अवधिना लोकं द्रष्टुम्।	६. किसी को अभूतपूर्व अवधिदर्शन प्राप्त होता है। उससे वह लोक को देखकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढातिज्जेसु दीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणित्तए।

मनःपर्यवज्ञानं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे अर्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु संज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् ज्ञातुम्।

७. किसी को अभूतपूर्व मनःपर्यवज्ञान प्राप्त होता है। उससे वह अढाई द्वीप और समुद्र—मनुष्यलोक में विद्यमान समनस्क और पर्याप्तक पञ्चेन्द्रिय जीवों के[3] मनोगत भावों को जानकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।

केवलनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, केवलं लोगं जाणित्तए।

केवलज्ञानं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, केवलं लोकं ज्ञातुम्।

८. किसी को अभूतपूर्व केवलज्ञान प्राप्त होता है। उससे वह सम्पूर्ण लोक को जानकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।

केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा, केवलं लोयं पासित्तए।

केवलदर्शनं वा तस्य असमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, केवलं लोकं द्रष्टुम्।

९. किसी को अभूतपूर्व केवलदर्शन प्राप्त होता है। उससे वह सम्पूर्ण लोक को देखकर चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।

केवलिमरणं वा मरिज्जा, सव्वदुक्खप्पहीणाए।

केवलिमरणं वा म्रियेत, सर्वदुःखप्रहाणाय।

१०. समस्त दुःखों को क्षीण करने के लिए केवलीमरण को प्राप्त करने वाला चैतसिक समाधान को प्राप्त होता है।

३. मंदरे णं पव्वए मूले दसजोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

मन्दरः पर्वतः मूले दशयोजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

३. मन्दर पर्वत का मूल दस हजार योजन चौड़ा है[4]।

४. अरहा णं अरिट्ठनेमी दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अर्हन् अरिष्टनेमिः दश धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

४. अर्हत् अरिष्टनेमि दस धनुष्य ऊंचे थे[5]।

५. कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

कृष्णो वासुदेवः दश धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

५. वासुदेव कृष्ण दस धनुष्य ऊंचे थे[6]।

६. रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

रामो बलदेवः दश धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

६. बलदेव राम दस धनुष्य ऊंचे थे।

७. दस नक्खत्ता नाणविद्धिकरा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा—

मिगसिरमद्दा पुस्सो,
तिण्णि अ पुव्वा य मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्ता य तहा,
दस विद्धिकराइं नाणस्स॥

दश नक्षत्राणि ज्ञानवृद्धिकराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी गाथा—

मृगशिरः आर्द्रा पुष्यः,
त्रयश्च पूर्वाश्च मूलमश्लेषा।
हस्तश्चित्रा च तथा,
दश वृद्धिकराणि ज्ञानस्य॥

७. ज्ञानवृद्धि करने वाले[7] नक्षत्र दस हैं, जैसे—

१. मृगशिर	६. पूर्वफल्गुनी
२. आर्द्रा	७. मूल
३. पुष्य	८. अश्लेषा
४. पूर्वाषाढा	९. हस्त
५. पूर्वभद्रपदा	१०. चित्रा।

८. अकम्मभूमियाणं मणुआणं दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया पण्णत्ता, तं जहा—

अकर्मभूमिजानां मनुजानां दशविधा वृक्षा उपभोगाय उपस्थिताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

८. दस प्रकार के वृक्ष[8] अकर्मभूमिज मनुष्यों के उपभोग में आते हैं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगहणी गाहा—

मत्तंगया य भिंगा,
तुडिअंगा दीव जोइ चित्तंगा।
चित्तरसा मणिअंगा,
गेहागारा अणिगणा य॥

संग्रहणी गाथा—

मत्ताङ्गकाश्च भृङ्गाः,
तूर्याङ्गा दीपाः ज्योतिषः चित्राङ्गाः।
चित्ररसा मण्यङ्गाः,
गेहाकाराः अनग्नाश्च॥

१. मदांगक—मादक रस वाले। २. भृतांग—भाजनाकार पत्तों वाले। ३. त्रुटितांग—बाजों की ध्वनि उत्पन्न करने वाले। ४. दीपांग—प्रकाश करने वाले। ५. ज्योति—अग्नि की भांति उल्का सहित प्रकाश करने वाले। ६. चित्रांग—मालाकार पुष्पों से लदे हुए। ७. चित्ररस—विविध प्रकार के मनोज्ञ रस वाले। ८. मणिअंग—आभरणाकार अवयवों वाले। ९. गेहाकार—घर के आकार वाले। १०. अनग्न—नग्नत्व को ढांकने के उपयोग में आने वाले।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन दश वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति दस पल्योपम की है।

११. चउत्थीए पुढवीए दस निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां दश नरकावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

११. चौथी पृथ्वी में दस लाख नरकावास है।

१२. चउत्थीए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

चतुर्थ्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां उत्कर्षेण दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. चौथी पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सात सागरोपम की है।

१३. पंचमाए पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. पांचवीं पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है।

१४. असुरकुमाराणं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां जघन्येन दश वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. असुरकुमार देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१५. असुरिंदवज्जाणं भोमेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

असुरेन्द्रवर्जानां भौमेयानां देवानां जघन्येन दश वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. असुरेन्द्र को छोड़कर भवनवासी देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१६. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानामस्ति एकेषां दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति दस पल्योपम की है।

१७. बायरवणप्फतिकाइयाणं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

बादरवनस्पतिकायिकानामुत्कर्षेण दश वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. बादर वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की है।

१८. वाणमंतराणं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।

वानमन्तराणां देवानां जघन्येन दश वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. व्यन्तर देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१९. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति दस पल्योपम की है।

२०. बंभलोए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ब्रह्मलोके कल्पे देवानां उत्कर्षेण दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२०. ब्रह्मलोककल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

२१. लंतए कप्पे देवाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे देवानां जघन्येन दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२१. लान्तककल्प के देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम की है।

२२. जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा घोषं सुघोषं महाघोषं नन्दिघोषं सुस्वरं मनोरमं रम्यं रम्यकं रमणीयं मंगलावर्त्तं ब्रह्मलोकावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

२२. घोष, सुघोष, महाघोष, नंदीघोष, सुस्वर, मनोरम, रम्य, रम्यक, रमणीय, मंगलावर्त्त और ब्रह्मलोकावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम की है।

२३. ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा दशानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

२३. वे देव दस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२४. तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां दशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

२४. उन देवों के दस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२५. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये दशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२५. कुछ भव-सिद्धिक जीव दस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. श्रमण-धर्म दस प्रकार का (दसविहे समणधम्मे)

प्रस्तुत आलापक में श्रमण-धर्म के दस प्रकार निर्दिष्ट हैं। स्थानांग सूत्र के पांचवें स्थान के दो सूत्रों (३४-३५) में पांच-पांच श्रमण-धर्मों के तथा दसवें स्थान के १६वें सूत्र के दस धर्मों का उल्लेख हुआ है। स्थानांग की वृत्ति के अनुसार इनका अर्थ यह है[१]—

१. क्षान्ति—क्रोध निग्रह।
२. मुक्ति—लोभ निग्रह।
३. आर्जव—माया निग्रह।
४. मार्दव—मान निग्रह।
५. लाघव—उपकरणों की अल्पता, ऋद्धि, रस और सात—इन तीनों गौरवों का त्याग।
६. सत्य—काय-ऋजुता, भाव-ऋजुता, भाषा-ऋजुता और अविसंवादन योग—कथनी-करनी की समानता।
७. संयम—हिंसा आदि की निवृत्ति।
८. तप—बारह प्रकार की तपस्या।
९. त्याग—विसर्जन।
१०. ब्रह्मचर्यवास—कामभोग-विरति।

हरिभद्रसूरी ने आवश्यकवृत्ति में श्रमण-धर्म के दस प्रकार ये माने हैं—क्षान्ति, मार्दव, आर्जव, मुक्ति, तप, संयम, सत्य, शौच, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य।[२] उन्होंने मतान्तर का उल्लेख भी किया है। उसके अनुसार दस धर्म ये हैं—क्षान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, तप, संयम, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्य।[३]

विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं, १०/१६ का टिप्पण नं० ७, पृष्ठ ९५९-९६१।

२. चित्त की समाधि के स्थान (हेतु) (चित्तसमाहिट्ठाणा)

समाधि शब्द के अनेक अर्थ हैं। दशवैकालिक के वृत्तिकार हरिभद्रसूरी ने इसके तीन अर्थ किए हैं—हित, सुख और स्वास्थ्य।[४] अगस्त्यसिंह स्थविर ने दशवैकालिक चूर्णि में समाधि का अर्थ गुणों का स्थिरीकरण या स्थापन किया है।[५]

चित्त की समाधि का अर्थ है—मन की समाधि, मन का समाधान, मन की प्रशान्तता।[६] स्थान शब्द के दो अर्थ हैं—आश्रय अथवा भेद।[७]

प्रस्तुत आलापक में चित्त समाधि के दस स्थान निर्दिष्ट किए हैं। उनमें कुछेक बहुत स्पष्ट हैं। जो अस्पष्ट हैं उनकी व्याख्या इस प्रकार है—

१. धर्मचिन्ता—समवायांग के वृत्तिकार ने इस पद के तीन अर्थ किए हैं—
   १. पदार्थों के स्वभाव की अनुप्रेक्षा।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र २८२, २८३।

२. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ १०४:
खंती य मद्दवज्जव मुत्ती तव संजमे य बोद्धव्वे।
सच्चं सोयं आकिंचणं च बंभं च जइधम्मो॥

३. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृ० १०४:
.... अन्ये त्वेवं वदन्ति
खंती मुत्ती अज्जव मद्दव तह लाघवे तवे चेव।
संयम चियागऽकिंचण बोद्धव्वे बंभचेरे य॥

४. हारिभद्रीयावृत्ति (दसवैकालिक), पत्र २५६:
समाधानं समाधिः—परमार्थत आत्मनो हितं सुखं स्वास्थ्यम्।

५. अगस्त्यचूर्णि।

६. समवायांगवृत्ति, पत्र १७:
चित्तस्य—मनसः समाधिः—समाधानं प्रशान्तता।

७. समवायांगवृत्ति, पत्र १७:
स्थानानि—आश्रया भेदा वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सर्वज्ञभाषित धर्म ही प्रधान है, इस प्रकार का चिन्तन करना।

३. धर्म के ज्ञान का कारणभूत चिन्तन।

असमुप्पण्णपुव्वा—जो अनादि-अतीत काल में कभी उत्पन्न नहीं हुई, वैसी धर्मचिन्ता के उत्पन्न होने पर अर्द्धपुद्गल परावर्त काल की सीमा में उस व्यक्ति का मोक्ष अवश्यंभावी हो जाता है। ऐसी धर्मचिन्ता से व्यक्ति का मन समाहित हो जाता है और वह जीव आदि के यथार्थ स्वरूप को जानकर, परिहीयकर्म का परिहार कर अपना कल्याण साध लेता है।

२. स्वप्न-दर्शन—इसका सामान्य अर्थ है—नींद में विभिन्न प्रकार के संवेदन करना। वही स्वप्न-दर्शन चित्त समाधि का हेतु बनता है जो यथार्थग्राही होता है, जो कल्याण-प्राप्ति का सूचक होता है। जैसे भगवान् महावीर को अस्थिकग्राम में स्वप्न-दर्शन हुआ था। भगवान् वहां शूलपाणियक्ष के मंदिर में रहे। शूलपाणियक्ष ने भगवान् को रात्रि के चारों प्रहर (कुछ समय कम) तक कष्ट दिए। रात्रि की अंतिम बेला में भगवान् को कुछ नींद आई। तब उन्होंने दस स्वप्न देखे। ये दसों स्वप्न यथार्थ थे और ये भावी कल्याण के सूचक थे। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को यथार्थ स्वप्न-दर्शन होता है वह भावी कल्याण की रेखाएं जानकर चित्त समाधि को प्राप्त हो जाता है।

३. संज्ञीज्ञान—प्रस्तुत प्रकरण में इसका अर्थ है—जातिस्मृति, पूर्वजन्मज्ञान। संज्ञाओं के अनेक वर्गीकरण हैं। उनमें एक वर्गीकरण के अनुसार संज्ञाएं तीन हैं—

१. हेतुवादोपदेशिकी।

२. दृष्टिवाद—सम्यक् दृष्टि।

३. दीर्घकालिकी।

ये तीनों ज्ञानात्मक हैं। ये क्रमशः विकलेन्द्रिय जीवों के, सम्यग्दृष्टि वाले जीवों के तथा समनस्क जीवों के होती हैं। वृत्तिकार का अभिप्राय है कि प्रस्तुत प्रकरण में दीर्घकालिकी संज्ञा ही ग्राह्य है। वह जिसके होती है वह समनस्क होता है, और उसका ज्ञान संज्ञीज्ञान कहलाता है। यह सामान्य ज्ञान का वाचक है, परन्तु सूत्र की संगति के लिए संज्ञीज्ञान को जातिस्मृति ज्ञान ही मानना होगा।[1]

जातिस्मृति से पूर्वभवों का ज्ञान होने पर व्यक्ति में संवेग की वृद्धि हो सकती है और उससे उसे चित्त-समाधि प्राप्त होती है।[2]

४. देव दर्शन—यह भी समाधि का कारण बनता है। देव अमुक-अमुक साधक के गुणों से आकृष्ट होकर उसे दर्शन देते हैं, उसके सामने प्रकट होते हैं। वे अपनी दिव्य देवऋद्धि—मुख्य देव परिवार आदि को, दिव्य देवद्युति—विशिष्ट शरीर तथा आभूषणों आदि की दीप्ति को तथा दिव्य देवानुभाव—उत्कृष्ट वैक्रिय आदि करने के सामर्थ्य को उस साधक को दिखाने के लिए प्रगट होते हैं। उन देवों की ऋद्धि, द्युति और अनुभाव को देखकर साधक के मन में आगमों के प्रति दृढ़ श्रद्धा पैदा होती है और धर्म के प्रति बहुमान—आन्तरिक अनुराग उत्पन्न होता है। इससे चित्त को समाधान प्राप्त होता है।

५, ६, ७. इसी प्रकार विशिष्ट अवधिज्ञान, अवधिदर्शन और मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होने पर उसका चित्त समाहित और शांत हो जाता है विकल्प नष्ट हो जाते हैं।

८. केवलज्ञान—यह समाधि का ही एक भेद है। इसलिए इसे समाधि का हेतुभूत माना है। यहां केवली के चित्त का अर्थ है—चैतन्य। केवलज्ञान इन्द्रिय और मानसिक ज्ञान से अतीत होता है। वह निरपेक्ष ज्ञान है। वह चैतन्य का सम्पूर्ण जागरण है। वही चित्त समाधि है। यहां कार्य में कारण का उपचार कर केवलज्ञान को चित्त समाधि का हेतु माना है।

१०. केवलिमरण—यह सर्वोत्तम समाधि का स्थान है। केवलिमरण मरनेवाला सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत हो जाता है।[3]

दशाश्रुतस्कंध (दशा ५) में दस चित्त समाधि स्थानों का उल्लेख है। वहां संज्ञीजातिस्मरण दूसरा और स्वप्न-दर्शन तीसरा चित्तसमाधि-स्थान है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १७:
सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा सा च यद्यपि हेतुवाददृष्टिवाददीर्घकालिकोपदेशभेदेन क्रमेण विकलेन्द्रियसम्यग्दृष्टिसमनस्कसम्बन्धितत्वात्त्रिधा भवति तथापीह दीर्घकालिकोपदेशसञ्ज्ञा ग्राह्येति, सा यस्यास्ति स सञ्ज्ञीसमनस्कस्तस्य ज्ञानं सञ्ज्ञिज्ञानं, तच्चेहाधिकृतसूत्राप्यथानुपपत्तेर्जातिस्मरणमेव।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र १७:
स्मृतपूर्वभवस्य च संवेगात् समाधिरुत्पद्यते।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र १७-१८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. उससे वह····· जीवों के (अंतो मणुस्सखेत्ते······पज्जत्तगाणं)

अंगसुत्ताणि, भाग १, पृष्ठ ८४० में संख्याङ्क ६ पादटिप्पण दिया हुआ है। वह इस प्रकार है—जाव मणोगए (क, ख, ग), वृत्तौ 'जाव' शब्द नास्ति व्याख्यातः। नावश्यकोपि प्रतिभाति, तेन न स्वीकृतः। उस समय तक हमें 'जाव' पद द्वारा संकेतित पाठ उपलब्ध नहीं हुआ था। अब दशाश्रुतस्कंध (५/७) में वह पाठ उपलब्ध हुआ है और उसे हमने मूलपाठ में स्वीकार किया है। 'जाव' पद के द्वारा संकेतित पाठ यह है—**'अंतो मणुस्सखेत्ते अड्ढातिज्जेसु दीवसमुद्देसु सण्णीणं पंचेंदियाणं पज्जत्तगाणं'।**

४. सूत्र ३ :

मिलाएं—ठाणं, १०/२६।

५. सूत्र ४ :

मिलाएं—ठाणं १०/७६।

६. सूत्र ५ :

मिलाएं—ठाणं १०/८०।

७. ज्ञानवृद्धि करने वाले (नाणविद्धिकरा)

प्रस्तुत आलापक में ज्ञान की वृद्धि करने वाले दस नक्षत्रों का उल्लेख है। ज्ञान की वृद्धि ज्ञानावरण कर्म के क्षय, क्षयोपशम भाव से सम्बन्धित है। आचार्यों की मान्यता है कि कर्मों के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम—ये सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के आधार पर होते हैं। कर्मों के सफल या विपल होने में इन सभी तत्त्वों का प्रभाव होता है।

जब चन्द्रमा की युति इन नक्षत्रों से होती है तब ये नक्षत्र ज्ञान की आराधना के हेतुभूत बनते हैं। इन नक्षत्रों के योग में ज्ञान सीखने या ज्ञान देने की प्रवृत्ति होती है तो ज्ञान की समृद्धि होती है। उस समय ज्ञान अविघ्नतया अधीत होता है, श्रुत होता है, व्याख्यात होता है और धारणा में अविचल बन जाता है। विशिष्ट काल ज्ञान की सम्पन्नता में हेतुभूत बनता है।[1] तुलना—ठाणं १०/१७०।

८. दस प्रकार के वृक्ष (दसविधा रुक्खा)

मनुष्यों के दो प्रकार हैं—

१. अकर्मभूमिज मनुष्य—यौगलिक मनुष्य।

२. कर्मभूमिज मनुष्य—शिल्पकला आदि कर्म करने वाले मनुष्य।

कर्मभूमिज मनुष्य अपने जीवन की आवश्यकताएं कर्म, शिल्प, विद्या आदि के द्वारा पूरी करते हैं। अकर्मभूमिज मनुष्यों की आवश्यकताएं अत्यल्प होती हैं और उनकी पूर्ति वृक्षों से हो जाती है।

प्रस्तुत आलापक में उपयोग में आने वाले अर्थात् आवश्यकता की पूर्ति करने वाले दस प्रकार के वृक्षों का उल्लेख है। स्थानांग १०/१४२ में भी इन्हीं दस वृक्षों का उल्लेख है। वहां इनका उल्लेख सुषम-सुषमा काल के वृक्षों के रूप में हुआ है और यहां अकर्मभूमिज मनुष्यों के उपभोग में आनेवाले वृक्षों के रूप में हुआ है। यहां शब्द भेद है, अर्थभेद नहीं।

१. मत्तांगद (मदांगक)—मत्त होने का हेतु है मदिरा। मदिरा देने वाले अर्थात् ऐसे वृक्ष जिनसे मादक रस झरता हो।

२. भृतांग—भृत का अर्थ है भरना और अंग का अर्थ है—कारण। भृतांग अर्थात् भाजन। क्योंकि भाजन के बिना भरणक्रिया नहीं होती। अतः यहां उपलक्षण से भाजन गृहीत है। प्राकृत में भृतांग को "भिंग" कहा गया है।

---

१. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६८:

एतन्नक्षत्रयुक्ते चन्द्रमसि सति ज्ञानस्य—श्रुतज्ञानस्योद्देशादिर्यदि क्रियते तदा ज्ञानं समृद्धिमुपयाति—अविघ्नेनाधीयते श्रूयते व्याख्यायते धार्यते वेति, भवति च कालविशेषस्तथाविधकार्येषु कारणं क्षयोपशमादि हेतुत्वात्तस्य, यदाह—

'उदयक्खयखओवसमोवसमा जं च कम्मणो भणिया।
दव्वं खेत्तं कालं भवं च भावं च संपप्प॥'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. त्रुटितांग—अनेक प्रकार की संगीत ध्वनि करने वाले वृक्ष ।

४. दीपांग—प्रकाश करने वाले।

५. ज्योतिअंग—ज्योति का अर्थ है—अग्नि। सुषम-सुषमा काल में अग्नि नहीं होती, अतः अग्नि की भांति सौम्य प्रकाश करने वाले वृक्ष ज्योतिअंग कहलाते हैं।

६. चित्रांग—विवक्षा के अनुसार अनेक प्रकार की मालाओं के हेतुभूत वृक्ष ।

७. चित्ररस—विविध प्रकार के मनोज्ञ और मधुर रस देने वाले वृक्ष । इनसे भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है।

८. मणिअंग—मणिमय आभरणों के हेतुभूत वृक्ष ।

९. गेहाकार—गृह के आकार वाले वृक्ष। इनसे आवास की आवश्यकता पूरी हो जाती है।

१०. अनग्न—नग्नत्व को ढकने के लिए उपयोगी वृक्ष ।[1]

कल्पवृक्षों के संबंध में यही सामान्य या रूढ धारणा रही है कि कल्पवृक्ष मन-इच्छित वस्तुओं की संपूर्ति करते हैं। कल्पना करने मात्र से वे पदार्थ प्रस्तुत हो जाते हैं। यह भी मान्यता रही है कि यौगलिक परंपरा के साथ-साथ ये कल्पवृक्ष भी लुप्त हो गए।

सर्वप्रथम इस रूढ मान्यता का कोई पुष्ट आधार नहीं है। समवायांग और स्थानांग में इन वृक्षों के उल्लेख हैं। वहां वृत्तिकार अभयदेव सूरी बहुत स्पष्ट हैं। उन्होंने इन वृक्षों को यौगलिकों की अल्प आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन मात्र माना है। यौगलिक मनुष्यों की आवश्यकताएं बहुत कम थीं और वे सब इन वृक्षों से सहजतया पूरी हो जाती थीं। इसलिए इन्हें कल्पवृक्ष कह दिया। इन विभिन्न प्रकार के वृक्षों के भिन्न-भिन्न प्रयोग होते थे, परन्तु ऐसा नहीं था कि किसी कल्पवृक्ष के नीचे खड़े होकर सप्तभौम की कल्पना करने मात्र से सप्तभौम प्रासाद तैयार हो जाता अथवा खीर-पूरी की इच्छा करने मात्र से वह मिल जाता। ये सारी बातें उपचार से कह दी जाती हैं।

भारतीय साहित्य में इच्छापूर्ति के साधन स्वरूप तीन चीजें बहुचर्चित हैं—कामधेनु, चिन्तामणि और कल्पवृक्ष। कामना करने मात्र से, चिन्तन करने मात्र से और कल्पना करने मात्र से वस्तु की प्राप्ति हो जाना क्रमशः इन तीनों का कार्य माना जाता है। वास्तव में तीनों एक हैं और आवश्यकता पूर्ति के जो-जो साधन हैं वे सब इनके वाचक बन जाते हैं।

---

१ स्थानांगवृत्ति, पत्र ४६० :

१ मत्तंगेसु य मज्जं, भायणाणि भिंगेसु।
तुडियंगेसु य संगततुडियाइं बहुप्पगाराइं ॥

२: दीवसिहाजोइसनामया य एए करिति उज्जोयं।
चित्तंगेसु य मल्लं, चित्तरसा भोयणट्ठाए ॥

३ मणियंगेसु य भूषणवराइं, भवणाइं भवणरुक्खेसु।
आइन्नेसु य धणियं वत्थाइं बहुप्पगाराइं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११
एक्कारसमो समवाओ : ग्यारहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एक्कारस उवासगपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दंसणसावए, कयव्वयकम्मे, सामाइअकडे, पोसहोववासनिरए, दिया बंभयारी रत्ति परिमाणकडे, दिआवि राओवि बंभयारी असिणाई वियडभोई मोलिकडे, सचित्त-परिण्णाए, आरंभपरिण्णाए, पेसपरिण्णाए, उद्दिट्ठभत्तपरिण्णाए, समणभूए यावि भवइ समणाउसो !	एकादश उपासकप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दर्शनश्रावकः, कृतव्रतकर्मा, कृतसामायिकः, पोषधोपवासनिरतः, दिवा ब्रह्मचारी रात्रौ कृतपरिमाणः, दिवापि रात्रावपि ब्रह्मचारी अस्नायी विकटभोजी कृतमौलिः, परिज्ञातसचित्तः, परिज्ञातारम्भः, परिज्ञातप्रेष्य, परिज्ञात-उद्दिष्टभक्तः, श्रमणभूतः चापि भवति, श्रमण ! आयुष्मन् !	१. उपासक की प्रतिमाएं ग्यारह हैं,[1] जैसे—१. दर्शनश्रावक। २. कृतव्रत-कर्म। ३. कृतसामायिक। ४. पोषधोप-वासनिरत। ५. दिन में ब्रह्मचारी और रात्रि में अब्रह्मचर्य का परिमाण करने वाला। ६. दिन और रात में ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला, स्नान न करने वाला, दिन में भोजन करने वाला और कच्छ न बांधने वाला। ७. सचित्त-परित्यागी। ८. आरम्भ-परित्यागी। ९. प्रेष्य-परित्यागी। १०. उद्दिष्ट-भक्त-परित्यागी। ११. श्रमणभूत। आयुष्मन् श्रमणो ! उपासक ग्यारह प्रतिमाओं से सम्पन्न होता है।
२. लोगंताओ णं एक्कारस एक्कारे जोयणसए अबाहाए जोइसंते पण्णत्ते।	लोकान्तात् एकादश एकादश योजनशतं अबाधया ज्योतिषान्तं प्रज्ञप्तम्।	२. लोकान्त और ज्योतिष्-चक्र के पर्यन्त (छोर) में ११११ योजन का अंतर है।
३. जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारस एक्कवीसे जोयणसए अबाहाए जोइसे चारं चरइ।	जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य एकादश एकविंशतिं योजनशतं अबाधया ज्योतिषं चारं चरति।	३. जम्बूद्वीप के मन्दर पर्वत के ११२१ योजन के अन्तर से ज्योतिष्-चक्र परि-भ्रमण करता है।
४. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था, तं जहा-इंदभूती अग्गिभूती वायुभूति विअत्ते सुहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाया मेतज्जे पभासे।	श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य एकादश गणधरा आसन्, तद्यथा—इन्द्रभूतिः अग्निभूतिः वायुभूतिः व्यक्तः सुधर्मा मण्डितः मौर्यपुत्रः अकम्पितः अचल-भ्राता मेतार्यः प्रभासः।	४. श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे,[2] जैसे—इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडित, मौर्य-पुत्र, अकंपित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास।
५. मूले नक्खत्ते एक्कारसतारे पण्णत्ते।	मूलं नक्षत्रं एकादशतारं प्रज्ञप्तम्।	५. मूल नक्षत्र के तारे ग्यारह हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ हेट्ठिमगेविज्जयाणं देवाणं एक्कारसुत्तरं गेविज्जविमाणसतं भवइत्ति मक्खायं।

अधस्तनग्रैवेयकाणां देवानां एकादशोत्तरं ग्रैवेयविमानशतं भवतीति आख्यातम्।

६. निचले ग्रैवेयक देवों के १११ ग्रैवेयक विमान हैं—ऐसा कहा गया है।

७. मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभागपरिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

मन्दरः पर्वतः धरणीतलात् शिखरतले एकादशभागपरिहीणः उच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

७. मन्दर पर्वत की धरणीतल से शिखर तक की चौड़ाई ऊपर से ऊपर ग्यारह भाग हीन होती चली जाती है।[१]

८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है।

६ पंचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६. पांचवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिको की स्थिति ग्यारह सागरोपम की है।

१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानामस्ति एकेषां एकादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है।

११. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां एकादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह पल्योपम की है।

१२. लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे अस्ति एकेषां देवानां एकादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. लान्तक कल्प के कुछ देवों की स्थिति ग्यारह सागरोपम की है।

१३. जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं (उक्कोसेणं?) एक्कारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा ब्रह्म सुब्रह्म ब्रह्मावर्तं ब्रह्मप्रभं ब्रह्मकान्तं ब्रह्मवर्णं ब्रह्मलेश्यं ब्रह्मध्वजं ब्रह्मश्रृङ्गं ब्रह्मसृष्टं ब्रह्मकूटं ब्रह्मोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां (उत्कर्षेण?) एकादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. ब्रह्म, सुब्रह्म, ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मप्रभ, ब्रह्मकान्त, ब्रह्मवर्ण, ब्रह्मलेश्य, ब्रह्मध्वज, ब्रह्मश्रृङ्ग, ब्रह्मसृष्ट, ब्रह्मकूट और ब्रह्मोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की (उत्कृष्ट?) स्थिति ग्यारह सागरोपम की है।

१४. ते णं देवा एक्कारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा एकादशानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१४. वे देव ग्यारह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१५. तेसि णं देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां एकादशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१५. उन देवों के ग्यारह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होतीहै।

१६. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एक्कारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकादशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१६. कुछ भव-सिद्धिक जीव ग्यारह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. प्रतिमाएं (पडिमाओ)

प्रतिमा का अर्थ है अभिग्रह—अमुक प्रकार की प्रतिज्ञा या संकल्प। यहां प्रतिमा और प्रतिमावान् व्यक्ति का अभेदोपचार कर प्रतिमाओं का प्रतिमावान् व्यक्ति के रूप में निर्देश किया गया है। प्रस्तुत समवाय में उनके नामों का उल्लेख मात्र है। उनका विवरण दशाश्रुतस्कन्ध (दशा ६) के आधार पर इस प्रकार है—

१. **दर्शनश्रावक**—यह पहली प्रतिमा है। इसका कालमान एक मास का है। इसमें सर्वधर्म विषयक रुचि होती है, किन्तु अनेक शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि का आत्मा में प्रतिष्ठापन नहीं होता है। केवल सम्यग्-दर्शन उपलब्ध होता है।

२. **कृतव्रतकर्म**—यह दूसरी प्रतिमा है। इसका कालमान दो मास का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धि के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक अनेक शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि का सम्यक् प्रतिष्ठापन करता है, किन्तु वह सामायिक और देशावकाशिक का अनुपालन नहीं करता।

३. **कृतसामायिक**—यह तीसरी प्रतिमा है। इसका कालमान तीन महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक प्रातः और सायंकाल सामायिक और देशावकाशिक का पालन करता है, परन्तु पर्व-दिनों में प्रतिपूर्ण पोषधोपवास नहीं करता।

४. **पोषधोपवासनिरत**—यह चौथी प्रतिमा है। इसका कालमान चार महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पौर्णमासी आदि पर्व-दिनों में प्रतिपूर्ण पोषध करता है परन्तु 'एकरात्रिकी उपासक प्रतिमा' का अनुगमन नहीं करता।

५. **दिन में ब्रह्मचारी···**—यह पांचवीं प्रतिमा है। इसका कालमान पांच महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक "एकरात्रिकी उपासक प्रतिमा" का सम्यक् अनुपालन करता है तथा स्नान नहीं करता, दिवाभोजी होता है, धोती के दोनों अंचलों को कटिभाग में टांक लेता है—नीचे से नहीं बांधता, दिवा ब्रह्मचारी और रात्री में अब्रह्मचर्य का परिमाण करता है।

इस दशाश्रुतस्कन्धगत विवरण के अनुसार प्रस्तुत प्रतिमा का मुख्य अंग 'एकरात्रिकी उपासक प्रतिमा' है। किन्तु समवायांग में वह प्राप्त नहीं है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने इसकी चर्चा की है।[1]

६. **दिन और रात में ब्रह्मचारी···**—यह छठी प्रतिमा है। इसका कालमान छह महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक दिन और रात में ब्रह्मचारी रहता है, किन्तु सचित्त का परित्याग नहीं करता।

७. **सचित्त-परित्यागी**—यह सातवीं प्रतिमा है। इसका कालमान सात महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक सम्पूर्ण सचित्त का परित्याग करता है, किन्तु आरम्भ का परित्याग नहीं करता।

८. **आरम्भ-परित्यागी**—यह आठवीं प्रतिमा है। इसका कालमान आठ महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक आरम्भ—हिंसा का परित्याग करता है, किन्तु प्रेष्यारम्भ का परित्याग नहीं करता।

९. **प्रेष्य-परित्यागी**—यह नौवीं प्रतिमा है। इसका कालमान नौ महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक प्रेष्य आदि से हिंसा करवाने का परित्याग करता है, किन्तु उद्दिष्टभक्त का परित्याग नहीं करता।

१०. **उद्दिष्टभक्त-परित्यागी**—यह दसवीं प्रतिमा है। इसका कालमान दस महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक उद्दिष्ट भोजन का परित्याग करता है। वह शिर को क्षुर से मुंडवा लेता है या चोटी रख लेता है। घर के किसी विषय में पूछे जाने पर जानता हो तो कहता है—'मैं जानता हूं' और न जानता हो तो कहता है—'मैं नहीं जानता।'

११. **श्रमण-भूत**—यह ग्यारहवीं प्रतिमा है। इसका कालमान ग्यारह महीनों का है। इसमें पूर्वोक्त उपलब्धियों के अतिरिक्त प्रतिमाधारी उपासक शिर को क्षुर से मुंडवा लेता है या लुंचन करता है। वह साधु का वेश धारण कर ईर्यासमिति

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १९:

पञ्चमीप्रतिमायामष्टम्यादिषु पर्वस्वेकरात्रिकप्रतिमाकारी भवति, एतदर्थं च सूत्रमधिकृतसूत्रपुस्तकेषु न दृश्यते, दशादिषु पुनरुपलभ्यते इति तदर्थं उपदर्शितः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि साधु-धर्मों का अनुपालन करता हुआ विचरण करता है। वह भिक्षा के लिए गृहस्थों के घरों में प्रवेश कर 'प्रतिमा-सम्पन्न श्रमणोपासक को भिक्षा दो'—ऐसा कहता है। यदि कोई उसे पूछे कि तुम कौन हो? तो वह यह कहता है कि मैं प्रतिमा-सम्पन्न श्रमणोपासक हूं। समवायांग के वृत्तिकार ने यहां 'पुस्तकान्तरे त्वेवं वाचना' —इस रूप में मतान्तरों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार प्रतिमाओं का क्रम यह है[1]—

१. दर्शनश्रावक	७. दिवा ब्रह्मचारी तथा रात्री में परिमाणकृत
२. कृतव्रतकर्म	८. दिन और रात—दोनों काल में ब्रह्मचारी, स्नान-वर्जन तथा केश, रोम और नखों का अपनयन करना
३. कृतसामायिक	
४. पोषधोपवासनिरत	९. आरम्भ और प्रेषण का परित्याग
५. रात्रिभक्त-परित्याग	१०. उद्दिष्टभक्त वर्जन
६. सचित्त-परित्याग	११. श्रमणभूत।

कहीं-कहीं आरम्भ-परित्याग को नौवीं, प्रेष्यारम्भ-परित्याग को दसवीं और उद्दिष्टभक्तवर्जन तथा श्रमणभूत को ग्यारहवीं प्रतिमा माना गया है।

प्रवचनसारोद्धार में प्रतिमाओं का विशद विवेचन है।[2] उसके वृत्तिकार का कथन है कि आवश्यक चूर्णि में ये प्रतिमाएं कुछ क्रम-परिवर्तन के साथ प्राप्त होती हैं। उसमें रात्रिभक्त-प्रतिज्ञा पांचवीं, सचित्ताहारप्रतिज्ञा छठीं, दिवा ब्रह्मचारी और रात्री में अब्रह्मचर्य का परित्याग करना सातवीं, दिन और रात में ब्रह्मचारी रहना, स्नान न करना तथा केश, श्मश्रु, रोम और नखों का अपनयन करना आठवीं, सारम्भ प्रतिज्ञा नौवीं, प्रेष्यारम्भ प्रतिज्ञा दसवीं और उद्दिष्ट वर्जन तथा श्रमणभूत ग्यारहवीं प्रतिज्ञा है।[3]

दिगम्बर मान्यता के अनुसार प्रतिमाओं का क्रम यह है[4]—

१. दर्शन	५. सचित्त-त्याग	९. परिग्रह-त्याग
२. व्रत	६. रात्रिभुक्ति-त्याग	१०. अनुमति-त्याग
३. सामायिक	७. ब्रह्मचर्य	११. उद्दिष्ट-त्याग
४. पोषध	८. आरम्भ-त्याग	

वसुनन्दि श्रावकाचार की प्रस्तावना (पृष्ठ ५४) में पण्डित हीरालालजी जैन ने ग्यारह प्रतिमाओं का आधार चार शिक्षाव्रतों को माना है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह अपूर्ण लगता है।

दशाश्रुतस्कन्ध के अनुसार इन प्रतिमाओं का आधार सम्यग्-दर्शन और प्रथम ग्यारह व्रत हैं। प्रथम प्रतिमा का आधार सम्यग्-दर्शन है। दूसरी प्रतिमा का आधार पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत हैं। तीसरी प्रतिमा का आधार सामायिक और देशावकाशिक (प्रथम दो शिक्षाव्रत) हैं। चौथी प्रतिमा का आधार प्रतिपूर्ण पोषधोपवास है। शेष प्रतिमाओं में इन्हीं व्रतों का उत्तरोत्तर विकास किया गया है।

दिगम्बर आचार्यों ने ग्यारह प्रतिमाधारियों को तीन भागों में विभक्त किया है—गृहस्थ, वर्णी या ब्रह्मचारी तथा भिक्षुक। प्रारम्भ की छह प्रतिमाओं को धारण करने वाले गृहस्थ, सातवीं, आठवीं और नौवीं प्रतिमाओं को धारण करने वाले वर्णी और अन्तिम दो प्रतिमाओं को धारण करने वाले भिक्षुक कहलाते हैं।[5]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र २० :
पुस्तकान्तरे त्वेवं वाचना—दंसणसावए प्रथमा, कयवयकम्मे द्वितीया, कयसामाइए तृतीया, पोसहोववासनिरए चतुर्थी, राइभत्तपरिण्णाए पंचमी, सचित्तपरिण्णाए षष्ठी, दियाबंभयारी राम्रो परिमाणकडे सप्तमी, दियावि राम्रोवि बंभयारी असिणाणए यावि भवति वोसट्ठकेसरोमनहे अष्टमी, आरंभपरिण्णाए पेसणपरिण्णाए नवमी, उदिट्ठभत्तवज्जए दशमी, समणभूए यावि भवइत्ति समणाउसो एकादशीति. क्वचित्तु आरम्भपरिज्ञात इति नवमी, प्रेष्यारम्भपरिज्ञात इति दशमी, उद्दिष्टभक्तवर्जक: श्रमणभूतश्चैकादशीति।

२. प्रवचनसारोद्धार, गाथा ९८०-९३३।

३. वही, वृत्ति, पत्र २९६।

४. वसुनन्दि श्रावकाचार, गाथा ४ :
दंसणवय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह, अणुमण उद्दिट्ठ देसविरयम्मि॥

५. उपासकाध्ययन, कल्प ४४, श्लोक ८५६ :
षडत्र गृहिणो ज्ञेयास्त्रय: स्युर्ब्रह्मचारिण:।
भिक्षुकौ द्वौ तु निर्दिष्टौ, तत: स्यात् सर्वतो यति:॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ आचार्यों ने इन्हें क्रमशः जघन्य, मध्यम और उत्तम श्रावक भी कहा है।[1]

जैन-धर्म में गृहस्थ के लिए चार श्रेणियां निश्चित की गई हैं—भद्रक, सम्यक्-दर्शनी, व्रती, प्रतिमाधारी। भद्रक श्रावक वह होता है, जो केवल धर्म के प्रति अनुराग रखता है, न वह सम्यक्-दर्शनी होता है और न व्रती। जब उसका अनुराग विकसित होता है, तब वह सम्यक्-दर्शनी होता है। यह अवस्था उसके धर्मानुराग को दृढ़ करती है। तत्पश्चात् वह पांच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतों को स्वीकार कर बारह व्रती श्रावक बनता है। जब वह बारह व्रती के रूप में कई वर्षों तक साधना कर चुकता है और जब उसके मन में साधना की तीव्र भावना उत्पन्न होती है, तब वह गृहस्थ की प्रवृत्तियों से निवृत्त होकर प्रतिमाओं को स्वीकार करता है। प्रायः वे लोग इनका स्वीकरण करते हैं—

१. जो अपने आपको श्रमण बनने के योग्य नहीं पाते, किन्तु जीवन के अन्तिमकाल में श्रमण-जैसा जीवन बिताने के इच्छुक होते हैं।
२. जो श्रमण-जीवन बिताने का पूर्वाभ्यास करते हैं।

आनन्द श्रावक भगवान् का प्रमुख उपासक था। उसने चौदह वर्षों तक बारहव्रती का जीवन बिताया। पन्द्रहवें वर्ष के अन्तराल में एक दिन उसके मन में धर्म-चिन्ता उत्पन्न हुई और वह आत्मा या सत्य की खोज तथा उसके लिए समर्पित जीवन बिताने के लिए कृतसंकल्प हुआ। दूसरे दिन उसने अपने ज्येष्ठपुत्र को घर का भार सौंपकर भगवान् महावीर के पास उपासक की ग्यारह प्रतिमाएं स्वीकार कर लीं। इनके प्रतिपूर्ण पालन में साढ़े पांच वर्ष लगे। तत्पश्चात् उसने अपश्चिम-मारणांतिक-संलेखना की और अन्त में एक मास का अनशन किया।

उपासक आनन्द के इस वर्णन से यही फलित होता है कि उपासक की ग्यारह प्रतिमाओं का स्वीकरण जीवन के अन्तिम भाग में किया जाता था। उसकी पूर्वभूमिका के रूप में वर्षों तक बारह व्रतों का पालन करना होता था। और ये प्रतिमाएं भावी अनशन के लिए भी पृष्ठभूमि बनती थीं।

ऐसे उल्लेख भी प्राप्त होते हैं कि ये प्रतिमाएं जीवन में अनेक बार स्वीकार की जाती थीं।

यद्यपि प्रस्तुत सूत्र में इन प्रतिमाओं का कालमान निर्दिष्ट नहीं है फिर भी आनन्द श्रावक के वर्णन से यह फलित होता है कि इनकी संपूर्ण साधना में छासठ मास लगते थे। पहली प्रतिमा के लिए एक मास, दूसरी के लिए दो मास, इसी प्रकार क्रमशः प्रतिमा की संख्या के अनुपात से मास की वृद्धि होती है। आनन्द ने बारह-व्रती के रूप में चौदह वर्ष बिताए और बीस वर्ष बीतने पर अपश्चिम-मारणांतिक-संलेखना की। इसके अन्तराल में उसने ग्यारह प्रतिमाओं का वहन किया।

यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बारह-व्रती श्रावक जब सम्यक्-दर्शनी और व्रती होता ही है तब फिर पहली और दूसरी प्रतिमा में सम्यक्-दर्शनी और व्रती बनने की बात क्यों कही गई है? इसका समाधान यही है कि बारह व्रत स-अपवाद होते हैं, जबकि प्रतिमाओं में कोई अपवाद नहीं होता। दर्शन और व्रत-गत गुणों का यहां निरपवाद परिपालन और उत्तरोत्तर विकास किया जाता है।

२. ग्यारह गणधर [एक्कारस गणहरा]

प्रत्येक तीर्थंकर के गणधर होते हैं। उनकी संख्या एक नहीं है। प्रस्तुत आलापक में महावीर के ग्यारह गणधरों का उल्लेख है। गणधरवाद, आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि, टीका में इनका विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है—

भगवान् महावीर वैशाख शुक्ला एकादशी को मध्यम पावा पहुंचे। वे वहां महासेन उद्यान में ठहरे।[2]

पावा में सोमिल नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। उसे संपन्न करने के लिए ग्यारह यज्ञविद् विद्वान् आए।

इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति—ये तीनों सगे भाई थे। इनका गोत्र था गौतम। ये मगध के गोबर गांव में रहते थे। इनके पांच-पांच सौ शिष्य थे।

---

१. सागारधर्म, अध्ययन ३, श्लोक ३, टिप्पण :
आद्यास्तु षड् जघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनुत्रयः।
शेषौ द्वावुत्तमावुक्तौ, जैनेषु जिनशासने॥
२. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३२४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो विद्वान् कोल्लाग सन्निवेश से आए। एक का नाम था व्यक्त और दूसरे का सुधर्मा। व्यक्त का गोत्र था भारद्वाज और सुधर्मा का गोत्र था अग्नि वैश्यायन। इनके भी पांच-पांच सौ शिष्य थे।

दो विद्वान् मौर्य सन्निवेश से आए। एक का नाम था मंडित और दूसरे का नाम था मौर्यपुत्र। मंडित का गोत्र था वाशिष्ट और मोर्यपुत्र का गोत्र था काश्यप। इनके साढे तीन सौ, साढे तीन सौ शिष्य थे।

अकंपित मिथिला से, अचलभ्राता कौशल से, मेतार्य तुंगिक से और प्रभास राजगृह से आए। इनमें पहले का गोत्र गौतम, दूसरे का हारित और शेष दोनों का कौडिन्य था। इनके तीन-तीन सौ शिष्य थे।

ये ग्यारह विद्वान् और इनके ४४०० शिष्य सोमिल की यज्ञवाटिका में उपस्थित थे।

हजारों लोगों को एक ही दिशा में जाते देख उन सबके मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ। लोकयात्रा का कारण जानकर इन्द्रभूति अपने शिष्यों को साथ ले महावीर को पराजित करने समवशरण में आए।

उन्हें जीव के अस्तित्व के विषय में संदेह था। भगवान् ने उनके प्रश्न को स्वयं सामने ला रखा। इन्द्रभूति सहम गए। उन्हें सर्वथा प्रच्छन्न अपने विचार के प्रकाशन पर अचरज हुआ। उनकी अन्तर्-आत्मा भगवान् के चरणों में झुक गई।

इन्द्रभूति की घटना सुन दूसरे दस पंडितों का क्रम बंध गया। सभी अपनी-अपनी शिष्य-संपदा के साथ भगवान् के समवशरण में आए। उन सबके एक-एक संदेह था—

१. इन्द्रभूति—जीव है या नहीं ?
२. अग्निभूति—कर्म है या नहीं ?
३. वायुभूति—शरीर और जीव एक है या भिन्न ?
४. व्यक्त—पृथ्वी आदि भूत हैं या नहीं ?
५. सुधर्मा—यहां जो जैसा है वह परलोक में भी वैसा होता है या नहीं ?
६. मंडितपुत्र—बन्ध-मोक्ष है या नहीं ?
७. मौर्यपुत्र—देव है या नहीं ?
८. अकम्पित—नरक है या नहीं ?
९. अचलभ्राता—पुण्य ही मात्रा-भेद से सुख-दुःख का कारण बनता है या पाप उससे पृथक् है ?
१०. मेतार्य—आत्मा होने पर भी परलोक है या नहीं ?
११. प्रभास—मोक्ष है या नहीं ?

भगवान् उनके प्रच्छन्न सन्देहों को प्रकाश में लाते गए और वे उनका समाधान पा अपने को समर्पित करते गए। इस प्रकार पहले प्रवचन में ही भगवान् की शिष्य-संपदा समृद्ध हो गई। चवालीस सौ शिष्य बन गए।

भगवान् ने इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् शिष्यों को गणधर पद पर नियुक्त किया।

भगवान् ने श्रमण संघ की सुदृढ़ व्यवस्था की। उन्होंने श्रमण-संघ को ग्यारह या नौ भागों में विभक्त किया। पहले सात गणधर सात गणों के, आठवें तथा नौवें गणधर आठवें गण के तथा दसवें और ग्यारहवें गणधर नौवें गण के प्रमुख थे।

इनमें नौ गणधर भगवान् महावीर के जीवन काल में ही परिनिर्वृत हो गए। शेष दो गणधर इन्द्रभूति (गौतम) और सुधर्मा महावीर के निर्वाण के बाद परिनिर्वृत हुए।[1]

३. ग्यारह भाग हीन (एक्कारसभागपरिहीणे)

इसका तात्पर्य यह है कि मेरु-पर्वत भूमितल पर दस हजार योजन चौड़ा है और ९९ हजार योजन ऊंचा है। वहां से प्रत्येक अंगुल की ऊंचाई पर उसकी चौड़ाई १/११ अंगुल की हानि होती है। इस प्रकार ग्यारह अंगुल की ऊंचाई में एक अंगुल की चौड़ाई कम हो जाती है। इसी न्याय से ग्यारह योजन में एक योजन, ग्यारह हजार योजन में एक हजार योजन तथा ९९ हजार योजन की ऊंचाई पर नौ हजार योजन की चौड़ाई कम हो जाती है। इसलिए शिखर पर मेरु-पर्वत की चौड़ाई एक हजार योजन (१००००—९०००=१०००) रह जाती है।[2]

---

१. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३३४-३३९।
२. समवायांगवृत्ति, पत्र २०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२

बारसमो समवाओ : बारहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—मासिआ भिक्खुपडिमा, दोमासिआ भिक्खुपडिमा, तेमासिआ भिक्खुपडिमा, चाउमासिआ भिक्खुपडिमा, पंचमासिआ भिक्खुपडिमा, छम्मासिआ भिक्खुपडिमा, सत्तमासिआ भिक्खुपडिमा, पढमा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा, दोच्चा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा तच्चा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा, अहोराइया भिक्खुपडिमा, एगराइया भिक्खुपडिमा।	द्वादश भिक्षुप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मासिकी भिक्षुप्रतिमा, द्वैमासिकी भिक्षुप्रतिमा, त्रैमासिकी भिक्षुप्रतिमा, चातुर्मासिकी भिक्षुप्रतिमा, पाञ्चमासिकी भिक्षुप्रतिमा, षाण्मासिकी भिक्षुप्रतिमा, साप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा, प्रथमा सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा, द्वितीया सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा, तृतीया सप्तरात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा, अहोरात्रिकी भिक्षुप्रतिमा, एकरात्रिकी भिक्षुप्रतिमा।	१. भिक्षु-प्रतिमाएं बारह हैं,[1] जैसे— १. एकमासिकी भिक्षु-प्रतिमा। २. द्विमासिकी भिक्षु-प्रतिमा। ३. त्रिमासिकी भिक्षु-प्रतिमा। ४. चतुर्मासिकी भिक्षु-प्रतिमा ५. पंचमासिकी भिक्षु-प्रतिमा। ६. षण्मासिकी भिक्षु-प्रतिमा। ७. सप्तमासिकी भिक्षु-प्रतिमा। ८. प्रथम सात दिन-रात की भिक्षु-प्रतिमा। ९. द्वितीय सात दिन-रात की भिक्षु-प्रतिमा। १०. तृतीय सात दिन-रात की भिक्षु-प्रतिमा। ११. एक दिन-रात की भिक्षु-प्रतिमा। १२. एक रात्रिकी भिक्षु-प्रतिमा।
२. दुवालसविहे संभोगे पण्णत्ते, तं जहा— संगहणी गाहा— १. उवही सुअभत्तपाणे, अंजलीपग्गहेत्ति य। दायणे य निकाए अ, अब्भुट्ठाणेत्ति आवरे॥ २. कितिकम्मस्स य करणे, वेयावच्चकरणे इअ। समोसरणं संनिसेज्जा य, कहाए अ पबंधणे॥	द्वादशविधः संभोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा— संग्रहणी गाथा— १. उपधिः श्रुतं भक्तपानं, अञ्जलिप्रग्रह इति च। दानं च निकाचनं च, अभ्युत्थानमिति चापरम्॥ २. कृतिकर्मणश्च करणे, वैयावृत्त्यकरणेऽपि च। समवसरणं सन्निषद्या च, कथायाश्च प्रबन्धने॥	२. संभोग बारह प्रकार का है[2], जैसे— १. उपधि २. श्रुत ३. भक्त-पान ४. अंजलिप्रग्रह (प्रणाम) ५. दान ६. निकाचन (निमन्त्रण) ७. अभ्युत्थान ८. कृतिकर्मकरण (वन्दना) ९. वैयावृत्त्यकरण (सहयोग-दान) १०. समवसरण (सम्मिलन) ११. संनिषद्या (आसन-विशेष) १२. कथा-प्रबन्ध।
३. दुवालसावत्ते कितिकम्मे पण्णत्ते, [तं जहा— दुओणयं जहाजायं, कितिकम्मं बारसावयं। चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्खमणं॥]	द्वादशावर्तं कृतिकर्म प्रज्ञप्तम्, [तद्यथा— द्व्यवनतं यथाजातं, कृतिकर्म द्वादशावर्त्तम्। चतुःशिरः त्रिगुप्तं च, द्विप्रवेशमेकनिष्क्रमणम्॥]	३. कृतिकर्म[1] के बारह आवर्त्त होते हैं। [जैसे—दो अवनमन, यथाजात, बारह आवर्त्तों वाला कृतिकर्म, चतुःशिर, त्रिगुप्त, द्विप्रवेश और एक निष्क्रमण।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. विजया णं रायहाणी दुवालस जोयणसयसहस्साइं आयाम-विक्खंभेणं पण्णत्ता।	विजया राजधानी द्वादश योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।	४. विजया राजधानी की लम्बाई-चौड़ाई बारह लाख योजन की है।
५. रामे णं बलदेवे दुवालस वाससयाइं सव्वाउयं पालित्ता देवत्तं गए।	रामो बलदेवः द्वादश वर्षशतानि सर्वायुः पालयित्वा देवत्वं गतः।	५. बलदेव राम बारह सौ वर्ष की सम्पूर्ण आयु बिता कर देवगति को प्राप्त हुए।[४]
६. मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिआ मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।	मन्दरस्य पर्वतस्य चूलिका मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।	६. मन्दर पर्वत की चूलिका का मूल भाग बारह योजन चौड़ा है।
७. जंबूदीवस्स णं दीवस्स वेइया मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।	जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य वेदिका मूले द्वादश योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ता।	७. जम्बूद्वीप द्वीप की वेदिका का मूल भाग बारह योजन चौड़ा है।
८. सव्वजहण्णिआ राई दुवालस-मुहुत्तिआ पण्णत्ता।	सर्वजघन्यिका रात्री द्वादशमौहूर्त्तिका प्रज्ञप्ता।	८. सबसे छोटी रात बारह मुहूर्त्त की होती है।[५]
९. सव्वजहण्णिओ दिवसो दुवालस-मुहुत्तिओ पण्णत्तो।	सर्वजघन्यको दिवसो द्वादशमौहूर्त्तिकः प्रज्ञप्तः।	९. सबसे छोटा दिन बारह मुहूर्त्त का होता है।[६]
१०. सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभिअग्गाओ दुवालस जोयणाइं उड्ढं उप्पतिता ईसिपब्भारा नामं पुढवी पण्णत्ता।	सर्वार्थसिद्धस्य महाविमानस्य उपरितनात् स्तूपिकाग्रात् द्वादश योजनानि ऊर्ध्वमुत्पतिता ईषत्प्राग्भारा नाम्नी पृथ्वी प्रज्ञप्ता।	१०. सर्वार्थसिद्ध महाविमान की उपरीवर्ती स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर ईषद्-प्राग्भारा नाम की पृथ्वी है।
११. ईसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—ईसित्ति वा ईसिपब्भारत्ति वा तणूइ वा तणुयतरित्ति वा सिद्धित्ति वा सिद्धालएत्ति वा मुत्तीति वा मुत्तालएत्ति वा बंभेत्ति वा बंभवडेंसएत्ति वा लोकपडिपूरणेत्ति वा लोगग्गचूलिआई वा।	ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ईषदिति वा ईषत्प्राग्भारेति वा तन्वीति वा तनुकतरी इति वा सिद्धिरिति वा सिद्धालय इति वा मुक्तिरिति वा मुक्तालय इति वा ब्रह्मेति वा ब्रह्मावतंसक इति वा लोकप्रतिपूरणा इति वा लोकाग्रचूलिका इति वा।	११. ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम हैं, जैसे—ईषत्, ईषत्प्राग्भारा, तनु, तनुकतर, सिद्धि, सिद्धालय, मुक्ति, मुक्तालय, ब्रह्म, ब्रह्मावतंसक, लोकप्रतिपूरण और लोकाग्रचूलिका।[७]
१२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बारह पल्योपम की है।
१३. पंचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१३. पांचवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बारह सागरोपम की है।
१४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां द्वादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१४. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बारह पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां द्वादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति बारह पल्योपम की है।

१६. लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे अस्ति एकेषां देवानां द्वादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. लान्तककल्प के कुछ देवों की स्थिति बारह सागरोपम की है।

१७. जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडं सुपुंडं महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं बारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा माहेन्द्रं माहेन्द्रध्वजं कम्बुं कम्बुग्रीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुण्ड्रं सुपुण्ड्रं महापुण्ड्रं नरेन्द्रं नरेन्द्रकान्तं नरेन्द्रोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण द्वादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. माहेन्द्र, माहेन्द्रध्वज, कंबु, कंबुग्रीव, पुंख, सुपुंख, महापुंख, पुंड्र, सुपुंड्र, महापुंड्र, नरेन्द्र, नरेन्द्रकान्त और नरेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति बारह सागरोपम की है।

१८. ते णं देवा बारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा द्वादशानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१८. वे देव बारह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१९. तेसि णं देवाणं बारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां द्वादशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१९. उन देवों के बारह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२०. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये द्वादशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२०. कुछ भव-सिद्धिक जीव बारह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. भिक्षु प्रतिमाएं बारह हैं (बारस भिक्खुपडिमाओ)

भिक्षु-प्रतिमाएं उन भिक्षुओं द्वारा आचरित होती हैं, जिनका शारीरिक संहनन सुदृढ़ और श्रुत-ज्ञान विशिष्ट होता है। पंचाशक के अनुसार जो मुनि विशिष्ट संहनन-संपन्न, धृति-संपन्न और शक्ति-संपन्न तथा भावितात्मा होता है, वही गुरु की आज्ञा प्राप्त कर इन प्रतिमाओं को स्वीकार कर सकता है। उसकी न्यूनतम श्रुत-संपदा नौवें पूर्व की तीसरी वस्तु तथा उत्कृष्ट श्रुत-संपदा कुछ न्यून दस पूर्व की होनी चाहिए।[1]

पहली प्रतिमा एक मास की होती है और उसमें मुनि आहार तथा पानी की एक-एक दत्ति लेता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती है। सातवीं प्रतिमा में मुनि आहार तथा पानी की सात-सात दत्तियां लेता है। आठवीं प्रतिमा सात अहोरात्र की होती है। उसमें मुनि उपवास करता है, गांव के बाहर रहता है और उत्तान आदि आसन में स्थित होता है। नौवीं प्रतिमा भी सात अहोरात्र की होती है। उसमें भी उपवास करना, गांव के बाहर रहना तथा उत्कटुक आदि आसन में स्थित रहना होता है। दसवीं प्रतिमा भी आठवीं की तरह है, परन्तु उसमें वीरासन आदि आसनों में स्थित रहना होता है। ग्यारहवीं प्रतिमा दूसरे उपवास में करनी होती है। बारहवीं प्रतिमा तीसरे उपवास में की जाती है। इसमें मुनि की शारीरिक मुद्रा इस प्रकार होती है—प्रलम्बन बाहु, सटे हुए पैर, आगे की ओर कुछ झुका हुआ शरीर तथा अनिमेष नयन।[2]

भगवान् महावीर ने म्लेच्छ प्रदेश दृढ़भूमि के पोलास नामक चैत्य में यह महा-प्रतिमा की थी। उसमें वे एक अहोरात्र तक एक पुद्गल पर दृष्टि टिकाये रहे। उनमें भी वे अचित्त पुद्गल को ही देखते, सचित्त से दृष्टि का संहरण कर लेते थे।[3] उक्त विवेचन के आधार पर प्रतिमाओं का यंत्र निम्न रूप में बनता है—

नाम	कालमान	आहार-पानी का परिमाण	तपस्या	निवास	आसन
एकमासिकी भिक्षु-प्रतिमा	एक मास	एक-एक दत्ति	०	०	०
द्विमासिकी भिक्षु-प्रतिमा	दो मास	दो-दो दत्तियां	०	०	०
त्रिमासिकी भिक्षु-प्रतिमा	तीन मास	तीन-तीन दत्तियां	०	०	०
चतुर्मासिकी-भिक्षु-प्रतिमा	चार मास	चार-चार दत्तियां	०	०	०
पञ्चमासिकी भिक्षु-प्रतिमा	पांच मास	पांच-पांच दत्तियां	०	०	०
षण्मासिकी भिक्षु-प्रतिमा	छह मास	छह-छह दत्तियां	०	०	०
सप्तमासिकी भिक्षु-प्रतिमा	सात मास	सात-सात दत्तियां	०	०	०
आठवीं भिक्षु-प्रतिमा	सात दिन-रात	०	उपवास	गांव के बाहर	उत्तान आदि
नौवीं भिक्षु-प्रतिमा	सात दिन-रात	०	,,	,,	उत्कटुक आदि
दसवीं भिक्षु-प्रतिमा	सात दिन-रात	०	,,	,,	वीरासन आदि
ग्यारहवीं भिक्षु-प्रतिमा	एक दिन-रात	०	दो उपवास	,,	,,
बारहवीं भिक्षु-प्रतिमा	एक रात	०	तीन उपवास	,,	कायोत्सर्ग आदि।

२. संभोग बारह प्रकार का है (दुवालसविहे संभोगे पण्णत्ते)

इस शब्द में श्रमण-परम्परा में होने वाले अनेक परिवर्तनों का इतिहास है। भोजन, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—

---

१. श्रीपंचाशक १८/४,५ :

पडिवज्जइ एयाओ संघयणं धिइजुओ महासत्तो।
पडिमाओ भावियप्पा, सम्मं गुरुणा अणुण्णाओ॥
गच्छे च्चिय निम्माओ, जा पुव्व दस भवे असंपुण्णा।
णवमस्स तइय वत्थू, होइ जहण्णो सुयाहिगमो॥

२. समवायांगवृत्ति, पत्र २१।

३. आवश्यक निर्युक्ति, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन उत्तरगुणों के सम्बन्ध में "संभोग" और "विसंभोग" की व्यवस्था निष्पन्न हुई थी।[1] निशीथ चूर्णिकार ने एक प्रश्न उपस्थित किया है कि "विसंभोग" उत्तरगुण में होता है या मूलगुण में ? इसके उत्तर में आचार्य ने कहा—'वह उत्तरगुण में होता है।'[2] मूलगुण का भेद होने पर साधु ही नहीं रहता, फिर सांभोगिक और विसांभोगिक का प्रश्न ही क्या ?

संभोग और विसंभोग की व्यवस्था का प्रारम्भ कब से हुआ, सहज ही यह जिज्ञासा उभरती है। निशीथ के चूर्णिकार ने इस जिज्ञासा पर विमर्श किया है। उनके अनुसार पहले अर्द्ध-भरत (उत्तर भारत) में सब संविग्न साधुओं का एक ही संभोग था, फिर कालक्रम से संभोग और असंभोग की व्यवस्था हुई और उसके आधार पर साधुओं की भी दो कक्षाएं, सांभोगिक और असांभोगिक, बन गईं।[3]

चूर्णिकार ने फिर एक प्रश्न उपस्थित किया है कि कितने आचार्यों तक एक संभोग रहा और किस आचार्य के काल में असंभोग की व्यवस्था का प्रवर्तन हुआ ?

इसके उत्तर में भाष्यकार का अभिमत प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है—'भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर सुधर्मा थे। उनके उत्तरवर्ती क्रमशः जम्बू, प्रभव, शय्यंभव, यशोभद्र, संभूत और स्थूलभद्र—ये आचार्य हुए हैं। इनके शासन-काल में एक ही संभोग रहा है।[4]

स्थूलभद्र के दो प्रधान शिष्य थे—आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती। इनमें आर्य महागिरि ज्येष्ठ थे और आर्य सुहस्ती कनिष्ठ। आर्य महागिरि गच्छ-प्रतिबद्ध-जिनकल्प-प्रतिमा वहन कर रहे थे और आर्य सुहस्ती गण का नेतृत्व संभाल रहे थे। सम्राट् संप्रति ने आर्य सुहस्ती के लिए आहार, वस्त्र आदि की व्यवस्था कर दी। सम्राट् ने जनता में यह प्रस्तावित कर दिया कि आर्य सुहस्ती के शिष्यों को आहार, वस्त्र आदि दिया जाए और जो व्यक्ति उनका मूल्य चाहे, वह राज्य से प्राप्त करे। आर्य सुहस्ती ने इस प्रकार का आहार लेते हुए अपने शिष्यों को नहीं रोका। आर्य महागिरि को जब यह विदित हुआ, तब उन्होंने आर्य सुहस्ती से कहा—'आर्य! तुम इस राजपिण्ड का सेवन कैसे कर रहे हो?' आर्य सुहस्ती ने इसके उत्तर में कहा—'यह राजपिण्ड नहीं है।' इस चर्चा में दोनों युग-पुरुषों में कुछ तनाव उत्पन्न हो गया। आर्य महागिरि ने कहा—'आज से तुम्हारा और मेरा संभोग नहीं होगा—परस्पर भोजन आदि का सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसलिए तुम मेरे लिए असांभोगिक हो।' इस घटना के घटित होने पर आर्य सुहस्ती ने अपने प्रमाद को स्वीकार किया, तब फिर दोनों का संभोग एक हो गया। यह संभोग और विसंभोग की व्यवस्था का पहला निमित्त है। आर्य महागिरि ने आने वाले युग का चिन्तन कर संभोग और विसंभोग की व्यवस्था को स्थायीरूप प्रदान कर दिया।[5]

दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—इनसे सम्बन्धित संभोग और असंभोग का विकास कब हुआ, इसका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

---

१. निशीथ भाष्य, गा० २०६६ (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३४१ :
संभोगपरूवणता सिरिघर-सिवपाहुडे य संभुत्ते।
दंसणणाणचरित्ते, तवहेउं उत्तरगुणेसु॥

२. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३६३ :
विसंभोगो किं उत्तरगुणे मूलगुणे ?
आयरिओ भणति—'उत्तरगुणे।'

३. वही, पृ० ३५६ :
एस य पुव्वं सव्वसंविग्गाणं अड्ढभरहे एक्कसंभोगो आसी, पच्छा जाया इमे संभोइया इमे असंभोइया।

४. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३६० :
सीसो पुच्छति—कति पुरिसजुगे एक्को संभोगो आसीत् ? कम्मि वा पुरिसे असंभोगो पयट्टो ? केण वा कारणेण ?
ततो भणति—संपतिरण्णुप्पत्ती सिरिघर उज्जाणि हेट्ठ बोधव्वा।
अज्जमहागिरि हत्थिप्पभिती जाणह विसंभोगो॥२१५४॥
वद्धमाणसामिस्स सीसो सोहम्मो। तस्स जंबुणामा। तस्स वि पभवो। तस्स सेज्जंभवो। तस्स वि सीसो जस्सभद्दो। जस्सभद्दसीसो संभूतो। संभूयस्स थूलभद्दो। थूलभद्दं जाव सव्वेसिं एक्कसंभोगो आसी।

५. वही, पृ० ३६२ :
ततो अज्जमहागिरी अज्जसुहत्थिं भणति—अज्जप्पभितिं तुमं मम असंभोतिओ। एवं पाहुडं—कलह इत्यर्थः। ततो अज्जसुहत्थी पच्चाउट्टो मिच्छादुक्कडं करेति, ण पुणो गेण्हामो। एवं भणिए संभुत्तो। एत्थ पुरिसे विसंभोगो उप्पण्णो। कारणं च भणियं। ततो अज्जमहागिरी उवउत्तो, पाएण मायाबहुलामणुय त्ति काउं विसंभोगं ठवेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्य महागिरि ने संयुक्त-संभोग की व्यवस्था के साथ ही इनकी व्यवस्था की या इनका विकास उनके उत्तरवर्ती-काल में हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। निर्युक्ति-काल में संभोग के ये विभाग स्थिर हो चुके थे, यह निर्युक्ति की गाथा (२०६९) से स्पष्ट है।

स्थानांग सूत्र के निर्देशानुसार पांच कारणों से सांभोगिक को विसांभोगिक किया जा सकता है।[1] यदि संभोग की व्यवस्था आर्य महागिरि से मानी जाए तो यह स्वीकार करना होगा कि स्थानांग का प्रस्तुत सूत्र आर्य महागिरि के पश्चात् हुई आगम-वाचना में संदृब्ध है। इसी प्रकार समवायांग का प्रस्तुत सूत्र भी (१२।२) आर्य महागिरि के उत्तरकाल में संदृब्ध है। निशीथ भाष्यकार ने संभोग-विधि के छः प्रकार बतलाए हैं—१. ओघ, २. अभिग्रह, ३. दान-ग्रहण, ४. अनुपालना, ५. उपपात और ६. संवास।[2] इनमें से ओघ संभोग-विधि के बारह प्रकार बतलाए गए हैं। समवायांग के प्रस्तुत दो श्लोकों में उन्हीं बारह प्रकारों का निर्देश है। निशीथ भाष्य में भी ये दो श्लोक लगभग उसी रूप में मिलते हैं—

उवहि सुत भत्तपाणे, अंजलीपग्गहेति य।
दावणा य णिकाए य, अब्भुट्ठाणेति यावरे ॥२०७१॥
कितिकम्मस्स य करणे, वेयावच्चकरणेति य।
समोसरण सणिसेज्जा, कथाए य पबंधणे ॥२०७२॥

निशीथ भाष्य के अनुसार स्थितिकल्प, स्थापनाकल्प और उत्तरगुणकल्प—ये कल्प (आचार-मर्यादा) जिनके समान होते हैं, वे मुनि सांभोगिक कहलाते हैं और जिन मुनियों के ये कल्प समान नहीं होते वे असांभोगिक कहलाते हैं।[3]

१. उपधि-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं के साथ उपधिग्रहण की मर्यादा के अनुसार उपधि का संग्रह किया जाता है। निशीथ भाष्य के अनुसार सांभोगिक साध्वी के साथ निष्कारण अवस्था में उपधि-याचना का संभोग वर्जित है।[4]

२. श्रुत-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं को श्रुत की वाचना दी जाती है। वाचनाक्षम प्रवर्तिनी के न होने पर आचार्य साध्वी को वाचना देते हैं।[5]

३. भक्त-पान-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं के साथ एक मंडली में भोजन किया जाता है। समानकल्प वाली साध्वी के साथ एक मंडली में भोजन नहीं किया जाता।[6]

४. अंजलि-प्रग्रह-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार सांभोगिक या अन्यसांभोगिक साधुओं को वन्दना की जाती है। साध्वी को साधु वन्दना नहीं करते। साध्वियां पाक्षिक क्षमा-याचना आदि कार्य के लिए साधुओं के उपाश्रय में जाती हैं, तब साधुओं को वन्दना करती हैं। जब वे भिक्षा आदि के लिए जाती हैं तब मार्ग में साधुओं के मिलने पर उन्हें वन्दना नहीं करती हैं।[7]

---

१. ठाणं, ५/४६।

२. निशीथ भाष्य, गा० २०७०:
ओह अभिग्गह दाणग्गहणे अणुपालणा य उववातो।
संवासम्मि य छट्ठो, संभोगविधी मुणेयव्वो॥

३. निशीथ भाष्य, गा० २१४९:
ठितिकप्पम्मि दसविहे, ठवणाकप्पे य दुविधमण्णयरे।
उत्तरगुणकप्पम्मि य, जो सरिकप्पो स संभोगो॥

४. वही, गा० २०७८।

५. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३४७:
संजतीण जइ आइरियं मोत्तुं अण्णा पवत्तिणीमाती वायंति णत्थि, आयरिओ वायणातीणि सव्वाणि एताणि देति न दोसः।

६. वही, पृ० ३४८।

७. वही, पृ० ३४९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. दान-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं को शय्या, उपधि, आहार, शिष्य आदि दिए जाते हैं। सामान्य स्थिति में साध्वी को शय्या, उपधि, आहार आदि नहीं देते।[1]

६. निकाचना-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं को उपधि, आहार आदि के लिए निमंत्रित किया जाता है।[2]

७. अभ्युत्थान-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं को अभ्युत्थान का सम्मान किया जाता है।[3]

८. कृतिकर्मकरण-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं का कृतिकर्म किया जाता है। इसमें खड़ा होना, हाथों से आवर्त्त देना, सूत्रोच्चारण करना आदि अनेक विधियों का पालन किया जाता है।[4]

९. वैयावृत्यकरण-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधुओं को सहयोग दिया जाता है। शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान में योग देना वैयावृत्यकरण है। जैसे आहार, वस्त्र आदि देना शारीरिक उपष्टंभ है, वैसे ही कलह आदि के निवारण में योग देना मानसिक उपष्टंभ है। सांभोगिक साध्वियों को यात्रा-पथ आदि विशेष स्थिति में सहयोग दिया जाता है।[5]

१०. समवसरण-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार समानकल्प वाले साधु एक साथ मिलते हैं। अवग्रह की व्यवस्था भी इसी से अनुस्यूत है। अवग्रह (अधिकृत स्थान) तीन प्रकार के होते हैं—१. वर्षा-अवग्रह, २. ऋतुबद्ध-अवग्रह और ३. वृद्धवास-अवग्रह। अपने सांभोगिक साधुओं के अवग्रह में कोई साधु जाकर शिष्य, वस्त्र आदि का जान-बूझकर ग्रहण करता है तथा अनजान में गृहीत शिष्य, वस्त्र आदि अवग्रहस्थ साधुओं को नहीं सौंपता तो उसे असांभोगिक कर दिया जाता है। पार्श्वस्थ आदि का अवग्रह शुद्ध साधुओं को मान्य नहीं होता, फिर भी उनका क्षेत्र छोटा हो और शुद्ध साधुओं का अन्यत्र निर्वाह होता हो तो साधु उस क्षेत्र को छोड़ देते हैं। यदि पार्श्वस्थों आदि का क्षेत्र विस्तीर्ण हो और शुद्ध साधुओं का अन्यत्र निर्वाह कठिन हो तो उस क्षेत्र में साधु जा सकते हैं और शिष्य, वस्त्र आदि का ग्रहण कर सकते हैं।[6]

११. संनिषद्या-संभोग

इस व्यवस्था के अनुसार दो सांभोगिक आचार्य निषद्या पर बैठ कर श्रुत-परिवर्तना आदि करते हैं।[7]

१२. कथा-प्रबंध-संभोग

इसके द्वारा कथा सम्बन्धी व्यवस्था दी गई है। कथा के पांच प्रकार हैं—१. वाद, २. जल्प, ३. वितण्डा, ४. प्रकीर्ण कथा और ५. निश्चय कथा। प्रकीर्ण कथा के दो प्रकार हैं—उत्सर्ग कथा और द्रव्यास्तिकनय कथा। इसी प्रकार निश्चय कथा के भी दो प्रकार हैं—अपवाद कथा और पर्यायास्तिकनय कथा। प्रथम तीन कथाएं साध्वियों के साथ नहीं किन्तु अन्य असांभोगिक, अन्यतीर्थिक व गृहस्थ सभी के साथ की जा सकती हैं।[8]

इस प्रकार इन बारह संभोगों के द्वारा समानकल्पी साधु-साध्वियों तथा असमानकल्पी साधुओं के साथ व्यवहार की

---

१. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग), पृ० ३४९।
२. वही, पृ० ३५०।
३. वही, पृ० ३५०।
४. वही, पृ० ३५१।
५. वही, पृ० ३५१; समवायांगवृत्ति, पत्र २२।
६. वही, पृ० ३५३; वही, पत्र २२।
७. वही, पृ० ३५४; वही, पत्र २३।
८. वही, पृ० ३५४, ३५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मर्यादा निश्चित की गई है। इन व्यवस्थाओं का अतिक्रमण करने पर समानकल्पी साधु का सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाता। उदाहरण के लिए उपधि-संभोग की व्यवस्था प्रस्तुत की जा रही है—

कोई साधु उपधि की मर्यादा का अतिक्रमण कर उपधि ग्रहण करता है। उस समय दूसरे साधुओं द्वारा सावधान करने पर वह प्रायश्चित्त स्वीकार करता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जाता। इस प्रकार दूसरी और तीसरी बार भी सावधान करने पर वह प्रायश्चित्त स्वीकार करता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जाता। किन्तु चौथी बार यदि वह वैसा करता है तो उसे विसांभोगिक कर दिया जाता है। जो मुनि अन्यसांभोगिक साधुओं के साथ शुद्ध या अशुद्ध—किसी भी प्रकार से उपधि ग्रहण करता है और सावधान करने पर वह प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करता तो उसे प्रथम बार ही विसांभोगिक किया जा सकता है और यदि वह प्रायश्चित्त स्वीकार कर लेता है तो उसे विसांभोगिक नहीं किया जा सकता। चौथी बार वैसा कार्य करने पर पूर्वोक्त की भांति उसे विसांभोगिक कर दिया जाता है। यह उपधि के आधार पर संभोग और विसंभोग की व्यवस्था है।[1]

इसी प्रकार श्रुत आदि की व्यवस्था का भंग करने पर भी सांभोगिक को विसांभोगिक कर दिया जाता था।

संभोग की व्यवस्था भाष्य और चूर्णि-काल में सर्वसम्मत थी। वर्तमान में इस व्यवस्था का सर्वाङ्गीण प्रयोग नहीं हो रहा है। सभी जैन सम्प्रदायों में अपने-अपने ढंग से इसका रूपान्तरण हो गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है, इसलिए इसका संक्षिप्त सार यहां प्रस्तुत किया गया है। निशीथ भाष्य और चूर्णि में इसका और अधिक विशद विवेचन है।

३. कृतिकर्म के बारह आवर्त्त होते हैं (दुवालसावत्ते कितिकम्मे पण्णत्ते)

'दुवालसावत्ते कितिकम्मे पण्णत्ते'—मूल पाठ इतना ही प्रतीत होता है। आगे जो गाथा है, वह बाद में जोड़ी गई है। वह वृत्तिकार से पहले जोड़ी गई थी, यह निश्चित है, क्योंकि वृत्तिकार ने उसकी व्याख्या की है।

कृतिकर्म से सम्बन्धित यह गाथा किसी प्रति-लेखक ने प्रसंगवश पाठ के साथ लिख दी और उत्तरवर्ती प्रतियों में वह अनुकृत होती गई, ऐसा प्रतीत होता है। दशवैकालिक के आदर्शों में भी ऐसा हुआ है। छठे अध्ययन में 'वयछक्कं ··काय-छक्कं' यह निर्युक्तिगत श्लोक है, किन्तु उत्तरवर्ती प्रतियों में वह मूल में प्रविष्ट हो गया।

प्रस्तुत गाथा मूलतः आवश्यक निर्युक्ति की है।[2] इस गाथा का सम्बन्ध प्रस्तुत पाठ के साथ केवल 'बारसावयं' (द्वादशावर्त्त) इतना सा है। वृत्तिकार अभयदेवसूरि ने बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि प्रस्तुत रूपक में द्वादशावर्त्त का अनुवाद (कथित का पुनः कथन) और कृतिकर्म के शेष धर्मों का निरूपण है।[3]

कृतिकर्म वन्दना-काल में की जाने वाली क्रिया-विधि है। इसका प्रचलन प्राचीनकाल में समग्र जैन-परम्परा में रहा है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—दोनों परम्पराओं के साहित्य में इस विषय की जानकारी प्राप्त होती है। जयधवला के अनुसार 'कृतिकर्म' एक प्रकीर्णक है। उसमें कृतिकर्म के विधान और फल का वर्णन किया गया है।[4]

आवश्यक निर्युक्ति के तृतीय अध्ययन (वन्दना अध्ययन) में कृतिकर्म का विस्तृत वर्णन मिलता है। चितिकर्म, कृतिकर्म, पूजाकर्म और विनयकर्म—ये सब वन्दना के पर्यायवाची नाम हैं।[5] निर्युक्तिकार ने कृतिकर्म के विषय में पांच प्रश्न प्रस्तुत किए हैं[6]—

१. कृतिकर्म के अवनमन कितने होते हैं ?

२. उसमें शिरोनमन कितने होते हैं ?

---

१. निशीथ चूर्णि (निशीथ सूत्र, द्वितीय विभाग) पृ० ३४२।

२ आवश्यक निर्युक्ति, गाथा १२१६, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० ४५ :
दोओणयं अहाजायं, किइकम्मं बारसावयं।
चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्खमणं॥

३. समवायांगवृत्ति, पत्र २३ : द्वादशावर्त्तामेवास्यानुवदन् शेषांश्च तद्धर्मानभिधित्सु : रूपकमाह।

४. कसायपाहुड, भाग १, पृ० ११८ : जिण-सिद्धाइरियबंहुसुदेसु वंदिज्जमाणेसु जं कीरइ कम्मं तं किदियम्मं णाम। तस्स आदाहीण-तिक्खुत्तपदाहिण-तिओणद-चदुसिर-बारसावत्तादिलक्खणं विहाणं फलं च किदियम्मं वण्णेदि।

५. आवश्यक निर्युक्ति, गा० १११६, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० १६ : वंदणचिइकिइकम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।

६ वही गाथा १११७, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० १६ :
कइओणयं कइसिरं कइहिं च आवस्सएहिं परिसुद्धं।
कइदोसविप्पमुक्कं किइकम्मं कीस कीरइ वा ?॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वह कितने आवर्त्तों[1] से शुद्ध होता है ?

४. वह कितने दोषों से विप्रमुक्त होता है ?

५. वह किसके प्रति किया जाता है ?

प्रस्तुत सूत्र के साथ जो गाथा संलग्न हुई है, उसमें द्वादश आवर्त्तों की व्याख्या नहीं है, किन्तु कृतिकर्म के पचीस प्रकारों का संग्रह है। आवश्यक निर्युक्ति की निम्न गाथाओं से यह स्पष्ट हो जाता है—

दो ओणयं अहाजायं, किइकम्मं बारसावयं।
चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं ऐगनिक्खमणं॥
अवणामा दुन्नऽहाजाय, आवत्ता बारसेव उ।
सीसा चत्तारि गुत्तीओ, तिन्नि दो य पवेसणा॥
एगनिक्खमणं चेव, पणवीसं वियाहिया।
आवत्तेहिं परिसुद्धं, किइकम्मं जेहि कीरई॥[2]

कृतिकर्म के पचीस प्रकार ये हैं—

१ से २—दो अवनमन	२० से २२—त्रिगुप्त
३—एक यथाजात	२३ से २४—द्वि-प्रवेश
४ से १५—बारह आवर्त्त	२५—एक निष्क्रमण।
१६ से १९—चतुःशिर	

दो अवनमन

समवायांग की वृत्ति के अनुसार अवग्रह की अनुज्ञा के लिए 'अणुजाणह मे मिउग्गहं'—इस सूत्रोच्चारण के साथ प्रथम बार अवनमन किया जाता है। इसी प्रकार दूसरी बार भी अवग्रह की अनुज्ञा के लिए अवनमन किया जाता है।[3]

मूलाचार की टीका में दो अवनमन का अर्थ बहुत स्पष्ट किया है। पञ्च नमस्कार के मंत्र के पाठ की आदि में पहली अवनति (भूमि-स्पर्श) की जाती है। चतुर्विंशतिस्तव के पाठ की आदि में दूसरी अवनति (शरीर-नमन) की जाती है।[4]

धवला और जयधवला के अनुसार अवनमन का अर्थ है—भूमि पर बैठकर नमस्कार करना। अवनमन तीन होते हैं—

(१) जब जिनेन्द्र देव के दर्शन मात्र से शरीर रोमांचित हो जाता है, तब भूमि पर बैठकर नमस्कार करना—यह पहला अवनमन है।

(२) जिनेन्द्र देव की स्तुति कर भूमि पर बैठकर नमस्कार करना—यह दूसरा अवनमन है।

(३) सामायिक दण्डक से आत्मशुद्धि कर, कषाय और शरीर का त्याग कर, जिनदेव के अनन्त गुणों का ध्यान कर तथा चौवीस तीर्थंकरों की वन्दना कर, जिन-जिनालय और गुरु की स्तुति करने के पश्चात् भूमि पर बैठकर नमस्कार करना—यह तीसरा अवनमन है।[5]

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति की अवचूर्णि प्रकाशित है। उसमें 'कइहिं च आवस्सएहिं परिसुद्धं'—पाठ मुद्रित है, किन्तु मूलाचार (७/८०) में आवश्यक निर्युक्ति के समान ही गाथा उपलब्ध है :

कदि ओणदं कदि सिरं, कदिए आवत्तगेहिं परिसुद्धं।
कदि दोसविप्पमुक्कं, किदियम्मं होदि कायव्वं॥

इस गाथा में 'आवस्सएहिं परिसुद्धं' के स्थान में आवत्तगेहिं परिसुद्धं' पाठ है। अर्थ की दृष्टि से यह संगत लगता है, क्योंकि 'आवश्यकपरिशुद्धं' की कोई व्याख्या प्राप्त नहीं हैं। मूलाचार (वृत्ति, पत्र ४४१) में 'द्वादश आवर्त्तयुक्त कृतिकर्म आवर्त्तशुद्ध होता है'—इस प्रकार आवर्त्तशुद्ध की व्याख्या प्राप्त है।

आवश्यकनिर्युक्ति की १२१८ तथा १२२०—दोनों गाथाओं में 'आवस्सग परिसुद्धं' पाठ मुद्रित हुआ है। अवचूर्णिकार ने 'पचीस आवश्यकों से परिशुद्ध'—ऐसा अर्थ किया है, किन्तु वह संगत नहीं है, क्योंकि १११७वीं गाथा में 'कइओणदं कइसिरं' ये दो प्रश्न 'कइहिं च आवस्सएहिं परिसुद्धं'—इस प्रश्न से स्वतंत्र हैं। अत: तीसरे प्रश्न के साथ प्रथम दो प्रश्नों को सम्मिलित कैसे किया जा सकता है ? इससे स्पष्ट होता है कि 'आवत्तगेहिं परिसुद्धं' के स्थान में लिपिदोष के कारण 'आवस्सएहिं परिसुद्धं' पाठ हो गया।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२१६–१२१८।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र २३।

४. मूलाचार ७/१०४, वृत्ति, पृ० ४५६।

५. कसायपाहुड भाग १, पृ० ११८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाजात

श्रमण-वेष (रजोहरण, मुखवस्त्रिका और चोलपट्टक) युक्त अथवा उपकरण रहित होने पर भी अंजलि-संपुट को शिर से सटाकर कृतिकर्म किया जाता है, इसलिए उसे यथाजात कहा गया है।[1]

मूलाचार की टीका में 'यथाजात' का अर्थ जातरूपतुल्य—क्रोध, मान, माया आदि से रहित—किया है।[2]

बारह आवर्त्त

अभयदेवसूरि ने आवर्त्त की व्याख्या "सूत्रोच्चारण युक्त कायिक व्यापार" की है। उनके अनुसार बारह आवर्त्त यतिजनों में प्रसिद्ध हैं[3], इसलिए उन्होंने इसका कोई स्पष्ट अर्थ प्रतिपादित नहीं किया। आवश्यक अवचूर्णि के अनुसार छह आवर्त्त प्रथम प्रवेश में और छह आवर्त्त द्वितीय प्रवेश में किए जाते हैं।[4]

मूलाचार की वृत्ति के अनुसार बारह आवर्त्त ये हैं[5]—

पञ्च नमस्कार मंत्र के पाठ की आदि में मन-संयमन, वचन-संयमन और काय-संयमन—ये तीन आवर्त्त होते हैं।

पञ्च नमस्कार मंत्र के पाठ की समाप्ति में फिर ये तीनों आवर्त्त होते हैं। इसी प्रकार चतुर्विंशतिस्तव की आदि और समाप्ति के समय ये तीन-तीन आवर्त्त होते हैं। इनका योग करने पर बारह आवर्त्त होते हैं।

आवर्त्तों का एक दूसरा विकल्प भी किया गया है। तीन बार की प्रदक्षिणा में प्रत्येक बार चारों दिशाओं में चार प्रणाम किये जाते हैं। इनका योग करने पर आवर्त्त बारह हो जाते हैं।[6]

जयधवला के अनुसार सामायिक दण्डक के प्रारम्भ और अन्त में मन, वचन, और काया की विशुद्धि की अपेक्षा से छह आवर्त्त होते हैं और 'त्थोस्सामि' दंडक के प्रारम्भ और अन्त में मन, वचन और काया की विशुद्धि की अपेक्षा से छह आवर्त्त होते हैं।[7]

चतुःशिर

प्रथम प्रवेश के समय क्षामणाकाल में शिष्य और आचार्य के दो शिर होते हैं। इसी प्रकार द्वितीय प्रवेश के समय भी शिष्य और आचार्य के दो शिर होते हैं।[8]

प्रवचनसारोद्धार की वृत्ति में इसकी स्पष्ट व्याख्या प्राप्त होती है। चतुःशिर का अर्थ है—शिर से चार बार अवनमन करना। प्रथम बार शिष्य—'खामेमि खमासमणो ! 'देवसियं वइक्कमं'—कहता हुआ आचार्य को शिर नमाता है। आचार्य भी 'अहमवि खामेमि तुमे' कहकर शिर नमाते हैं—ये दो शिरोनमन हुए। इसी प्रकार पुनः प्रविष्ट होकर क्षामणाकाल में शिष्य और आचार्य के दो शिरोनमन होते हैं।

वहीं एक दूसरी परम्परा का भी उल्लेख हुआ है। उसके अनुसार चारों शिरोनमन शिष्य से सम्बन्धित हैं। प्रथम प्रवेश में शिष्य का संस्पर्शनमन और क्षामणानमन—ये दो शिरोनमन होते हैं। इसी प्रकार द्वितीय प्रवेश में भी ये दो शिरोनमन होते हैं।[9]

मूलाचार की वृत्ति के अनुसार पञ्च नमस्कार मंत्र के पाठ की आदि और अन्त में तथा चतुर्विंशतिस्तव के आदि और अन्त में जुड़े हुए हाथ शिर से सटाना—ये चार शिर होते हैं।[10]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र २३।

२. मूलाचार ७/१०४, वृत्ति, पृ० ४५६।

३ समवायांगवृत्ति, पत्र २३ :
द्वादशावर्त्ताः—सूत्राभिधानगर्भाः कायव्यापारविशेषाः यतिजनप्रसिद्धा…।

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२१६, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० ४५ :
द्वादश आवर्त्ता…प्रथम प्रविष्टस्य षट् पुनः प्रविष्टस्यापि षट्।

५. मूलाचार ७/१०४, वृत्ति पृ० ४५६।

६. वही, ७/१०४, वृत्ति पृ० ४५६।

७. कसायपाहुड भाग १, पृ० ११८।

८. समवायांगवृत्ति, पत्र २३।

९. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति, पत्र २२।

१०. मूलाचार ७/१०४, वृत्ति, पृ० ४५६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयधवला के अनुसार सामायिक तथा 'त्थोस्सामि' दंडक के आदि-अन्त में शिर नमाकर नमस्कार करना—ये चार शिरोनतियां हैं।[1]

त्रिगुप्त

इसका अर्थ है—मनोगुप्त, वचनगुप्त और कायगुप्त होना।[2] मूलाचार में इसके स्थान में 'तिसुद्ध' (सं० त्रिशुद्ध) शब्द है। उसका अर्थ है—मनःशुद्ध, वचनशुद्ध और कायशुद्ध।[3]

द्वि-प्रवेश

अवग्रह की अनुज्ञा के लिए प्रथम प्रवेश किया जाता है तथा उस स्थान से निष्क्रमण कर अवग्रह की अनुज्ञा के लिए द्वितीय प्रवेश किया जाता है।[4]

एक निष्क्रमण

प्रथम प्रवेश के बाद अवग्रह से निष्क्रमण किया जाता है। दूसरी बार अवग्रह से निष्क्रमण नहीं किया जाता, किन्तु वहीं आचार्य के पादमूल में प्रणत होकर सूत्र का समापन किया जाता है।[5]

एक दिन में चौदह कृतिकर्म किए जाते हैं—चार प्रतिक्रमण के समय और तीन स्वाध्याय के समय। ये सात पूर्वाह्ण (दिन के पूर्व भाग में) किए जाते हैं और सात अपराह्ण (दिन के पश्चिम भाग) में किए जाते हैं।[6]

प्रतिक्रमण के समय किए जाने वाले चार कृतिकर्म—

१. आलोचना के समय।
२. क्षामणा के समय।
३. आचार्य आदि के आश्रयण-निवेदन के समय।
४. प्रत्याख्यान के समय

स्वाध्याय के समय किए जाने वाले तीन कृतिकर्म—

१. स्वाध्याय प्रस्थापन के समय।
२. स्वाध्याय प्रवेदन के समय।
३. स्वाध्याय के पश्चात्।[7]

आवश्यक अवचूर्णि के अनुसार ये चौदह कृतिकर्म अभक्तार्थिक (उपवासी) के नियतरूप से होते हैं। भक्तार्थिक प्रत्याख्यान के समय कृतिकर्म करता है, इसलिए उसके वे अधिक हो जाते हैं।[8]

मूलाचार में कृतिकर्म की संख्या यही है।[9] उसके टीकाकार के अनुसार प्रतिक्रमण सम्बन्धी चार कृतिकर्म इस प्रकार हैं[10]—

१. आलोचना भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग।
२. प्रतिक्रमण भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग।

---

१. कसायपाहुड भाग १, पृ० ११८।
२. समवायांगवृत्ति, पत्र २३।
३. मूलाचार ७/१०४, वृत्ति पृ० ४५६।
४. समवायांगवृत्ति, पत्र २३।
५. वही, पत्र २३।
६. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२१५, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० ४५ :
चत्तारि पडिक्कमणे किइकम्मा तिन्नि हुंति सज्झाए।
पुव्वण्हे अवरण्हे किइकम्मा चउदस हवंति॥
७. प्रवचनसारोद्धारवृत्ति पत्र, १८४।
८. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा १२१५, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० ४५ :
एतानि ध्रुवाणि प्रत्यहं चतुर्दश भवन्ति अभक्तार्थिकस्य, इतरस्य(तु) प्रत्याख्यानवन्दनेनाधिकानि स्युः।
९. मूलाचार, ७/१०३ :
चत्तारि पडिक्कमणे किदियम्मा तिण्णि होंति सज्झाए।
पुव्वण्हे अवरण्हे किदियम्मा चोद्दसा होंति॥
१०. वही, वृत्ति, पृ० ४५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वीर भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग ।

४. चतुर्विंशति तीर्थङ्कर भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग ।

स्वाध्याय के समय किये जाने वाले तीन कृतिकर्म—

१. श्रुत भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग ।

२. आचार्य भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग ।

३. स्वाध्याय के उपसंहार-काल में श्रुत भक्तिकरण के समय किया जाने वाला कायोत्सर्ग ।

आवश्यक निर्युक्ति की व्याख्या से मूलाचार की टीकागत व्याख्या भिन्न है। मूलाचार की वृत्ति में पूर्वाह्ण और अपराह्ण की अर्थ-योजना में दो विकल्प किए गए हैं[1] :—

१. (क) पूर्वाह्ण—दिवस में सात कृतिकर्म ।

(ख) अपराह्ण—रात्रि में सात कृतिकर्म ।

२. (क) पूर्वाह्ण—पश्चिम रात्रि से लेकर दिन के तीन प्रहर तक का समय । इस काल-मर्यादा के अनुसार—

पश्चिम रात्रि में प्रतिक्रमण के समय—चार कृतिकर्म ।

पश्चिम रात्रि में स्वाध्याय के समय—तीन कृतिकर्म ।

वन्दना के समय—दो कृतिकर्म ।

सूर्योदय के समय स्वाध्याय में—तीन कृतिकर्म ।

मध्याह्ण वन्दना के समय · दो कृतिकर्म ।

(ख) अपराह्ण—दिन के चतुर्थ प्रहर से लेकर रात्रि के प्रथम प्रहर तक का समय । इस काल-मर्यादा के अनुसार—

स्वाध्याय के समय—तीन कृतिकर्म ।

प्रतिक्रमण के समय—चार कृतिकर्म ।

वन्दना के समय—दो कृतिकर्म ।

योगभक्ति ग्रहण के समय—एक कृतिकर्म ।

योगभक्ति उपसंहार के समय—एक कृतिकर्म ।

रात्रि में प्रथम स्वाध्याय-काल में—तीन कृतिकर्म ।

४. बलदेव राम (रामे णं बलदेवे)

वृत्तिकार के अनुसार वे पांचवें देवलोक के देव हुए ।[2]

५. बारह मुहूर्त्त का (दुवालसमुहुत्तिआ)

सूर्य जब उत्तरायण होता है, तब उसकी अन्तिम रात्रि सबसे छोटी—बारह मुहूर्त्त या चौबीस घड़ी प्रमाण की होती है ।[3]

६. बारह मुहूर्त्त का (दुवालसमुहुत्तिओ)

सूर्य जब दक्षिणायन होता है, तब उसका अंतिम दिन सबसे छोटा—बारह मुहूर्त्त का होता है ।[4]

७. बारह नाम हैं (दुवालस नामधेज्जा)

स्थानांग सूत्र में इसके आठ नामों का उल्लेख हुआ है । वहां चौथा नाम 'तनु-तनु' है ।[5]

---

१. मूलाचार, वृत्ति, पृ० ४५५ ।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र २३ ।
रामो नवमो बलदेवः············पञ्चमदेवलोके देवत्वं गतः ।

३. वही, वृत्ति, पत्र २३ ।
सर्वजघन्या रात्रिरुत्तरायणपर्यन्ताहोरात्रस्य रात्रिः, सा च द्वादशमौहूर्तिका चतुर्विंशतिघटिकाप्रमाणा ।

४. वही, वृत्ति, पत्र २३ ।
सर्वजघन्यो द्वादशमौहूर्तिक एवेत्यर्थः, स च दक्षिणायनपर्यन्तदिवस इति ।

५. ठाणं, ८/११० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३

तेरसमो समवाम्रो : तेरहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता तं जहा— अट्ठादंडे अणट्ठादंडे हिंसादंडे अकम्हादंडे दिट्ठिविप्परिआसिआदंडे मुसावायवत्तिए अदिण्णादाणवत्तिए अज्झत्थिए माणवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए ईरियावहिए नामं तेरसमे ।	त्रयोदश क्रियास्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— अर्थदण्डः, अनर्थदण्डः, हिंसादण्डः, अकस्माद्दण्डः, दृष्टिविपर्यासिकादण्डः, मृषावादप्रत्ययः, अदत्तादानप्रत्ययः, आध्यात्मिकः, मानप्रत्ययः, मित्रदोषप्रत्ययः, मायाप्रत्ययः, लोभप्रत्ययः, ऐर्यापथिको नाम त्रयोदशः ।	१. क्रियास्थान तेरह हैं[1], जैसे—१. अर्थ-दण्ड—सप्रयोजन हिंसा । २. अनर्थ-दण्ड—निष्प्रयोजन हिंसा । ३. हिंसा-दण्ड—हिंसा के प्रति हिंसा का प्रयोग । ४. अकस्मात्-दण्ड—लक्ष्यीकृत प्राणी की हिंसा के लिए प्रवृत्त व्यक्ति द्वारा अलक्ष्यी-कृत प्राणी की हिंसा । ५. दृष्टि-विपर्यास-दण्ड – मति-भ्रम से होने वाली हिंसा । ६. मृषावाद-प्रत्यय—मृषावाद के निमित्त से होने वाली क्रिया । ७. अदत्तादान-प्रत्यय—अदत्ता-दान के निमित्त से होने वाली क्रिया । ८. आध्यात्मिक—बाह्य निमित्त के बिना स्वतः मन में उत्पन्न होने वाली क्रिया । ९. मान-प्रत्यय—अभिमान के निमित्त से होने वाली क्रिया । १०. मित्रदोष-प्रत्यय—मित्र-वर्ग के प्रति अप्रियता के निमित्त से होने वाली क्रिया । ११. माया-प्रत्यय—माया के निमित्त से होने वाली क्रिया । १२. लोभ-प्रत्यय—लोभ के निमित्त से होने वाली क्रिया । १३. ऐर्यापथिक—केवल योग के निमित्त से होने वाला कर्म-बंधन ।
२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा पण्णत्ता ।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोः त्रयोदश विमानप्रस्तटाः प्रज्ञप्ताः ।	२. सौधर्म और ईशानकल्प में विमानों के प्रस्तट तेरह हैं ।
३. सोहम्मवडेंसगे णं विमाणे णं अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते ।	सौधर्मावतंसकं विमानं अर्द्धत्रयोदश योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम् ।	३. सौधर्मावतंसक विमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा-चौड़ा है ।
४. एवं ईसाणवडेंसगे वि ।	एवं ईशानावतंसकमपि ।	४. ईशानावतंसक विमान साढ़े बारह लाख योजन लम्बा-चौड़ा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. जलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिआणं अद्धतेरस जाइकुलकोडीजोणी-पमुह-सयसहस्सा पण्णत्ता।

जलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां अर्द्धत्रयोदश जातिकुलकोटियोनिप्रमुख-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

५. तिर्यञ्च योनिक जलचर पञ्चेन्द्रिय जीवों के जातिकुलकोटि के योनिप्रमुख साढ़े बारह लाख हैं।

६. पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता।

प्राणायुषः पूर्वस्य त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

६. प्राणायु पूर्व के वस्तु तेरह हैं।[2]

७. गब्भवक्कंतिअपंचेंदिअतिरिक्ख-जोणिआणं तेरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चामोसमण-पओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइपओगे सच्चामोसवइपओगे असच्चामोस-वइपओगे ओरालिअसरीरकाय-पओगे ओरालिअमीससरीर-कायपओगे वेउव्विअसरीर-कायपओगे वेउव्विअमीससरीर-कायपओगे कम्मसरीर-कायपओगे।

गर्भावक्रांतिकपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां त्रयोदशविधः प्रयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—सत्यमनःप्रयोगः, मृषामनःप्रयोगः, सत्यमृषामनःप्रयोगः, असत्यामृषा-मनःप्रयोगः, सत्यवाक्प्रयोगः, मृषावाक्-प्रयोगः, सत्यमृषावाक्प्रयोगः, असत्या-मृषावाक्प्रयोगः, औदारिकशरीरकाय-प्रयोगः, औदारिकमिश्रशरीरकाय-प्रयोगः, वैक्रियशरीरकायप्रयोगः, वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगः, कर्म-शरीरकायप्रयोगः।

७. गर्भावक्रान्तिक पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों का प्रयोग[1] तेरह प्रकार का है, जैसे—१. सत्य मन-प्रयोग। २. मृषा मन-प्रयोग। ३. सत्यमृषा मन-प्रयोग। ४. असत्यमृषा मन-प्रयोग। ५. सत्य वचन-प्रयोग। ६. मृषा वचन-प्रयोग। ७. सत्यमृषा वचन-प्रयोग। ८. असत्यामृषा वचन-प्रयोग। ९. औदारिक-शरीर काय-प्रयोग। १०. औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग। ११. वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग। १२. वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग। १३. कार्मण-शरीर काय-प्रयोग।

८. सूरमंडले जोयणेणं तेरसहिं एगसट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणे पण्णत्ते।

सूरमण्डलं योजनेन त्रयोदशभिरेकषष्टि-भागैः योजनस्य ऊनं प्रज्ञप्तम्।

८. सूर्य का मण्डल एक योजन के १३/६१ भाग से न्यून है।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रयोदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह पल्योपम की है।

१०. पंचमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रयोदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. पांचवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेरह सागरोपम की है।

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइ-याणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां त्रयोदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की है।

१२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां त्रयोदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरह पल्योपम की है।

१३. लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे अस्ति एकेषां देवानां त्रयोदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. लान्तककल्प के कुछ देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जज्झयं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडेंसगं वइरं वइरावत्तं वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइरज्झयं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडेंसगं लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगज्झयं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोगकूडं लोगुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा वज्रं सुवज्रं वज्रावर्त्तं वज्रप्रभं वज्रकान्तं वज्रवर्णं वज्रलेश्यं वज्रध्वजं वज्रशृङ्गं, वज्रसृष्टं वज्रकूटं वज्रोत्तरावतंसकं वैरं वैरावर्त्तं वैरप्रभं, वैरकान्तं वैरवर्णं वैरलेश्यं वैरध्वजं वैरशृङ्गं वैरसृष्टं वैरकूटं वैरोत्तरावतंसकं लोकं लोकावर्त्तं लोकप्रभं लोककांतं लोकवर्णं लोकलेश्यं लोकध्वजं लोकशृङ्गं लोकसृष्टं लोककूटं लोकोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण त्रयोदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. वज्र, सुवज्र, वज्रावर्त्त, वज्रप्रभ वज्रकान्त, वज्रवर्ण, वज्रलेश्य, वज्रध्वज, वज्रशृङ्ग, वज्रसृष्ट, वज्रकूट, वज्रोत्तरावतंसक तथा वैर, वैरावर्त्त, वैरप्रभ, वैरकान्त, वैरवर्ण, वैरलेश्य, वैरध्वज, वैरशृङ्ग, वैरसृष्ट, वैरकूट, वैरोत्तरावतंसक तथा लोक, लोकावर्त्त, लोकप्रभ, लोककान्त, लोकवर्ण, लोकलेश्य, लोकध्वज, लोकशृङ्ग, लोकसृष्ट, लोककूट और लोकोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेरह सागरोपम की है।

१५. ते णं देवा तेरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवास्त्रयोदशभिरर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१५. वे देव तेरह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१६. तेसि णं देवाणं तेरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां त्रयोदशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१६. उन देवों के तेरह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१७. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे तेरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये त्रयोदशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१७. कुछ भव-सिद्धिक जीव तेरह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र १ :

प्रस्तुत समवाय में तेरह क्रियास्थान निर्दिष्ट हैं। क्रिया का अर्थ है—कर्म-बंधन की हेतुभूत चेष्टा और स्थान का अथ है—भेद-पर्याय।[1]

आवश्यक सूत्र की वृत्ति में हरिभद्रसूरी ने इन तेरह क्रियाओं के वाच्यार्थ को स्पष्ट करने वाली सतरह गाथाओं का उल्लेख किया है।[2]

इन तेरह क्रियाओं का उल्लेख सूत्रकृतांग २/२/३-१७ में विस्तार से हुआ है।

इनके तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखें—

ठाणं २/२-३७ के टिप्पण पृष्ठ ११३-११९।

२. प्राणायु पूर्व के [पाणाउस्स णं पुव्वस्स]

पूर्व विशाल ज्ञानराशि की एक संज्ञा है। ये चौदह हैं। इनमें 'प्राणायु'—बारहवां पूर्व है। इसमें प्राणियों आर आयुष्य विषयक विस्तार से चर्चा है। उसके तेरह वस्तु—अध्ययन हैं।[3]

३. प्रयोग [पओगे]

प्रयोग का अर्थ है—मन, वचन और काया की प्रवृत्ति। उन्हें योग कहा जाता है। वे पन्द्रह हैं—मन के चार, वचन के चार और काया के सात। प्रस्तुत आलापक में तेरह का उल्लेख है। इनमें प्रथम चार मन के, पांच से आठ—ये चार वचन के तथा शेष पांच [९-१३] काया के प्रयोग हैं। तिर्यञ्च जाति के जीवों के आहारकशरीर काय-प्रयोग तथा आहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग—ये दो कायप्रयोग नहीं होते। ये केवल संयत मुनियों के ही होते हैं।[4]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र २४ :
करणं क्रिया, कर्मबन्धनिबन्धनचेष्टा, तस्या : स्थानानि भेदा: पर्याया: क्रियास्थानानि।

२. आवश्यकवृत्ति, भाग २, पृष्ठ १०९।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र २५ :
यत्र प्राणिनामायुर्विधानं सभेदमभिधीयते—तत्प्राणायुर्द्वादशं पूर्वं तस्य त्रयोदश वस्तूनि—अध्ययनवद्विभागविशेषा:।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र २५
प्रयोजनं—मनोवाक्कायानां व्यापारणं प्रयोग: स त्रयोदशविध:, पञ्चदशानां प्रयोगाणां मध्ये आहारकाहारकमिश्रलक्षणकायप्रयोगद्वयस्य तिरश्चामभावात्, तौ हि संयमिनामेव स्त:, संयमश्च संयतमनुष्याणामेव न तिरश्चामिति, तत्र सत्यासत्योभयानुभयस्वभावाश्चत्वारो मन:प्रयोगा: वाक्प्रयोगाश्चेति अष्टौ पुनरौदारिकादय: पञ्च कायप्रयोगा: एवं त्रयोदशेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउद्दसमो समवाओ : चौदहवां समवाय

मूल

१. चउद्दस भूअग्गामा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमा अपज्जत्तया, सुहुमा पज्जत्तया, बादरा अपज्जत्तया, बादरा पज्जत्तया, बेइंदिया अपज्जत्तया, बेइंदिया पज्जत्तया, तेइंदिया अपज्जत्तया, तेइंदिया पज्जत्तया, चउरिंदिया अपज्जत्तया, चउरिंदिया पज्जत्तया, पंचिंदिया असण्णिअपज्जत्तया, पंचिंदिया असण्णिपज्जत्तया, पंचिंदिया सण्णिअपज्जत्तया, पंचिंदिया सण्णिपज्जत्तया।

संस्कृत छाया

चतुर्दश भूतग्रामाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्माः अपर्याप्तकाः, सूक्ष्माः पर्याप्तकाः, बादराः अपर्याप्तकाः, बादराः पर्याप्तकाः, द्वीन्द्रियाः अपर्याप्तकाः, द्वीन्द्रियाः पर्याप्तकाः, त्रीन्द्रियाः अपर्याप्तकाः, त्रीन्द्रियाः पर्याप्तकाः, चतुरिन्द्रियाः अपर्याप्तकाः, चतुरिन्द्रियाः पर्याप्तकाः, पञ्चेन्द्रियाः असंज्ञ्यपर्याप्तकाः, पञ्चेन्द्रियाः असंज्ञिपर्याप्तकाः, पञ्चेन्द्रियाः संज्ञ्यपर्याप्तकाः, पञ्चेन्द्रियाः संज्ञिपर्याप्तकाः।

हिन्दी अनुवाद

१. जीवों के समूह[1] चौदह हैं, जैसे—१. सूक्ष्म अपर्याप्तक, २. सूक्ष्म पर्याप्तक, ३. बादर अपर्याप्तक, ४. बादर पर्याप्तक, ५. द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक, ६. द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, ७. त्रीन्द्रिय अपर्यातक, ८. त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ९. चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक, १०. चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, ११. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, १२. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक, १३. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक, १४. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक।

---

२. चउद्दस पुव्वा पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा

१. उप्पायपुव्वमग्गेणियं,
च तइयं च वीरियं पुव्वं।
अत्थीनत्थिपवायं,
तत्तो नाणप्पवायं च॥

२. सच्चप्पवायपुव्वं,
तत्तो आयप्पवायपुव्वं च।
कम्मप्पवायपुव्वं,
पच्चक्खाणं भवे नवमं॥

३. विज्जाअणुप्पवायं,
अबंझपाणाउ बारसं पुव्वं।
तत्तो किरियविसालं,
पुव्वं तह बिंदुसारं च॥

चतुर्दश पूर्वाणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी गाथा

१. उत्पादपूर्वमग्रेणीयं,
च तृतीयं च वीर्यं पूर्वम्।
अस्तिनास्तिप्रवादः,
ततो ज्ञानप्रवादश्च॥

२. सत्यप्रवादपूर्वं,
ततः आत्मप्रवादपूर्वं च।
कर्मप्रवादपूर्वं,
प्रत्याख्यानं भवेन्नवमम्॥

३. विद्यानुप्रवादं,
अवन्ध्यं प्राणायुर्द्वादशं पूर्वम्।
ततः क्रियाविशालं,
पूर्वं तथा बिन्दुसारं च॥

२. पूर्व चौदह[2] हैं, जैसे—

१. उत्पाद
३. अग्रेणीय
३. वीर्य
४. अस्ति-नास्तिप्रवाद
५. ज्ञानप्रवाद
६. सत्यप्रवाद
७. आत्मप्रवाद
८. कर्मप्रवाद
९. प्रत्याख्यान
१०. विद्यानुप्रवाद
११. अवन्ध्य
१२. प्राणायु
१३. क्रियाविशाल
१४. बिन्दुसार।

---

३. अग्गेणीअस्स णं पुव्वस्स चउद्दस वत्थू पण्णत्ता।

अग्रेणीयस्य पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

३. अग्रेणीय पूर्व के वस्तु चौदह हैं।[3]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य चतुर्दश श्रमणसाहस्र्यः उत्कृष्टा श्रमणसम्पद् आसीत्।

४. श्रमण भगवान् महावीर की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा चौदह हजार श्रमणों की थी।

५. कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा—मिच्छदिट्ठी सासायणसम्मदिट्ठि सम्मामिच्छदिट्ठि अविरयसम्मदिट्ठी विरयाविरए पमत्तसंजए अप्पमत्तसंजए नियट्टिबायरे अनियट्टिबायरे सुहुमसंपराए—उवसमए वा खवए वा, उवसंतमोहे खीणमोहे सजोगी केवली अजोगी केवली।

कर्मविशोधिमार्गणां प्रतीत्य चतुर्दश जीवस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मिथ्यादृष्टिः सास्वादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः अविरतसम्यग्दृष्टिः विरताविरतः प्रमत्तसंयतः अप्रमत्तसंयतः निवृत्तिबादरः अनिवृत्तिबादरः सूक्ष्मसम्परायः—उपशमको वा क्षपको वा, उपशान्तमोहः क्षीणमोहः सयोगी केवली अयोगी केवली।

५. कर्म-विशुद्धि की मार्गणा (गवेषणा) के आधार पर जीवस्थान चौदह हैं,[४] जैसे—१. मिथ्यादृष्टि, २. सास्वादन सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ४. अविरत सम्यग्दृष्टि, ५. विरताविरत, ६. प्रमत्तसंयत, ७. अप्रमत्तसंयत, ८. निवृत्तिबादर, ९. अनिवृत्तिबादर, १०. सूक्ष्मसंपराय—उपशमक या क्षपक, ११. उपशान्त मोह, १२. क्षीण मोह, १३. सयोगी केवली, १४. अयोगी केवली।

६. भरहेरवयाओ णं जीवाओ चउद्दस-चउद्दस जोयणसहस्साइं चत्तारि य एगुत्तरे जोयणसए छच्च एकूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।

भरतैरवतयोर्जीवे चतुर्दश-चतुर्दश योजनसहस्राणि चत्वारि च एकोत्तरं योजनशतं षट् च एकोनविंशं भागं योजनस्य आयामेन प्रज्ञप्ते।

६. भरत और ऐरवत—प्रत्येक क्षेत्र की जीवा की लम्बाई १४४०१ ६/१९ योजन है।

७. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दस रयणा पण्णत्ता, तं जहा—इत्थीरयणे सेणावइरयणे गाहावइरयणे पुरोहियरयणे वड्ढइरयणे आसरयणे हत्थिरयणे असिरयणे दंडरयणे चक्करयणे छत्तरयणे चम्मरयणे मणिरयणे कागिणिरयणे।

एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनश्चतुर्दश रत्नानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—स्त्रीरत्नं सेनापतिरत्नं गृहपतिरत्नं, पुरोहितरत्नं वर्द्धकिरत्नं, अश्वरत्नं हस्तिरत्नं असिरत्नं दण्डरत्नं चक्ररत्नं छत्ररत्नं चर्मरत्नं मणिरत्नं काकिणीरत्नम्।

७. प्रत्येक चातुरंत चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हैं,[५] जैसे—

१. स्त्रीरत्न,	८. असिरत्न,
२. सेनापतिरत्न,	९. दंडरत्न,
३. गृहपतिरत्न,	१०. चक्ररत्न,
४. पुरोहितरत्न,	११. छत्ररत्न,
५. वर्धकीरत्न,	१२. चर्मरत्न,
६. अश्वरत्न,	१३. मणिरत्न,
७. हस्तीरत्न,	१४. काकिणीरत्न।

८. जंबुद्दीवे णं दीवे चउद्दस महानईओ पुव्वावरेणं लवणसमुद्दं समप्पेंति, तं जहा—गंगा सिंधू रोहिआ रोहिअंसा हरी हरिकंता सीआ सीओदा नरकंता नारिकंता सुवण्णकूला रुप्पकूला रत्ता रत्तवई।

जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुर्दशमहानद्यः पूर्वापरेण लवणसमुद्रं समपर्यन्ति तद्यथा—गङ्गा सिन्धुः रोहिता रोहितांशा हरित् हरिकान्ता सीता सीतोदा नरकान्ता नारीकान्ता सुवर्णकूला रुक्मकूला रक्ता रक्तवती।

८. जम्बूद्वीप द्वीप में चौदह महानदियां पूर्व-पश्चिम से लवण-समुद्र में अवतीर्ण होती हैं, जैसे—गंगा, सिन्धु, रोहिता, रोहितांशा, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नरकान्ता, नारीकान्ता, सुवर्णकूला, रुक्मकूला, रक्ता और रक्तवती।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चतुर्दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. पंचमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चतुर्दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. चौथी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौदह सागरोपम की है।

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां चतुर्दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की है।

१२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां चतुर्दश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति चौदह पल्योपम की है।

१३. लंतए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

लान्तके कल्पे देवानामुत्कर्षेण चतुर्दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. लान्तककल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की है।

१४. महासुक्के कप्पे देवाणं जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महाशुक्रे कल्पे देवानां जघन्येन चतुर्दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. महाशुक्रकल्प के देवों की जघन्य स्थिति चौदह सागरोपम की है।

१५. जे देवा सिरिकंतं सिरिमहियं सिरिसोमनसं लंतयं काविट्ठं महिंदं महिंदोकंतं महिंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः श्रीकान्तं श्रीमहितं श्रीसौमनसं लान्तकं कापिष्ठं महेन्द्रं महेन्द्रावकान्तं महेन्द्रोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण चतुर्दश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. श्रीकान्त, श्रीमहित, श्रीसौमनस, लान्तक, कापिष्ठ, महेन्द्र, महेन्द्रावकान्त और महेन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौदह सागरोपम की है।

१६. ते णं देवा चउद्दसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाश्चतुर्दशभिरर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१६. वे देव चौदह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१७. तेसि णं देवाणं चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां चतुर्दशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१७. उन देवों के चौदह हजार वर्षों से आहार करने की इच्छा उत्पन्न होतीहै।

१८. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे चउद्दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः ये चतुर्दशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव चौदह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. जीवों के समूह (भूअग्गामा)

भूत का अर्थ है—जीव और ग्राम का अर्थ है—समूह। भूतग्राम अर्थात् जीवों के समूह।[1] जीव समूहों के ये चौदह प्रकार बहुत प्रचलित हैं और पचीस बोल आदि के थोकड़ों में इनका समावेश है।

कहीं-कहीं चौदह गुणस्थानों को भी इनके अन्तर्गत माना है। वहां इनका विभाग गुणों के आधार पर किया गया है।[2]

२. पूर्व चौदह (चउद्दस पुव्वा)

दृष्टिवाद के पांच विभाग हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्वानुयोग, पूर्वगत और चूलिका।

पूर्वगत के चौदह विभाग हैं। वे पूर्व कहलाते हैं। उनका परिणाम बहुत ही विशाल है। ये श्रुत या शब्दज्ञान के समस्त विषयों के अक्षय कोश होते हैं। इनकी रचना के बारे में दो विचारधाराएं हैं—पहली के अनुसार भगवान् महावीर के पूर्व ही ज्ञानराशि का यह भाग चला आ रहा था। इसलिए उत्तरवर्ती साहित्य रचना के समय इसे 'पूर्व' कहा गया।

दूसरी विचारधारा के अनुसार द्वादशांगी से पूर्व रचे गए, इसलिए इन्हें 'पूर्व' कहा गया।[3]

पूर्वों में सारा श्रुत समा जाता है। किन्तु साधारण बुद्धि वाले उसे पढ़ नहीं सकते। उनके लिए द्वादशांगी की रचना की गई।[4] आगम-साहित्य में अध्ययन परम्परा के तीन अंग मिलते हैं। कुछ श्रमण चतुर्दशपूर्वी होते थे, कुछ द्वादशांगी के विद्वान् और कुछ सामायिक आदि ग्यारह अंगों के अध्येता। चतुर्दशपूर्वी श्रमणों का अधिक महत्त्व रहा है। उन्हें श्रुतकेवली कहा गया है। पूर्वों की भाषा संस्कृत मानी जाती है। इनका विषय गहन और भाषा सहज-सुबोध नहीं थी। इसलिए अल्पमति लोगों के लिए द्वादशांगी रची गई—

'बालस्त्रीमन्दमूर्खाणां, नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृते कृतः॥'

चौदह पूर्व

क्रम सं०	नाम	विषय	पद-परिणाम	वस्तु	चूलिका वस्तु
१.	उत्पाद	द्रव्य और पर्यायों की उत्पत्ति	एक करोड़	दस	चार
२.	अग्रायणीय	द्रव्य, पदार्थ और जीवों का परिमाण	छियानवें लाख	चौदह	बारह
३.	वीर्य-प्रवाद	सकर्म और अकर्म जीवों के वीर्य का वर्णन	सत्तरलाख	आठ	आठ
४.	अस्तिनास्ति-प्रवाद	पदार्थ की सत्ता और असत्ता का निरूपण	साठ लाख	अठारह	दस
५.	ज्ञान-प्रवाद	ज्ञान का स्वरूप और प्रकार	एक कम एक करोड़	बारह	०
६.	सत्य-प्रवाद	सत्य का निरूपण	एक करोड़ छह	दो	०
७.	आत्म-प्रवाद	आत्मा और जीव का निरूपण	छब्बीस करोड़	सोलह	०
८	कर्म-प्रवाद	कर्म का स्वरूप और प्रकार	एक करोड़ अस्सी लाख	तीस	०
६.	प्रत्याख्यान प्रवाद	व्रत-आचार, विधि-निषेध	चौरासी लाख	बीस	०
१०.	विद्यानुप्रवाद	सिद्धियों और उनके साधनों का निरूपण	एक करोड़ दस लाख	पन्द्रह	०
११.	अवन्ध्य (कल्याण)	शुभाशुभ फल की अवश्यंभाविता का निरूपण	छब्बीस करोड़	बारह	०
१२.	प्राणायुप्रवाद	इन्द्रिय, श्वासोश्वास, आयुष्य और प्राण का निरूपण	एक करोड़ छप्पन लाख	तेरह	०
१३.	क्रियाविशाल	शुभाशुभ क्रियाओं का निरूपण	नौ करोड़	तीन	०
१४.	लोकबिन्दुसार	लब्धि का स्वरूप और विस्तार	साढे बारह करोड़	पच्चीस	०

१. समवायांगवृत्ति, पत्र २६ :
भूतानि—जीवाः, तेषां ग्रामाः—समूहाः भूतग्रामाः।

२. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ १०७ :
……एवं चतुर्दशप्रकारो भूतग्रामः प्रदर्शितः, अधुनाऽमुमेव गुणस्थानद्वारेण दर्शयन्नाह संग्रहणिकारः—
'मिच्छदिट्ठि सासायणे य तह……… ॥ १ ॥ ………सजोगी अजोगी य ॥ २ ॥

३. स्थानांग १०/९२, वृत्ति पत्र ४६६ :
सर्वश्रुतात् पूर्वं क्रियते इति पूर्वाणि।

४. आवश्यकनिर्युक्ति :
जइविय भूयावाए सव्वस्स वयोगयस्स ओयारो।
निज्जूहणा तहा विहु, दुम्मेहे पप्प इत्थी य॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. अग्रेयणीय (अग्गेणीअस्स)

यह दूसरा पूर्व है। इसके चौदह वस्तु विभाग हैं। वृत्तिकार का कथन है कि उसके मूल वस्तु चौदह हैं और चूलिका बारह हैं।[1]

४. जीवस्थान चौदह हैं (चउद्दस जीवट्ठाणा पण्णत्ता)

उत्तरवर्ती-साहित्य में जो 'गुणस्थान' के नाम से प्रसिद्ध हैं, उनका मूल नाम 'जीवस्थान' हैं। आगम-साहित्य में 'गुणस्थान' का प्रयोग प्राप्त नहीं हुआ है। तत्त्वार्थसूत्र में भी उसका उल्लेख नहीं है। कर्मग्रन्थ में उसका प्रयोग मिलता है।[2] गोम्मटसार में जीवों को 'गुण' कहा गया है। उसके अनुसार चौदह जीवस्थान कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि की भावाभावजनित अवस्थाओं से निष्पन्न होते हैं। परिणाम और परिणामी का अभेदोपचार करने पर जीवस्थानों को 'गुणस्थान' की संज्ञा दी गई है।[3]

प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्हें 'जीवसमास' भी कहा गया है।[4] धवला के अनुसार जीव गुणों में रहते हैं। इसलिए उन्हें जीवसमास कहा गया है। गुण पांच हैं—

१. औदयिक—कर्म के उदय से उत्पन्न गुण।
२. औपशमिक—कर्म के उपशम से उत्पन्न गुण।
३. क्षायोपशमिक—कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न गुण।
४. क्षायिक—कर्म के क्षय से उत्पन्न गुण।
५. पारिणामिक—कर्म के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम के बिना उत्पन्न गुण।

इन गुणों के साहचर्य से जीव को भी गुण कहा जाता है।[5] जीवस्थान को उत्तरवर्ती-साहित्य में इसी अपेक्षा से गुणस्थान कहा गया है। संक्षेप और ओघ—ये दो गुणस्थान के पर्यायवाची शब्द हैं।[6]

चतुर्थ कर्मग्रन्थ के मुख्य प्रतिपाद्य तीन हैं—

१. जीवस्थान।
२. मार्गणास्थान।
३. गुणस्थान।

कर्मग्रन्थ में जो चौदह जीवस्थान निर्दिष्ट हैं[7], उन्हें प्रस्तुत समवाय में चौदह भूतग्राम कहा गया है[8] और कर्मग्रन्थ में

---

१. समवायांगवृत्ति पत्र २६ :
द्वितीयपूर्वस्य वस्तूनि—विभागविशेषाः यानि च चतुर्दश मूलवस्तूनि, चूलावस्तूनि तु द्वादशेति।

२. कर्मग्रन्थ ४, गा० १ :
नमिय जिणं जिग्रमग्गण, गुणठाणुवग्रोगजोगलेसाग्रो।
बंधप्पबहूभावे संखिज्जाई किमवि वुच्छं॥

३ गोम्मटसार, गा०, ८ :
जेहिं तु लक्खिज्जंते, उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा, णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं॥

४. वही, गा० १०।

५. षट्खंडागम, धवलावृत्ति, प्रथम खंड, पृ० १६०-१६१ :
जीवसमास इति किम ? जीवा सम्यगासतेऽस्मिन्निति जीवसमासः। क्वासते ? गुणेषु। के गुणाः ? ग्रौदयिकौपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकपारिणामिक इति गुणाः। अस्य गमनिका, कर्मणामुदयादुत्पन्नो गुणः ग्रौदयिकः तेषामुपशमादौपशमिकः, क्षयात्क्षायिकः, तत्क्षयादुपशमाच्चोत्पन्नो गुणः क्षायोपशमिका। कर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशममन्तरेणोत्पन्नः पारिणामिकः। गुणसहचरितत्वादात्मापि गुणसंज्ञां प्रतिलभते।

६. गोम्मटसार, गा० ३ :
संखेग्रो ग्रोघोत्ति य, गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।

७ कर्मग्रन्थ ४, गा० २ :
इह सुहुमबायरेगिंदिबितिचउग्रसंन्निसन्निपंचिंदी।
ग्रपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा॥

८. समवायांग, १४/१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो चौदह गुणस्थान निर्दिष्ट हैं, उन्हें प्रस्तुत समवाय में चौदह जीवस्थान कहा गया है। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थों में संज्ञा-भेद प्राप्त होता है।

गोम्मटसार में गुणस्थानों के साथ भावों की योजना निम्न प्रकार मिलती है[1] :

गुणस्थान	भाव
१. मिथ्यादृष्टि	औदयिक
२. सास्वादन	पारिणामिक
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि	क्षायोपशमिक
४. अविरतसम्यग्दृष्टि	औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक
५. विरताविरत	क्षायोपशमिक
६. प्रमत्तसंयत	,,
७. अप्रमत्तसंयत	,,
८. निवृत्तिबादर	उपशम श्रेणी हो तो औपशमिक, क्षपक श्रेणी हो तो क्षायिक।
९. अनिवृत्तिबादर	,, ,, ,,
१०. सूक्ष्मसंपराय	,, ,, ,,
११. उपशान्तमोह	औपशमिक
१२. क्षीणमोह	क्षायिक
१३. सयोगीकेवली	,,
१४. अयोगीकेवली	,,

उक्त विवरण के अनुसार प्रथम गुणस्थान औदयिक-भाव है, किन्तु प्रस्तुत सूत्र में जीवस्थानों की रचना का आधार कर्म-विशुद्धि बतलाया गया है—'कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउद्दस जीवट्ठाणा पन्नत्ता·····।' इससे प्रथम गुणस्थान औदयिक-भाव प्रमाणित नहीं होता, किन्तु वह क्षायोपशमिक-भाव है। नेमिचन्द्र सूरि ने प्रथम चार गुणस्थानों को दर्शनमोह के उदय आदि से तथा अग्रिम गुणस्थानों को चारित्रमोह के क्षयोपशम आदि से निष्पन्न माना है।[2]

अभयदेव सूरि ने प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में गुणस्थानों को ज्ञानावरण आदि कर्मों की विशुद्धि से निष्पन्न बतलाया है।[3]

यद्यपि गुणस्थानों में ज्ञानावरण आदि कर्मों के क्षयोपशम आदि होते हैं, किन्तु उनकी रचना का मौलिक आधार दर्शनमोह और चारित्रमोह के क्षयोपशम आदि ही प्रतीत होते हैं। प्रथम गुणस्थान का अधिकारी व्यक्ति मिथ्यादृष्टि होता है। उसके दर्शनमोह का उदय होता है। इस नय की मुख्यता से अनेक आचार्यों ने प्रथम गुणस्थान को औदयिक-भाव माना है। उक्त गुणस्थान में दर्शनमोह का उदय होने पर भी उसके दर्शनमोह का आंशिक क्षयोपशम भी होता है। इस क्षयोपशम के नय से प्रस्तुत सूत्र में प्रथम गुणस्थान को विशुद्धिजनित—क्षायोपशमिक-भाव माना गया है। इस प्रकार नय-दृष्टि से विचार करने पर दोनों में विरोध प्रतीत नहीं होता, किन्तु मुख्यता और गौणता का अन्तर प्रतीत होता है।

चौदह जीवस्थानों में चतुर्थ से क्रमिक ऊर्ध्वारोहण होता है। द्वितीय में अपक्रमण होता है। प्रथम और तृतीय अध्यात्म-विकास के न्यूनतम स्थान हैं। योगविद् जैन आचार्यों ने चौथे से बारहवें जीवस्थान की तुलना संप्रज्ञातयोग और तेरहवें-चौदहवें जीवस्थान की तुलना असंप्रज्ञातयोग से की है।[4]

योगवाशिष्ठ में चौदह भूमिकाओं का वर्णन है। उनमें सात भूमिकाएं अज्ञान[5] की और सात ज्ञान की[6] की हैं। संख्या की दृष्टि से इनकी जीवस्थानों से समता है, किन्तु क्रमिक विकास की दृष्टि से इनमें साम्य नहीं है।

---

१. गोम्मटसार, गा० ११-१४।

२. वही, गा० १२, १३।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ३६ :
कर्मविशोधिमार्गणां प्रतीत्य—ज्ञानावरणादिकर्मविशुद्धिगवेषणामाश्रित्य·····।

४. योगावतारद्वात्रिंशिका, १५, २१।

५. योगवाशिष्ठ, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ११७, श्लो० २-२४।

६. वही, सर्ग ११८, श्लो० ५-१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवस्थान की अर्थ-मीमांसा

१. मिथ्यादृष्टि जीवस्थान :

जिसकी दृष्टि मिथ्या—विपरीत होती है उसे मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। इस जीवस्थान में दर्शनमोह का उदय प्रधान है, उसका क्षयोपशम अन्य जीवस्थानों की अपेक्षा न्यूनतम होता है।

२. सास्वादन सम्यग्दृष्टि :

जो जीव औपशमिक सम्यक्त्व से च्युत हो जाता है, किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता, उसे सास्वादन सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। प्राकृत में 'सासायण' शब्द है। उसके संस्कृत रूप दो मिलते है—(१) सास्वादन और (२) सासादन। औपशमिक सम्यक्त्व से च्युत हो जाने वाले मिथ्यात्वाभिमुख जीव के सम्यक्त्व का आंशिक आस्वादन शेष रहता है। इस अर्थ की दृष्टि से प्रस्तुत जीवस्थान को सास्वादन कहा गया है।[1]

औपशमिक सम्यक्त्व से च्युत होने वाला जीव सम्यक्त्व का आसादन करता है। इसलिए उसे सासादन कहा जाता है।[2]

३. सम्यग्-मिथ्यादृष्टि :

जिसकी दृष्टि मिथ्या और सम्यक्—दोनों परिणामों से मिश्रित होती है, उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

औपशमिक सम्यक्त्व में वर्तमान जीव मिथ्यामोहनीय के परमाणुओं का शोधन कर, उन्हें तीन पुञ्जों में वर्गीकृत करता है—(१) शुद्ध, (२) अर्द्धशुद्ध और (३) अशुद्ध। शुद्ध पुञ्ज में सम्यक्त्व-घातक शक्ति नहीं होती। अर्द्धशुद्ध पुञ्ज में सम्यक् और असम्यक्—दोनों परिणामों का मिश्रण होता है। अशुद्ध पुञ्ज में सम्यक्त्व-घातक शक्ति होती है।

औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जीव सम्यक्दृष्टि बन जाता है—चतुर्थ जीवस्थान का अधिकारी हो जाता है। किन्तु उसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की होती है। उसके समाप्त होने पर जीव का जैसा परिणाम रहता है वैसा पुञ्ज उदय में आ जाता है और उसके अनुसार ही वह क्षायोपशमिक सम्यक्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

औपशमिक सम्यक्त्व प्रशान्त और आनन्दपूर्ण स्थिति है। उसके अन्तिम (षडावलिका के शेष) समय में परिणामों की प्रशान्तता भंग होने पर जीव अशुद्ध पुञ्ज की ओर झुक जाता है। उसे प्रशान्त स्थिति से अशान्त स्थिति तक पहुंचने में स्वल्प-सा समय लगता है। उस अवधि में सासादन सम्यग्दृष्टि की परिणामधारा रहती है।

जीव की परिणाम धारा की प्रक्रिया का अध्ययन करने पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त होता है :

प्रथम जीवस्थान आत्म-विकास की न्यूनतम भूमिका है, इसलिए उसमें साधारणतया सभी जीव रहते हैं और उसकी अवधि बहुत लम्बी है।

जीव विकासोन्मुखी होकर प्रथम भूमिका से सीधा चतुर्थ भूमिका में जाता है। उस भूमिका में यदि दर्शनमोह क्षीण हो जाता है तो जीव फिर अपक्रमण नहीं करता और यदि वह उपशान्त या क्षय-उपशम की अवस्था में होता है तब उसके लिए उत्क्रमण और अपक्रमण—दोनों की संभावना रहती है। यदि क्षयोपशम की अवस्था से जीव अपक्रमण करता है तो वह चतुर्थ भूमिका से प्रथम भूमिका में चला जाता है। यदि वह उपशान्त स्थिति से अपक्रमण करता है, तो वह अन्तिम काल में दूसरी भूमिका का अनुभव करता है और उसकी अवधि पूर्ण होने पर वह तृतीय या प्रथम भूमिका में चला जाता है। वह प्रशान्त स्थिति से चलित होने पर क्षयोपशम सम्यक्त्व की अवस्था में चला जाता है, तो चतुर्थ भूमिका में ही रह जाता है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र, २६ :
सहैषत्तत्त्वश्रद्धानरसास्वादनेन वर्त्तते इति सास्वादनः, घण्टालालान्यायेन प्रायः परित्यक्तसम्यक्त्वः तदुत्तरकालं षडावलिकः, तथा चोक्तम्—"उवसमसंमत्ताश्रो चयश्रो मिच्छं अपावमाणस्स। सासायणसंमत्तं तदंतरालंमि छावलियं ॥ १ ॥ इति, सास्वादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति विग्रहः।

२. षट्खंडागम, धवलावृत्ति, प्रथम खंड, पृ० १६३ :
आसादनं सम्यक्त्वविराधनम्, सह आसादनेन वर्तत इति सादादनो विनाशितसम्यग्दर्शनोऽप्राप्तमिथ्यात्वकर्मोदयजनितपरिणामो मिथ्यात्वाभिमुखः सासादन इति भण्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अविरत सम्यग्दृष्टि :

जिसकी दृष्टि सम्यग् होती है किन्तु जिसे व्रत की योग्यता प्राप्त नहीं होती, उसे अविरत सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। षट्खंडागम में इसका नाम 'असंयत सम्यग्दृष्टि' भी मिलता है।[1]

आत्म-विकास की तीन उपलब्धियां हैं—दर्शन, ज्ञान और चारित्र। प्रस्तुत भूमिका में दर्शन सम्यक् हो जाता है, ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है, किन्तु उसका पर्याप्त विकास इसमें नहीं होता। चरित्र का विकास इसकी अगली भूमिका से प्रारम्भ होता है।

इस भूमिका में वर्तमान जीव इन्द्रिय-विषयों तथा हिंसा से विरत नहीं होता, किन्तु उसका दृष्टिकोण समीचीन हो जाता है।[2]

५. विरताविरत :

जो जीव इन्द्रिय-विषय और हिंसा से एक सीमा तक विरत होता है, उसे विरताविरत कहा जाता है। षट्खंडागम में इसे 'संयतासंयत कहा गया हैं।[3]

गोम्मटसार के अनुसार विरताविरत जीव त्रस जीवों की हिंसा से विरत हो जाता है, किन्तु स्थावर जीवों की हिंसा से विरत नहीं होता। स्थावर जीवों की अनावश्यक हिंसा से विरत हो जाता है, किन्तु उनकी आवश्यक हिंसा से विरत नहीं हो पाता।[4]

६ प्रमत्त संयत :

जो सर्वविरत होने पर भी प्रमादवान् होता है उसे 'प्रमत्तसंयत कहा जाता है। प्रमाद के पांच प्रकार मिलते हैं—(१) मद, (२) विषय, (३) कषाय, (४) निद्रा और (५) विकथा।

नेमिचन्द्र सूरि ने प्रमाद के १५ प्रकार बतलाए हैं[5]—

चार विकथा—स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा और राजकथा।

चार कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ।

पांच इन्द्रिय—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र तथा निद्रा और प्रणय।

आचार्य भिक्षु के अनुसार प्रमत्तसंयत जीवस्थान का संबंध उक्त प्रमादों से नहीं है।[6] उसका संबंध प्रमाद आस्रव से है। क्रम-विकास की दृष्टि से यह उपयुक्त भी है। चतुर्थ भूमिका में सम्यक्दर्शन होने पर भी व्रत नहीं होता। पंचम भूमिका में आंशिक विरति होती है, किन्तु सर्वविरति नहीं होती। छठी भूमिका में सर्वविरति होती है, किन्तु प्रमाद आस्रव विलीन नहीं होता। प्रस्तुत भूमिका में प्रमाद आस्रव निरंतर रहता है।

७. अप्रमत्त संयत :

इस भूमिका में प्रमाद का विलय हो जाता है। इस भूमिका से लेकर अगली सब भूमिकाओं में मुनि अपने स्वरूप के प्रति अप्रमत्त रहते हैं।

---

१. षट्खंडागम, १/१/१२ : असंजदसम्माइट्ठी।

२. गोम्मटसार, गा० २६ :
णो इन्दियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं, सम्माइट्ठी अविरदो सो॥

३. षट्खडागम, १/१/१३। संजदासंजदा।

४. गोम्मटसार, गा० ३१ :
जो तसवहाउविरदो, अविरदो तहय थावरवहादो।
एक्क समयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेक्कमई॥

५. वही, गा० ३४ :
विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य।
चदु चदु पणमेगेगं, होंति पमादा हु पण्णरस॥

६. नवपदार्थ, ५/१/६,८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. **निवृत्तिबादर**
९. **अनिवृत्तिबादर**

इन दोनों जीवस्थानों में दसवें जीवस्थान की अपेक्षा बादर (स्थूल) कषाय उदय में आता है। दसवें स्थान से पहले वह सूक्ष्म नहीं होता। यहां निवृत्ति का अर्थ 'भेद'[1] और अनिवृत्ति का अर्थ 'अभेद' है।

निवृत्तिबादर जीवस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। उसके असंख्य समय होते हैं। इसमें भिन्न समयवर्ती जीवों की परिणाम-विशुद्धि सदृश नहीं होती। एक समयवर्ती जीवों की परिणाम-विशुद्धि सदृश और विसदृश—दोनों प्रकार की हो सकती है। इसलिए यह विसदृश परिणाम-विशुद्धि का जीवस्थान है।[2]

अनिवृत्तिबादर जीवस्थान के एक समयवर्ती जीवों की परिणाम-विशुद्धि सदृश होती है। इसलिए यह सदृश परिणाम-विशुद्धि का जीवस्थान है।[3] पूर्ववर्ती जीवस्थान की अपेक्षा उत्तरवर्ती जीवस्थान में कषाय के अंश कम होते हैं। जैसे-जैसे कषाय के अंश कम होते हैं, वैसे-वैसे परिणाम की विशुद्धि बढ़ती जाती है। आठवें जीवस्थान में परिणाम-विशुद्धि की भिन्नता होती है, किन्तु नौवें में विशुद्धि की मात्रा बढ़ने के कारण वह नहीं होती।

निवृत्तिबादर को अपूर्वकरण भी कहा जाता है।[4] इस जीवस्थान में अपूर्व विशुद्धि—पूर्व जीवस्थानों में अप्राप्त परिणाम-विशुद्धि प्राप्त होती है। इसलिए इसका नाम अपूर्वकरण है।[5]

आठवें जीवस्थान से दो श्रेणियां होती हैं—(१) उपशमश्रेणी और (२) क्षपकश्रेणी। उपशमश्रेणी प्रतिपन्न जीव कषाय को उपशान्त करता हुआ, ग्यारहवीं भूमिका (उपशान्त मोह) तक पहुंच कर फिर निचली भूमिकाओं में लौट आता है। क्षपकश्रेणी प्रतिपन्न जीव कषाय को क्षीण करता हुआ, दसवीं भूमिका से सीधा बारहवीं भूमिका में चला जाता है।

१०. **सूक्ष्मसंपराय :**

इस जीवस्थान में 'संपराय' (कषाय) का उदय सूक्ष्म हो जाता है। केवल लोभ कषाय का सूक्ष्मांश उदय में रहता है।

११. **उपशान्तमोह :**

इस भूमिका में मोह सर्वथा उपशान्त हो जाता है। इसलिए प्रस्तुत भूमिका में वर्तमान जीव 'उपशान्त मोह वीतराग' कहलाता है।

१२. **क्षीणमोह :**

इस भूमिका में मोह सर्वथा क्षीण हो जाता है। इसलिए प्रस्तुत भूमिका में वर्तमान जीव 'क्षीण मोह वीतराग' कहलाता है।

गोम्मटसार में उक्त दोनों जीवस्थानों के लिए 'उपशान्त कषाय' और 'क्षीण कषाय' का प्रयोग मिलता है।[6]

१३. **सयोगी केवली :**

चार घात्यकर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय) के क्षीण होने पर भी जिसके शरीर आदि की प्रवृत्ति शेष रहती है, उसे सयोगी केवली कहा जाता है।

---

१. षट्खंडागम, प्रथम भाग, धवलावृत्ति, पृ० १८३ :
निर्भेदेन वृत्तिः निवृत्तिः।

२. (क) समवायांगवृत्ति, पत्र २६ :
निवृत्ति : यद्गुणस्थानकं समकालप्रतिपन्नानां जीवानामध्यवसायभेदः तत्प्रधानोबादरो—बादरसम्परायो निवृत्तिबादरः।

(ख) गोम्मटसार, गा० ५२ :
भिन्नसमयट्ठियेहि दु जीवेहिं ण होहि सव्वदा सरिसो।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा॥

३. षट्खंडागम, प्रथम भाग, धवलावृत्ति, पृ० १८३, १८४।

४. गोम्मटसार, गा० ५०।

५. वही, गा० ५१।

६. वही, गा० ६१, ६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. **अयोगी केवली :**

जिसके शरीर आदि की प्रवृत्ति का भी निरोध हो जाता है, उसे 'अयोगी केवली' कहा जाता है।

षट्खंडागम में उक्त दोनों जीवस्थानों के नाम 'सयोगकेवली' और 'अयोगकेवली' भी मिलते हैं।[1]

५. चातुरंग चक्रवर्ती के चौदह रत्न (चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दस रयणा)

रत्न का अर्थ है—अपनी-अपनी जाति की सर्वोत्कृष्ट वस्तुएं—"रत्नं निगद्यते तज्जातौ जातौ यदुत्कृष्टमिति।"[2]

चार अन्तवाली भूमि के स्वामी को चातुरंत चक्रवर्ती कहते हैं।[3]

प्रस्तुत आलापक में चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का उल्लेख है। यह उल्लेख अन्यान्य आगम ग्रन्थों तथा व्याख्या साहित्य में विस्तार से उपलब्ध होता है। स्थानांग के दो आलापकों (७/६७-६८) में चक्रवर्ती के इन रत्नों का उल्लेख है। वहां आगमकार ने इनको दो भागों में विभक्त किया है—एकेन्द्रिय रत्न और पंचेन्द्रिय रत्न। सात एकेन्द्रिय रत्न हैं और सात पंचेन्द्रिय रत्न हैं। प्रस्तुत सूत्र में उनका समवेत उल्लेख है। प्रथम सात पंचेन्द्रिय रत्न हैं और शेष सात एकेन्द्रिय रत्न हैं। 'असि' आदि सात रत्न पृथ्वीकाय के जीवों से निष्पन्न होते हैं, इसलिए इन्हें एकेन्द्रिय रत्न माना है। इन चौदह रत्नों की विशेष जानकारी के लिए देखें—ठाणं ७/६७,६८, टिप्पण पृ० ७६६, ७६७।

बौद्ध साहित्य में चक्रवर्ती के सात रत्नों का उल्लेख है—

१. चक्ररत्न—यह रत्न समस्त आकार से परिपूर्ण, हजार अरों वाला, सनेमिक और सनाभिक होता है। इस रत्न की उत्पत्ति हो जाने पर वह मूर्धाभिषिक्त राजा (चक्रवर्ती) कहता है—'पवत्ततु भवं चक्करतनं, अभिविजिनातु भवं चक्करतनं' ति। तब चक्ररत्न चारों दिशाओं में प्रवर्तित होता है। जहां वह चक्ररत्न प्रतिष्ठित होता है, वहीं चक्रवर्ती राजा अपनी चतुरंगिनी सेना के साथ पड़ाव डालता है। उस दिशा के सभी राजा चक्रवर्ती के पास आकर उसका अनुशासन स्वीकार कर लेते हैं। इसी प्रकार चारों दिशाओं में वह चक्ररत्न प्रवर्तित होता है और सभी राजा चक्रवर्ती के अनुगामी बन जाते हैं। इस प्रकार चक्ररत्न समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर विजय पाकर, पुनः राजधानी में लौट आता है। वह चक्रवर्ती के अन्तःपुर के द्वार के मध्य स्थित हो जाता है।

२. हस्तिरत्न—श्वेत वर्ण वाला, सात हाथ ऊंचा, ऋद्धिमान् 'उपोसथ' नामका हस्तिरत्न उत्पन्न होता है। चक्रवर्ती पूर्वान्ह् में उस पर आरूढ होकर समुद्रपर्यन्त परिभ्रमण कर, राजधानी में आकर प्रातरास लेता है। यह उसकी शीघ्रगामिता का निदर्शन है।

३. अश्वरत्न—यह पूर्ण श्वेत और सुन्दर होता है। इसका नाम 'बलाहक' होता है। यह भी वायु की तरह शीघ्र गति वाला होता है। पूर्वाह्न में चक्रवर्ती इस पर आरूढ होकर समुद्रपर्यन्त भूमि का परिभ्रमण कर राजधानी में आकर कलेवा कर लेता है।

४. मणिरत्न—यह शुभ और गतिमान वैडूर्य मणि आठ कोणों वाला तथा सुपरिकर्मित होता है। चक्रवर्ती राजा इस मणिरत्न को ध्वजा के अग्रभाग में आरोपित कर चतुरंगिनी सेना के साथ घोर अंधकारमय रात्रि में प्रयाण करता है। यह मणि इतना प्रकाश फैलाता है कि लोगों को रात में दिन का भ्रम हो जाता है।

५. स्त्रीरत्न—चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की उत्पत्ति होती है। वह स्त्री अत्यन्त सुन्दर, दर्शनीय, प्रासादिक, सुन्दर वर्ण वाली, न अति दीर्घ, न अति ह्रस्व, न अति कृश, न अति स्थूल, न अत्यन्त कृष्ण वर्णवाली, न अत्यन्त श्वेत वर्णवाली, मनुष्यों के वर्ण से अतिक्रान्त दिव्य वर्ण से संयुक्त होती है। उसका स्पर्श तूल और कपास के स्पर्श की तरह अत्यन्त मृदु होता है। उस स्त्रीरत्न का शरीर शीतकाल में ऊष्ण और ग्रीष्मकाल में शीतल होता है। उसकी काया से चंदन की गंध फूटती रहती है। उसके मुंह से उत्पल की गंध आती है। वह स्त्रीरत्न चक्रवर्ती के उठने से पूर्व उठती है, सोने के पश्चात् सोती है। वह

---

१. (क) षट्खंडागम, १/१/२१ : सजोगकेवली।
(ख) वही, १/१/२२ : प्रजोगकेवली।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र २७ :
रत्नानिस्वजातीयमध्ये समुत्कर्षवन्ति वस्तूनीति।

३. वही, पत्र २७ :
चत्वारोऽन्ता—विभागा यस्यां सा चतुरन्ता भूमिः तत्र भवः स्वामितयेति चातुरन्तः स चासौ चक्रवर्ती चेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन के अनुकूल वर्तने वाली तथा प्रियवादिनी होती है। वह मन से भी चक्रवर्ती का अतिक्रमण नहीं करती तो फिर काया से अतिक्रमण करने की बात ही प्राप्त नहीं होती।

५. गृहपतिरत्न—गृहपति के कर्म-विपाकज दिव्यचक्षु प्रादुर्भूत होता है। वह चक्रवर्ती की निधियों को, उनके अधिष्ठाताओं के साथ अथवा अधिष्ठाताओं से रहित, उस दिव्यचक्षु से देखता है। चक्रवर्ती उस गृहपतिरत्न को साथ ले, नाव पर आरूढ हो गंगा के बीच में जाकर कहता है—'गृहपति ! मुझे हिरण्य-सुवर्ण चाहिए।' तब गृहपतिरत्न दोनों हाथों को गंगा के पानी के प्रवाह में डालकर हिरण्य-सुवर्ण से भरे कलश को बाहर निकालकर चक्रवर्ती के सम्मुख रखता है। फिर वह पूछता है—महाराज ! इतना धन पर्याप्त है या और लाऊं !

७. परिनायकरत्न—यह पंडित, व्यक्त, मेधावी और निपुण होता है। यह चक्रवर्ती के समस्त क्रिया-कलापों में परामर्श देता है।[1]

---

१. मज्झिमनिकाय III, २९/२/१४, पृ० २४२-२४६ [नालंदा संस्करण]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५
पण्णरसमो समवाओ : पन्द्रहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पण्णरस परमाहम्मिआ पण्णत्ता, तं जहा—	पञ्चदश परमाधार्मिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. परमाधार्मिक[1] पन्द्रह हैं, जैसे— १. अंब ९. असिपत्र २. अंबरिषी १०. धनु ३. श्याम ११. कुंभ ४. शबल १२. वालुका ५. रौद्र १३. वैतरणी ६. उपरौद्र १४. खरस्वर ७. काल १५. महाघोष ८. महाकाल
संगहणी गाहा १. अंबे अंबरिसी चेव, सामे सबलेत्ति यावरे। रुद्दोवरुद्दकाले य, महाकालेत्ति यावरे॥ २. असिपत्ते धणु कुम्भे, वालुए वेयरणीति य। खरस्सरे महाघोसे, एमेते पण्णरसाहिआ॥	संग्रहणी गाथा अम्बोऽम्बरिषी चैव, श्यामः शबल इति चापरः। रौद्रोपरौद्रकालाश्च, महाकाल इति चापरः॥ असिपत्रो धनुः कुम्भः, वालुका वैतरणीति च। खरस्वरो महाघोषः, एवमेते पञ्चदशाख्याताः॥	
२. णमी णं अरहा पण्णरस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	नमिः अर्हन् पञ्चदशधनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	२. अर्हत् नमि पन्द्रह धनुष्य ऊंचे थे।
३. धुवराहू णं बहुलपक्खस्स पाडिवयं पण्णरसइ भागं पण्णरसइ भागेणं चंदस्स लेसं आवरेत्ता णं चिट्ठति, तं जहा— पढमाए पढमं भागं बीआए बीयं भागं तइआए तइयं भागं चउत्थीए चउत्थं भागं पंचमीए पंचमं भागं छट्ठीए छट्ठं भागं सत्तमीए सत्तमं भागं अट्ठमीए अट्ठमं भागं नवमीए नवमं भागं दसमीए दसमं भागं एक्कारसीए एक्कारसमं भागं बारसीए बारसमं भागं	ध्रुवराहुः बहुलपक्षस्य प्रतिपदं पञ्चदशभागं पञ्चदशभागेन चन्द्रस्य लेश्यां आवृत्य तिष्ठति, तद्यथा— प्रथमायां प्रथमं भागं द्वितीयायां द्वितीयं भागं तृतीयायां तृतीयं भागं चतुर्थ्यां चतुर्थं भागं पञ्चम्यां पञ्चमं भागं षष्ठ्यां षष्ठं भागं सप्तम्यां सप्तमं भागं अष्टम्यां अष्टमं भागं नवम्यां नवमं भागं दशम्यां दशमं भागं एकादश्यां एकादशं भागं द्वादश्यां द्वादशं भागं	३. ध्रुवराहु[2] कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से प्रतिदिन चन्द्रमा की लेश्या[3] [मंडल] का पन्द्रहवां भाग आवृत करता है, जैसे— प्रतिपदा के दिन पहला पन्द्रहवां भाग। द्वितीया के दिन दूसरा पन्द्रहवां भाग। तृतीया के दिन तीसरा पन्द्रहवां भाग। चतुर्थी के दिन चौथा पन्द्रहवां भाग। पंचमी के दिन पांचवां पन्द्रहवां भाग। षष्ठी के दिन छठा पन्द्रहवां भाग। सप्तमी के दिन सातवां पन्द्रहवां भाग। अष्टमी के दिन आठवां पन्द्रहवां भाग। नवमी के दिन नौवां पन्द्रहवां भाग। दसमी के दिन दसवां पन्द्रहवां भाग। एकादशी के दिन ग्यारहवां पन्द्रहवां भाग। द्वादशी के दिन बारहवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरसीए तेरसमं भागं
चउद्दसीए चउद्दसमं भागं
पण्णरसेसु पण्णरसमं भागं ।

त्रयोदश्यां त्रयोदशं भागं
चतुर्दश्यां चतुर्दशं भागं
पञ्चदश्यां पञ्चदशं भागम् ।

पन्द्रहवां भाग। त्रयोदशी के दिन तेरहवां पन्द्रहवां भाग। चतुर्दशी के दिन चौदहवां पन्द्रहवां भाग। अमावस्या के दिन पन्द्रहवां पन्द्रहवां भाग—सम्पूर्ण चन्द्र-मंडल।

तं चेव सुक्कपक्खस्स उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठति, तं जहा—
पढमाए पढमं भागं जाव पण्णरसेसु पण्णरसमं भागं ।

तं चैव शुक्लपक्षस्य उपदर्शयन् उपदर्शयन् तिष्ठति, तद्यथा—
प्रथमायां प्रथमं भागं यावत् पञ्चदश्यां पञ्चदशं भागम् ।

वही [ध्रुवराहु] शुक्लपक्ष में प्रतिदिन एक-एक पन्द्रहवें भाग को उद्घाटित करता है, जैसे—
प्रतिपदा के दिन पहला पन्द्रहवां भाग उद्घाटित करता है यावत् पूर्णिमा के दिन पन्द्रहवां पन्द्रहवां भाग उद्घाटित करता है अर्थात् सम्पूर्ण चन्द्र-मण्डल को उद्घाटित करता है।[४]

४. छ णक्खत्ता पण्णरसमुहुत्तसंजुत्ता पण्णत्ता, तं जहा—

संगहणी गाहा

१. सतभिसय भरणि अद्दा,
असलेसा साइ तह य जेट्ठा य।
एते छण्णक्खत्ता,
पण्णरसमुहुत्तसंजुत्ता॥

षड् नक्षत्राणि पञ्चदशमहूर्त्तसंयुक्तानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

संग्रहणी गाथा

शतभिषग् भरण्यार्द्रा,
अश्लेषा स्वातिस्तथा च ज्येष्ठा च।
एतानि षड् नक्षत्राणि,
पञ्चदशमुहूर्त्तसंयुक्तानि॥

४. छह नक्षत्र चन्द्रमा के साथ पन्द्रह मुहूर्त्त तक योग करते हैं,[५] जैसे—

१. शतभिषक्
२. भरणि
३. आर्द्रा
४. अश्लेषा
५. स्वाति
६. ज्येष्ठा।

५. चेत्तासोएसु मासेसु सइं पण्णरसमुहुत्तो दिवसो भवति, सइं पण्णरसमुहुत्ता राई भवति।

चैत्राश्वयुजोर्मासयोः, सकृत् पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृत् पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति।

५. चैत्र और आश्विन मास में दिन पन्द्रह मुहूर्त्त का होता है। चैत्र और आश्विन मास में रात पन्द्रह मुहूर्त्त की होती है।[६]

६. विज्जाअणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पण्णरस वत्थू पण्णत्ता।

विद्यानुप्रवादस्य पूर्वस्य पञ्चदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

६. विद्यानुप्रवाद पूर्व के वस्तु पन्द्रह हैं।

७ मणूसाणं पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—
१. सच्चमणपओगे,
२. मोसमणपओगे,
३. सच्चामोसमणपओगे,
४. असच्चामोसमणपओगे,
५. सच्चवइपओगे,
६. मोसवइपओगे,
७. सच्चामोसवइपओगे,
८. असच्चामोसवइपओगे,
९. ओरालियसरीरकायपओगे,

मनुष्याणां पञ्चदशविधः प्रयोगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
सत्यमनःप्रयोगः,
मृषामनःप्रयोगः,
सत्यमृषामनःप्रयोगः,
असत्यामृषामनःप्रयोग,
सत्यवाक्प्रयोगः,
मृषावाक्प्रयोगः,
सत्यमृषावाक्प्रयोगः
असत्यामृषावाक्प्रयोगः,
औदारिकशरीरकायप्रयोगः,

७. मनुष्यों का प्रयोग[७] पन्द्रह प्रकार का है, जैसे—
१. सत्य मन-प्रयोग
२. मृषा मन-प्रयोग
३. सत्यमृषा मन-प्रयोग
४. असत्याऽमृषा मन-प्रयोग
५. सत्य वचन-प्रयोग
६. मृषा वचन-प्रयोग
७. सत्यमृषा वचन-प्रयोग
८. असत्याऽमृषा वचन-प्रयोग
९. औदारिकशरीर काय-प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१० ओरालियमोससरीरकाय-पओगे,
११. वेउव्वियसरीरकायपओगे,
१२. वेउव्वियमीससरीरकाय-पओगे,
१३. आहारयसरीरकायपओगे,
१४. आहारयमीससरीरकाय-पओगे,
१५. कम्मयसरीरकायपओगे।

औदारिकमिश्रशरीरकायप्रयोगः,
वैक्रियशरीरकायप्रयोगः,
वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगः,
आहारकशरीरकायप्रयोगः,
आहारकमिश्रशरीरकायप्रयोगः,
कार्मणशरीरकायप्रयोगः।

१०. औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग
११. वैक्रियशरीर काय-प्रयोग
१२. वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग
१३. आहारकशरीर काय-प्रयोग
१४. आहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग।
१५. कार्मणशरीर काय-प्रयोग।

८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्चदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की है।

९. पंचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्चदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. पांचवी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की है।

१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां पञ्चदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की है।

११. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां पञ्चदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति पन्द्रह पल्योपम की है।

१२. महासुक्के कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महाशुक्रे कल्पे अस्ति एकेषां देवानां पञ्चदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. महाशुक्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति पन्द्रह सागरोपम की है।

१३. जे देवा णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा नन्दं सुनन्दं नन्दावर्त्तं नन्दप्रभं नन्दकान्तं नन्दवर्णं नन्दलेश्यं नन्दध्वजं नन्दशृङ्गं नन्दसृष्टं नन्दकूटं नन्दोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण पञ्चदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. नन्द, सुनन्द, नन्दावर्त्त, नन्दप्रभ, नन्दकान्त, नन्दवर्ण, नन्दलेश्य, नन्दध्वज, नन्दशृङ्ग, नन्दसृष्ट, नन्दकूट, नन्दोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति पन्द्रह सागरोपम की है।

१४. ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः पञ्चदशानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१४. वे देव पन्द्रह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१५. तेसि णं देवाणं पण्णरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां पञ्चदशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१५. उन देवों के पन्द्रह हजार वर्षों से आहार करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे पण्णरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये पञ्चदशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	१६. कुछ भव-सिद्धिक जीव पन्द्रह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. परमाधार्मिक (परमाहम्मिया)

नरक सात हैं। नारकीय जीव तीन प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं—

१. परमाधार्मिक देवों द्वारा उत्पादित वेदना।

२. परस्पर में उदीरित वेदना।

३. क्षेत्रविपाकी वेदना।

प्रथम तीन नरकों में नारकीय जीव तीनों प्रकार की वेदनाएं भोगते हैं और शेष चार नरकों में अंतिम दो प्रकार की वेदनाएं भोगी जाती हैं, क्योंकि वहां परमाधार्मिक देवों का अभाव है।

प्रथम तीन नरक पृथिवियां—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और बालुकाप्रभा में परमाधार्मिक देव नारकीय जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से कष्ट देते हैं। वे देव पन्द्रह प्रकार के हैं। उनके नामों और कार्यों का विवरण सूत्रकृतांग की निर्युक्ति में प्राप्त होता है। उनके नाम उनके कार्यानुरूप हैं। वह विवरण इस प्रकार है—

१. अंब—अपने निवास-स्थान से ये देव आकर अपने मनोरंजन के लिए नारकीय जीवों को इधर-उधर दौड़ाते हैं, पीटते हैं, उनको ऊपर उछालकर शूलों में पिरोते हैं, पृथ्वी पर पटक-पटक कर पीड़ित करते हैं, उन्हें पुनः अंबर—आकाश में उछालते हैं, नीचे फेंकते हैं।

२. अंबरिषी—मुद्गरों से आहत, खड्ग आदि से उपहत, मूर्च्छित उन नारकीयों को ये देव करवत आदि से चीरते हैं, रज्जु से बांधते हैं।

३. श्याम—ये देव जीवों के अंगच्छेद करते हैं, पहाड़ से नीचे गिराते हैं, नाक को बींधते हैं, रज्जु से बांधते हैं।

४. शबल—ये देव नारकीय जीवों की आंतें बाहर निकाल देते हैं, हृदय को नष्ट कर देते हैं। कलेजे का मांस निकाल देते हैं। चमड़ी उधेड़ कर उन्हें कष्ट देते हैं।

५. रौद्र—ये देव अत्यन्त क्रूरता से नारकीय जीवों को कष्ट देते हैं।

६. उपरौद्र—ये देव नारकों के अंग-भंग करते हैं, हाथ-पैरों को मरोड़ देते हैं। ऐसा एक भी क्रूर कर्म नहीं जो ये न कर पाते हों।

७. काल—ये देव नारकीयों को भिन्न प्रकार के कड़ाहों में पकाते हैं, उबालते हैं और उन्हें जीवित मछलियों की तरह सेंकते हैं।

८. महाकाल—ये देव नारकों के छोटे-छोटे टुकड़े करते हैं। पीठ की चमड़ी उधेड़ते हैं और जो नारक पूर्वभव में मांसाहारी थे उन्हें वह मांस खिलाते हैं।

९. असि—ये देव नारकीय जीवों के अंग-प्रत्यंगों के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करते हैं, दुःख उत्पादित करते हैं।

१०. असिपत्र (या धनु)—ये देव असिपत्र नाम के वन की विकुर्वणा करते हैं। नारकीय जीव छाया के लोभ से उन वृक्षों के नीचे आकर विश्राम करते हैं। तब हवा के झोंकों से असिधारा की भांति तीखे पत्ते उन पर पड़ते हैं और वे छिद जाते हैं।

११. कुंभि (कुंभ)—ये देव विभिन्न प्रकार के पात्रों में नारकीय जीवों को डालकर पकाते हैं।

१२. बालुका—ये देव गरम बालु से भरे पात्रों में नारकों को चने की तरह भुनते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. वेतरणी—ये नरकपाल वेतरणी नदी की विकुर्वणा करते हैं। वह नदी पीब, लोही, केश और हड्डियों से भरी-पूरी होती है। उसमें खारा गरम पानी बहता है। उस नदी में नारकीय जीवों को बहाया जाता है।

१४. खरस्वर—ये नरकपाल छोटे-छोटे धागों की तरह सूक्ष्मरूप से नारकों के शरीर को चीरते हैं। फिर उनके और भी सूक्ष्म टुकड़े करते हैं। उनको पुनः जोड़कर सचेतन करते हैं और कठोर स्वर में रोते हुए नारकों को शाल्मली वृक्ष पर चढ़ने के लिये प्रेरित करते हैं। वह वृक्ष वज्रमय तीखे कांटों से संवृत होता है। नारक उस पर चढते हैं। नरकपाल पुनः उन्हें खींचकर नीचे ले आते हैं। यह क्रम चलता रहता है।

१५. महाघोष—ये सभी असुर देवों में अधम जाति के माने जाते हैं। ये नरकपाल नारकों की भीषण वेदना को देखकर परम मुदित होते हैं।

प्रस्तुत समवाय में नौवें परमाधार्मिक का नाम है 'असिपत्र' और दसवें का नाम है 'धनु'। सूत्रकृतांग की निर्युक्ति के अनुसार नौवें का नाम है 'असि' और दसवें का नाम है 'असिपत्र' या 'धनु'।[1]

२. ध्रुवराहू (ध्रुवराहू) :

जैन खगोल के अनुसार राहू दो माने जाते हैं—पर्वराहु और ध्रुवराहु। जो पूर्णिमा या अमावस्या को चन्द्र या सूर्य का ग्रहण उत्पन्न करता है, वह 'पर्वराहु' है। जो सदा चन्द्र के पास ही संचरण करता है, वह 'ध्रुवराहु' है। इसका विमान कृष्ण होता है और यह सदा चन्द्र-विमान के नीचे चार अंगुल के व्यवधान से संचरण करता है :

किण्हं राहुविमाणं, निच्चं चंदेण होइ अविरहिअं।
चउरंगुलमप्पत्तं, हेट्ठा चंदस्स तं चरइ॥[2]

३. लेश्या (लेसं) :

चन्द्रमा का मण्डल दीप्ति का विकिरण करता है, इसलिए कार्य-कारण के अभेदोपचार की दृष्टि से मण्डल के स्थान में लेश्या का प्रयोग किया गया है।[3]

४. प्रतिपदा…करता है (पढमाए…पण्णरसमं भागं) :

चन्द्र-मंडल के सोलह भाग होते हैं। एक भाग सदा उद्घाटित रहता है और शेष पन्द्रह भाग कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या तक, इन पन्द्रह दिनों में, प्रतिदिन एक-एक भाग के अनुपात से आवृत होते जाते हैं। इसी प्रकार शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा तक, एक-एक भाग के अनुपात से उद्घाटित होते जाते हैं।

चन्द्र-मंडल का परिमाण ५६/६१ योजन है। राहु एक ग्रह है और ग्रह के विमान का परिमाण आधा योजन बताया गया है। चन्द्र-विमान बड़ा है और राहु-विमान छोटा। इस दशा में राहु-विमान चन्द्र-विमान को कैसे आवृत कर सकेगा? वृत्तिकार का अभिमत है कि ग्रह के विमानों का परिमाण जो अर्ध योजन बतलाया गया है, वह प्रतिपादन प्रायिक है। अतः राहु विमान के एक योजन के होने की संभावना की जा सकती है।

वृत्तिकार ने दूसरी संभावना यह की है कि राहु-विमान को छोटा मान लेने पर भी चन्द्र-विमान को आवृत करने में कोई आपत्ति नहीं आती, क्योंकि राहु के विमान से अन्धकारमय रश्मिजाल विपुल मात्रा में विकिरण होता है और वह चन्द्र-विमान को आच्छादित कर देता है।[4]

५. सूत्र ४ :

नक्षत्र-क्षेत्र [आकाश-भाग] के तीन भेद हैं—

१. समक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा तीस मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

---

१. सूत्रकृतांगनिर्युक्ति, ५६,६०।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र २८ :
द्विविधो राहुः भवति—पर्वराहुर्ध्रुवराहुश्च, तत्र यः पर्वणि पौर्णमास्याममावास्यायां वा चन्द्रादित्ययोरुपरागं करोति स पर्वराहुः, यस्तु चन्द्रस्य सदैव सन्निहितः सञ्चरति स ध्रुवराहुः।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र २९ :
लेश्या—दीप्तिस्तत्करणत्वात् मण्डलं लेश्या।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र २९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. अर्द्धसमक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा १५ मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

३. द्व्यर्द्धसमक्षेत्र—चन्द्रमा द्वारा ४५ मुहूर्त्त में भोगा जाने वाला नक्षत्र-क्षेत्र।

प्रस्तुत आलापक में पन्द्रह मुहूर्त्त तक योग करने वाले छह नक्षत्रों का उल्लेख है। ये छह नक्षत्र चन्द्रमा द्वारा पहले तथा पीछे सेवित होते हैं। ये चन्द्रमा के समयोगी माने जाते हैं।

प्रस्तुत आगम के ४५/७ में पैंतालीस मुहूर्त्त तक योग करने वाले नक्षत्रों का उल्लेख है।

विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं ६/७३-७५, टिप्पण पृष्ठ ६९८, ६९९।

६. चैत्र और आश्विन में दिन···रात (चेत्तासोएसु···दिवसो···राई) :

यह प्रतिपादन व्यवहार (स्थूल) नय की दृष्टि से किया गया है। निश्चयनय की दृष्टि से चैत्र मास में मेष संक्रान्ति का पहला दिन-रात और आश्विन मास में तुला संक्रान्ति का पहला दिन-रात पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त्त का होता है।

७. प्रयोग (पओगे)

वृत्तिकार ने प्रयोग के दो अर्थ किए हैं[२]—

१. आत्मा का क्रिया परिणामरूप व्यापार।

२. आत्मा के साथ कर्म का योग होना।

इसका सामान्य अर्थ है—प्रवृत्ति।

प्रयोग (योग) पन्द्रह हैं। इनमें मन के चार, वचन के चार और काया के सात प्रयोग हैं। मन जब सत्य के अर्थ-चिंतन में प्रवृत्ति करता है तब उसे 'सत्य मन:प्रयोग' कहते हैं। इसी प्रकार शेष मन: प्रयोगों और वचन प्रयोगों के विषय में जानना चाहिए। नौ की संख्या से पन्द्रह की संख्या तक चार शरीरों—औदारिक, वैक्रिय, आहारक और कार्मण शरीर की सात प्रकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख है—

१. औदारिकशरीर काय-प्रयोग—औदारिक शरीर वाले मनुष्यों तथा तिर्यंचों में शरीर-पर्याप्ति के होने के बाद होने वाली प्रवृत्ति।

२. औदारिकमिश्रशरीर काय-प्रयोग—यह चार प्रकार से होता है—

(क) मनुष्य एवं तिर्यंच गति में उत्पन्न होने के समय शरीरपर्याप्ति का पूर्ण बंध न होने की अवस्था तक कार्मण काय-योग के साथ।

(ख) वैक्रियलब्धि संपन्न मनुष्य और तिर्यंच वैक्रिय रूप बनाते हैं। परन्तु जब तक वह पूर्ण नहीं होता, तब तक वैक्रिय काययोग के साथ।

(ग) विशिष्ट शक्ति-संपन्न योगी आवश्यकतावश जब तक आहारक शरीर पूरा नहीं बना लेता तब तक आहारक काय-योग के साथ।

(घ) केवली समुद्घात के दूसरे, छठे और सातवें समय में कार्मण के साथ।

३. वैक्रियशरीर काय-प्रयोग—देवता और नारकी में शरीर-पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद तथा मनुष्य और तिर्यंच में लब्धि-जन्य वैक्रिय शरीर की जो क्रिया होती है वह वैक्रियशरीर काय-प्रयोग है।

४. वैक्रियमिश्रशरीर काय-प्रयोग—यह दो प्रकार से होता है—

(क) देवता और नारकी में उत्पन्न होने वाले जीव जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं कर लेते, उस अवस्था में कार्मण काययोग के साथ वैक्रियमिश्रशरीर काय-प्रयोग होता है।

(ख) औदारिकशरीर वाले मनुष्य और तिर्यंच अपनी विशिष्ट लब्धि से वैक्रिय रूप बनाते हैं और उसको फिर समेटते हैं। परन्तु जब तक औदारिक शरीर पुन: पूर्ण नहीं बन जाता तब तक औदारिक काय-योग के साथ वैक्रियमिश्रशरीर काय-प्रयोग होता है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र २९ :

स्थूलन्यायमाश्रित्य चैत्रेऽश्वयुजि च मासे पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति रात्रिश्च, निश्चयतस्तु मेषसंक्रान्तिदिने तुलासंक्रान्तिदिने चैवं दृश्यमिति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र २९ :

प्रयोजनं प्रयोग: सपरिस्पन्द आत्मन: क्रियापरिणामो व्यापार इत्यर्थ:, अथवा प्रकर्षेण युज्यते—संयुज्यते सम्बध्यतेऽनेन क्रियापरिणामेन कर्मणा सहात्मेति प्रयोग:।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. आहारकशरीर काय-प्रयोग—जब आहारक शरीर पूर्ण होकर प्रवृत्त होता है तब आहारकशरीर काय-प्रयोग होता है।

६. आहारकमिश्रशरीर काय-प्रयोग—जिस समय आहारक शरीर अपना कार्य संपन्न कर पुनः औदारिक शरीर में प्रवेश करता है, उस समय औदारिक काययोग के साथ आहारकमिश्रशरीर काय-प्रयोग होता है।

७. कार्मणशरीर काय-प्रयोग—यह दो प्रकार से होता है—

(क) अन्तराल गति में अनाहारक अवस्था में होने वाला योग कार्मणशरीर काय-प्रयोग है।

(ख) केवली समुद्घात के समय तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मणशरीर काय-प्रयोग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६
सोलसमो समवाओ : सोलहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सोलस य गाहा-सोलसगा पण्णत्ता, तं जहा—समए वेयालिए उवसग्गपरिण्णा इत्थिपरिण्णा निरयविभत्ती महावीरथुई कुसीलपरिभासिए वीरिए धम्मे समाही मग्गे समोसरणे आहत्तहिए गंथे जमईए गाहा।	षोडश च गाथा-षोडशकानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—समयः वैतालीयं उपसर्गपरिज्ञा स्त्रीपरिज्ञा निरयविभक्तिः महावीर-स्तुतिः कुशीलपरिभाषा वीर्यं धर्मः समाधिः मार्गः समवसरणं याथातथ्यं ग्रन्थः यमकीयं गाथा।	१. सूत्रकृतांग[1] के सोलह अध्ययन हैं, जैसे—समय, वैतालीय, उपसर्गपरिज्ञा, स्त्रीपरिज्ञा, निरयविभक्ति, महावीर-स्तुति, कुशीलपरिभाषा, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवसरण, याथातथ्य, ग्रन्थ, यमकीय और गाथा।
२. सोलस कसाया पण्णत्ता, तं जहा—	षोडश कषायाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—	२. कषाय[2] सोलह हैं, जैसे—
अणंताणुबंधी कोहे	अनन्तानुबन्धी क्रोधः	१. अनन्तानुबंधी क्रोध
अणंताणुबंधी माणे	अनन्तानुबन्धि मानं	२. अनन्तानुबंधी मान
अणंताणुबंधी माया	अनन्तानुबन्धिनी माया	३. अनन्तानुबंधी माया
अणंताणुबंधी लोभे	अनन्तानुबन्धी लोभः	४. अनन्तानुबंधी लोभ
अपच्चक्खाणकसाए कोहे	अप्रत्याख्यानकषायः क्रोधः	५. अप्रत्याख्यान-कषाय क्रोध
अपच्चक्खाणकसाए माणे	अप्रत्याख्यानकषायं मानं	६. अप्रत्याख्यान-कषाय मान
अपच्चक्खाणकसाए माया	अप्रत्याख्यानकषाया माया	७. अप्रत्याख्यान-कषाय माया
अपच्चक्खाणकसाए लोभे	अप्रत्याख्यानकषायो लोभः	८. अप्रत्याख्यान-कषाय लोभ
पच्चक्खाणावरणे कोहे	प्रत्याख्यानावरणः क्रोधः	९. प्रत्याख्यानावरण क्रोध
पच्चक्खाणावरणे माणे	प्रत्याख्यानावरणं मानं	१०. प्रत्याख्यानावरण मान
पच्चक्खाणावरणा माया	प्रत्याख्यानावरणा माया	११. प्रत्याख्यानावरण माया
पच्चक्खाणावरणे लोभे	प्रत्याख्यानावरणो लोभः	१२. प्रत्याख्यानावरण लोभ
संजलणे कोहे	संज्वलनः क्रोधः	१३. संज्वलन क्रोध
संजलणे माणे	संज्वलनं मानं	१४. संज्वलन मान
संजलणा माया	संज्वलनी माया	१५. संज्वलन माया
संजलणे लोभे।	संज्वलनो लोभः।	१६. संज्वलन लोभ।
३. मंदरस्स णं पव्वयस्स सोलस नामधेया पण्णत्ता, तं जहा—	मन्दरस्य पर्वतस्य षोडश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	३. मन्दर पर्वत के[3] सोलह नाम हैं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगहणी गाहा

१. मंदर-मेरु-मणोरम,
सुदंसण सयंपभे य गिरिराया।
रयणुच्चय पियदंसण,
मज्झे लोगस्स नाभी य॥
२. अत्थे अ सूरियावत्ते,
सूरियावरणेत्ति य।
उत्तरे य दिसाई य,
वडेंसे इअ सोलसे॥

संग्रहणी गाथा

मन्दरो मेरुर्मनोरमः,
सुदर्शनः स्वयंप्रभश्च गिरिराट्।
रत्नोच्चयः प्रियदर्शनो,
मध्यं लोकस्य नाभिश्च॥
अस्तश्च सूर्यावर्त्तः,
सूर्यावरण इति च।
उत्तरश्च दिगादिश्च
अवतंस इति षोडशः॥

१. मन्दर
२. मेरु
३. मनोरम
४. सुदर्शन
५. स्वयंप्रभ
६. गिरिराज
७. रत्नोच्चय
८. प्रियदर्शन
९. लोकमध्य
१०. लोकनाभि
११. अस्त
१२. सूर्यावर्त्त
१३. सूर्यावरण
१४. उत्तर
१५. दिग्आदि
१६. अवतंसक।

४. पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समण-संपदा होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य षोडश श्रमण-साहस्र्यः उत्कृष्टा श्रमण-सम्पद् आसीत्।

४. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा सोलह हजार श्रमणों की थी।

५. आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता।

आत्मप्रवादस्य पूर्वस्य षोडश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

५. आत्मप्रवाद पूर्व के वस्तु सोलह हैं।

६. चमरबलीणं ओवारियालेणे सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

चमरबल्योः अवतारिकालयने षोडश योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भाभ्यां प्रज्ञप्ते।

६. चमर और बली के अवतारिकालयन (मध्य में उन्नत और पार्श्वपीठ में ढलवां) सोलह-सोलह हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं।

७. लवणे णं समुद्दे सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्ढीए पण्णत्ते।

लवणः समुद्रः षोडश योजनसहस्राणि उत्सेधपरिवृद्धया प्रज्ञप्तः।

७. लवण समुद्र में उत्सेध (वेला) की परिवृद्धि सोलह हजार योजन की है।

८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां षोडश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सोलह पल्योपम की है।

९. पंचमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां षोडश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. पांचवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सोलह सागरोपम की है।

१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां षोडश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की है।

११. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां षोडश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति सोलह पल्योपम की है।

१२. महासुक्के कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महाशुक्रे कल्पे देवानामस्ति एकेषां षोडश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. महाशुक्रकल्प के कुछ देवों की स्थिति सोलह सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जे देवा आवत्तं वियावत्तं नंदियावत्तं महाणंदियावत्तं अंकुसं अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सोलस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा आवर्त्तं व्यावर्त्तं नन्द्यावर्त्तं महानन्द्यावर्त्तं अंकुशं अंकुश-प्रलम्बं भद्रं सुभद्रं महाभद्रं सर्वतोभद्रं भद्रोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण षोडश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्द्यावर्त्त, महानंद्यावर्त्त, अंकुश, अंकुशप्रलंब, भद्र, सुभद्र, महाभद्र, सर्वतोभद्र और भद्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सोलह सागरोपम की है।

१४. ते णं देवा सोलसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः षोडशानामर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१४. वे देव सोलह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१५. तेसि णं देवाणं सोलसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां षोडशवर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१५. उन देवों के सोलह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१६. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे सोलसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये षोडशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१६. कुछ भव-सिद्धिक जीव सोलह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. सूत्रकृतांग (गाहा-सोलसगा)

मूलपाठ में 'सूत्रकृतांग' का उल्लेख नहीं है। वहां 'गाहा-सोलसगा' (गाथा-षोडशक) शब्द है। सूत्रकृतांग के सोलहवें अध्ययन का नाम 'गाथा' है। जिसका सोलहवां अध्ययन 'गाथा' नामक है, उन अध्ययनों को 'गाथा-षोडशक' कहा गया है। फलितार्थ में यह सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध का वाचक है। सूत्रकृतांग चूर्णि में सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कंध का नाम 'गाथा' या 'गाथा-षोडशक है।[1] सूत्रकृतांग के वृत्तिकार ने भी प्रथम श्रुतस्कंध का नाम 'गाथाषोडशक' माना है।[2]

२. कषाय (कसाया)

जीव में विकार पैदा करने वाले परमाणु 'मोह' कहलाते हैं। जब वे दृष्टि में विकार उत्पन्न करते हैं तब दर्शन-मोह और जब वे चारित्र में विकार उत्पन्न करते हैं तब चारित्र-मोह कहलाते हैं। चारित्र-मोह के परमाणुओं के दो विभाग हैं—कषाय और नो-कषाय। मूल कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन मूल कषायों को उत्तेजित करने वाले परमाणु नो-कषाय कहलाते हैं। वे नौ हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक और जुगुप्सा।[3]

---

१. सूत्रकृतांगचूर्णि, पृष्ठ १५ :
तत्थ पढमो सुतखंधो [गाधा] सोलसगा।

२. सूत्रकृतांगवृत्ति, पत्र ८ :
इहाद्यश्रुतस्कन्धस्य गाथाषोडशक इति नाम।

३. ठाणं, ९/६९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत आलापक में चार मूल कषायों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है—

पहला वर्ग—

अनन्तानुबन्धी-क्रोध	जैसे, पत्थर की रेखा (स्थिरतम)
अनन्तानुबन्धी-मान	जैसे, पत्थर का खंभा (दृढतम)
अनन्तानुबन्धी-माया	जैसे, बांस की जड़ (वक्रतम)
अनन्तानुबन्धी-लोभ	जैसे, कृमि-रेशम का रंग (गाढतम)

दूसरा वर्ग—

अप्रत्याख्यान-क्रोध	जैसे, मिट्टी की रेखा (स्थिरतर)
अप्रत्याख्यान-मान	जैसे, हाड का खंभा (दृढतर)
अप्रत्याख्यान-माया	जैसे, मेंढे का सींग (वक्रतर)
अप्रत्याख्यान-लोभ	जैसे, कीचड़ का रंग (गाढतर)

तीसरा वर्ग—

प्रत्याख्यान-क्रोध	जैसे, धूलि-रेखा (स्थिर)
प्रत्याख्यान-मान	जैसे, काठ का खंभा (दृढ)
प्रत्याख्यान-माया	जैसे, चलते बैल की मूत्रधारा (वक्र)
प्रत्याख्यान-लोभ	जैसे, खंजन का रंग (गाढ)

चौथा वर्ग—

संज्वलन-क्रोध	जसे, जल रेखा (अस्थिर-तात्कालिक)
संज्वलन-मान	जैसे, लता का खंभा (लचीला)
संज्वलन-माया	जैसे, छिलते बांस की छाल (स्वल्पतम वक्र)
संज्वलन-लोभ	जैसे, हल्दी का रंग (तत्काल उड़ने वाला)

ये चारों वर्ग विशेष गुणों के बाधक हैं—

- अनन्तानुबंधी वर्ग के उदयकाल में सम्यग्दृष्टि प्राप्त नहीं होती।
- अप्रत्याख्यान वर्ग के उदय से व्रतों की भूमिका प्राप्त नहीं होती।
- प्रत्याख्यान वर्ग के उदय से महाव्रतों की भूमिका प्राप्त नहीं होती।
- संज्वलन वर्ग के उदय से वीतराग-चारित्र (यथाख्यात चारित्र) की प्राप्ति नहीं होती।

कषायों के भेद-प्रभेद के लिए देखें— ठाणं ४/७५-९१।

३. मन्दर पर्वत के (मंदरस्स णं पव्वयस्स) :

प्रस्तुत आलापक में मंदर पर्वत के सोलह नाम निर्दिष्ट हैं। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (४/२६०) में दो गाथाओं में ये ही सोलह नाम निर्दिष्ट हैं।[1] उनमें आठवां नाम 'शिलोच्चय', ग्यारहवां नाम 'अच्छ' तथा चौदहवां नाम 'उत्तम' है। प्रस्तुत आलापक में आठवां नाम 'प्रियदर्शन', ग्यारहवां नाम 'अस्त' तथा चौदहवां नाम 'उत्तर' है। इसके अतिरिक्त दोनों गाथाओं की शब्दावली भी प्रायः समान है।

जंबूद्वीप की वृत्ति में इन सोलह नामों की अर्थवत्ता भी दी गई है। वह इस प्रकार है[2]—

१. मन्दर—मन्दर देव के योग से पर्वत का नाम मन्दर है।

---

१. जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति ४/२६० :
मंदर मेरु मणोरमा, सुदंसण सयंपभे अ गिरिराया।
रयणोच्चए सिलोच्चए, मज्झे लोगस्स णाभी य॥
अच्छे अ सूरियावत्तो, सूरिआवरणे ति अ।
उत्तमे अ दिसादी अ, वडेंसेति अ सोलस॥

२. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४२६०, वृत्ति पत्र ३७५, ३७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मेरु—मेरु देव के कारण पर्वत का नाम मेरु है।[1]
३. मनोरम—देवताओं के मन को भी प्रसन्न कर देता है।
४. सुदर्शन—स्वर्णमय और रत्नमय होने के कारण मन को सुखकर।
५. स्वयंप्रभ—रत्नों की बहुलता के कारण स्वयं प्रकाशी।
६. गिरिराज—समस्त पर्वतों में ऊंचा होने तथा तीर्थंकरों के जन्माभिषेक का आश्रय होने के कारण गिरिराज।
७. रत्नोच्चय—नानाविध रत्नों का उपचय।
८. शिलोच्चय—जिस पर पांडुशिलाओं का उपचय है।
९. लोकमध्य—समस्त लोक का मध्यवर्ती।
१०. लोकनाभि—लोक की नाभिरूप।
११. अच्छ—पवित्र।[2]
१२. सूर्यावर्त—सूर्य, चन्द्र आदि जिसकी प्रदक्षिणा करते हैं।
१३. सूर्यावरण—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि जिसको आवेष्टित करते हैं।
१४. उत्तम—समस्त पर्वतों में उत्तम।[3]
१५. दिशादि—सभी दिशाओं का आदि—प्रारंभ।[4]
१६. अवतंश—समस्त पर्वतों का मुकुट रूप।

सूत्रकृतांग १/६/९-१४ में महावीर की स्तुति के प्रसंग में मंदर पर्वत का सुन्दर वर्णन है। उस वर्णन के आधार पर मंदर पर्वत के कुछ नाम इस प्रकार निर्दिष्ट किए जा सकते हैं—सुदर्शन, गिरिराज, सुरालय, मुदाकर, त्रिकंडक, पंडकवैजयन्त, स्पृष्टनभः, सूर्यावर्त्त, हेमवर्ण, बहुनन्दन, शब्दमहाप्रकाश, कंचनमृष्टवर्ण, अनुत्तरगिरि, पर्वदुर्ग, गिरिवर, आकाशदीप, लोकमध्य, नगेन्द्र, सूर्यशुद्धलेश्य, भूरिवर्ण, मनोरम, अर्चिमाली।

समवायांग के इस आलापक में संग्रहणी की जो दो गाथाएं उद्धृत हैं, उनके विषय में वृत्तिकार का कथन है कि इन दो में एक 'गाथा' छंद में निबद्ध है और एक श्लोक है।[5]

१. वृत्तिकार ने एक प्रश्न उपस्थित किया है कि एक ही पर्वत के दो देव अधिष्ठाता कैसे हो सकते हैं? उत्तर में कहा गया है—संभव है एक ही देव के ये दो नाम हों। शेष बहुश्रुत व्यक्ति ही इसका निर्णय दे सकते हैं।

वृत्ति, पत्र ३७५ : मन्दरदेवयोगात् मन्दर: एवं मेरुदेवयोगात् मेरुरिति, नन्वेवं मेरो: स्वामिद्वयमापद्येतेति चेत्, उच्यते, एकस्यापि देवस्य नामद्वयं सम्भवतीति न काप्याशंका, निर्णीतिस्तु बहुश्रुतगम्येति।

२. समवायांग में इसके स्थान पर 'अस्त' शब्द माना है। सूर्य आदि ग्रह, नक्षत्र इससे अन्तरित होकर अस्त हो जाते हैं, इसलिए इसकी संज्ञा 'अस्त' मानी गई है—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति पत्र ३७५।

३. समवायांग में इसके स्थान पर 'उत्तर' शब्द माना है। वृत्तिकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—मंदर पर्वत भरत आदि क्षेत्रों के उत्तर में स्थित होने के कारण इसे 'उत्तर' कहा गया है। वृत्तिपत्र ३०।

४. दिशाओं और विदिशाओं की उत्पत्ति अष्ट रुचक प्रदेश से होती है। वह रुचकाष्टक मेरु के मध्य में है। इसलिए मेरु को दिशा का जनक माना है। जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वृत्ति पत्र ३७६: दिशामादि:—प्रभवो दिगादि; तथाहि रुचकाद् दिशां विदिशां च प्रभवो रुचकश्चाष्टप्रदेशात्मको मेरुमध्यवर्ती, ततो मेरुरपि दिगादिरुच्यते।

५. समवायांगवृत्ति, पत्र ३० :
मेरुनामसूत्रे गाथा श्लोकश्च।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७

सत्तरसमो समवाओ : सतरहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सत्तरसविहे असंजमे पण्णत्ते तं जहा—	सप्तदशविधोऽसंयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	१. असंयम सतरह प्रकार का है, जैसे—
पुढवीकायअसंजमे	पृथ्वीकायासंयमः	१. पृथ्वीकाय असंयम
आउकायअसंजमे	अप्कायासंयमः	२. अप्काय असंयम
तेउकायअसंजमे	तेजस्कायासंयमः	३. तेजस्काय असंयम
वाउकायअसंजमे	वायुकायासंयमः	४. वायुकाय असंयम
वणस्सइकायअसंजमे	वनस्पतिकायासंयमः	५. वनस्पतिकाय असंयम
बेइंदियअसंजमे	द्वीन्द्रियासंयमः	६. द्वीन्द्रिय असंयम
तेइंदियअसंजमे	त्रीन्द्रियासंयमः	७. त्रीन्द्रिय असंयम
चउरिंदियअसंजमे	चतुरिन्द्रियासंयमः	८. चतुरिन्द्रिय असंयम
पंचिंदियअसंजमे	पंचेन्द्रियासंयमः	९. पंचेन्द्रिय असंयम
अजीवकायअसंजमे	अजीवकायासंयमः	१०. अजीवकाय असंयम
पेहाअसंजमे	प्रेक्षाऽसंयमः	११. प्रेक्षा असंयम—निरीक्षण का असंयम
उपेहाअसंजमे	उपेक्षाऽसंयमः	१२. उपेक्षा असंयम—असंयम में व्यापर और संयम में अव्यापार
अवहट्टुअसंजमे	अपहृत्यासंयमः	१३. अपहृत्य असंयम—उच्चार आदि का अविधि से परिष्ठापन
अप्पमज्जणाअसंजमे	अप्रमार्जनाऽसंयमः	१४. अप्रमार्जना असंयम
मणअसंजमे	मनोऽसंयमः	१५. मन असंयम
वइअसंजमे	वागसंयमः	१६. वचन असंयम
कायअसंजमे,	कायाऽसंयमः।	१७. काय असंयम।

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
२. सत्तरसविहे संजमे पण्णत्ते तं जहा—	सप्तदशविधः संयमः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	२. संयम[1] सतरह प्रकार का है, जैसे—
पुढवीकायसंजमे	पृथ्वीकायसंयमः	१. पृथ्वीकाय संयम
आउकायसंजमे	अप्कायसंयमः	२. अप्काय संयम
तेउकायसंजमे	तेजस्कायसंयमः	३. तेजस्काय संयम
वाउकायसंजमे	वायुकायसंयमः	४. वायुकाय संयम
वणस्सइकायसंजमे	वनस्पतिकायसंयमः	५. वनस्पतिकाय संयम
बेइंदियसंजमे	द्वीन्द्रियसंयमः	६. द्वीन्द्रिय संयम
तेइंदियसंजमे	त्रीन्द्रियसंयमः	७. त्रीन्द्रिय संयम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउरिंदियसंजमे
पंचिंदियसंजमे
अजीवकायसंजमे
पेहासंजमे
उपेहासंजमे
अवहट्टुसंजमे
पमज्जणासंजमे
मणसंजमे
वइसंजमे
कायसंजमे।

चतुरिन्द्रियसंयमः
पंचेन्द्रियसंयमः
अजीवकायसंयमः
प्रेक्षासंयमः
उपेक्षासंयमः
अपहृत्यसंयमः
प्रमार्जनासंयमः
मनःसंयमः
वाक्संयमः
कायसंयमः।

८. चतुरिन्द्रिय संयम
९. पंचेन्द्रिय संयम
१०. अजीवकाय संयम
११. प्रेक्षा संयम
१२. उपेक्षा संयम—संयम में व्यापार और असंयम में अव्यापार
१३. अपहृत्य संयम—उच्चार आदि का विधि से परिष्ठापन
१४. प्रमार्जना संयम
१५. मन संयम
१६. वचन संयम
१७. काय संयम।

३. माणुसुत्तरे णं पव्वए सत्तरस-एक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

मानुषोत्तरः पर्वतः सप्तदश एकविंशति योजनशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

३. मानुषोत्तर पर्वत[2] सतरह सौ इक्कीस योजन ऊंचा है।

४. सव्वेसिपि णं वेलंधर-अणुवेलंधर-णागराईणं आवासपव्वया सत्तरस-एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सर्वेषामपि वेलन्धरानुवेलन्धरनागराजानां आवासपर्वताः सप्तदश एकविंशति योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।

४. सभी वेलंधर और अनुवेलंधर नागराजाओं के आवास-पर्वत[3] सतरह सौ इक्कीस योजन ऊंचे हैं।

५. लवणे णं समुद्दे सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।

लवणः समुद्रः सप्तदश योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः।

५. लवण समुद्र की सम्पूर्ण ऊंचाई सतरह हजार योजन की है।

६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सातिरेगाइं सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पतित्ता ततो पच्छा चारणाणं तिरियं गती पवत्तति।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां बहुसमरमणीयाद् भूमिभागात् सातिरेकाणि सप्तदश योजनसहस्राणि ऊर्ध्वं उत्पत्य ततः पश्चात् चारणानां तिर्यग्गतिः प्रवर्तते।

६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमि-भाग से सतरह हजार योजन से कुछ अधिक ऊंची उड़ान कर लेने पर चारण (जंघाचारण तथा विद्याचारण) मुनि (रुचक आदि द्वीपों में जाने के लिए) तिरछी गति करते हैं।

७. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुर (कुमार ?) रण्णो तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुर (कुमार ?) राजस्य 'तिगिंछि' कूटः उत्पातपर्वतः सप्तदश एकविंशति योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

७. असुरेन्द्र असुरराज चमर के तिगिंछि-कूट उत्पात-पर्वत[4] की ऊंचाई सतरह सौ इक्कीस योजन की है।

८. बलिस्स णं वतिरोयणिंदस्स वतिरोयणरण्णो रुयगिंदे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

बलेः वैरोचनेन्द्रस्य वैरोचनराजस्य रुचकेन्द्रः उत्पातपर्वतः सप्तदश एकविंशति योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

८. वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि के रुचकेन्द्र उत्पात-पर्वत की ऊंचाई सतरह सौ इक्कीस योजन की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. सत्तरसविहे मरणे पण्णत्ते, तं जहा—आवीईमरणे ओहिमरणे आयंतियमरणे वलायमरणे वसट्ट-मरणे अंतोसल्लमरणे तब्भवमरणे बालमरणे पंडितमरणे बालपंडित-मरणे छउमत्थमरणे केवलिमरणे वेहासमरणे गिद्धपट्ठमरणे भत्तपच्चक्खाणमरणे इंगिणिमरणे पाओवगमणमरणे।

सप्तदशविधं मरणं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आवीचिमरणं अवधिमरणं आत्यन्तिक-मरणं वलन्मरणं वशार्त्तमरणं अन्तः-शल्यमरणं तद्भवमरणं बालमरणं पण्डितमरणं बालपण्डितमरणं छद्मस्थमरणं केवलिमरणं वैहायसमरणं गृद्धस्पृष्टमरणं भक्तप्रत्याख्यानमरणं इंगिनीमरणं प्रायोपगमनमरणम्।

६. मरण सतरह प्रकार का है,[1] जैसे—१. आवीचिमरण, २. अवधिमरण, ३. आत्यन्तिकमरण, ४. वलाय (वलन्) मरण, ५. वशार्त्तमरण, ६. अन्तःशल्य-मरण, ७. तद्भवमरण, ८. बालमरण, ९. पंडितमरण, १०. बालपंडितमरण, ११. छद्मस्थमरण, १२. केवलीमरण १३. वैहायसमरण, १४. गृद्धस्पृष्ट [गृद्धपृष्ठ] मरण, १५. भक्तप्रत्याख्यान-मरण, १६. इंगिनीमरण १७. प्रायोप-गमनमरण।

१०. सुहुमसंपराए णं भगवं सुहुम-संपरायभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधति, तं जहा—
आभिणिबोहियणाणावरणे
सुयणाणावरणे
ओहिणाणावरणे
मणपज्जवणाणावरणे
केवलणाणावरणे
चक्खुदंसणावरणे
अचक्खुदंसणावरणे
ओहीदंसणावरणे
केवलदंसणावरणे
सायावेयणिज्जं
जसोकित्तिनामं
उच्चागोयं
दाणंतरायं
लाभंतरायं
भोगंतरायं
उवभोगंतरायं
वीरिअअंतरायं।

सूक्ष्मसम्परायः भगवान् सूक्ष्मसंपराय-भावे वर्तमानः सप्तदश कर्मप्रकृतीः निबध्नाति, तद्यथा—
आभिनिबोधिकज्ञानावरणं
श्रुतज्ञानावरणं
अवधिज्ञानावरणं
मनःपर्यवज्ञानावरणं
केवलज्ञानावरणं
चक्षुर्दर्शनावरणं
अचक्षुर्दर्शनावरणं
अवधिदर्शनावरणं
केवलदर्शनावरणं
सातवेदनीयं
यशःकीर्त्तिनाम
उच्चगोत्रं
दानान्तरायं
लाभान्तरायं
भोगान्तरायं
उपभोगान्तरायं
वीर्यान्तरायम्।

१०. सूक्ष्मसंपराय मुनि सूक्ष्मसंपराय भाव में वर्तन करता हुआ सतरह कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है,[1] जैसे—
१. आभिनिबोधिकज्ञानावरण
२. श्रुतज्ञानावरण
३. अवधिज्ञानावरण
४. मनःपर्यवज्ञानावरण
५. केवलज्ञानावरण
६. चक्षुदर्शनावरण
७. अचक्षुदर्शनावरण
८. अवधिदर्शनावरण
९. केवलदर्शनावरण
१०. सातावेदनीय
११. यशःकीर्त्तिनाम
१२. उच्चगोत्र
१३. दानान्तराय
१४. लाभान्तराय
१५. भोगान्तराय
१६. उपभोगान्तराय
१७. वीर्यान्तराय।

११. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां सप्तदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सतरह पल्योपम की है।

१२. पंचमाए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

पञ्चम्यां पृथिव्यां नैरयिकाणा-मुत्कर्षेण सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. पाचवीं पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम की है।

१३. छट्ठीए पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

षष्ठ्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. छठी पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति सतरह सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां सप्तदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति सतरह पल्योपम की है।

१५. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां सप्तदश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति सतरह पल्योपम की है।

१६. महासुक्के कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महाशुक्रे कल्पे देवानामुत्कर्षेण सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१६. महाशुक्रकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम की है।

१७. सहस्सारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सहस्रारे कल्पे देवानां जघन्येन सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१७. सहस्रारकल्प के देवों की जघन्य स्थिति सतरह सागरोपम की है।

१८. जे देवा सामाणं सुसामाणं महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महानलिणं पोंडरीअं महापोंडरीअं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहोकंतं सीहवीअं भाविअं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः सामानं सुसामानं महासामानं पद्मं महापद्मं कुमुदं महाकुमुदं नलिनं महानलिनं पौण्डरीकं महापौण्डरीकं शुक्लं महाशुक्लं सिंहं सिंहावकान्तं सिंहवीतं भावितं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण सप्तदश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१८. सामान, सुसामान, महासामान, पद्म, महापद्म, कुमुद, महाकुमुद, नलिन, महानलिन, पौंडरीक, महापौंडरीक, शुक्ल, महाशुक्ल, सिंह, सिंहावकान्त, सिंहवीत और भावित विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सतरह सागरोपम की है।

१९. ते णं देवा सत्तरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः सप्तदशभिः अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१९. वे देव सतरह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

२०. तेसि णं देवाणं सत्तरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां सप्तदशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

२०. उन देवों के सतरह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

२१. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे सत्तरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये सप्तदशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

२१. कुछ भव-सिद्धिक जीव सतरह बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. संयम (संजमे) :

विस्तार के लिए देखें—आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति, भाग २ पृ० १०८,१०९।

२. मानुषोत्तर (माणुसुत्तरे) :

तीन मांडलीक पर्वतों में यह एक मांडलिक पर्वत है।[1] इसके चारों ओर चार कूट हैं।[2] यह १७२१ योजन ऊंचा और १०२२ योजन चौड़ा है।[3]

३. आवास-पर्वत (आवासपव्वया) :

वृत्तिकार ने इन आवास पर्वतों के स्वरूप के लिए क्षेत्रसमास की आठ गाथाओं का उल्लेख किया है।

देखें—समवायांगवृत्ति, पत्र ३२।

४. उत्पात पर्वत (उप्पायपव्वए) :

नीचे लोक से तिरछे लोक में—मनुष्य क्षेत्र में आने के लिए चमर आदि भवनपति देव जहां से ऊर्ध्वगमन करते हैं, उन्हें उत्पात पर्वत कहते हैं[4]।

५. मरण सतरह प्रकार का है [सत्तरसविहे मरणे] :

१. आवीचिमरण—प्रतिक्षण आयु की विच्युति।

२. अवधिमरण—एक बार जिन आयुष्यकर्म के दलिकों का वेदन कर मरता है, उन्हीं कर्म-दलिकों को पुनः वेदन कर मरना।

३. आत्यन्तिकमरण—एक बार जिन आयुष्यकर्म के दलिकों का वेदन कर मरता है, उन्हीं कर्म-दलिकों का पुनः वेदन न कर मरना।

४. वलाय (वलन्) मरण—संयम जीवन से च्युत होकर मरण प्राप्त करना।

५. वशार्त्तमरण—इन्द्रियों के वशीभूत होकर मरण प्राप्त करना।

६. अन्तःशल्यमरण—अन्तःशल्य से होने वाला मरण।

७. तद्भवमरण—वर्तमान जन्म से मृत्यु को प्राप्त करना।

८. बालमरण—मिथ्यात्वी और सम्यक्दृष्टि का मरण।

९. पंडितमरण—संयमी का मरण।

१०. बालपंडितमरण—संयतासंयत का मरण।

११. छद्मस्थमरण—संयमी का छद्मस्थ अवस्था में मरण।

१२. केवलीमरण—केवलज्ञानी का मरण।

१३. वैहायसमरण—वृक्ष की शाखा पर लटकने, पर्वत से गिरने आदि से होने वाला मरण।

१४. गृद्धस्पृष्ट (गृद्धपृष्ठ) मरण—हाथी आदि के कलेवर में प्रविष्ट हो मरना।

१५. भक्तप्रत्याख्यानमरण—अनशन-पूर्वक मरण।

१६. इंगिनीमरण—प्रतिनियत स्थान पर अनशन-पूर्वक मरण।

१७. प्रायोपगमनमरण—अपनी परिचर्या न स्वयं करे, न दूसरों से कराए—ऐसा अनशन-पूर्वक मरण।

विशेष विवरण के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग १ पृ० ५७-६५।

---

१. ठाणं, ३/४८०।

२. ठाणं, ४/३०१।

३. ठाणं, १०/४०।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र ३२ :

जङ्घाचारणानां विद्याचारणानां च 'तिरिय' त्ति तिर्यग् रुचकादिद्वीपगमनायेति, तिगिञ्छिकूटं उत्पातपर्वतो यत्रागत्य मनुष्यक्षेत्राभिगमनायोत्पतति, स चेतोऽसङ्ख्याततमेऽरुणोदयसमुद्रे दक्षिणतो द्विचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यतिक्रम्य भवति, रुचकेन्द्रोत्पातपर्वतस्त्वरुणोदयसमुद्र एव उत्तरतो एवमेव भवतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. सूत्र १० :

प्रस्तुत आलापक में दसवें गुणस्थानवर्ती मुनि के कितनी कर्म प्रकृतियों का बंध होता है, इसका उल्लेख है।

१२० कर्म प्रकृतियों में वह केवल सतरह प्रकृतियों का बंध करता है। अवशिष्ट १०३ प्रकृतियों का पूर्ववर्ती गुणस्थान में, बंध की अपेक्षा से, व्यवच्छेदन हो जाता है। इन सतरह प्रकृतियों में भी सोलह प्रकृतियों का बंध इसी दसवें गुणस्थान में व्यवच्छिन्न हो जाता है—ज्ञान की पांच, दर्शन की चार, अन्तराय की पांच, उच्चगोत्र और यशकीर्ति। केवल सातवेदनीय कर्म प्रकृति का बंध मात्र रह जाता है। मोहनीय कर्म के उदय में असातवेदनीय कर्म का बंध होता है। मोहनीय के उपशम या क्षय में केवल सातवेदनीय का ही बंध होता है।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३३ :

सूक्ष्मसम्पराय: उपशमक: क्षपको वा सूक्ष्मलोभकषायकिट्टिकावेदको भगवान्—पूज्यत्वात् सूक्ष्मसंम्परायभावे वर्त्तमान:—तत्रैव गुणस्थानकेऽवस्थित: नातीतानागतसूक्ष्मसम्परायपरिणाम इत्यर्थ:, सप्तदश कर्मप्रकृतिर्निबध्नाति विंशत्युत्तरे बन्धप्रकृतिशतेऽन्या न बध्नातीत्यर्थ:, पूर्वतरगुणस्थानकेषु बन्धं प्रतीत्य तासां व्यवच्छिन्नत्वात्, तथोक्तानां सप्तदशानां मध्यादेका साताप्रकृतिरुपशान्तमोहादिषु बन्धमाश्रित्यानुयाति, शेषा: षोडशेहैव व्यवच्छिद्यन्ते, यदाह—"नाणं ५ तराय १० दसगं दंसण चत्तारि १४ उच्च १५ जसकित्ति १६। एया सोलसपयडी सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥१॥" सूक्ष्मसम्परायात्परे न बध्नन्तीत्यर्थ:।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८
अट्ठारसमो समवाओ : अठारहवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. अट्ठारसविहे बंभे पण्णत्ते, तं जहा—	अष्टादशविधं ब्रह्म प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	१. ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का है, जैसे—
ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ, नोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ, मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।	औदारिकान् कामभोगान् नैव स्वयं मनसा सेवते, नापि अन्येन मनसा सेवयते, मनसा सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।	१. औदारिक कामभोगों का स्वयं मन से सेवन न करे। २. औदारिक कामभोगों का दूसरों को मन से सेवन न कराए। ३. औदारिक कामभोगों का सेवन करने वाले का मन से अनुमोदन भी न करे।
ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ, नोवि अण्णं वायाए सेवावेइ, वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।	औदारिकान् कामभोगान् नैव स्वयं वाचा सेवते, नापि अन्येन वाचा सेवयते, वाचा सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।	४. औदारिक कामभोगों का स्वयं वचन से सेवन न करे। ५. औदारिक कामभोगों का दूसरों को वचन से सेवन न कराए। ६. औदारिक कामभोगों का सेवन करने वाले का वचन से अनुमोदन भी न करे।
ओरालिए कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ, नोवि अण्णं काएणं सेवावेइ, काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।	औदारिकान् कामभोगान् नैव स्वयं कायेन सेवते, नापि अन्येन कायेन सेवयते, कायेन सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।	७. औदारिक कामभोगों का स्वयं काया से सेवन न करे। ८. औदारिक कामभोगों का दूसरों को काया से सेवन न कराए। ९. औदारिक कामभोगों का सेवन करने वाले का काया से अनुमोदन भी न करे।
दिव्वे कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ, नोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ, मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।	दिव्यान् कामभोगान् नैव स्वयं मनसा सेवते, नापि अन्येन मनसा सेवयते, मनसा सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।	१०. दिव्य कामभोगों का स्वयं मन से सेवन न करे। ११. दिव्य कामभोगों का दूसरों को मन से सेवन न कराए। १२. दिव्य कामभोगों का सेवन करने वाले का मन से अनुमोदन भी न करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ, नोवि अण्णं वायाए सेवावेइ, वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।

दिव्यान् कामभोगान् नैव स्वयं वाचा सेवते, नापि अन्येन वाचा सेवयते, वाचा सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।

१३. दिव्य कामभोगों का स्वयं वचन से सेवन न करे।
१४. दिव्य कामभोगों का दूसरों को वचन से सेवन न कराए।
१५. दिव्य कामभोगों का सेवन करने वाले का वचन से अनुमोदन भी न करे।

दिव्वे कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ, नोवि अण्णं काएणं सेवावेइ, काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ।

दिव्यान् कामभोगान् नैव स्वयं कायेन सेवते, नापि अन्येन कायेन सेवयते, कायेन सेवमानमप्यन्यं न समनुजानाति।

१६. दिव्य कानभोगों का स्वयं काया से सेवन न करे।
१७. दिव्य कामभोगों का दूसरों को काया से सेवन न कराए।
१८. दिव्य कामभोगों का सेवन करने वाले का काया से अनुमोदन भी न करे।

२. अरहतो णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।

अर्हतः अरिष्टनेमेः अष्टादश श्रमण-साहस्र्यः उत्कृष्टा श्रमण-सम्पद् आसीत्।

२. अर्हत् अरिष्टनेमि की उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा अठारह हजार श्रमणों की थी।

३. समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं सखुड्डय-विअत्ताणं अट्ठारस ठाणा पण्णत्ता। तं जहा—

श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां सक्षुद्रकव्यक्तानां अष्टादश स्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

३. श्रमण भगवान् महावीर ने क्षुल्लक[1] और व्यक्त श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए अठारह स्थानों का[2] प्रज्ञापन किया है, जैसे—

संगहणी गाहा—

१. वयछक्कं कायछक्कं,
अकप्पो गिहिभायणं।
पलियंक निसिज्जा य,
सिणाणं सोभवज्जणं॥

संग्रहणी गाथा

व्रतषट्कं कायषट्कं,
अकल्पो गृहिभाजनम्।
पर्यङ्को निषद्या च,
स्नानं शोभावर्जनम्॥

१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अचौर्य, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह, ६. रात्रि-भोजनत्याग, ७. पृथ्वीकायसंयम, ८. अप्कायसंयम, ९. तेजस्कायसंयम, १०. वायुकायसंयम, ११. वनस्पति-कायसंयम, १२. त्रसकायसंयम, १३. अकल्पवर्जन, १४. गृहिभाजन-वर्जन, १५. पर्यंकवर्जन, १६. गृहान्तर-निषद्यावर्जन, १७. स्नानवर्जन, १८. विभूषावर्जन।

४. आयारस्स णं भगवतो सचूलि-आगस्स अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ताइं।

आचारस्य भगवतः सचूलिकाकस्य अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण प्रज्ञप्तानि।

४. चूलिका सहित आचारांग सूत्र का पद-परिमाण अठारह हजार प्रज्ञापित किया है।[3]

५. बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पण्णत्ते, तं जहा—

ब्राह्म्या लिपेः अष्टादशविधं लेखविधानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

५. ब्राह्मीलिपि[4] के लेख-विधान (अक्षर लेखन की प्रक्रिया) अठारह प्रकार के हैं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. बंभी	१०. वेणइया	ब्राह्मी	वैनतिका
२. जवणालिया	११. णिण्हइया	यवनानिका	निह्नविका
३. दोसऊरिया	१२. अंकलिवी	दोषपुरिका	अङ्कलिपिः
४. खरोट्ठिया	१३. गणियलिवी	खरोष्ट्रिका	गणितलिपिः
५. खरसाहिया	१४. गंधव्वलिवी	खरशाहिका	गन्धर्वलिपिः
६. पहाराइया	१५. आयंसलिवी	प्रभाराजिका	आदर्शलिपिः
७. उच्चत्तरिया	१६. माहेसरी	उच्चत्तरिका	माहेश्वरी
८. अक्खरपुट्ठिया	१७. दामिली	अक्षरपृष्टिका	द्राविडी
९. भोगवइया	१८. पोलिंदी।	भोगवतिका	पोलिन्दी।

१. ब्राह्मी	१०. वैनतिकी
२. यवनानी	११. निन्हविका
३. दोसउरिया	१२. अंकलिपि
४. खरोष्ट्रिका	१३. गणितलिपि
५. खरशाहिका (खरशापिता)	१४. गंधर्वलिपि
६. प्रभाराजिका	१५. आदर्शलिपि
७. उच्चत्तरिका	१६. माहेश्वरी
८. अक्षरपृष्टिका	१७. द्राविडी
९. भोगवतिका	१८. पोलिंदी।

६. अत्थिनत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू पण्णत्ता।

अस्तिनास्तिप्रवादस्य पूर्वस्य अष्टादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

६. अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्व के वस्तु अठारह हैं।

७. धूमप्पभा णं पुढवी अट्ठारसुत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

धूमप्रभा पृथिवी अष्टादशोत्तरं योजनशतसहस्रं बाहल्येन प्रज्ञप्ता।

७. धूमप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन है।

८. पोसासाढेसु णं मासेसु सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवइ।

पौषाषाढयोः मासयोः सकृद् उत्कर्षेण अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृद् उत्कर्षेण अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति।

८. पौष मास में एक बार[1] उत्कृष्ट रात्री अठारह मुहूर्त्त की होती है और अषाढ़ मास में एक बार उत्कृष्ट दिन अठारह मुहूर्त्त का होता है।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्टादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठारह पल्योपम की है।

१०. छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

षष्ठ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्टादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. छठी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठारह सागरोपम की है।

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां अष्टादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की है।

१२. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां अष्टादश पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति अठारह पल्योपम की है।

१३. सहस्सारे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सहस्रारे कल्पे देवानामुत्कर्षेण अष्टादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. सहस्रारकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठारह सागरोपम की है।

१४. आणए कप्पे देवाणं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आनते कल्पे देवानां जघन्येन अष्टादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. आनतकल्प के देवों की जघन्य स्थिति अठारह सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीअं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं (उक्कोसेणं ?) अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः कालं सुकालं महाकालं अञ्जनं रिष्टं शालं समानं द्रुमं महाद्रुमं विशालं सुशालं पद्मं पद्मगुल्मं कुमुदं कुमुदगुल्मं नलिनं नलिनगुल्मं पुण्डरीकं पुण्डरीकगुल्मं सहस्रारावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां (उत्कर्षेण ?) अष्टादश सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. काल, सुकाल, महाकाल, अञ्जन, रिष्ट, शाल, समान, द्रुम, महाद्रुम, विशाल, सुशाल, पद्म, पद्मगुल्म, कुमुद, कुमुदगुल्म, नलिन, नलिनगुल्म, पुंडरीक, पुंडरीकगुल्म और सहस्रारावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की (उत्कृष्ट ?) स्थिति अठारह सागरोपम की है।

१६. ते णं देवा अट्ठारसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा अष्टादशभिः अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१६. वे देव अठारह पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१७. तेसि णं देवा णं अट्ठारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां अष्टादशभिर्वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१७. उन देवों के अठारह हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे अट्ठारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये अष्टादशभिर्भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव अठारह वार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. क्षुल्लक और व्यक्त (सखुड्डयविअत्ताणं) :

क्षुल्लक का अर्थ है—अवस्था और श्रुत से अपरिपक्व और व्यक्त का अर्थ है—अवस्था और श्रुत से परिपक्व।

२. अठारह स्थानों का (अट्ठारस ठाणा) :

आचार के अठारह स्थान हैं—पांच महाव्रत, रात्रीभोजनविरमण, षट्काय के प्रति संयम तथा अकल्प, गृहस्थपात्र, पर्यंक, निषद्या, स्नान और शोभा—इनका वर्जन। इन अठारह स्थानों में बारह आसेवनीय हैं और छह वर्जनीय हैं।

दशवैकालिक ६/७ में 'दस अट्ठ य ठाणाइं'—में इन अठारह स्थानों का ग्रहण किया गया है।

प्रस्तुत आलापक में जो संग्रहणी की गाथा उद्धृत है वह दशवैकालिक की निर्युक्ति गाथा (२६८) है। इन स्थानों का हमने दशवैकालिक में विस्तार से विमर्श किया है।

देखें—दशवेआलियं [द्वितीय संस्करण] पृष्ठ ३०८।

दशवैकालिक के छठे अध्ययन में इन अठारह स्थानों का निम्न श्लोकों में प्रतिपादन है—

१. अहिंसा	८.९.१०
२. सत्य	११-१२
३. अचौर्य	१३-१४
४. ब्रह्मचर्य	१५-१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५.	अपरिग्रह	१७-२१
६.	रात्रिभोजन-विरमण	२२-२५
७-१२.	षट्काय संयम	२६-४५
१३.	अकल्प-वर्जन	४६-४९
१४.	गृहिभाजन-वर्जन	५०-५२
१५.	पर्यंक-वर्जन	५३-५५
१६.	गृहान्तरनिषद्या-वर्जन	५६-५९
१७.	स्नान-वर्जन	६०-६२
१८.	विभूषा-वर्जन	६३-६६

इन श्लोकों में आसेवनीय और अनासेवनीय के कारणों तथा लाभ-अलाभ का स्पष्ट निर्देश है।

३. पद-परिमाण अठारह हजार (अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं) :

समवायांग[1] तथा नंदी[2] सूत्र में आचारांग के दो श्रुतस्कंध, पच्चीस अध्ययन, पिचासी उद्देशन-काल, पिचासी समुद्देशन-काल और अठारह हजार पद बतलाए गए हैं। नंदी की चूर्णि[3] तथा उसकी हारिभद्रीया[4] वृत्ति में तथा समवायांग की वृत्ति में आचार्य अभयदेवसूरी[5] ने लिखा है कि यहां पद-परिमाण केवल प्रथम श्रुतस्कन्ध का निर्दिष्ट है। प्रस्तुत समवाय की व्याख्या में भी अभयदेव सूरी ने यही उल्लेख किया है।[6] आचारांग के निर्युक्तिकार का भी यही अभिमत है।[7]

आचारांग की चूलिकाओं की रचना आचारांग के उत्तरकाल में हुई थी। आगमों के विवरण में आचारांग और उसकी चूलाओं के अध्ययन, उद्देश और समुद्देश-काल की गणना संयुक्तरूप से की गई है। किन्तु पद-गणना केवल आचाराङ्ग की ही की गई है। इसका कारण यह हो सकता है कि पद-परिमाण की व्यवस्था सब अंगों की सापेक्ष है—पहले अंग से दूसरे अंग का पद-परिमाण दूना है। यदि आचार-चूला का पद-परिमाण मूल आचार के साथ निर्दिष्ट किया जाता तो इस प्राचीन व्यवस्था का भंग हो जाता। इसलिए पद-परिमाण केवल मूल आचाराङ्ग का ही निरूपित किया गया है।

प्रस्तुत सूत्र में 'सचूलियाय' विशेषण का कोई प्रयोजन बुद्धिगम्य नहीं होता। आचाराङ्ग और आचारचूला की एकसूत्रता के प्रख्यापन के लिए ही 'सचूलियाय' विशेषण रखा गया हो—ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

४. ब्राह्मी लिपि (बंभीए णं लिवीए) :

प्रज्ञापना [१/९८] में ब्राह्मी लिपि के अठारह प्रकार के लेख-विधानों का उल्लेख किया गया है।[8] इससे यह ज्ञात होता है कि लिपियों का विकास ब्राह्मी लिपि के आधार पर हुआ है। मुनि पुण्यविजयजी के अनुसार ई० पू० ५००-३००

---

१. समवायांग, समवाय ८८।

२. नंदी, सू० ८०।

३. नंदी चूर्णि, पृ० ६२।

४. नंदी, हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ७६।

५. समवायांगवृत्ति, पत्र १०१ :
ननु यदि द्वौ श्रुतस्कन्धौ पञ्चविंशतिरध्ययनान्यष्टादशपदसहस्राणि पदाग्रेण भवन्ति तत यद् भणितं 'नवबंभचेरमइओ अट्ठारसपदसहस्सिओ वेउ' त्ति तत्कथं विरुध्यते ? उच्यते—यत् द्वौ श्रुतस्कन्धावित्यादि तदाचारस्य प्रमाणं भणितं, यत् पुनरष्टादश पदसहस्राणि तन्नवब्रह्मचर्याध्ययनात्मकस्य प्रथमश्रुतस्कन्धस्य प्रमाणं, विचित्रार्थबद्धानि च सूत्राणि गुरूपदेशतस्तेषामर्थोऽवसेय इति।

६. वही, पत्र ३४ :
आचारस्य प्रथमाङ्गस्य सचूलिकाकस्य—चूडासमन्वितस्य, तस्य पिण्डैषणाद्याः पञ्च चूलाः द्वितीयश्रुतस्कन्धात्मिकाः स च नवब्रह्मचर्याभिधानाध्ययनात्मकप्रथमश्रुतस्कन्धरूपः, तस्यैव चेदं पदप्रमाणं न चूलानां, यदाह—"नवबंभचेरमइओ अट्ठारस पयसहस्सीओ वेओ। हवइ य सपंचचूलो बहुबहुतरओ पयग्गेणं।।१॥" त्ति, यच्च सचूलिकाकस्येति विशेषणं तत्तस्य चूलिकासत्ताप्रतिपादनार्थं, न तु पदप्रमाणाभिधानार्थम्।

७. आचारांग निर्युक्ति, गा० ११ :
णवबंभचेर मइओ अट्ठारसपयसहस्सिओ वेओ।

८. पण्णवणा १/९८ :
बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे पण्णत्ते, तं जहा—बंभी जवणाणिया दोसापुरिया खरोट्ठी पुक्खरसारिया भोगवईया पहराईयाओ य अंतक्खरिया अक्खरपुट्ठिया वेणइया निण्हइया अंकलिवी गणितलिवी गंधव्वलिवी आयंसलिवी माहेसरी दामिली पोलिंदी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक भारत की समस्त लिपियां ब्राह्मी के नाम से कही जाती थीं।[1] प्रज्ञापना में 'अंतक्खरिया' (अन्ताक्षरिका) लिपि का उल्लेख है, वह समवायाङ्ग में उल्लिखित नहीं है। समवायाङ्ग में 'उच्चत्तरिया' लिपि का उल्लेख है, वह प्रज्ञापना में उल्लिखित नहीं है। समवायाङ्ग में 'खरसाहिया' लिपि का उल्लेख है। प्रज्ञापना में इसके स्थान में 'पुक्खरसारिया' पाठ मिलता है। समवायाङ्ग के कुछ आदर्शों में 'पुक्करसाविया' पाठ प्राप्त है। लिपियों के अपरिचय के कारण इतना पाठ-परिवर्तन हो गया कि ठीक पाठ का निर्धारण करना बहुत जटिल बन गया है। समवायाङ्ग में 'जवणालिया' पाठ है। किन्तु इसकी अपेक्षा प्रज्ञापना का 'जवणाणिया' पाठ अधिक संगत है। भूवलय में अठारह लिपियों के नाम कुछ प्रकारभेद से मिलते हैं[2]—(१) ब्राह्मी (२) यवनांक (३) दोषउपरिका (४) विराटिका (वराट) (५) सर्वजे (खरसापिका) (६) वरप्रभारात्रिका (७) उच्चतारिका (८) पुस्तिकाक्षर (९) भोग्यवत्ता (१०) वेदनतिका (११) निन्हतिका (१२) सरमालांक (१३) परमगणिता (१४) गान्धर्व (१५) आदर्श (१६) माहेश्वरी (१७) दामा (१८) बोलिदी।

ग्रन्थकार ने इन सबको अंकलिपि माना है।[3]

ललितविस्तार (पृ० १२५) में चौसठ लिपियों का उल्लेख है। उपदेशपद में हरिभद्रसूरी ने कुछ लिपियों के नाम गिनाए हैं।[4] इनमें एक नाम 'उड्डी' है। यह संभवतः 'उड़िया' लिपि का सूचन तथा यह 'दोसउरिया' के 'उरिया' शब्द के बहुत निकट है। इसमें पारसी लिपि का भी उल्लेख है, जो कि प्रज्ञापना और समवायाङ्ग में नहीं है।

लिपियों के अनेक नामों की शोध के लिए और अधिक प्राचीन स्रोतों की आवश्यकता है। उनके अभाव में इनका ठीक-ठीक विवरण प्रस्तुत करना संभव नहीं।[5]

---

१. भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखनकला, पृ० ९।

२. भूवलय, ५/१४६-१५९।

३. वही, ५/१४६-१६०, पृ० ७७ :

दरुशनमाडलन्याचार्य वांग्मय। परियलि ब्राह्मिय् व य दे।
हिरियलादुदरिन्द मोदलिन लिपियंक। एरडनेयदु यवनांक ॥१४६॥
अलिद दोषउपरिका मूद्दु। वराटिका नाल्कने अंक।
सर्व जे खरसापिका लिपि अइदंक। वरप्रभारात्रिका आरुम् ॥१४७॥
सर उच्चतारिका एलुम् ॥१४८॥ सर पुस्तिकाक्षर एन्ट ॥१४९॥
वरद भोगयवत्ता नवमा (ओंबत्तु) ॥१५०॥ सर वेदनतिका हत्तु ॥१५१॥
सिरि निन्हतिका हन्नोंदु ॥१५२॥ सर माले अंक हन्नेरडु ॥१५३॥
परम गणित हदिमूरु ॥१५४॥ सर हदिनाल्कु गान्धर्व ॥१५५॥
सरि हदिनयदु आदर्श ॥१५६॥ वर माहेश्वरि हदिनारु ॥१५७॥
बरुव दामा हदिनेलु ॥१५८॥ गुरुवु बोलिदि हदिनेन्टु ॥१५९॥

४. उपदेशपद, वैनयिकीबुद्धि प्रकरण, गाथा :

हंसलिवी भयलिवी, जक्खी तह रक्खसी य बोधव्वा।
उड्डी जवणी फुडुक्की, कीडी दविडी य सिंधविया॥
मालविणी नड नागरि, लाडलिवी पारसीय बोधव्वा।
तह अनिमित्ता णेया, चाणक्की मूलदेवी य॥

भूवलय (५/१०१-११८) में ये नाम कुछ भिन्नता से प्राप्त होते हैं। वहां 'उड्डी' के स्थान पर 'उरिया' (उड़ीया), 'फुडुक्की' के स्थान पर 'तुकिय' 'कीडी' के स्थान पर 'कीरिय' तथा 'अनिमिता' के स्थान पर 'आमिलिक' शब्द प्रयुक्त हैं। लगता है कि भूवलयगत नाम शुद्ध हैं और उपदेशपद में उनका कुछ रूपान्तरण हो गया है।

५. कर्नाटक यूनिवर्सिटी के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष प्रो० डा० पी० बी० देसाई से इन लिपियों के विषय में पूछा गया था। उन्होंने तत्सम्बन्धी निम्नप्रकार से कुछ जानकारी दी—

ब्राह्मी—यह भारतवर्ष की सबसे प्राचीन लिपि है और उत्तरवर्ती सभी लिपियों का विकास इसी से हुआ है।

यवनी—सम्भवतः यह ग्रीक लिपि हो। भारत का ग्रीक के साथ बहुत प्राचीन काल से संबंध रहा है।

खरोष्ट्रिका—इसे 'खरोष्टी' के नाम से पहचाना जाता है। सम्राट् अशोक के काल से यह लिपि प्रचलित रही है और इसकी उत्पत्ति पर्शिया या ईरान से हुई है।

दोषउरिया—यह 'उरिया' (Orissa) की लिपि रही है।

खरसाहिया—यह खरोष्ठी लिपि से सम्बन्धित लिपि लगती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ० बूलर बंभी, खरोट्ठिया, दामिली, पुक्खरसारिया और जवणालिया को भारत की ऐतिहासिक लिपियां स्वीकार करते हैं। इस संदर्भ में वे जैन सूची को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कथन है,"……जैनों की सूची में जिन लिपियों की गणना है, उनमें कुछ तो निश्चित ही प्राचीन हैं और उनका पर्याप्त ऐतिहासिक मूल्य है।'[1]

ब्राह्मी की विभिन्न लिपियों के लिए देखें—प्रेमसागर जैन 'ब्राह्मी : विश्व की मूल लिपि।'

५. एक बार (सइ) :

एक बार का अर्थ है—पोष में मकर संक्रान्ति की रात और आषाढ़ में कर्क संक्रान्ति का दिन।

अक्षरपृष्ठिका, भोगवतिका, वैनयिकी, निन्ह्विका—इन लिपियों के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

अंकलिपि—यह आर्यभट्ट द्वारा उल्लिखित अंकलिपि है। उसके अनुसार सारे अक्षरों के लिए अंक निश्चित होते हैं, जैसे—क=१, ख=२, ग=३, म=२५ आदि-आदि। अथवा इसका अर्थ यह भी है कि वह लिपि या वह शब्द जिसके द्वारा अंक जाने जाते हैं, जैसे—ख, गगन=० ; शशि, भू=१ ; नेत्र, कर=२ आदि-आदि।

गणित लिपि—इसका अर्थ है गणित और गणना में काम आने वाले अंक विशेष।

गंधर्वलिपि, आदर्शलिपि, माहेश्वरीलिपि—इनके विषय में कुछ भी निश्चयात्मकरूप से नहीं कहा जा सकता। ये केवल काल्पनिक या विचित्र प्रकार की लिपियां हैं।

दामिली—द्राविड़ी और दामिली—ये दोनों लिपियां तमिल लिपि की वाचक हैं। यह लिपि भारत में बहुत प्राचीन-काल से व्यवहृत होती रही है।

पोलिंद्री—यह भी कोई काल्पनिक लिपि ही है। अशोक के शिलालेखों में 'पुलिंद' नामक एक जंगली जाति का उल्लेख मिलता है। लगता है यह जाति किसी एक लिपि से परिचित रही हो और उस लिपि को इसी के नाम से व्यवहृत कर दिया हो।

१. भारतीय पुरालिपिशास्त्र, पृष्ठ ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९

एगूणवीसमो समवाओ : उन्नीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगूणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—	एकोनविंशतिः ज्ञाताध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१. ज्ञाता सूत्र के अध्ययन उन्नीस हैं, जैसे— १. उत्क्षिप्तज्ञात ११. दावद्रव २. संघाट १२. उदकज्ञात ३. अंड १३. मांडुक्य ४. कूर्म १४. तेतली ५. शैलक १५. नंदीफल ६. तुंब १६. अपरकंका ७. रोहिणी १७. आकीर्ण ८. मल्ली १८. सुंसुमा ९. माकंदी १९. पौंडरीकज्ञात । १०. चन्द्रमा
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा	
१. उक्खित्तणाए संघाडे, अंडे कुम्मे य सेलए । तुंबे य रोहिणी मल्ली, मागंदी चंदिमाति य ॥ २. दावद्दवे उदगणाए, मंडुक्के तेतलीइ य । नंदीफले अवरकंका, आइण्णे सुंसुमाइ य ॥ अवरे य पोंडरीए, णाए एगूणवीसइमे ।	उत्क्षिप्तज्ञातं संघाटः, अण्डं कूर्मश्च शैलकः । तुम्बं च रोहिणी मल्ली, माकन्दी चन्द्रमा इति च ॥ दावद्रवः उदकज्ञातं, माण्डुक्यं तेतलीति च । नन्दीफलं अपरकंका, आकीर्णं सुंसुमेति च ॥ अपरं च पौण्डरीकं, ज्ञातमेकोनविंशतितमम् ।	
२. जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिआ उक्कोसेणं एकूणवीसं जोयणसयाइं उड्ढमहो तवंति ।	जम्बूदीपे द्वीपे सूर्यौ उत्कर्षेण एकोनविंशतिं योजनशतानि ऊर्ध्वमधस्तपतः ।	२. जम्बूद्वीप द्वीप में दो सूर्य उत्कृष्टतः उन्नीस सौ योजन ऊंचे-नीचे तपते हैं[1] ।
३. सुक्केणं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एकूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ ।	शुक्रो महाग्रहः अपरेण उदितः सन् एकोनविंशतिभिर्नक्षत्रैः समं चारं चरित्वा अपरेण अस्तमनं उपागच्छति ।	३. महाग्रह शुक्र पश्चिम दिशा में उदित होकर उन्नीस नक्षत्रों के साथ चार (भ्रमण) कर पुनः पश्चिम दिशा में ही अस्त हो जाता है ।
४. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स कलाओ एकूणवीसं छेयणाओ पण्णत्ताओ ।	जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य कलाः एकोनविंशतिः छेदनाः प्रज्ञप्ताः :	४. जम्बूद्वीप द्वीप के गणित में प्रयुक्त कला का परिमाण एक योजन का उन्नीसवां भाग है ।
५. एगूणवीसं तित्थयरा अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइआ ।	एकोनविंशतिस्तीर्थंकरा अगारमध्युष्य मुण्डा भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिताः ।	५. उन्नीस तीर्थङ्कर चिरकाल तक अगारवास में रहकर, मुंड होकर, अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे[2] ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकोनविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की है।

७. छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

षष्ठ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकोनविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. छठी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उन्नीस सागरोपम की है।

८. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां एकोनविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की है।

९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां एकोनविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति उन्नीस पल्योपम की है।

१०. आणयकप्पे देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आनतकल्पे देवानामुत्कर्षेण एकोनविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. आनतकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम की है।

११. पाणए कप्पे देवाणं जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प्राणते कल्पे देवानां जघन्येन एकोनविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. प्राणतकल्प के देवों की जघन्य स्थिति उन्नीस सागरोपम की है।

१२. जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं सुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा आनतं प्राणतं नतं विनतं घनं शुषिरं इन्द्रं इन्द्रावकान्तं इन्द्रोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण एकोनविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. आनत, प्राणत, नत, विनत, घन, शुषिर, इन्द्र, इन्द्रावकान्त और इन्द्रोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति उन्नीस सागरोपम की है।

१३. ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः एकोनविंशतेरर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१३. वे देव उन्नीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१४. तेसि णं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां एकोनविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१४. उन देवों के उन्नीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होतीहै।

१५. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकोनविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१५. कुछ भव-सिद्धिक जीव उन्नीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूर्य...तपते हैं (सूरिआ...तवंति)

सूर्य अपने स्थान से सौ योजन ऊपर और अठारह सौ योजन नीचे तक प्रकाश फैलाते हैं। सूर्य से नीचे आठ सौ योजन पर समभूतल है। वहां से आगे भूमि का भाग निम्न होता जाता है और वह अपरविदेह में जगती के पास तक एक हजार योजन तक का है। वहां तक सूर्य का प्रकाश पहुंचता है। इस प्रकार निम्नवर्ती प्रकाश तिरछे लोक में आठ सौ योजन और अधोलोक में हजार योजन तक जाता है। जम्बूद्वीप के सिवाय सभी द्वीप सम हैं। इसलिए सूर्य स्वस्थान से सौ योजन ऊपर तथा आठ सौ योजन नीचे तक प्रकाश फैलाते हैं।[1]

२. उन्नीस तीर्थङ्कर...प्रव्रजित हुए थे (एगूणवीसं तित्थयरा...पव्वइआ)

प्रस्तुत सूत्र में बतलाया गया है कि उन्नीस तीर्थङ्कर अगार में रहकर प्रव्रजित हुए। स्थानांग सूत्र में बतलाया गया है कि पांच तीर्थङ्कर कुमारवास में रहकर प्रव्रजित हुए। उनके नाम हैं—वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर।[2] स्थानांग के इस सूत्र से समवायांग के उन्नीस नामों का निश्चय अपने आप हो जाता है। स्थानांग में निर्दिष्ट पांच तीर्थङ्करों के अतिरिक्त शेष उन्नीस तीर्थङ्कर अगारवास में रहकर प्रव्रजित हुए। अगारवास और कुमारवास—इन दोनों शब्दों का एक साथ अध्ययन करने पर सहज ही मन पर यह छाप पड़ती है कि उन्नीस तीर्थङ्कर विवाहित होकर प्रव्रजित हुए और पांच तीर्थङ्कर अविवाहित अवस्था में प्रव्रजित हुए। आवश्यक निर्युक्ति में इस विषय में परस्पर विसंवादी उल्लेख प्राप्त होते हैं। एक स्थान में 'कुमार' का अर्थ राजकुमार और दूसरे स्थान पर 'कुमार' का अर्थ ब्रह्मचारी फलित होता है। एक प्रसंग में बतलाया गया है कि महावीर, अरिष्टनेमि, पार्श्व, मल्ली और वासुपूज्य—इनको छोड़कर शेष उन्नीस तीर्थङ्कर राजा थे। ये पांच तीर्थङ्कर राजकुल में उत्पन्न हुए किन्तु उनका राज्याभिषेक नही हुआ, वे कुमार अवस्था में ही प्रव्रजित हो गए। शान्ति, कुन्थु और अर—ये तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती थे और शेष सोलह तीर्थङ्कर मांडलिक राजा।[3]

दूसरे प्रसंग में बतलाया गया है कि 'ग्रामाचार' का अर्थ विषय होता है। कुमारवर्जित तीर्थङ्करों ने उनका सेवन किया था।[4] पांच तीर्थङ्करों को प्रथम वय में प्रव्रजित और शेष तीर्थङ्करों को मध्यम वय में प्रव्रजित बतलाया गया है।[5]

शीलांकसूरी के अनुसार तीस वर्ष तक प्रथम वय, साठ वर्ष तक द्वितीय वय और उससे आगे तृतीय वय होती है।[6] भगवान् महावीर और पार्श्व तीस वर्ष की अवस्था में प्रव्रजित हुए थे। अरिष्टनेमि, मल्ली और वासुपूज्य भी अपने समय

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३५।

२. ठाणं, ५/२३४ :
पंच तित्थगरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं जहा—
वासुपुज्जे मल्ली अरिट्ठणेमी पासे वीरे।

३. आवश्यक निर्युक्ति, गा० २२१-२२३, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २०१ :
वीरं अरिट्ठनेमिं, पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
एए मुत्तूण जिणे, अवसेसा आसि रायाणो॥
रायकुलेसुऽवि जाया, विसुद्धवंसेसु खत्तिअकुलेसु।
न य इच्छिआभिसेआ, कुमारवासंमि पव्वइआ॥
संती कुंथू अ अरो, अरिहंता चेव चक्कवट्टी अ।
अवसेसा तित्थयरा मंडलिया आसि रायाणो॥

४. आवश्यक निर्युक्ति, गा० २३३, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २०४
गामायारा विसया, निसेविआ ते कुमारवज्जेहिं।

५. वही, गा० २२६, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २०२ :
वीरो अरिट्ठनेमी, पासो मल्ली अ वासुपुज्जो अ।
पढमवए पव्वइआ, सेसा पुण पच्छिमवयंमि॥

६. आचारांगवृत्ति, पत्र २४४ :
अष्टवर्षादात्रिंशत: प्रथमस्तत ऊर्ध्वमाषष्टे द्वितीयस्तत ऊर्ध्वं तृतीय इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आयुमान के अनुपात से प्रथम वय में प्रव्रजित हुए थे। इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे कुमार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे। अवचूर्णिकार ने प्रथम वय को कुमार अवस्था और मध्यम वय को यौवन अवस्था माना है।[1]

तीसवें समवाय में पार्श्व और महावीर—दोनों के प्रसंगों में बतलाया गया है कि वे तीस वर्ष तक अगारवास में रहकर प्रव्रजित हुए। यह कथन उन्नीस तीर्थङ्करों के विषय में उक्त वचन से भिन्न नहीं है। इस जिज्ञासा के समाधान में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उन्नीस तीर्थङ्करों के विषय में जो पाठ है वह 'अगारमज्झावसित्ता' और प्रथम वय में प्रव्रजित होने वाले पांच तीर्थङ्करों के विषय में जो पाठ है वहां 'अगारमज्झे वसित्ता' होना चाहिए।

प्रस्तुत समवाय में वृत्तिकार अभयदेवसूरी के अनुसार 'अगारमज्झावसित्ता' में दो शब्द हैं—'अगारं' और 'अज्झावसित्ता'। 'अज्झावसित्ता' शब्द अधि+आ+उषित्वा—इन तीनों के योग से बना है। 'अधि' का अर्थ है अधिक, 'आ' मर्यादा का वाचक है और 'उषित्वा' का अर्थ है रहकर। वृत्तिकार ने इसका अर्थ यह किया है कि उन्नीस तीर्थङ्कर चिरकाल तक राज्य का परिपालन कर प्रव्रजित हुए थे।[2] 'अगारमज्झे वसित्ता' में भी दो शब्द हैं—'अगारमज्झे' और 'वसित्ता'। इसका अर्थ है—घर में निवास कर।

आदर्शों में 'अगारमज्झावसित्ता' और 'अगारमज्झे वसित्ता' का भेद प्राप्त नहीं है, क्योंकि लिपिकारों का इस भेद की ओर ध्यान नहीं था। अतएव स्थानांग के आदर्शों में 'कुमारवासमज्झे वसित्ता' का पाठान्तर 'कुमारवासमज्झावसित्ता' भी मिलता है और उन्नीसवें समवाय में 'अगारमज्जावसित्ता' का पाठान्तर 'अगारमज्झे वसित्ता' भी मिलता है। किन्तु अर्थ की मीमांसा करने पर यह स्पष्ट विदित होता है कि सूत्रकार ने मध्यम वय में प्रव्रजित होने वाले तीर्थङ्करों तथा प्रथम वय में प्रव्रजित होने वाले तीर्थङ्करों का भेद सूचित करने के लिए पाठ-रचना में भेद किया था। इस चर्चा से आपाततः हमारे मन पर पड़ने वाली यह छाप 'उन्नीस तीर्थङ्कर विवाहित होकर प्रव्रजित हुए और पांच तीर्थङ्कर कुमार (अविवाहित) अवस्था में प्रव्रजित हुए', फिर धुंधली हो जाती है।

यद्यपि इस विषय में कुछ चिन्तनीय प्रश्न शेष रहते हैं, जैसे—तीर्थङ्करों के विषय में अन्य अनेक बातों का विवरण दिया है वहां उनके विवाहित या अविवाहित होने का विवरण क्यों नहीं दिया ?

चक्रवर्ती भरत ७७ लाख पूर्व तक कुमारवास में रहे थे। फिर उनका महाराज्याभिषेक हुआ था।[3] इस सूत्र में कुमारवास और महाराज्याभिषेक—ये दोनों शब्द उस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि जो पांच तीर्थङ्कर कुमारवास में प्रव्रजित हुए, उनका महाराज्याभिषेक नहीं हुआ। फलित की भाषा में यह कहा जा सकता है कि कुमारवास शब्द के द्वारा उनके अविवाहित होने की सूचना नहीं दी है, किन्तु राज्याभिषेक की पूर्वावस्था की सूचना दी है।

पउमचरिअ से भी हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है। उसमें लिखा है—'पांच तीर्थङ्कर कुमार अवस्था में प्रव्रजित हुए और शेष तीर्थंकरों ने पृथ्वी का भोग कर अभिनिष्क्रमण किया[4]।'

---

१. आवश्यक निर्युक्ति, गा० २२६, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २०३ :
प्रथमवयसि—कुमारत्वलक्षणे······, मध्ये वयसि—यौवनलक्षणे·········।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ३५ :
अगारं—गेहं, अधिकं—आधिक्येन चिरकालं राज्यपरिपालनतः, आ—मर्यादया नीत्या, वसित्वा उषित्वा तत्र वासं विधायेति, अध्येष्ट्या प्रव्रजिताः।

३. समवाय, ७७/१ :
भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तत्तरिं पुव्वसयसहस्साइ कुमारवासमज्झावसित्ता महारायाभिसेयं संपत्ते।

४. पउमचरिअ, २०/५७,५८ :
मल्ली अरिट्ठनेमी पासो वीरो य वासुपुज्जो।।
एए कुमारसीहा गेहाओ निग्गया जिणवरिंदा।
सेसा वि हु रायाणो पुहई भोत्तूण निक्खंता।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०

वीसइमो समवाओ : बीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. वीसं असमाहिठाणा पण्णत्ता, तं जहा—	विंशतिः असमाधिस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१. असमाधि के स्थान बीस हैं,[1] जैसे—
१. दवदवचारि यावि भवइ	द्रवद्रवचारी चापि भवति	१. शीघ्रगति से चलने वाला।
२. अपमज्जियचारि यावि भवइ	अप्रमार्जितचारी चापि भवति	२. प्रमार्जन किए बिना चलने वाला।
३. दुप्पमज्जियचारि यावि भवइ	दुष्प्रमार्जितचारी चापि भवति	३. अविधि से प्रमार्जन कर चलने वाला।
४. अतिरित्तसेज्जासणिए	अतिरिक्तशय्यासनिकः	४. प्रमाण से अधिक शय्या, आसन आदि रखने वाला[2]।
५. रातिणियपरिभासी	रात्निकपरिभाषी	५. रत्नाधिक साधुओं का पराभव करने वाला।
६. थेरोवघातिए	स्थविरोपघाती	६. स्थविरों का उपघात करने वाला।
७. भूओवघातिए	भूतोपघाती	७. प्राणियों का उपघात करने वाला।
८. संजलणे	संज्वलनः	८. प्रतिक्षण क्रोध करने वाला।
९ कोहणे	क्रोधनः	९. अत्यन्त क्रुद्ध होने वाला।
१०. पिट्ठिमंसिए	पृष्ठिमांसिकः	१०. परोक्ष में अवर्णवाद बोलने वाला।
११. अभिक्खणं - अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ	अभीक्ष्णमभीक्ष्णमवधारयिता भवति	११. बार-बार निश्चयकारी भाषा बोलने वाला।
१२. णवाणं अधिकरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाएत्ता भवइ	नवानामधिकरणानां अनुत्पन्नानां उत्पादयिता भवति	१२. अनुत्पन्न नए कलहों को उत्पन्न करने वाला।
१३. पोराणाणं अधिकरणाणं खामिय-विओसवियाणं पुणोदीरेत्ता भवइ	पुराणानामधिकरणानां क्षमित-व्यवशमितानां पुनरुदीरयिता भवति	१३. क्षामित और उपशान्त पुराने कलहों की उदीरणा करने वाला।
१४. ससरक्खपाणिपाए	सरजस्कपाणिपादः	१४. सचित्त रज से लिप्त हाथ से भिक्षा लेने वाला और सचित्त रज से लिप्त पैरों से अचित्त भूमि में संक्रमण करने वाला।
१५. अकाल-सज्झायकारए यावि भवइ	अकाल-स्वाध्यायकारकश्चापि भवति	१५. अकाल में स्वाध्याय करने वाला।
१६. कलहकरे	कलहकरः	१६. कलह करने वाला।
१७. सद्दकरे	शब्दकरः	१७. शब्दकर—बकवास करने वाला।
१८. झंझकरे	झञ्झाकरः	१८. झञ्झाकर—गण में भेद डालने वाला या गण के मन को दुःखाने वाली भाषा बोलने वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. सूरप्पमाणभोई
२०. एसणाऽसमिते आवि भवइ।

सूरप्रमाणभोजी
एषणाऽसमितश्चापि भवति।

१९. सूर्योदय से सूर्यास्त तक बार-बार भोजन करने वाला।
२०. एषणा समिति का पालन न करने वाला।

२. मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

मुनिसुव्रतः अर्हन् विंशतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

२. अर्हत् मुनिसुव्रत बीस धनुष्य ऊंचे थे।

३. सव्वेवि णं घणोदही वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि घनोदधयो विंशतिं योजन-सहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्ताः।

३. सभी घनोदधि—घन समुद्रों की मोटाई बीस-बीस हजार योजन है।

४. पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वीसं सामाणिअसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

प्राणतस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य विंशतिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।

४. प्राणतकल्प के देवेन्द्र देवराज के सामानिक देव बीस हजार हैं।

५. णपुंसयवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधओ बंधठिई पण्णत्ता।

नपुंसकवेदनीयस्य कर्मणः विंशतिः सागरोपमकोटिकोटीः बन्धतो बन्ध-स्थितिः प्रज्ञप्ता।

५. नपुंसक वेदनीय कर्म का स्थिति-बंध, बंध के प्रथम क्षण से, बीस कोटिकोटि सागरोपम का है।

६. पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता।

प्रत्याख्यानस्य पूर्वस्य विंशतिः वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

६. प्रत्याख्यान पूर्व के वस्तु बीस हैं।

७. ओसप्पिणि-उस्सप्पिणिमंडले वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो पण्णत्तो।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी-मण्डले विंशतिः सागरोपमकोटिकोटीः कालः प्रज्ञप्तः।

७. अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी मंडल में कालमान बीस कोटिकोटि सागरोपम का है।

८ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बीस पल्योपम की है।

९. छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

षष्ठ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. छट्ठी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बीस सागरोपम की है।

१०. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बीस पल्योपम की है।

११. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं दवाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति बीस पल्योपम की है।

१२. पाणते कप्पे देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

प्राणते कल्पे देवानामुत्कर्षेण विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. प्राणतकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. आरणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आरणे कल्पे देवानां जघन्येन विंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. आरणकल्प के देवों की जघन्य स्थिति बीस सागरोपम की है।

१४. जे देवा सातं विसातं सुविसातं सिद्धत्थं उप्पलं रुइलं तिगिच्छं दिसासोवत्थिय-वद्धमाणयं पलंबं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फपभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिट्ठं पुप्फकूडं पुप्फुत्तरवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः सातं विसातं सुविसातं सिद्धार्थं उत्पलं रुचिरं तिगिच्छं दिशासौवस्तिकं वर्द्धमानकं प्रलम्बं पुष्पं सुपुष्पं पुष्पावर्त्तं पुष्पप्रभं पुष्पकान्तं पुष्पवर्णं पुष्पलेश्यं पुष्पध्वजं पुष्पशृङ्गं पुष्पसृष्टं पुष्पकूटं पुष्पोत्तरावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. सात, विसात, सुविसात, सिद्धार्थ, उत्पल, रुचिर, तिगिच्छ, दिशासौवस्तिक, वर्द्धमानक, प्रलंब, पुष्प, सुपुष्प, पुष्पावर्त्त, पुष्पप्रभ, पुष्पकान्त, पुष्पवर्ण, पुष्पलेश्य, पुष्पध्वज, पुष्पशृङ्ग, पुष्पसृष्ट, पुष्पकूट और पुष्पोत्तरावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति बीस सागरोपम की है।

१५. ते णं देवा वीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः विंशतेः अर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१५. वे देव बीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१६. तेसि णं देवाणं वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां विंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१६. उन देवों के बीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१७. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये विंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१७. कुछ भव-सिद्धिक जीव बीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. असमाधि के स्थान (असमाहिठाणा)

समाधि के तीन अर्थ हैं—समाधान, मानसिक स्वस्थता और मोक्ष-मार्ग में अवस्थिति।[1] प्रस्तुत आलापक में सूत्रकार ने ऐसे बीस स्थानों का निर्देश किया है, जिनसे मानसिक अशांति या असमाधि उत्पन्न होती है। ऐसे और अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु मुनि के जीवन-व्यवहार में इन कारणों के उपस्थित होने की संभावना अधिक होती है।

यहां असमाधि-स्थान का तात्पर्य है—असमाधि के आश्रय, भेद या पर्याय।[2]

जिस आचरण से स्वयं के या दूसरे के, इहलोक में, परलोक में या उभयलोक में असमाधि होती है उसे असमाधि-स्थान अथवा असमाधि-पद कहा जाता है।[3]

१. आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति, भाग २ पृष्ठ १०६ :
समाधानं समाधिः—चेतसः स्वास्थ्यं मोक्षमार्गेऽवस्थितिः।

२. आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति, भाग २ पृष्ठ १०६ :
न समाधिरसमाधिस्तस्य स्थानानि—आश्रया भेदाः पर्यायाः।

३. दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि पत्र ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधि के दो प्रकार हैं—

१. द्रव्य समाधि—पदार्थों से होने वाली तुष्टि या समाधान।

२. भाव समाधि—ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अविसंवादिता।

प्रस्तुत आलापक में बीस असमाधि-स्थानों का निर्देश है। शिष्य प्रश्न करता है कि क्या असमाधि के स्थान बीस ही हैं? आचार्य कहते हैं—यह तो एक निर्देश मात्र है। जिन-जिन आचरणों से असमाधि उत्पन्न होती है, वे सब असमाधि-स्थान हैं। जैसे—दवदवचारिता—जल्दबाजी से चलना ही असमाधि का स्थान नहीं है। जो जल्दबाजी में बोलता है, जल्दबाजी से प्रतिलेखन करता है या जल्दबाजी में भोजन करता है—वे सब असमाधि-स्थान हैं।

एक शब्द में कहा जा सकता है कि जितने असंयम के स्थान हैं, उतने ही स्थान असमाधि के हैं। वे असंख्य हैं। अथवा मिथ्यात्व, अविरति, अज्ञान—ये सारे असमाधि के स्थान हैं।[1]

असमाधि के बीस स्थानों में से कुछेक की व्याख्या इस प्रकार है—

(४) यहां शय्या का अर्थ है—वसति और आसन का अर्थ है—पाट, बाजोट आदि। जब ये प्रमाणातिरिक्त होते हैं, तब असमाधि के कारण बनते हैं। क्योंकि जहां शय्या—स्थान की अतिरिक्तता हो और कार्पटिकादिक अन्यतीर्थिक आ जाने पर उन्हें न दिया जाए तो वह कलह का हेतु हो सकता है। इसी प्रकार पाट, बाजोट आदि की याचना करने पर न दिए जाएं तो वे कलह के कारण बनते हैं।[2]

(११) समवायांग के वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं[3]—

१. शंकायुक्त अर्थ का निःशंक होकर प्रतिपादन करना।

२. दूसरों के गुणों का अपहरण करना, जैसे—अदास को दास और अचोर को चोर कहना।

हरिभद्रसूरी ने भी इसके दो अर्थ किए हैं[4]—

१. तिरस्कार करने वाली भाषा बोलना, जैसे तुम दास हो, तुम चोर हो।

२. शंकित बात को निःशंकित रूप में कहना, यह ऐसे ही है।

(१२) अधिकरण के दो अर्थ हैं—कलह और यंत्र। नए-नए कलहों को उत्पन्न करना भी असमाधि का कारण बनता है और नए-नए यंत्रों का निर्माण करना, स्थापना करना भी अधिकरण—हिंसा का कारण बनता है।[5]

हरिभद्रसूरी ने भी इस आलापक के दो अर्थ किए हैं—

१. दूसरों को लड़ाना।

२. यंत्रों का निर्माण करना।[6]

(१६) इस आलापक के दो अर्थ हैं—

१. स्वयं कलह करना।

२. ऐसे कार्य करना जिनसे कलह उत्पन्न हो।[7]

---

१. दशाश्रुतस्कंधचूर्णि, पृष्ठ ६,७।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ३६।

३. समवायांगवृत्ति पत्र ३६, ३७ :

शङ्कितस्याप्यर्थस्य निःशङ्कितस्यैवमेवायमित्येवं वक्ता, अथवाऽपहारयिता परगुणानामपहारकारी, यथा अदासादिकमपि परं भणति—दासस्त्वं चौरस्त्वमित्यादि।

४. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ ११० :

अभीक्ष्णमभीक्ष्णमवधारक इति अभीक्ष्णमवधारिणी भाषां भाषते, यथा दासस्त्वं चौरोवेति, यद्वा शंकितं तत् निःशंकितं भणति, एवमेवेति।

५. समवायांगवृत्ति, पत्र ३७।

तथा अधिकरणानां—कलहानां यन्त्रादीनां वोत्पादयिता।

६. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ ११० :

अधिकरणकर उदीरकः अधिकरणानि करोति अन्येषां कलहयतीति भणितं भवति, यन्त्रादीनि वोदीरयति।

७. वही, वृत्ति भाग २ पृष्ठ ११० :

कलहकर इति आत्मना कलहं करोति, तत्करोति येन कलहो भवति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायांगवृत्ति में इसका एक ही अर्थ है—कलह का हेतुभूत कार्य करने वाला।[1]

(१७) वृत्तिकार ने "शब्दकर" के दो अर्थ किए हैं[2]—

१. रात्रि में जोर-जोर से बोलना या स्वाध्याय आदि करना।

२. गृहस्थ की भाषा बोलना (अपशब्दों का प्रयोग करना)।

दशाश्रुतस्कंध की वृत्ति में इसके तीन अर्थ किए हैं[3]—

१. लोगों के सो जाने पर, प्रहर रात्रि के बाद जोर-जोर से बोलना या स्वाध्याय आदि करना।

२. गृहस्थ की भाषा बोलना।

३. वैरात्रिक काल-ग्रहण के समय जोर से बोलना।

सूत्रकार को इस शब्द से क्या अर्थ अभिप्रेत था—इस विषय में वृत्तिकार भी स्वयं निश्चित नहीं हैं, यह उन द्वारा कृत अनेक विकल्पों से ज्ञात होता है। यदि निश्चित अर्थ ज्ञात होता तो वे दो या तीन विकल्प प्रस्तुत नहीं करते।

आगमों में "सद्दकरे, झंझकरे, कलहकरे, तुमंतुमे"—ये शब्द प्रायः कलह आदि करने के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। स्थानांग सूत्र में "अप्पसद्दे" की व्याख्या में वृत्तिकार अभयदेवसूरी ने इसका अर्थ "विगतराटीमहाध्वनयः"—कलहकृत महाध्वनि से रहित—किया है।[4]

इन दृष्टियों से तथा प्रस्तुत सूत्र के प्रकरण से भी "शब्दकर" का यहां वृत्तिकारों द्वारा मान्य दूसरा अर्थ—गृहस्थ की भाषा बोलना—ही समीचीन प्रतीत होता है।

(१९) सूर्यप्रमाणभोजी वह होता है जो सूर्य को प्रमाण मानकर, सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाता रहता है। वह स्वाध्याय आदि में प्रवृत्त नहीं होता। स्वाध्याय के लिए प्रेरित करने पर वह कुपित और रुष्ट हो जाता है। अत्यधिक खाने से उसके अजीर्ण आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं और तब उसे असमाधि का अनुभव होता है।[5]

(२०) जो ऐषणा समिति में उपयुक्त नहीं होता, वह अनेषणा का परिहार नहीं कर सकता। जो व्यक्ति अनेषणा का परिहार नहीं करता वह हिंसा से युक्त होता है। दूसरे मुनि उसे जब सावधान करते हैं तब वह उनसे झगड़ने लग जाता है। यह स्थान स्वयं की तथा दूसरे की असमाधि का कारण बनता है।[6]

स्थानांग १०/१४ से दस असमाधि-स्थानों का निर्देश है। वे इन बीस असमाधि-स्थानों से सर्वथा भिन्न हैं। वहां पांच "अ-महाव्रतों" तथा पांच "असमितियों" को असमाधि-स्थान कहा है। इन दसों स्थानों में प्रस्तुत आगमोक्त बीस स्थानों का समावेश किया जा सकता है।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३७ :
कलहकरः कलहहेतुभूतकर्त्तव्यकारी।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ३७।

३. दशाश्रुतस्कन्धवृत्ति (हस्तलिखित आदर्श)

४. स्थानांगवृत्ति, पत्र ४१६।

५. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति भाग २, पृष्ठ ११० :
सूर्यप्रमाणभोजीति सूर्य एवं प्रमाणं तस्योदय मात्रादारभ्य: यावत् नास्तमेति तावत् भुनक्ति स्वाध्यायादि न करोति प्रतिचोदितो रुष्यति, अजीर्णत्वादि चासमाधिरुत्पद्यते।

६. समवायांगवृत्ति, पत्र ३७:
एषणाऽसमितश्चापि भवति, अनेषणां न परिहरति, प्रेरितश्चासौ साधुभिः कलहायते, तथाऽनेषणीयमपरिहरन् जीवोपरोधे वर्त्तते, एवं चात्मपरयोरसमाधिकरणादसमाधिस्थानमिदम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१

एक्कवीसइमो समवाओ : इक्कीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एक्कवीस सबला पण्णत्ता, तं जहा —	एकविंशतिः शबलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. शबल[1] इक्कीस हैं, जैसे—
१. हत्थकम्मं करेमाणे सबले।	हस्तकर्म कुर्वन् शबलः।	१. हस्तकर्म करने वाला।
२. मेहुणं पडिसेवमाणे सबले।	मैथुनं प्रतिसेवमानः शबलः।	२. मैथुन का प्रतिसेवन करने वाला।
३. राइभोयणं भुंजमाणे सबले।	रात्रिभोजनं भुञ्जानः शबलः।	३. रात्रिभोजन करने वाला।
४. आहाकम्मं भुंजमाणे सबले।	आधाकर्म भुञ्जानः शबलः।	४. आधाकर्म आहार करने वाला।
५. सागारियपिंडं भुंजमाणे सबले।	सागारिकपिण्डं भुञ्जानः शबलः।	५. सागारिकपिंड खाने वाला।
६. उद्देसियं, कीयं, आहट्टु दिज्जमाणं भुंजमाणे सबले।	औद्देशिकं क्रीतमाहृत्यदीयमानं भुञ्जानः शबलः।	६. औद्देशिक, क्रीत और सामने लाकर दिया गया भोजन करने वाला।
७. अभिक्खणं पडियाइक्खेत्ता णं भुंजमाणे सबले।	अभीक्ष्णं प्रत्याख्याय भुञ्जानः शबलः।	७. बार-बार अशन आदि का प्रत्याख्यान कर उसे खाने वाला।
८. अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सबले।	अन्तः षण्णां मासानां गणाद् गणं संक्रामन् शबलः।	८. छह महीनों में एक गच्छ से दूसरे गच्छ में संक्रमण करने वाला।
९. अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सबले।	अन्तर्मासस्य त्रीन् दकलेपान् कुर्वन् शबलः।	९. एक महीने में तीन उदक-लेप लगाने वाला।
१०. अंतो मासस्स तओ माईठाणे सेवमाणे सबले।	अन्तर्मासस्य त्रीणि मायिस्थानानि सेवमानः शबलः।	१०. एक महीने में तीन माया-स्थान का सेवन करने वाला।
११. रायपिंडं भुंजमाणे सबले।	राजपिण्डं भुञ्जानः शबलः।	११. राजपिंड खाने वाला।
१२. आउट्टिआए पाणाइवायं करेमाणे सबले।	आकुट्या प्राणातिपातं कुर्वन् शबलः।	१२. अभिमुखतापूर्वक प्राणातिपात करने वाला।
१३. आउट्टिआए मुसावायं वदमाणे सबले।	आकुट्या मृषावादं वदन् शबलः।	१३. अभिमुखतापूर्वक मृषावाद बोलने वाला।
१४. आउट्टिआए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सबले।	आकुट्या अदत्तादानं गृह्णन् शबलः।	१४. अभिमुखतापूर्वक अदत्तादान लेने वाला।
१५. आउट्टिआए अणंतरहिआए पुढवीए ठाणं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबले।	आकुट्या अनन्तर्हितायां पृथिव्यां स्थानं वा निषीधिकां वा चेतयन् शबलः।	१५. अभिमुखतापूर्वक अनन्तर्हित (अव्यवहित—बिछावन के द्वारा व्यवधान डाले बिना) पृथ्वी पर स्थान या निषद्या करने वाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. आउट्टियाए ससणिद्धाए पुढवीए ससरक्खाए पुढवीए ठाणं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबले।

आकुट्या सस्निग्धायां पृथिव्यां सरजस्कायां पृथिव्यां स्थानं वा निषीधिकां वा चेतयन् शबलः।

१६. अभिमुखतापूर्वक जल-स्निग्ध तथा सचित्त रज से संश्लिष्ट पृथ्वी पर स्थान या निषद्या करने वाला।

१७. आउट्टिआए चित्तमंताए पुढवीए, चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलूए, कोलावासंसि वा दारुए (अण्णयरे वा तहप्पगारे?) जीवपइट्ठिए सअंडे सपाणे सबीए सहरिए सउत्तिंगे पणग-दगमट्टी-मक्कडासंताणए ठाणं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबले।

आकुट्या चित्तवत्यां पृथिव्यां, चित्तवत्यां शिलायां, चित्तवति लेष्टौ, कोलावासे वा दारुके (अन्यतरस्मिन् वा तथाप्रकारे?) जीवप्रतिष्ठिते साण्डे सप्राणे सबीजे सहरिते सोत्तिङ्गे पनक-दकमृत्-मर्कटकसन्ताने स्थानं वा निषीधिकां वा चेतयन् शबलः।

१७. अभिमुखतापूर्वक सचित्त पृथ्वी, सचित्त शिला, सचित्त प्रस्तर-खंड, घुण-काष्ठ (तथा इसी प्रकार के अन्य?) जीव-प्रतिष्ठित, अंडों सहित, प्राण सहित, बीज सहित, हरित सहित, उत्तिङ्ग सहित, फफुंदी, कीचड़ और मकड़ी के जाल वाले आश्रय में स्थान या निषद्या करने वाला।

१८. आउट्टिआए मूलभोयणं वा कंदभोयणं वा खंधभोयणं वा तयाभोयणं वा पवालभोयणं वा पत्तभोयणं वा पुप्फभोयणं वा फलभोयणं वा बीयभोयणं वा हरियभोयणं वा भुंजमाणे सबले।

आकुट्या मूलभोजनं वा कन्दभोजनं वा स्कन्धभोजनं वा त्वग्भोजनं वा प्रवालभोजनं वा पत्रभोजनं वा पुष्पभोजनं वा फलभोजनं वा बीजभोजनं वा हरितभोजनं वा भुञ्जानः शबलः।

१८. अभिमुखतापूर्वक मूलभोजन, कंदभोजन, स्कंधभोजन, त्वक्भोजन, प्रवालभोजन, पत्रभोजन, पुष्पभोजन, फलभोजन, बीजभोजन और हरितभोजन करने वाला।

१९. अंतो संवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सबले।

अन्तः संवत्सरस्य दश दकलेपान् कुर्वन् शबलः।

१९. एक वर्ष में दस उदक-लेप लगाने वाला।

२०. अंतो संवच्छरस्स दस माइठाणाइं सेवमाणे सबले।

अन्तः संवत्सरस्य दश मायिस्थानानि सेवमानः शबलः।

२०. एक वर्ष में दस माया-स्थान का सेवन करने वाला।

२१. अभिक्खणं-अभिक्खणं सीतोदय-वियड-वग्घारिय-पाणिणा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले।

अभीक्ष्णमभीक्ष्णं शीतोदक-विकट-व्यापारित-पाणिना अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रगृह्य भुञ्जानः शबलः।

२१. बार-बार सचित्त जल से लिप्त हाथों से अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य को ग्रहण कर भोगने वाला।

२. णिअट्टिबादरस्स णं खवित-सत्तयस्स मोहणिज्जस्स कम्मस्स एक्कवीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तं जहा—

निवृत्तिबादरस्य क्षपितसप्तकस्य मोहनीयस्य कर्मणः एकविंशतिः कर्मांशाः सत्कर्माणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—

२. निवृत्तिबादरगुणस्थानवर्ती मुनि मोहनीय कर्म की सात प्रकृतियों को क्षीण कर देता है तब उसके शेष इक्कीस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्ता में रहते हैं,[२] जैसे—

अपच्चक्खाणकसाए कोहे
अपच्चक्खाणकसाए माणे
अपच्चक्खाणकसाए माया
अपच्चक्खाणकसाए लोभे।

अप्रत्याख्यानकषायः क्रोधः
अप्रत्याख्यानकषायः मानः
अप्रत्याख्यानकषाया माया
अप्रत्याख्यानकषायो लोभः।

१. अप्रत्याख्यान-कषाय क्रोध
२. अप्रत्याख्यान-कषाय मान
३. अप्रत्याख्यान-कषाय माया
४. अप्रत्याख्यान-कषाय लोभ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पच्चक्खाणावरणे कोहे	प्रत्याख्यानावरणः क्रोधः	५. प्रत्याख्यानावरण क्रोध
पच्चक्खाणावरणे माणे	प्रत्याख्यानावरणं मानं	६. प्रत्याख्यानावरण मान
पच्चक्खाणावरणा माया	प्रत्याख्यानावरणा माया	७. प्रत्याख्यानावरण माया
पच्चक्खाणावरणे लोभे।	प्रत्याख्यानावरणो लोभः।	८. प्रत्याख्यानावरण लोभ।
संजलणे कोहे	संज्वलनः क्रोधः	९. संज्वलन क्रोध
संजलणे माणे	संज्वलनं मानं	१०. संज्वलन मान
संजलणा माया	संज्वलनी माया	११. संज्वलन माया
संजलणे लोभे।	संज्वलनो लोभः।	१२. संज्वलन लोभ।
इत्थिवेदे	स्त्रीवेदः	१३. स्त्री वेद
पुंवेदे	पुंवेदः	१४. पुरुष वेद
नपुंसयवेदे।	नपुंसकवेदः।	१५. नपुंसक वेद।
हासे	हास्यं	१६. हास्य
अरति	अरतिः	१७. अरति
रति	रतिः	१८. रति
भय	भयं	१९. भय
सोग	शोकः	२०. शोक
दुगुंछा।	जुगुप्सा।	२१. जुगुप्सा।
३. एकमेक्काए णं ओसप्पिणीए पंचमछट्ठाओ समाओ एक्कवीसं-एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—दूसमा दूसम-दूसमा य।	एकैकस्यां अवसर्पिण्यां पञ्चम-षष्ठे समे एकविंशतिमेकविंशतिं वर्षसहस्राणि कालेन प्रज्ञप्ते, तद्यथा—दुष्षमा दुष्षम-दुष्षमा च।	३. प्रत्येक अवसर्पिणी के पांचवें—दु:षमा और छठे—दु:षम-दु:षमा आरे का कालमान इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का है।
४. एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढमबितियाओ समाओ एक्कवीसं-एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ, तं जहा—दूसम-दूसमा दूसमा य।	एकैकस्यां उत्सर्पिण्यां प्रथम-द्वितीये समे एकविंशतिमेकविंशतिं वर्षसहस्राणि कालेन प्रज्ञप्ते, तद्यथा—दुष्षम-दुष्षमा दुष्षमा च।	४. प्रत्येक उत्सर्पिणी के पहले—दु:षम-दु:षमा और दूसरे—दु:षमा आरे का कालमान इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष का है।
५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की है।
६. छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	षष्ठ्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	६. छठी पृथ्वी के कुछ नैरयिकों कि स्थिति इक्कीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानामस्ति एकेषां एकविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की है।

८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां एकविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति इक्कीस पल्योपम की है।

९. आरणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आरणे कल्पे देवानामुत्कर्षेण एकविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. आरणकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम की है।

१०. अच्चुते कप्पे देवाणं जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अच्युते कल्पे देवानां जघन्येन एकविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. अच्युतकल्प के देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस पल्योपम की है।

११. जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामगंडं मल्लं किट्टिं चावोण्णतं आरण्णवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः श्रीवत्सं श्रीदामगण्डं माल्यं कृष्टिं चापोन्नतं आरण्यावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण एकविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. श्रीवत्स, श्रीदामगंड, माल्य, कृष्टि, चापोन्नत और आरण्यावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति इक्कीस सागरोपम की है।

१२. ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा एकविंशतेः अर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१२. वे देव इक्कीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१३. तेसि णं देवाणं एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां एकविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१३. उन देवों के इक्कीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१४. कुछ भव-सिद्धिक जीव इक्कीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१ : शबल (सबला)

जिस आचरण के आसेवन से चारित्र धब्बों वाला होता है, उस आचरण या आचरणकर्त्ता को 'शबल' कहा जाता है।[1]

छोटे अपराध में साधु को 'मूल' प्रायश्चित्त प्राप्त नहीं होता। किन्तु वह अपराध उसके चारित्र को चितकबरा बना देता है, इसलिए ऐसे दोषों को 'शबल' की संज्ञा दी गई है।[2] शबल इक्कीस हैं। उनमें से कुछेक की व्याख्या इस प्रकार है—

१. सागारिकपिंड—सामान्यतः सागारिक का अर्थ होता है—गृहस्थ। प्रस्तुत प्रसंग में इसे 'शय्यातर' का वाचक माना है। स्थानदाता को शय्यातर कहा जाता है।[3]

६. प्रस्तुत शबल में भोजन संबंधी तीन दोषों का ग्रहण किया है। इनके उपलक्षण से प्रामित्य, आच्छेद्य, अनिसृष्ट आदि दोष भी गृहीत कर लेने चाहिए।[4]

८. प्राचीन परंपरा के अनुसार अनेक गण थे और उन गणों के मुनि एक गण से दूसरे गण में अपक्रमण करते थे। उनके अपक्रमण के सात कारण स्थानांग सूत्र में निर्दिष्ट हैं।[5]

इस आलापक से यह निश्चित होता है कि अपक्रमण करने वाले मुनि को अनिवार्यतः छह महीनों तक उस गण में रहना होता था। इस अवधि से पूर्व यदि वह उस गण से अपक्रमण कर दूसरे गण में जाता है तो 'गाणंगणिय' दोष का भागी होता है।

९. उदकलेप का अर्थ है—नाभिप्रमाण जल का अवगाहन करना।[6]

हरिभद्र ने अर्धजंघा तक के जल के अवगाहन को 'संघट्टन' और नाभिप्रमाण जल के अवगाहन को 'लेप' माना है।[7]

१२. इसमें 'आउट्टियाए' शब्द प्रयुक्त है। यह शब्द सात आलापकों में प्रयुक्त है। इसके दो अर्थ किए हैं—

१. जानते हुए।[8] २. सम्मुख जाकर।[9]

समवायांग के वृत्तिकार ने आकुट्या के अर्थ में 'उपेत्य' शब्द व्यवहृत किया है। उपेत्य के दो अर्थ होते हैं—पास में जाकर या जानकर।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३८ :
शबलं-कर्बुरं चारित्रं यैः क्रियाविशेषैर्भवति ते शबलास्तद्योगात्साधवोऽपि।

२. आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति, भाग २, पृष्ठ ११० :
अवराहंमि पयणुए जेण उ मूलं न वच्चई साहु।
सबलेंति तं चरित्तं, तम्हा सबलत्तणं बेंति ॥

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ३८ :
सागारिकः—स्थानदाता।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र २८ :
औद्देशिकं क्रीतमाहृत्य दीयमानं (च) भुञ्जानः उपलक्षणत्वात्पामिच्चाच्छेद्यानिसृष्टग्रहणमपीह द्रष्टव्यमिति।

५. ठाणं ७/१।

६. समवायांगवृत्ति, पत्र ३८ :
उदकलेपश्च नाभिप्रमाणजलागावहनमिति।

७. आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति, भाग २, पत्र, १११ :
जंघार्धं संघट्टो नाभिर्लेप :।

८. दशाश्रुतस्कंधचूर्णि, पृष्ठ १० :
आउट्टिया णाम जाणंतो।

९. समवायांगवृत्ति, पत्र ३८ :
आकुट्ट्या······उपेत्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सूत्र २ :

गुणस्थान चौदह हैं। उनमें आठवां गुणस्थान निवृत्तिबादर है। जिसमें स्थूल कषाय की निवृत्ति होती है, उसे निवृत्ति-बादर गुणस्थान कहा जाता है। इस अवस्था में आत्मा स्थूलरूप से कषायों से मुक्त हो जाती है।

मोहनीय कर्म की अठाईस प्रकृतियां हैं। आठवें गुणस्थानवर्ती मुनि इनमें से सात प्रकृतियों—कषाय-चतुष्क तथा दर्शन-त्रिक—को क्षीण कर देता है—

१ कषाय-चतुष्क—अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ।

२. दर्शन-त्रिक – सम्यक्त्व मोह, मिथ्यात्व मोह और मिश्र मोह।

शेष इक्कीस प्रकृतियां सत्ता में होती हैं। प्रस्तुत आलापक में उनका निर्देश है।

'कम्मंसा'—कर्मांश का अर्थ है– उत्तर प्रकृतियां और 'संतकम्मा'—सत्कर्म का अर्थ है—सत्तावस्था में विद्यमान कर्म।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३८ :

निवृत्तिबादरस्य–अपूर्वकरणस्याष्टमगुणस्थानवर्त्तिन इत्यर्थः, णं वाक्यालङ्कारे, क्षीणं सप्तकम्—अनन्तानुबन्धिचतुष्टयदर्शनत्रयलक्षणं यस्य स तथा, तस्य, मोहनीयस्य कर्मणः एकविंशतिः कर्मांशा अप्रत्याख्यानादिकषायद्वादशनोकषायनवकरूपा उत्तरप्रकृतयः सत्कर्म—सत्तावस्थं कर्म प्रज्ञप्तमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२
बावीसइमो समवाओ : बाईसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा— दिगिंछापरीसहे पिवासापरीसहे सीतपरीसहे उसिणपरीसहे दंसमसगपरीसहे अचेलपरीसहे अरइपरीसहे इत्थिपरीसहे चरियापरीसहे निसीहियापरीसहे सेज्जापरीसहे अक्कोसपरीसहे वहपरीसहे जायणापरीसहे अलाभपरीसहे रोगपरीसहे तणफासपरीसहे जल्लपरीसहे सक्कारपुरक्कारपरीसहे नाणपरीसहे दंसणपरीसहे पण्णापरीसहे।	द्वाविंशतिः परीषहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— क्षुधापरीषहः पिपासापरीषहः शीतपरीषहः उष्णपरीषहः दंशमशकपरीषहः अचेलपरीषहः अरतिपरीषहः स्त्रीपरीषहः चर्यापरीषहः निषीधि(दि)कापरीषहः शय्यापरीषहः आक्रोशपरीषहः वधपरीषहः याचनापरीषहः अलाभपरीषहः रोगपरीषह, तृणस्पर्शपरीषहः जल्लपरीषहः सत्कारपुरस्कारपरीषहः ज्ञानपरीषहः दर्शनपरीषहः प्रज्ञापरीषहः।	१. परीषह बाईस हैं, जैसे— १. क्षुधा परीषह, २. पिपासा परीषह, ३. शीत परीषह, ४. उष्ण परीषह, ५. दंश-मशक परीषह, ६. अचेल परीषह, ७. अरति परीषह, ८. स्त्री परीषह, ९. चर्या परीषह, १०. निषीधिका[1] परीषह, ११. शय्या परीषह, १२. आक्रोश परीषह, १३. वध परीषह, १४. याचना परीषह, १५. अलाभ परीषह, १६. रोग परीषह, १७. तृण-स्पर्श परीषह, १८. जल्ल परीषह, १९. सत्कार-पुरस्कार परीषह, २०. ज्ञान परीषह, २१. दर्शन परीषह और २२. प्रज्ञा परीषह[2]।
२. दिट्ठिवायस्स णं बावीसं सुत्ताइं छिण्णछेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए।	दृष्टिवादस्य द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या।	२. दृष्टिवाद के बाईस सूत्र स्व-समय-परिपाटी (जैनागम पद्धति) के अनुसार छिन्नछेद-नयिक होते हैं।
बावीसं सुत्ताइं अछिण्णछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए।	द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीविकसूत्रपरिपाट्या।	दृष्टिवाद के बाईस सूत्र आजीवक परिपाटी के अनुसार अच्छिन्नछेद-नयिक होते हैं।
बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासिअसुत्तपरिवाडीए।	द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या।	दृष्टिवाद के बाईस सूत्र त्रैराशिक परिपाटी के अनुसार त्रिक-नयिक होते हैं।
बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए।	द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरिपाट्या।	दृष्टिवाद के बाईस सूत्र स्व-समय-परिपाटी के अनुसार चतुष्क-नयिक होते हैं[3]।
३. बावीसइविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—	द्वाविंशतिविधः पुद्गलपरिणामः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	३. पुद्गल-परिणाम[4] बाईस प्रकार के हैं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालवण्णपरिणामे नीलवण्णपरिणामे लोहियवण्णपरिणामे हालिद्दवण्णपरिणामे सुक्किलवण्णपरिणामे सुब्भिगंधपरिणामे दुब्भिगंधपरिणामे तित्तरसपरिणामे कडुयरसपरिणामे कसायरसपरिणामे अंबिलरसपरिणामे महुररसपरिणामे कक्खडफासपरिणामे मउयफासपरिणामे गरुफासपरिणामे लहुफासपरिणामे सीतफासपरिणामे उसिणफासपरिणामे णिद्धफासपरिणामे लुक्खफासपरिणामे गरुलहुफासपरिणामे अगरुलहुफासपरिणामे।

कालवर्णपरिणामः नीलवर्णपरिणामः लोहितवर्णपरिणामः हारिद्रवर्णपरिणामः शुक्लवर्णपरिणामः सुरभिगन्धपरिणामः दुर्गन्धपरिणामः तिक्तरसपरिणामः कटुकरसपरिणामः कषायरसपरिणामः अम्लरसपरिणामः मधुररसपरिणामः कक्खटस्पर्शपरिणामः मृदुकस्पर्शपरिणाम गुरुस्पर्शपरिणामः लघुस्पर्शपरिणामः शीतस्पर्शपरिणामः उष्णस्पर्शपरिणामः स्निग्धस्पर्शपरिणामः रूक्षस्पर्शपरिणामः गुरुलघुस्पर्शपरिणामः अगुरुलघुस्पर्शपरिणामः।

१. कृष्णवर्णपरिणाम, २. नीलवर्णपरिणाम, ३. लोहितवर्णपरिणाम, ४. हालिद्रवर्णपरिणाम, ५. शुक्लवर्णपरिणाम, ६. सुरभिगंधपरिणाम, ७. दुर्गन्धपरिणाम, ८. तिक्तरसपरिणाम ९. कटुकरसपरिणाम, १०. कषायरसपरिणाम, ११. अम्लरसपरिणाम, १२. मधुररसपरिणाम, १३. कर्कशस्पर्शपरिणाम, १४. मृदुस्पर्शपरिणाम, १५. गुरुस्पर्शपरिणाम, १६. लघुस्पर्शपरिणाम, १७. शीतस्पर्शपरिणाम, १८. उष्णस्पर्शपरिणाम, १९. स्निग्धस्पर्शपरिणाम, २०. रूक्षस्पर्शपरिणाम, २१. गुरुलघुस्पर्शपरिणाम, और २२. अगुरुलघुस्पर्शपरिणाम।

४. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वाविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बाईस पल्योपम की है।

५ छट्ठीए पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

षष्ठ्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां उत्कर्षेण द्वाविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

५. छठी पृथ्वी के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है।

६. अहेसत्तमाए पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वाविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६. नीचे की सातवीं पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की है।

७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां द्वाविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बाईस पल्योपम की है।

८. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां द्वाविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति बाईस पल्योपम की है।

९. अच्चुते कप्पे देवाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अच्युते कल्पे देवानां उत्कर्षेण द्वाविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. अच्युतकल्प के देवों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है।

१०. हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेवेज्जगाणं देवाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधस्तनाधस्तनग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन द्वाविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. प्रथम त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जे देवा महितं विसुतं विमलं पभासं वणमालं अच्चुतवडेंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा महितं विश्रुतं विमलं प्रभासं वनमालं अच्युतावतंसकं विमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण द्वाविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. महित, विश्रुत, विमल, प्रभास, वनमाल और अच्युतावतंसक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति बाईस सागरोपम की है।

१२. ते णं देवा बावीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा द्वाविंशतेः अर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१२. वे देव बाईस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१३. तेसि णं देवाणं बावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां द्वाविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१३. उन देवों के बाईस हजार वर्षों से भोजन की इच्छा उत्पन्न होती है।

१४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे बावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये द्वाविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१४. कुछ भव-सिद्धिक जीव बाईस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. निषीधिका (निसीहिया) :

आगमों तथा व्याख्या ग्रन्थों में 'निसीहिया' शब्द मिलता है और उसका संस्कृत रूप 'निशीथिका', 'निसीधिका' या 'नैषेधिकी' किया जाता है। किन्तु इनकी अर्थ-संगति बड़ी अटपटी-सी लगती है। मूलतः यह पाठ 'निसीदिया' होना चाहिए। प्राचीन लिपि में 'द' और 'ह' का प्रायः साम्य है। अतः लिपि-परिवर्तन के साथ 'निसीदिया' का 'निसीहिया' हो गया प्रतीत होता है। 'निसीहिया' पाठ के आधार पर ही उसका संस्कृत रूप 'निषीधिका' किया गया है। यदि 'निसीदिया' पाठ सुरक्षित रहता हो तो उसको 'निषीधिका' रूप देने की आवश्यकता नहीं होती।

बाईस सौ वर्ष पहले उत्कीर्ण खारवेल के शिलालेखा में 'निसीदिया' शब्द मिलता है।[1] इसका संस्कृत रूप 'निषीदिका' होता है। जैन साहित्य में 'निसीहिया' शब्द भी प्राप्त होता है। दस सामाचारी में दूसरी समाचारी 'निसीहिया' है—'ठाणे कुज्जा निसीहियं'। इसका संस्कृत रूप 'निषेधिका' होता है। आवश्यक सूत्र के तीसरे अध्ययन के वन्दना सूत्र में 'निसीहिआ' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका भी संस्कृत रूप 'निषीधिका' होता है। इसका अर्थ व्यापारान्तर का निषेध करने वाली, पाप-क्रिया का निषेध करनी वाली—इस प्रकार निषेध परक होता है तथा 'निसीदिका' का अर्थ स्थान से संबंधित होता है। 'निसीदिया' और 'निसीहिया' दोनों का एकीकरण हो जाने पर आर्थिक जटिलता उत्पन्न हुई है।

२. बाईस परीषह (बावीसं परीसहा) :

परीषहों की विशद जानकारी के लिए देखें—उत्तरज्झयणाणि, भाग १, पृ० १९-२४।

---

१. प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, द्वितीय खंड, पृ० २७, ९८ :
खारवेल का हाथी गुम्फालेख—कायनिसीदियाय······अरहतनिसीदिया······।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. छिन्नछेद-नयिक·· चतुष्क-नयिक (छिण्णछेयणइयाइं·· चउक्कणइयाइं) :

दृष्टिवाद बारहवां अंग है। इसके पांच भेद हैं—(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) प्रथमानुयोग और (५) चूलिका। यहां दृष्टिवाद के दूसरे प्रस्थान (सूत्र) में अनेक परिपाटी के सूत्र हैं, इसका उल्लेख है।

छिन्नछेद-नयिक

यह सूत्र-रचना की एक परिपाटी है। इसमें सभी सूत्र और अर्थ परस्पर अत्यन्त निरपेक्ष होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उनमें पौर्वापर्य का संबंध नहीं होता। पहला सूत्र अपने आप में पूर्ण होता है। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे आदि सूत्र भी अपने आप में पूर्ण होते हैं। यह निरपेक्ष या स्वतंत्र प्रतिपाद्य की रचना-पद्धति है। यह जैनागम की अपनी मौलिक पद्धति है।

अच्छिन्नछेद-नयिक

इस परिपाटी के अनुसार सूत्र और अर्थ सापेक्ष होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि पूर्ववर्ती सूत्र और अर्थ उत्तरवर्ती सूत्र और अर्थ से संबंधित रहते हैं। यह आजीवक मत की सूत्र-रचना की परिपाटी है।

त्रिक-नयिक

त्रैराशिक तीन नयों को स्वीकार करते हैं—(१) द्रव्यास्तिक, (२) पर्यायास्तिक और (३) उभयास्तिक (द्रव्य-पर्यायास्तिक)। इनकी सूत्र परिपाटी इन तीन नयों पर आधृत होती है।

वृत्तिकार ने 'त्रैराशिक' को आजीवक मत के आचार्य गोशालक का अनुयायी बतलाया है, क्योंकि वे सभी द्रव्यों को त्रयात्मक मानते हैं, जैसे—जीव, अजीव और जीव-अजीव ; लोक, अलोक और लोक-अलोक।[1] इस व्याख्या के अनुसार त्रैराशिक मत आजीवक सम्प्रदाय की एक शाखा प्रमाणित होता है।

नंदी सूत्र में आए हुए 'तेरासिय' शब्द की व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने त्रैराशिक और आजीवक की एकता का निर्देश किया है। आजीवक आचार्य जगत् को त्रयात्मक मानते थे और वे तीन नय स्वीकार करते थे।[2] इसीलिए वे त्रैराशिक कहलाते थे।

नंदी सूत्र के वृत्तिकार हरिभद्रसूरी ने भी त्रैराशिक को आजीवकमतानुयायी माना है।[3]

ग्यारह अंगों में केवल स्व-समय का प्रतिपादन है और दृष्टिवाद में स्व-समय और पर-समय दोनों का।[4] जयधवला के इस निरूपण से त्रैराशिकों की नय-चिंता का उल्लेख सहज ही बुद्धिगम्य हो जाता है। श्रीगुप्त आचार्य के शिष्य रोहगुप्त ने वीर निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात् त्रैराशिक मत का प्रवर्तन किया।[5] किन्तु वह यहां अभिप्रेत नहीं है।

चतुष्क-नयिक

जो सूत्र चार नय के अभिप्राय से प्रतिपादित हैं उन्हें चतुष्क-नयिक कहा जाता है। वे चार नय हैं—(१) संग्रह, (२) व्यवहार, (३) ऋजुसूत्र और (४) शब्द। वृत्तिकार के अनुसार नैगम-नय दो प्रकार का होता है—(१) सामान्यग्राही और (२) विशेषग्राही। सामान्यग्राही नैगम-नय संग्रह-नय के अन्तर्गत और विशेषग्राही नैगम-नय व्यवहार-नय के अन्तर्गत हो

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ४० :
इह त्रैराशिका गोशालकमतानुसारिणोऽभिधीयन्ते, यस्मात् ते सर्वं त्र्यात्मकमिच्छन्ति, तद् यथा—जीवोऽजीवो जीवाजीवश्चेति, तथा लोकोऽलोको लोकालोकश्चेत्यादि, नयचिन्तायामपि ते त्रिविधनयमिच्छन्ति, तद् यथा—द्रव्यास्तिकः, पर्यायास्तिकः, उभयास्तिकश्चेति, एतदेव नयत्रयमाश्रित्य त्रिकनयिकानीत्युक्तमिति।

२. नंदी चूर्णि, पृ० ७३।

३. नंदी वृत्ति, पृ० ८७ :
त्रैराशिकाश्चाजीविकाः।

४ (क) जयधवला, पृ० १३२ :
एक्कारसण्हमंगाणं वत्तव्वं ससमओ।
(ख) वही, पृ० १४८ :
दिट्ठिवादस्स वत्तव्वं तदुभओ।

५. आवश्यकभाष्य, गा० १३५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। 'समभिरूढ़' और 'एवंभूत'—ये दोनों शब्द-नय हैं। इस प्रकार सात नय संक्षेप में चार बन जाते हैं। इन चार नयों से विचार करने की पद्धति जैन-आगमों की अपनी है। इन चार प्रकार की सूत्र परिपाटिओं में प्रथम और चतुर्थ परिपाटी जैन आगमों की मौलिक पद्धति है। द्वितीय और तृतीय परिपाटी दूसरे संप्रदायों से गृहीत है।

४. पुद्गल-परिणाम [पोग्गलपरिणामे] :

पुद्गल-परिणाम का अर्थ है—पुद्गलों का धर्म। वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के आधार पर उनके बीस भेद होते हैं—वर्ण—पांच, गंध—दो, रस—पांच, और स्पर्श—आठ। प्रस्तुत आलापक में बाईस परिणामों का उल्लेख है। गुरुलघुपरिणाम और अगुरुलघुपरिणाम—इन दो का अतिरिक्त समावेश किया गया है। वृत्तिकार ने लिखा है कि गुरुलघुद्रव्य होता है तिर्यग्गति करने वाला पवन आदि और अगुरुलघु होता है—स्थिर सिद्धिक्षेत्र तथा घंटाकाररूप में व्यवस्थित ज्योतिष्क विमान।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ४० :

पुद्गलानाम्—अण्वादीनां परिणामो—धर्मः पुद्गलपरिणामः, स च वर्णपञ्चकगन्धद्वयरसपञ्चस्पर्शाष्टकभेदाद्विंशतिधा तथा गुरुलघुरगुरुलघु इति भेदद्वयक्षेपाद् द्वाविंशतिः तत्र गुरुलघु द्रव्यं यत्तिर्यग्गामि वाय्वादि, अगुरुलघुर्यत् स्थिरं सिद्धिक्षेत्रं घण्टाकारव्यवस्थितज्योतिष्कविमानानीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३
तेवीसइमो समवाओ : तेईसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तेवीसं सूयगडज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—	त्रयोविंशतिः सूत्रकृताध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा —	१. सूत्रकृतांग सूत्र के अध्ययन तेईस हैं, जैसे—
समए वेतालिए उवसग्गपरिण्णा थीपरिण्णा नरयविभत्ती महावीर-थुई कुसीलपरिभासिए विरिए धम्मे समाही मग्गे समोसरणे आहत्तहिए गंथे जमईए गाहा पुंडरीए किरियठाणा आहार-परिण्णा अपच्चक्खाणकिरिया अणगारसुयं अद्दइज्जं णालंदइज्जं।	समयः वैतालिकं उपसर्गपरिज्ञा स्त्रीपरिज्ञा नरकविभक्तिः महावीर-स्तुतिः कुशीलपरिभाषितं वीर्यं धर्मः समाधिः मार्गः समवसरणं याथातथ्यं ग्रंथः यमकीयं गाथा पौण्डरीकं क्रिया-स्थानानि आहारपरिज्ञा अप्रत्याख्यान-क्रिया अनगारश्रुतं आर्द्रकीयं नालन्दीयम् ।	१. समय २. वैतालिक ३. उपसर्ग-परिज्ञा ४. स्त्रीपरिज्ञा ५ नरकविभक्ति ६. महावीरस्तुति ७. कुशीलपरिभाषित ८. वीर्य ९. धर्म १०. समाधि ११. मार्ग १२. समवसरण १३. याथा-तथ्य १४. ग्रन्थ १५. यमकीय १६. गाथा १७. पौंडरीक १८. क्रिया-स्थान १९. आहारपरिज्ञा २०. अप्रत्या-ख्यानक्रिया २१. अनगारश्रुत २२. आर्द्रकीय और २३. नालंदीय।[1]
२. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।	जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां त्रयोविंशतेर्जिनानां सूरोद्गमनमुहूर्त्ते केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ।	२. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में तेईस जिनों (तीर्थङ्करों) को सूर्योदय के समय केवलवरज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ था।[2]
३. जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पि-णीए तेवीसं तित्थकरा पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था, तं जहा—	जम्बूद्वीपे द्वीपे अस्यां अवसर्पिण्यां त्रयोविंशतिस्तीर्थकराः पूर्वभवे एकादशाङ्गिनो बभूवुः तद्यथा—	३. जम्बूद्वीप द्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव में ग्यारह अंगधारी थे, जैसे—
अजिए संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य।	अजितः सम्भवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्ली मुनिसुव्रतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वः वर्द्धमानश्च।	अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शान्ति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्द्धमान।
उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था।	ऋषभः अर्हन् कौशलिकः चतुर्दशपूर्वी बभूव।	अर्हत् कौशलिक ऋषभ पूर्वभव में चतुर्दशपूर्वी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थगरा पुव्वभवे मंडलियरायाणो होत्था, तं जहा— अजिए संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य।

उसभे णं अरहा कोसलिए चक्कवट्टी होत्था।

जम्बूद्वीपे द्वीपे अस्यां अवसर्पिण्यां त्रयोविंशतिस्तीर्थकराः पूर्वभवे माण्डलिकराजानो बभूवुः, तद्यथा— अजितः सम्भवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्ली मुनिसुव्रतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वः वर्द्धमानश्च।

ऋषभः अर्हन् कौशलिकः चक्रवर्ती बभूव।

४. जम्बूद्वीप द्वीप में इस अवसर्पिणी में तेईस तीर्थङ्कर पूर्वभव में मांडलिक राजा थे, जैसे— अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपुज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्ली, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्द्धमान।

अर्हत् कौशलिक ऋषभ पूर्वभव में चक्रवर्ती थे।

५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रयोविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेईस पल्योपम की है।

६. अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रयोविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेईस सागरोपम की है।

७. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां त्रयोविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की है।

८. सोहम्मीसाणाणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानानां देवानां अस्ति एकेषां त्रयोविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेईस पल्योपम की है।

९. हेट्ठिम-मज्झिम-गेविज्जाणं देवाणं जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन त्रयोविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. प्रथम त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति तेईस सागरोपम की है।

१०. जे देवा हेट्ठिम-हेट्ठिम-गेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयकविमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण त्रयोविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. प्रथम त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तेईस सागरोपम की है।

११. ते णं देवा तेवीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवास्त्रयोविंशत्या अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

११. वे देव तेईस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१२. तेसि णं देवाणं तेवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां त्रयोविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१२. उन देवों के तेईस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. **संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।**

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये त्रयोविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१३. कुछ भव-सिद्धिक जीव तेईस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. सूत्र १ :

प्रस्तुत आलापक में सूत्रकृतांग सूत्र के तेईस अध्ययनों का उल्लेख है। सूत्रकृतांग दूसरा अंग आगम है। उसके दो श्रुतस्कंध हैं। पहले श्रुतस्कंध में सोलह और दूसरे श्रुतस्कंध में सात अध्ययन हैं। प्रस्तुत सूत्र में उनका एक साथ निर्देश किया है। इनमें प्रथम सोलह अध्ययन प्रथम श्रुतस्कंध के और शेष सात अध्ययन द्वितीय श्रुतस्कंध के हैं।

इन सभी अध्ययनों का विषय उसी आगम से अवसेय है।

२. सूत्र २ :

भगवान् महावीर को कैवल्य लाभ वैशाख शुक्ला दसमी के दिन चौथे प्रहर में हुआ था।[1]

एक मतान्तर यह भी है कि बावीस तीर्थंकरों को पूर्वान्ह में और मल्ली तथा महावीर को अपरान्ह में कैवल्य-लाभ हुआ था।[2]

---

१. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ ३२३ :
वइसाहसुद्धदसमीए पादीणगामिणीए छायाए अभिनिव्वट्टाए पोरुसीए पमाणपत्ताए।

२. आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ १५८ :
अन्ने भणंति—बावीसाए पुव्वण्हे, मल्लिवीराणं अवरण्हे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४

चउव्वीसइमो समवाओ : चौबीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चउव्वीसं देवाहिदेवा पण्णत्ता, तं जहा—	चतुर्विंशतिर्देवाधिदेवाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. देवाधिदेव चौबीस हैं, जैसे—
उसभे अजिते संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे।	ऋषभः अजितः सम्भवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्ली मुनिसुव्रतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वः वर्द्धमानः।	१. ऋषभ, २. अजित, ३. संभव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ, ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ, ९. सुविधि, १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शान्ति, १७. कुन्थु, १८. अर, १९. मल्ली, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. अरिष्टनेमि २३. पार्श्व और २४. वर्द्धमान।
२. चुल्लहिमवंतसिहरीणं वासहर-पव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं-चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णवबत्तीसे जोयणसए एगं च अट्ठत्तीसइं भागं जोयणस्स किंचिविसेसाहिआओ आयामेणं पण्णत्ताओ।	क्षुल्लहिमवच्छिखरिणोर्वर्षधरपर्वतयोः जीवे चतुर्विंशति-चतुर्विंशति योजनसहस्राणि नवद्वात्रिंशद् योजनशतं एकं च अष्टत्रिंशद् भागं योजनस्य किञ्चिद्विशेषाधिके आयामेन प्रज्ञप्ते।	२. क्षुल्ल हिमवान् और शिखरी—इन दो वर्षधर पर्वतों में से प्रत्येक की जीवा २४९३२$\frac{1}{38}$ योजन से कुछ अधिक लम्बी है।
३. चउवीसं देवट्ठाणा सइंदया पण्णत्ता, सेसा अहमिंदा—अनिंदा अपुरोहिआ।	चतुर्विंशतिः देवस्थानानि सेन्द्राणि प्रज्ञप्तानि, शेषाणि अहमिन्द्राणि—अनिन्द्राणि अपुरोहितानि।	३. देवताओं के चौबीस स्थान इन्द्र सहित हैं[1] और शेष स्थान 'अहमिन्द्र' अर्थात् इन्द्र और पुरोहित रहित हैं।
४. उत्तरायणगते णं सूरिए चउवीसंगुलियं पोरिसियछायं णिव्वत्तइत्ता णं णिअट्टति।	उत्तरायणगतः सूर्यः चतुर्विंशत्यङ्गुलिकां पौरुषीयच्छायां निर्वर्त्य निवर्तते।	४. उत्तरायण में रहा हुआ सूर्य एक पहर की चौबीस अंगुल प्रमाण छाया निष्पन्न कर निवृत्त हो जाता है—सर्वाभ्यन्तर मंडल से दूसरे मंडल में आ जाता है।[2]
५. गंगासिंधूओ णं महाणईओ पवहे सातिरेगे चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ताओ।	गङ्गासिन्ध्वौ महानद्यौ प्रवहे सातिरेकं चतुर्विंशतिं क्रोशं विस्तारेण प्रज्ञप्ते।	५. गंगा और सिन्धु—दोनों महानदियों का प्रवाह के स्थान पर विस्तार साधिक चौबीस कोस का है।[3]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. रत्तारत्तवतीओ णं महाणदीओ पवहे सातिरेगे चउवीसं कोसे वित्थारेणं पण्णत्ताओ।

रक्तारक्तवत्यौ महानद्यौ प्रवहे सातिरेकं चतुर्विंशतिं क्रोशं विस्तारेण प्रज्ञप्ते।

६. रक्ता और रक्तवती—दोनों महानदियों का प्रवाह के स्थान पर विस्तार साधिक चौबीस कोस का है।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चतुर्विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौबीस पल्योपम की है।

८. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां चतुर्विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति चौबीस सागरोपम की है।

९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां चतुर्विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की है।

१०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां चतुर्विंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति चौबीस पल्योपम की है।

११. हेट्ठिम-उवरिम-गेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन चतुर्विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. प्रथम त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति चौबीस सागरोपम की है।

१२. जे देवा हेट्ठिम-मज्झिम-गेवेज्जय-विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयकविमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण चतुर्विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. प्रथम त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति चौबीस सागरोपम की है।

१३. ते णं देवा चउवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाश्चतुर्विंशतेरर्द्धमासानां आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१३. वे देव चौबीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१४. तेसि णं देवाणं चउवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां चतुर्विंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१४. उन देवों के चौबीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१५. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये चतुर्विंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१५. कुछ भव-सिद्धिक जीव चौबीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अंत करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. देवताओं के ··· पुरोहित रहित हैं (चउवीसं ··· अपुरोहिआ)

दस भवनपति के, आठ व्यन्तर के, पांच ज्योतिष्क के और एक वैमानिक के—ये चौबीस इन्द्र होते हैं। ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों के इन्द्र नहीं होते। सब देव 'अहमिन्द्र' होते हैं।[1]

२. उत्तरायण में ··· आ जाता है (उत्तरायणगते ··· णिअट्टति)

कर्क संक्रान्ति के दिन जब सूर्य सर्वाभ्यन्तरमण्डल में प्रविष्ट होता है, तब पहर की छाया चौबीस अंगुल प्रमाण की होती है। तदनन्तर सूर्य सर्वाभ्यन्तरमंडल से दूसरे मंडल में चला जाता है।[2]

३. प्रवाह (पवहे) :

जहां से नदी प्रवृत्त होती है, उस स्थान का नाम 'प्रवाह' है। वृत्तिकार का अभिमत है कि यहां इन दोनों नदियों का प्रवाह 'पद्महृद' के तोरण से प्रारम्भ होता है। समवायांग (२५/७) में प्रपात का विस्तार पचीस योजन बतलाया गया है, वह यहां विवक्षित नहीं है।[3]

४. सूत्र ६ :

रक्ता और रक्तवती (रत्तारत्तवतीओ)

ये दोनों महानदियां जम्बूद्वीप के मंदर पर्वत के उत्तर में शिखरी वर्षधर पर्वत के पुण्डरीक महाद्रह से प्रवाहित होती हैं।[4]

इनके विषय की विशेष जानकारी देने वाले अनेक आलापक स्थानांग सूत्र में हैं।[5]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ४१ :

चतुर्विंशतिर्देवस्थानानि—देवभेदाः, दश भवनपतीनां, अष्टौ व्यन्तराणं, पञ्च ज्योतिष्कानां, एकं कल्पोपपन्नवैमानिकानां, एवं चतुर्विंशतिः, सेन्द्राणि चमरेन्द्राद्याधिष्ठितानि शेषाणि च ग्रैवेयकानुत्तरसुरलक्षणानि अहं अहं इत्येवमिन्द्रा येषु तान्यहमिन्द्राणि, प्रत्यात्मेन्द्रकाणीत्यर्थः अत एव अनिन्द्राणि—अविद्यमाननायकानि अपुरोहितानि—अविद्यमानशान्तिकर्मकारीणि, उपलक्षणपरत्वादस्याविद्यमानसेवकजनानीति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ४१,४२।

३. वही, पत्र ४२।

४. ठाणं ३/४५८।

५. ठाणं ५/२३३; ६/६०; ७/५२, ५६; ८/५६, ८२, ८४; १०/२६ आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५

पणवीसइमो समवाओ : पचीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पुरिमपच्छिमताणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	पूर्वपश्चिमयोस्तीर्थकरयोः पञ्चयामस्य पञ्चविंशतिः भावनाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन में पंचयाम (पांच महाव्रतों) की पचीस भावनाओं[1] का प्रज्ञापन किया गया है, जैसे—
		प्रथम महाव्रत
१. इरियासमिई	ईर्यासमितिः	१. ईर्यासमिति
२. मणगुत्ती	मनोगुप्तिः	२. मनोगुप्ति
३. वयगुत्ती	वचोगुप्तिः	३. वचनगुप्ति
४. आलोय-भायण-भोयणं	आलोक-भाजन-भोजनम्	४. आलोक-भाजन-भोजन—चौड़े मुंह वाले पात्र में भोजन।
५. आदाण-भंड-मत्त-निक्खेवणा-समिई।	आदान-भाण्डाऽमत्र-निक्षेपणा-समितिः।	५. आदानभांडामत्रनिक्षेपणा समिति।
		द्वितीय महाव्रत
६. अणुवीति-भासणया	अनुवीचि-भाषणम्	६. अनुवीचिभाषणता—विधिपूर्वक बोलना
७. कोहविवेगे	क्रोधविवेकः	७. क्रोध विवेक—क्रोध का त्याग
८. लोभविवेगे	लोभविवेकः	८. लोभ विवेक—लोभ का त्याग
९. भयविवेगे	भयविवेकः	९. भय विवेक—भय का त्याग
१०. हासविवेगे	हासविवेकः।	१०. हास्य विवेक—हास्य का त्याग
		तृतीय महाव्रत
११. उग्गह-अणुण्णवणता	अवग्रह-अनुज्ञापनम्	११. अवग्रहानुज्ञापना[2]—अवग्रह के लिए गृहस्वामी की अनुज्ञा लेना
१२. उग्गह-सीमजाणणता	अवग्रह-सीमाज्ञानम्	१२. अवग्रहसीमाज्ञान—गृहस्वामी द्वारा अनुज्ञात अवग्रह की सीमा को जानना
१३. सयमेव उग्गहअणुगेण्हणता	स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणम्	१३. स्वयमेव अवग्रह अनुग्रहणता—अनुज्ञात अवग्रह को स्वयं स्वीकार करना—उसमें रहना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. साहम्मियउग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणता	सार्धर्मिकावग्रहं अनुज्ञाप्य परिभोजनम्	१४. सार्धमिक अवग्रह अनुज्ञाप्य परिभोग—सार्धमिकों द्वारा याचित अवग्रह का उनकी अनुज्ञा लेकर उपभोग करना।
१५. साधारणभत्तपाणं अणुण्णविय परिभुंजणता।	साधारणभक्तपानं अनुज्ञाप्य परिभोजनम्।	१५. साधारण भक्त-पान अनुज्ञाप्य परिभोग—साधारण (सामान्य) भक्त-पान का आचार्य आदि को अनुज्ञापित कर परिभोग करना।
		चतुर्थ महाव्रत
१६. इत्थी-पसु-पंडग-संसत्त-सयणासणवज्जणया	स्त्री-पशु-पण्डक-संसक्त-शयनासनवर्जनम्	१६. स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का वर्जन करना।
१७. इत्थी-कहविवज्जणया	स्त्रीकथाविवर्जनम्	१७. स्त्री-कथा का वर्जन करना।
१८. इत्थीए इंदियाण आलोयण-वज्जणया	स्त्रियः इन्द्रियाणां आलोकनवर्जनम्	१८. स्त्रियों के इन्द्रियों के अवलोकन का वर्जन करना।
१९. पुव्वरय - पुव्वकीलिआणं अणणुसरणया	पूर्वरत-पूर्वक्रीडितानां अननुस्मरणम्	१९. पूर्वभुक्त तथा पूर्वक्रीडित काम-भोगों की स्मृति का वर्जन करना।
२०. पणीताहारविवज्जणया।	प्रणीताहारविवर्जनम्।	२०. प्रणीत आहार का वर्जन करना।
		पंचम महाव्रत
२१. सोइंदियरागोवरई	श्रोत्रेन्द्रियरागोपरतिः	२१. श्रोत्रेन्द्रिय राग की उपरति।
२२. चक्खिदियरागोवरई	चक्षुरिन्द्रियरागोपरतिः	२२. चक्षुइन्द्रिय राग की उपरति।
२३. घाणिंदियरागोवरई	घ्राणेन्द्रियरागोपरतिः	२३. घ्राणेन्द्रिय राग की उपरति।
२४. जिब्भिंदियरागोवरई	जिह्वेन्द्रियरागोपरतिः	२४. रसनेन्द्रिय राग की उपरति।
२५. फासिंदियरागोवरई।	स्पर्शेन्द्रियरागोपरतिः।	२५. स्पर्शनेन्द्रिय राग की उपरति।
२. मल्ली णं अरहा पणवीसं धणुइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	मल्ली अर्हन् पञ्चविंशतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन बभूव।	२. अर्हत् मल्ली पचीस धनुष्य ऊंचे थे।
३. सव्वेवि णं दीहवेयड्ढपव्वया पणवीसं-पणवीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं, पणवीसं-पणवीसं गाउयाणि उव्वेहेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि दीर्घवैताढ्यपर्वताः पञ्चविंशति-पञ्चविंशतिं योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, पञ्चविंशति-पञ्चविंशतिं गव्यूतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।	३. सभी दीर्घ-वैताढ्य पर्वतों की ऊंचाई पचीस-पचीस योजन की है और उनकी गहराई पचीस-पचीस गाऊ की है।
४. दोच्चाए णं पुढवीए पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	द्वितीयायां पृथिव्यां पञ्चविंशतिः निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	४. दूसरी पृथ्वी में पचीस लाख नरकावास हैं।
५. आयारस्स णं भगवओ सचूलियायस्स पणवीसं अज्झयणा पण्णत्ता।	आचारस्य भगवतः सचूलिकाकस्य पञ्चविंशतिः अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।	५. चूलिका सहित आचारांग[1] के पचीस अध्ययन हैं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

६. मिच्छादिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए संकिलिट्ठपरिणामे नामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपयडीओ णिबंधंति, तं जहा—

तिरियगतिनामं विगलिंदिय-जातिनामं ओरालियसरीरनामं तेअगसरीरनामं कम्मगसरीरनामं हुंडसंठाणनामं ओरालियसरीरंगो-वंगनामं सेवट्टसंघयणनामं वण्णनामं गंधनामं रसनामं फासनामं तिरियाणुपुव्विनामं अगरुयलहुयनामं उवघायनामं तसनामं बादरनामं अपज्जत्तय-नामं पत्तेयसरीरनामं अथिरनामं असुभनामं दुभगनामं अणादेज्ज-नामं अजसोकित्तिनामं निम्माणनामं।

मिथ्यादृष्टिविकलेन्द्रियः अपर्याप्तकः संक्लिष्टपरिणामः नाम्नः कर्मणः पञ्चविंशति उत्तरप्रकृतीर्निबध्नाति, तद्यथा—

तिर्यग्गतिनाम विकलेन्द्रियजातिनाम ओदारिकशरीरनाम तेजस्कशरीरनाम कर्मकशरीरनाम हुण्डसंस्थाननाम औदारिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम सेवार्त्त-संहनननाम वर्णनाम गन्धनाम रसनाम स्पर्शनाम तिर्यगानुपूर्वीनाम अगुरुकलघु-कनाम उपघातनाम त्रसनाम बादरनाम अपर्याप्तकनाम प्रत्येकशरीरनाम अस्थिरनाम अशुभनाम दुर्भगनाम अनादेयनाम अयशःकीर्त्तिनाम निर्माणनाम।

६. संक्लिष्ट परिणाम वाले अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय जीव नाम-कर्म की पचीस उत्तर प्रकृतियों का बन्ध करते हैं, जैसे—

तिर्यग्गतिनाम, विकलेन्द्रियजातिनाम, औदारिकशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, हुंडसंस्थाननाम, औदारिकशरीरअंगोपांगनाम, सेवार्त-संहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, तिर्यग्आनुपूर्वीनाम, अगुरु-लघुनाम, उपघातनाम, त्रसनाम, बादरनाम, अपर्याप्तकनाम, प्रत्येक-शरीरनाम, अस्थिरनाम, अशुभनाम, दुर्भगनाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्ति-नाम और निर्माणनाम।

७. गंगासिंधूओ णं महाणदीओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुह-पवित्तिएणं मुत्तावलिहार-संठिएणं पवातेणं पवडंति।

गङ्गासिन्ध्वौ महानद्यौ पञ्चविंशति गव्यूतानि पृथुत्वेन द्विधातः घटमुख-प्रवृत्तेन मुक्तावलिहार-संस्थितेन प्रपातेन प्रपततः।

७. गंगा और सिन्धू—दोनों महानदियों का मुक्तावली हार की आकृति वाला पचीस कोश का विस्तृत प्रपात घटमुख से प्रवृत्त होकर दोनों दिशाओं से (पूर्व से गंगा का और पश्चिम से सिन्धू का) नीचे गिरता है।

८. रत्तारत्तवतीओ णं महाणदीओ पणवीसं गाउयाणि पुहुत्तेणं दुहओ मकरमुह-पवित्तिएणं मुत्तावलि-हार-संठिएणं पवातेणं पवडंति।

रक्तारक्तवत्यौ महानद्यौ पञ्चविंशति गव्यूतानि पृथुत्वेन द्विधातः मकरमुख-प्रवृत्तेन मुक्तावलिहार-संस्थितेन प्रपातेन प्रपततः।

८. रक्ता और रक्तवती—दोनों महा-नदियों का मुक्तावली हार की आकृति वाला पचीस कोश का विस्तृत प्रपात मकरमुख से प्रवृत्त होकर दोनों दिशाओं से (पूर्व से रक्ता का और पश्चिम से रक्तवती का) नीचे गिरता है।

९. लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू पण्णत्ता।

लोकबिन्दुसारस्य पूर्वस्य पञ्चविंशति-र्वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

९. लोकबिन्दुसार पूर्व के वस्तु पचीस हैं।

१०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्चविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पचीस पल्योपम की है।

११. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां पञ्चविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति पचीस पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां पञ्चविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१२. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति पचीस पल्योपम की है।
१३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोर्देवानां अस्ति एकेषां पञ्चविंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१३. सौधर्म ओर ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति पचीस पल्योपम की है।
१४. मज्झिम-हेट्ठिम-गेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	मध्यम-अधस्तन- उपरितन- ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन पञ्चविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१४. द्वितीय त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति पचीस सागरोपम की है।
१५. जे देवा हेट्ठिम-उवरिम-गेवेज्जगविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	ते देवा अधस्तन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण पञ्चविंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१५. प्रथम त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति पचीस सागरोपम की है।
१६. ते णं देवा पणवीसाए अद्धमासेहि आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।	ते देवाः पञ्चविंशत्या अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।	१६. वे देव पचीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।
१७. तेसि णं देवाणं पणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।	तेषां देवानां पञ्चविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।	१७. उन देवों के पचीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।
१८. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये पञ्चविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव पचीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. पचीस भावनाओं (पणवीसं भावणाओ)

पांच महाव्रतों की सुरक्षा के लिए पचीस भावनाएं हैं। प्रश्नव्याकरण तथा आचारचूला (१५/४३-७८) में भी पचीस भावनाओं का उल्लेख है। प्रस्तुत आगम में उल्लिखित भावनाओं से वे कुछ भिन्न हैं—

समवायाङ्ग	प्रश्नव्याकरण	आचारचूला
	१. अहिंसा महाव्रत की भावनाएं	
१. ईर्यासमिति	१. ईर्यासमिति[1]	१. ईर्यासमिति
२. मनोगुप्ति	२. अपापमन (मनसमिति)	२. मन परिज्ञा
३. वचनगुप्ति	३. अपापवचन (वचनसमिति)	३. वचन परिज्ञा
४. आलोक-भाजन-भोजन	४. एषणासमिति	४. आदान-निक्षेप समिति
५. आदान-भांडामत्र-निक्षेपणा समिति	५. आदाननिक्षेपसमिति	५. आलोकित-पान-भोजन
	२. सत्य महाव्रत की भावनाएं	
१. अनुवीचिभाषणता	१. अनुवीचिभाषण[2]	१. अनुवीचिभाषण
२. क्रोध विवेक	२. क्रोध प्रत्याख्यान	२. क्रोध प्रत्याख्यान
३. लोभ विवेक	३. लोभ प्रत्याख्यान	३. लोभ प्रत्याख्यान
४. भय विवेक	४. अभय (भय-प्रत्याख्यान)	४. अभय
५. हास्य विवेक	५. हास्य प्रत्याख्यान	५. हास्य प्रत्याख्यान
	३. अचौर्य महाव्रत की भावनाएं	
१. अवग्रहानुज्ञापना	१. विविक्तवास वसति[3]	१. अनुवीचि मितावग्रहयाचन
२. अवग्रहसीमाज्ञान	२. अभीक्ष्ण अवग्रहयाचन	२. अनुज्ञापित पान-भोजन
३. स्वयमेव अवग्रह अनुग्रहणता	३. शय्यासमिति	३. अवग्रह का अवधारण
४. सार्धमिक अवग्रह अनुज्ञाप्य परिभोग	४. साधारण पिण्डपात्रलाभ	४. अभीक्ष्ण अवग्रह याचन
५. साधारण भक्तपान अनुज्ञाप्य परिभोग	५. विनयप्रयोग	५. सार्धमिक के पास से अवग्रह याचन
	४. ब्रह्मचर्य महाव्रत की भावनाएं	
१. स्त्री, पशु और नपंसुक से संसक्त शयन और आसन का वर्जन करना	१. असंसक्तवासवसति[4]	१. स्त्रियों में कथा का वर्जन
२. स्त्रीकथा का वर्जन करना	२. स्त्रीजन में कथा वर्जन	२. स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों के अवलोकन का वर्जन
३. स्त्रियों के इन्द्रियों के अवलोकन का वर्जन करना	३. स्त्रीजन के अंग-प्रत्यंग और चेष्टओं के अवलोकन का वर्जन	३. पूर्वभुक्त भोग की स्मृति का वर्जन
४. पूर्वभुक्त तथा पूर्वक्रीडित-काम भोगों की स्मृति का वर्जन करना	४. पूर्वभुक्त भोग की स्मृति का वर्जन	४. अतिमात्र और प्रणीत पान-भोजन का वर्जन
५. प्रणीत आहार का वर्जन करना	५. प्रणीतरसभोजन का वर्जन	५. स्त्री आदि से संसक्त शय्यासन का वर्जन

---

१. प्रश्नव्याकरण, ६/१६-२१।

२. प्रश्नव्याकरण, ७/१६-२१।

३. प्रश्नव्याकरण, ८/८-१३।

४. प्रश्नव्याकरण, ९/६-११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अपरिग्रह महाव्रत की भावनाएं

१. श्रोत्रेन्द्रिय राग की उपरति	१. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द में समभाव[1]	१. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द में समभाव
२. चक्षु इन्द्रिय राग की उपरति	२. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप में समभाव	२. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप में समभाव
३. घ्राणेन्द्रिय राग की उपरति	३. मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्ध में समभाव	३. मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्ध में समभाव
४. रसनेन्द्रिय राग की उपरति	४. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस में समभाव	४. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस में समभाव
५. स्पर्शनेन्द्रिय राग की उपरति	५. मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श में समभाव	५. मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श में समभाव

आवश्यक निर्युक्ति अवचूर्णि में पचीस भावनाएं इस प्रकार निर्दिष्ट हैं[2]—

प्रथम महाव्रत की भावनाएं

१. इर्यासमिति में सदा संयमशीलता
२. देखकर पान भोजन करना
३. आदाननिक्षेपसमिति का पूर्ण पालन
४. मन का सम्यक् प्रवर्तन
५. वचन का सम्यक् प्रवर्तन

द्वितीय महाव्रत की भावनाएं

१. हास्य में भी असत्य का वर्जन
२. अनुवीचि भाषणता
३. क्रोध का प्रत्याख्यान
४. लोभ का प्रत्याख्यान
५. भय का प्रत्याख्यान

तृतीय महाव्रत की भावनाएं

१. गृहस्वामी की आज्ञा से अवग्रह का उपभोग
२. गृहस्वामी की आज्ञा से तृण आदि का ग्रहण
३. अनुज्ञात अवग्रह का उपभोग
४. गुरु आदि को दिखाकर पान-भोजन का ग्रहण
५. साधर्मिकों से अवग्रह की याचना कर बैठना

चतुर्थ महाव्रत की भावनाएं

१. आहारगुप्त
२. अविभूषितात्मा
३. स्त्रियों के अवलोकन का वर्जन
४. स्त्रियों के संसक्त वसति का वर्जन
५. स्त्रियों की कथा का वर्जन

पंचम महाव्रत की भावनाएं

१. मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द में समभाव
२. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूप में समभाव
३. मनोज्ञ और अमनोज्ञ रस में समभाव
४. मनोज्ञ और अमनोज्ञ गंध में समभाव
५. मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्श में समभाव

२. अवग्रह (उग्गहं)

अवग्रह का अर्थ है—ग्रहण करने योग्य उपकरण। यहां उन उपकरणों के लिए संकेत दिया गया है जो क्षेत्र और काल की सीमा के साथ लिए जाते हैं और सीमा पूर्ण होने पर पुनः लौटा दिए जाते हैं। उदाहरण स्वरूप साधु किसी आवास में रहता तो वह पहले आवास के अधिकारी से वहां रहने के लिए आज्ञा प्राप्त करता, फिर आवास के कितने भाग में और कितने समय तक—इन दोनों सीमाओं को स्पष्ट करता, फिर उसमें रहता। कोई आवास साधर्मिक साधुओं द्वारा पहले से याचित होता तो वह उनकी अनुमति से वहां रहता।

इसी प्रकार पट्ट, घास का बिछौना आदि भी अवग्रह-विधि से व्यवहार में लाए जाते।[3]

३. आचारांग (आयारस्स)

आचारांग के नौ अध्ययन हैं। उसके पांच चूलाएं हैं। उनमें से चार चूलाएं आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कंध के रूप में संकलित हैं और पांचवीं चूला 'निशीथ सूत्र' है। चार चूलाओं के सोलह अध्ययन हैं। प्रस्तुत पाठ में 'निशीथ' विवक्षित नहीं है।

---

१. प्रश्नव्याकरण, १०/१३-१८।
२. आवश्यक निर्युक्ति, अवचूर्णि भाग–२, पृ० १३४, १३५।
३. समवायांगवृत्ति, पत्र ४३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६

छव्वीसइमो समवाओ : छब्बीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. छव्वीसं दस-कप्प-ववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता, तं जहा—दस दसाणं, छ कप्पस्स, दस ववहारस्स ।	षड्विंशतिः दशा-कल्प-व्यवहाराणां उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—दश दशानां, षट् कल्पस्य, दश व्यवहारस्य ।	१. दशाश्रुतस्कंध, कल्प (बृहत्कल्प) और व्यवहार के छब्बीस उद्देशन-काल हैं, जैसे—दशाश्रुतस्कंध के दस, कल्प के छह और व्यवहार के दस ।
२. अभवसिद्धियाणं जीवाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता, तंजहा—मिच्छत्तमोहणिज्जं सोलस कसाया इत्थीवेदे पुरिसवेदे नपुंसकवेदे हासं अरति रति भयं सोगो दुगुंछा ।	अभवसिद्धिकानां जीवानां मोहनीयस्य कर्मणः षड्विंशतिः कर्मांशाः सत्कर्माणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मिथ्यात्वमोहनीयं षोडश कषायाः स्त्रीवेदः पुरुषवेदः नपुंसकवेदः हासः अरतिः रतिः भयं शोकः जुगुप्सा ।	२. अभव-सिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के छब्बीस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्कर्म (सत्तावस्था में) होते हैं, जैसे—मिथ्यात्वमोहनीय, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, अरति, रति, भय, शोक और जुगुप्सा ।
३. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां षड्विंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	३. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की है ।
४. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणा षड्विंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	४. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति छब्बीस सागरोपम की है ।
५. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां षड्विंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	५. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की है ।
६. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोर्देवानां अस्ति एकेषां षड्विंशति पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	६. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति छब्बीस पल्योपम की है ।
७. मज्झिम - मज्झिम - गेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन षड्विंशति सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	७. द्वितीय त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति छब्बीस सागरोपम की है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. जे देवा मज्झिम-हेट्ठिमगेवेज्जय-विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा मध्यम-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण षड्विंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. द्वितीय त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति छब्बीस सागरोपम की है।

९. ते णं देवा छव्वीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः षड्विंशत्या अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

९. वे देव छब्बीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१०. तेसि णं देवाणं छव्वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां षड्विंशत्या अर्द्धमासैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१०. उन देवों के छब्बीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

११. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे छव्वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये षड्विंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

११. कुछ भव-सिद्धिक जीव छब्बीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७

सत्तावीसइमो समवाओ : सत्ताइसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सत्तावीसं अणगारगुणा पण्णत्ता, तंजहा— पाणातिवायवेरमणे, मुसावाय-वेरमणे, अदिण्णादाणवेरमणे, मेहुणवेरमणे, परिग्गहवेरमणे, सोइंदियनिग्गहे, चक्खिदियनिग्गहे, घाणिंदियनिग्गहे, जिब्भिदिय-निग्गहे, फासिंदियनिग्गहे, कोह-विवेगे, माणविवेगे, मायाविवेगे, लोभविवेगे, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, खमा, विरागता, मणसमाहरणता, वतिसमाहरणता, कायसमाहरणता, णाणसंपण्णया, दंसणसंपण्णया, चरित्तसंपण्णया, वेयणअहियासणया, मारणंतिय-अहियासणया।	सप्तविंशतिः अनगारगुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— प्राणातिपातविरमणं, मृषावादविरमणं, अदत्तादान-विरमणं, मैथुन-विरमणं, परिग्रह-विरमणं, श्रोत्रेन्द्रियनिग्रहः, चक्षुरिन्द्रियनिग्रहः, घ्राणेन्द्रियनिग्रहः, जिह्वेन्द्रियनिग्रहः, स्पर्शेन्द्रियनिग्रहः, क्रोधविवेकः, मानविवेकः, मायाविवेकः, लोभविवेकः, भावसत्यं, करणसत्यं, योगसत्यं, क्षमा, विरागता, मनःसमा-हरणता, वचःसमाहरणता, कायसमाहरणता, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चरित्रसम्पन्नता, वेदनाध्यासनं, मारणान्तिकाध्यासनम्।	१. मुनि के सत्ताईस गुण हैं, जैसे— १. प्राणातिपात विरमण, २. मृषावाद विरमण, ३. अदत्तादान विरमण, ४. मैथुन विरमण, ५. परिग्रह विरमण, ६. श्रोत्रेन्द्रियनिग्रह, ७. चक्षुइन्द्रिय-निग्रह, ८. घ्राणेन्द्रियनिग्रह, ९. रसने-न्द्रियनिग्रह, १०. स्पर्शनेन्द्रियनिग्रह, ११. क्रोधविवेक, १२. मानविवेक, १३. मायाविवेक, १४. लोभविवेक, १५. भाव सत्य (अन्तरात्मा की पवित्रता), १६. करण सत्य (क्रिया को सम्यक्प्रकार से करना), १७. योग सत्य (मन, वचन, काया का सम्यक् प्रवर्तन), १८. क्षमा, १९. वैराग्य, २०. मन समाहरण (मन का संकोचन), २१. वचन समाहरण, २२. काय समा-हरण, २३. ज्ञान सम्पन्नता, २४. दर्शन सम्पन्नता, २५. चरित्र सम्पन्नता, २६. वेदना अधिसहन और २७. मारणा-न्तिक अधिसहन।
२. जंबुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति।	जम्बूद्वीपे द्वीपे अभिजिद्वर्जैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैः संव्यवहारः वर्त्तते।	२. जम्बूद्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर शेष सत्ताईस नक्षत्रों से व्यवहार चलता है[१]।
३. एगमेगे णं णक्खत्तमासे सत्तावीसं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	एकैकः नक्षत्रमासः सप्तविंशतिः रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	३. प्रत्येक नक्षत्र-मास का परिमाण दिन-रात की अपेक्षा से सत्ताईस दिन-रात का है।
४. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाण-पुढवी सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोर्विमानपृथ्वी सप्तविंशतिं योजनशतानि बाहल्येन प्रज्ञप्ता।	४. सौधर्म और ईशानकल्प के विमानों की पृथ्वी सत्ताईस सौ योजन मोटी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. वेयगसम्मत्तबंधोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता।

वेदकसम्यक्त्वबन्धोपरतस्य मोहनीयस्य कर्मण: सप्तविंशति: कर्मांशा: सत्कर्माण: प्रज्ञप्ता: ।

५. वेदक सम्यक्त्व-बंध का वियोजन[2] करने वाले व्यक्ति के मोहनीय कर्म के सत्ताईस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्कर्म (सत्तावस्था में) होते हैं[3] ।

६. सावण-सुद्ध-सत्तमीए णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं निवड्ढेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवड्ढेमाणे चारं चरइ।

श्रावण-शुद्ध-सप्तम्यां सूर्य: सप्तविंशत्यंगुलिकां पौरुषीच्छायां निर्वर्त्य दिवसक्षेत्रं निवर्द्धयन् रजनीक्षेत्रं अभिनिवर्द्धयन् चारं चरति।

६. श्रावण शुक्ला सप्तमी को सूर्य एक प्रहर की सत्ताईस अंगुल प्रमाण छाया निष्पन्न कर दिवस-क्षेत्र को छोटा और रात्रि-क्षेत्र को बड़ा करता हुआ गति करता है[4] ।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां सप्तविंशति पल्योपमानि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है ।

८. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अध:सप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां सप्तविंशति सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

८. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है ।

९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां सप्तविंशति पल्योपमानि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

९. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है ।

१०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयो: कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां सप्तविंशति पल्योपमानि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१०. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति सत्ताईस पल्योपम की है ।

११. मज्झिम - उवरिम - गेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

मध्यम-उपरितन-ग्रैवैयकाणां देवानां जघन्येन सप्तविंशति सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

११. द्वितीय त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है ।

१२. जं देवा मज्झिम-मज्झिम गेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयकविमानेषु देवत्वेन उपपन्ना:, तेषां देवानामुत्कर्षेण सप्तविंशति सागरोपमाणि स्थिति: प्रज्ञप्ता ।

१२. द्वितीय त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति सत्ताईस सागरोपम की है ।

१३. ते णं देवा सत्तावीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा: सप्तविंशत्या अर्द्धमासै: आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा नि:श्वसन्ति वा ।

१३. वे देव सत्ताईस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और नि:श्वास लेते हैं ।

१४. तेसि णं देवाणं सत्तावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां सप्तविंशत्या वर्षसहस्रैराहारार्थ: समुत्पद्यते ।

१४. उन देवों के सत्ताईस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे सत्तावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्भि-स्संति बुज्भिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये सप्तविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	१५. कुछ भव-सिद्धिक जीव सत्ताईस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सब दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. अभिजित् नक्षत्र को छोड़कर (अभिइवज्जेहिं)

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चौथे पाये में अभिजित् नक्षत्र का समावेश हो जाता है, अतः इसे अलग गिनने की आवश्यकता नहीं रहती।[१]

२. वियोजन (उवरय)

वृत्तिकार ने यहां 'उवरय' की व्याख्या 'उव्वलय' पाठ की कल्पना कर की है। अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यहां 'उव्वलय' पाठ होना चाहिए। आदर्शों में 'उव्वलय' पाठ प्राप्त नहीं है। वृत्तिकार के सामने भी यही कठिनाई रही है। इसका समाधान उन्होंने 'प्राकृतत्वात् उव्वलय (उद्वलक)' मानकर किया है।[२] यद्यपि 'उवरय' और 'उव्वलय' में रूपगत एकता नहीं है, किन्तु अर्थ की कठिनाई के कारण वृत्तिकार को ऐसा मानना पड़ा।

३. सत्ताईस कर्मांश (सत्तावीसं कम्मंसा)

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियां हैं। उनमें से एक प्रकृति (सम्यक्त्व मोहनीय) का वियोजन होने पर शेष सत्ताईस प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं।[३]

४. श्रावण शुक्ला सप्तमी··· (सावण-सुद्ध-सत्तमीए···)

इसका तात्पय है कि श्रावण शुक्ला सप्तमी से दिन छोटे और रात बड़ी होने लग जाती है। आषाढ़ी पूर्णिमा को चौबीस अंगुल प्रमाण छाया का प्रहर होता है और प्रति सात दिन में एक अंगुल से कुछ अधिक छाया बढ़ती है। इस गणित से श्रावण शुक्ला सप्तमी तक तीन अंगुल से कुछ अधिक छाया बढ़ती है और उस दिन सत्ताईस अंगुल प्रमाण छाया का प्रहर होता है। यह व्यवहार की बात है। वास्तव में कर्क संक्रान्ति से सातिरेक इक्कीसवें दिन में यह सत्ताईस अंगुल प्रमाण छाया का प्रहर होता है।[४]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ४५।
२. वही, पत्र ४५।
३. वही, पत्र ४५।
४. वही, पत्र ४५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८

अट्ठावीसइमो समवाओ : अठाईसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे पण्णत्ते, तं जहा—	अष्टाविंशतिविधः आचारप्रकल्पः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—	१. आचार-प्रकल्प[1] अठाईस प्रकार का है, जैसे—
१. मासिया आरोवणा	मासिक्यारोपणा	१. एक मास की आरोपणा।
२. सपंचरायमासिया आरोवणा	सपञ्चरात्रमासिक्यारोपणा	२. एक मास पांच दिन की आरोपणा।
३. सदसरायमासिया आरोवणा	सदशरात्रमासिक्यारोपणा	३. एक मास दस दिन की आरोपणा।
४. सपण्णरसरायमासिया आरोवणा	सपञ्चदशरात्रमासिक्यारोपणा	४. एक मास पन्द्रह दिन की आरोपणा।
५ सवीसइरायमासिया आरोवणा	सविंशतिरात्रमासिक्यारोपणा	५. एक मास बीस दिन की आरोपणा।
६. सपंचवीसरायमासिया आरोवणा।	सपञ्चविंशतिरात्रमासिक्यारोपणा।	६. एक मास पचीस दिन की आरोपणा।
७. दोमासिया आरोवणा	द्विमासिक्यारोपणा	७. दो मास की आरोपणा।
८. सपंचरायदोमासिया आरोवणा	सपञ्चरात्रद्विमासिक्यारोपणा	८. दो मास पांच दिन की आरोपणा।
९. सदसरायदोमासिया आरोवणा	सदशरात्रद्विमासिक्यारोपणा	९. दो मास दस दिन की आरोपणा।
१०. सपण्णरसरायदोमासिया आरोवणा	सपञ्चदशरात्रद्विमासिक्यारोपणा	१०. दो मास पन्द्रह दिन की आरोपणा।
११. सवीसइरायदोमासिया आरोवणा	सविंशतिरात्रद्विमासिक्यारोपणा	११. दो मास बीस दिन की आरोपणा।
१२. सपंचवीसरायदोमासिया आरोवणा।	सपञ्चविंशतिरात्रद्विमासिक्यारोपणा।	१२. दो मास पचीस दिन की आरोपणा।
१३. तेमासिया आरोवणा	त्रिमासिक्यारोपणा	१३. तीन मास की आरोपणा।
१४. सपंचरायतेमासिया आरोवणा	सपञ्चरात्रत्रिमासिक्यारोपणा	१४. तीन मास पांच दिन की आरोपणा।
१५. सदसरायतेमासिया आरोवणा	सदशरात्रत्रिमासिक्यारोपण	१५. तीन मास दस दिन की आरोपणा।
१६. सपण्णरसरायतेमासिया आरोवणा	सपञ्चदशरात्रत्रिमासिक्यारोपणा	१६. तीन मास पन्द्रह दिन की आरोपणा।
१७. सवीसइरायतेमासिया आरोवणा	सविंशतिरात्रत्रिमासिक्यारोपणा	१७. तीन मास बीस दिन की आरोपणा।
१८. सपंचवीसरायतेमासिया आरोवणा	सपञ्चविंशतिरात्रत्रिमासिक्यारोपणा।	१८. तीन मास पचीस दिन की आरोपणा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. चउमासिया आरोवणा	चतुर्मासिक्यारोपणा	१९. चार मास की आरोपणा।
२०. सपंचरायचउमासिया आरोवणा	सपञ्चरात्रचतुर्मासिक्यारोपणा	२०. चार मास पांच दिन की आरोपणा।
२१. सदसरायचउमासिया आरोवणा	सदशरात्रचतुर्मासिक्यारोपणा	२१. चार मास दस दिन की आरोपणा।
२२. सपण्णरसरायचउमासिया आरोवणा	सपञ्चदशरात्रचतुर्मासिक्यारोपणा	२२. चार मास पन्द्रह दिन की आरोपणा।
२३. सवीसइरायचउमासिया आरोवणा	सविंशतिरात्रचतुर्मासिक्यारोपणा	२३. चार मास बीस दिन की आरोपणा।
२४. सपंचवीसरायचउमासिया आरोवणा।	सपञ्चविंशतिरात्रचतुर्मासिक्यारोपणा।	२४. चार मास पचीस दिन की आरोपणा।
२५. उग्घातिया आरोवणा	उद्घातिकारोपणा	२५. उद्घातिकी आरोपणा।
२६. अणुग्घातिया आरोवणा	अनुद्घातिकारोपणा	२६. अनुद्घातिकी आरोपणा।
२७. कसिणा आरोवणा	कृत्स्नारोपणा	२७. कृत्स्ना आरोपणा।
२८. अकसिणा आरोवणा—	अकृत्स्नारोपणा—	२८. अकृत्स्ना आरोपणा[1]।
एत्ताव ताव आयारपकप्पे एत्ताव ताव आयरियव्वे।	एतावान् तावदाचारप्रकल्पः एतावान् तावदाचरितव्यः।	इतना ही आचार-प्रकल्प है और इतना ही आचरण करने योग्य है।
२. भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीसं कम्मंसा संतकम्मा पण्णत्ता तं जहा—	भवसिद्धिकानां जीवानां अस्ति एकेषां मोहनीयस्य कर्मणः अष्टाविंशतिः कर्मांशाः सत्कर्माणः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	२. कुछ भव-सिद्धिक जीवों के मोहनीय कर्म के अठाईस कर्मांश (उत्तर प्रकृतियां) सत्कर्म (सत्तावस्था में) होते हैं, जैसे—
सम्मत्तवेअणिज्जं मिच्छत्तवेयणिज्जं सम्ममिच्छत्तवेयणिज्जं सोलस कसाया णव णोकसाया।	सम्यक्त्ववेदनीयं मिथ्यात्ववेदनीयं सम्यग्मिथ्यात्ववेदनीयं षोडश कषायाः नव नोकषायाः।	सम्यक्त्व वेदनीय, मिथ्यात्व वेदनीय, सम्यक्-मिथ्यात्व वेदनीय, सोलह कषाय और नौ नो-कषाय[1]।
३. आभिणिबोहियणाणे अट्ठावीसइविहे पण्णत्ते, तं जहा—	आभिनिबोधिकज्ञानं अष्टाविंशतिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	३. आभिनिबोधिक ज्ञान अठाईस प्रकार का है, जैसे—
सोइंदियत्थोग्गहे चक्खिदियत्थोग्गहे घाणिंदियत्थोग्गहे जिब्भिदियत्थोग्गहे फासिंदियत्थोग्गहे णोइंदियत्थोग्गहे।	श्रोत्रेन्द्रियार्थावग्रहः चक्षुरिन्द्रियार्थावग्रहः घ्राणेन्द्रियार्थावग्रहः जिह्वेन्द्रियार्थावग्रहः स्पर्शेन्द्रियार्थावग्रहः नोइन्द्रियार्थावग्रहः।	श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षुइन्द्रिय अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह, रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह, नोइन्द्रिय अर्थावग्रह।
सोइंदियवंजणोग्गहे घाणिंदियवंजणोग्गहे जिब्भिदियवंजणोग्गहे फासिंदियवंजणोग्गहे।	श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः स्पर्शेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहः।	श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, रसनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह।
सोतिंदियईहा चक्खिदियईहा घाणिंदियईहा जिब्भिदियईहा फासिंदियईहा णोइंदियईहा।	श्रोत्रेन्द्रियेहा चक्षुरिन्द्रियेहा घ्राणेन्द्रियेहा जिह्वेन्द्रियेहा स्पर्शेन्द्रियेहा नोइन्द्रियेहा।	श्रोत्रेन्द्रिय ईहा, चक्षुइन्द्रिय ईहा, घ्राणेन्द्रिय ईहा, रसनेन्द्रिय ईहा, स्पर्शइन्द्रिय ईहा, नोइन्द्रिय ईहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोतिंदियावाते चक्खिदियावाते घाणिंदियावाते जिब्भिदियावाते फासिंदियावाते णोइंदियावाते ।

श्रोत्रेन्द्रियावायः चक्षुरिन्द्रियावायः घ्राणेन्द्रियावायः जिह्वेन्द्रियावायः स्पर्शेन्द्रियावायः नोइन्द्रियावायः ।

श्रोत्रेन्द्रिय अवाय, चक्षुइन्द्रिय अवाय, घ्राणेन्द्रिय अवाय, रसनेन्द्रिय अवाय, स्पर्शनेन्द्रिय अवाय, नो-इन्द्रिय अवाय ।

सोइंदियधारणा चक्खिदियधारणा घाणिंदियधारणा जिब्भिदियधारणा फासिंदियधारणा णोइंदियधारणा ।

श्रोत्रेन्द्रियधारणा चक्षुरिन्द्रियधारणा घ्राणेन्द्रियधारणा जिह्वेन्द्रियधारणा स्पर्शेन्द्रियधारणा नोइन्द्रियधारणा ।

श्रोत्रेन्द्रिय धारणा, चक्षुइन्द्रिय धारणा, घ्राणेन्द्रिय धारणा, रसनेन्द्रिय धारणा, स्पर्शनेन्द्रिय धारणा और नो-इन्द्रिय धारणा ।

४. ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।

ईशाने कल्पे अष्टाविंशतिः विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।

४. ईशानकल्प में अठाईस लाख विमानावास हैं ।

५. जीवे णं देवगतिं णिबंधमाणे नामस्स कम्मस्स अट्ठावीसं उत्तरपगडीओ णिबंधति, तं जहा—

देवगतिनामं पंचिंदियजातिनामं वेउव्वियसरीरनामं तेययसरीरनामं कम्मगसरीरनामं समचउरंससंठाणनामं वेउव्वियसरीरंगोवंगनामं वण्णनामं गंधनामं रसनामं फासनामं देवाणुपुव्विनामं अगरुयलहुयनामं उवघायनामं पराघायनामं ऊसासनामं पसत्थविहायगइनामं तसनामं बायरनामं पज्जत्तनामं पत्तेयसरीरनामं थिराथिराणं दोण्हमण्णयरं एगं नामं णिबंधइ, सुभासुभाणं दोण्हमण्णयरं एगं नामं णिबंधइ, सुभगनामं सुस्सरनामं, आएज्जअणाएज्जाणं दोण्हं अण्णयरं एगं नामं णिबंधइ, जसोकित्तिनामं निम्माणनामं ।

जीवः देवगतिं निबध्नन् नाम्नः कर्मणः अष्टाविंशतिं उत्तरप्रकृतीः निबध्नाति, तद्यथा—

देवगतिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम वैक्रियशरीरनाम तेजस्कशरीरनाम कर्मकशरीरनाम समचतुरस्रसंस्थाननाम वैक्रियशरीराङ्गोपाङ्गनाम वर्णनाम गन्धनाम रसनाम स्पर्शनाम देवानुपूर्वीनाम अगुरुकलघुकनाम उपघातनाम पराघातनाम उच्छ्वासनाम प्रशस्तविहायोगतिनाम त्रसनाम बादरनाम पर्याप्तिनाम प्रत्येकशरीरनाम स्थिरास्थिरयोर्द्वयोरन्यतरमेकं नाम निबध्नाति, शुभाशुभयोर्द्वयोरन्यतरमेकं नाम निबध्नाति, सुभगनाम सुस्वरनाम आदेयानादेययोर्द्वयोरन्यतरमेकं नाम निबध्नाति, यशःकीर्त्तिनाम निर्माणनाम ।

५. देवगति का बंध करता हुआ जीव नाम कर्म की अठाईस उत्तरप्रकृतियों का बंध करता है, जैसे—

देवगतिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम, वैक्रियशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, समचतुरस्रसंस्थाननाम, वैक्रियशरीरअंगोपांगनाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, देवानुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, प्रशस्तविहायोगतिनाम, त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम और अस्थिरनाम—दोनों में से एक, शुभनाम और अशुभनाम—दोनों में से एक, सुभगनाम, सुस्वरनाम, आदेयनाम और अनादेयनाम—दोनों में से एक, यशःकीर्त्तिनाम और निर्माणनाम ।

६. एवं चेव नेरइयेवि, नाणत्तं अप्पसत्थविहायगइनामं हुंडसंठाणनामं अथिरनामं दुब्भगनामं असुभनामं दुस्सरनामं अणादेज्जनामं अजसोकित्तीनामं ।

एवं चैव नैरयिकोऽपि नानात्वं अप्रशस्तविहायोगतिनाम हुण्डसंस्थाननाम अस्थिरनाम दुर्भगनाम अशुभनाम दुःस्वरनाम अनादेयनाम अयशःकीर्त्तिनाम ।

६. इसी प्रकार नरकगति का बंध करता हुआ जीव नामकर्म की अठाईस उत्तरप्रकृतियों का बंध करता है, जैसे—

नरकगतिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम, वैक्रियशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, हुंडकसंस्थाननाम, वैक्रियशरीरअंगोपांगनाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, नरकानुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, अप्रशस्तविहायोगतिनाम, त्रसनाम, बादरनाम,

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

पर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, अस्थिर-नाम, अशुभनाम, दुर्भगनाम, दुःस्वर-नाम, अनादेयनाम, अयशःकीर्त्तिनाम और निर्माणनाम।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्टाविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठाईस पल्योपम की है।

८. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां अष्टाविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति अठाईस पल्योपम की है।

९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां अष्टाविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति अठाईस पल्योपम की है।

१०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः देवानां अस्ति एकेषां अष्टाविंशतिं पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति अठाईस पल्योपम की है।

११ उवरिम-हेट्ठिम-गेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

उपरितन-अधस्तन-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन अष्टाविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. तृतीय त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति अठाईस सागरोपम की है।

१२. जे देवा मज्झिम-उवरिम-गेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा मध्यम-उपरितन-ग्रैवेयकेषु विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण अष्टाविंशतिं सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. द्वितीय त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति अठाईस सागरोपम की है।

१३. ते णं देवा अट्ठावीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा अष्टाविंशत्या अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१३. वे देव अठाईस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१४. तेसि णं देवाणं अट्ठावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां अष्टाविंशत्या अर्द्धमासैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१४. उन देवों के अठाईस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१५. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे अट्ठावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये अष्टाविंशत्या भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१५. कुछ भव-सिद्धिक जीव अठाईस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. आचार-प्रकल्प (आयारपकप्पे)

आचार-प्रकल्प के दो अर्थ हैं—(१) आचारांग का एक अध्ययन जिसे निशीथ कहा जाता है और (२) साध्वाचार का व्यवस्थापन।[१]

२. आरोपणा (आरोवणा)

प्रथम तीर्थङ्कर के समय में उत्कृष्ट प्रायश्चित्त बारहमास का, मध्यम बाईस तीर्थङ्करों के काल में आठ मास का और चरम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर के काल में वह छह मास का होता है। छह मास से अधिक प्रायश्चित्त नहीं होता और किसी मुनि के अनेक दोष सेवित हो जाते हैं, उनका प्रायश्चित्त छह मास से अधिक प्राप्त होता है। उस स्थिति में आरोपणा के द्वारा प्रायश्चित्त का समीकरण दिया जाता है।[२]

किसी मुनि ने ज्ञान आदि आचार के विषय में कोई अपराध किया। उसे अमुक प्रायश्चित्त दिया गया। तदन्तर उसी मुनि ने कोई दूसरा अपराध भी कर डाला, तब उस मुनि को पहले दिए गए प्रायश्चित्त में वृद्धि कर एक महीने तक वहन करने योग्य प्रायश्चित्त दिया जाता है। इसे 'मासिकी आरोपणा' कहते हैं।

पांच दिन के प्रायश्चित्त से शुद्ध होने वाला तथा एक मास के प्रायश्चित्त से शुद्ध होने वाला—ऐसे दो अपराध हो जाने पर, उस मुनि के पूर्व प्रायश्चित्त में एक मास और पांच दिन के प्रायश्चित्त की आरोपणा करना 'एक मास और पांच दिन की आरोपणा' कही जाती है। इसी प्रकार चार मास और पचीस दिन की आरोपणा की जाती है।

जिस प्रायश्चित्त में उद्घात—भाग किया जाता है, उसे उद्घातिक (लघु प्रायश्चित्त) कहा जाता है।

जिस प्रायश्चित्त में अनुद्घात—भाग नहीं किया जाता, उसे अनुद्घातिक (गुरु प्रायश्चित्त) कहा जाता है।

वर्तमान शासन में तप की उत्कृष्ट अवधि छह मास की है। जिसे इस अवधि से अधिक तप प्राप्त न हो उसकी आरोपणा को अपनी अवधि में परिपूर्ण होने के कारण 'कृत्स्ना आरोपणा' कहा जाता है।

जिसे छह मास से अधिक तप प्राप्त हो, उसकी आरोपणा अपनी अवधि में पूर्ण नहीं होती। छह मास से अधिक तप नहीं दिया जाता। उसे उसी अवधि में समाहित करना होता है। इसलिए उसे अपूर्ण होने के कारण 'अकृत्स्ना आरोपणा' कहा जाता है।[३]

३. नौ नो-कषाय (णव णोकसाया)

नो-कषाय का अर्थ है—मूल कषायों को उत्तेजित करने वाली प्रकृतियां। वे नौ हैं—(१) स्त्रीवेद, (२) पुरुषवेद, (३) नपुंसकवेद, (४) हास्य, (५) अरति, (६) रति, (७) भय, (८) शोक और (९) जुगुप्सा।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ४६:
आचार: प्रथमाङ्गं तस्य प्रकल्प अध्ययनविशेषो निशीथमित्यपराभिधानं आचारस्य वा साध्वाचारस्य ज्ञानादि विषयस्य प्रकल्पो—व्यवस्थापनमित्याचार-प्रकल्प:।

२. निशीथसूत्र, भाग ४, सुखबोधा व्याख्या, पृ० ४१९।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ४६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९

एगूणतीसइमो समवाओ : उनतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगूणतीसइविहे पावसुयपसंगे णं पण्णत्ते तं जहा—भोमे उप्पाए सुमिणे अंतलिक्खे अंगे सरे वंजणे लक्खणे। भोमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्ते वित्ती वत्तिए, एवं एक्केक्कं तिविहं। विकहाणुजोगे विज्जाणुजोगे मंताणुजोगे जोगाणुजोगे अण्णतित्थियपवत्ताणुजोगे।	एकोनत्रिंशद्विधः पापश्रुतप्रसंगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—भौमं उत्पातं स्वप्नं अन्तरिक्षं अङ्गं स्वरं व्यञ्जनं लक्षणम्। भौमं त्रिविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—सूत्रं वृत्तिः वार्त्तिकम्, एवं एकैकं त्रिविधम्। विकथानुयोगः विद्यानुयोगः मंत्रानुयोगः योगानुयोगः अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोगः।	१. पाप-श्रुत का प्रसंग (आसेवन)[1] उनतीस प्रकार का है, जैसे— १. भौम, २. उत्पात, ३. स्वप्न, ४. अन्तरिक्ष, ५. अंग, ६. स्वर, ७. व्यंजन, ८. लक्षण—इन आठों के सूत्र, वृत्ति और वार्तिक—ये तीन-तीन प्रकार होते हैं। २५. विकथानुयोग, २६. विद्यानुयोग, २७. मंत्रानुयोग, २८. योगानुयोग, २९. अन्यतीर्थिक-प्रवृत्तानुयोग।
२. आसाढे णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	आषाढो मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	२. आषाढ़ मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।[1]
३. भद्दवए णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	भाद्रपदो मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	३. भाद्रपद मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।
४. कत्तिए णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	कार्त्तिको मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	४. कार्तिक मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।
५. पोसे णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	पौषो मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	५. पौष मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।
६. फग्गुणे णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	फाल्गुनो मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	६. फाल्गुन मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।
७. वइसाहे णं मासे एकूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	वैशाखो मासः एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	७. वैशाख मास दिन-रात के परिमाण से उनतीस दिन-रात का होता है।
८. चंददिणे णं एगूणतीसं मुहुत्ते सातिरेगे मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते।	चन्द्रदिनं एकोनत्रिंशद्न्मुहूर्तं सातिरेकं मुहूर्त्ताग्रेण प्रज्ञप्तम्।	८. चन्द्रमास का दिन[2] (प्रतिपदा आदि तिथि) मुहूर्त परिमाण की दृष्टि से उनतीस मुहूर्त से कुछ अधिक का होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. जीवे णं पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मदिट्ठी तित्थकरनाम-सहियाओ नामस्स कम्मस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपगडीओ निबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ।

जीवः प्रशस्ताध्यवसानयुक्तः भव्यः सम्यग्दृष्टिः तीर्थंकरनामसहिताः नाम्नो कर्मणः नियमात् एकोनत्रिंशदुत्तर-प्रकृतीः निबध्य वैमानिकेषु देवेषु देवत्वेन उपपद्यते।

९. प्रशस्त अध्यवसाय वाला सम्यग्दृष्टि भविक जीव तीर्थङ्कर नामसहित नाम-कर्म की उनतीस प्रकृतियों[1] का निश्चित रूप से बंध कर वैमानिक देवों में देवरूप में उत्पन्न होता है।

१०. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकोनत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है।

११. अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकोनत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति उनतीस सागरोपम की है।

१२. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां एकोनत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है।

१३. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओव-माइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः देवानां अस्ति एकेषां एकोनत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति उनतीस पल्योपम की है।

१४. उवरिम-मज्झिम-गेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणतीसं सागरो-वमाइं ठिई पण्णत्ता।

उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन एकोनत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१४. तृतीय त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति उनतीस सागरोपम की है।

१५. जे देवा उवरिम-हेट्ठिम-गेवेज्जय-विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा उपरितन-अधस्तन-ग्रैवेयक-विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण एकोनत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१५. तृतीय त्रिक की प्रथम श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति उनतीस सागरोपम की है।

१६. ते णं देवा एगूणतीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः एकोनत्रिंशता अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१६. वे देव उनतीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१७. तेसि णं देवाणं एगूणतीसाए वास-सहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां एकोनत्रिंशता वर्षसहस्रै-राहारार्थः समुत्पद्यते।

१७. उन देवों के उनतीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१८. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे एगूणतीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चि-स्संति परिनिव्वाइस्संति सव्व-दुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकोनत्रिंशता भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१८. कुछ भव-सिद्धिक जीव उनतीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. पाप-श्रुत का प्रसंग (आसेवन) (पावसुयपसंगे)

जो शास्त्र पाप या बंधन का उपादान होता है, उसे 'पापश्रुत' कहा जाता है। उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्ति[1] में 'प्रसंग' का अर्थ 'आसक्ति' और समवायांग की वृत्ति[2] में उसका अर्थ 'आसेवन' किया है।

पापश्रुत का प्रसंग उनतीस प्रकार का है—

१. भौम—भूकंप आदि का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
२. उत्पात—स्वाभाविक उत्पातों का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
३. स्वप्न—स्वप्न का शुभाशुभ फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
४. अन्तरिक्ष—आकाश में होने वाले ग्रह-युद्ध आदि का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
५. अंग—अंग-स्फुरण का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
६. स्वर—स्वर का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
७. व्यंजन—तिल, मसा आदि का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।
८. लक्षण—शारीरिक लक्षणों का फल बताने वाला निमित्त-शास्त्र।

इन आठों के तीन-तीन प्रकार होते हैं—सूत्र, वृत्ति और वार्तिक।

२५. विकथानुयोग—अर्थ और काम के उपायों के प्रतिपादक ग्रन्थ।
२६. विद्यानुयोग—विद्या-सिद्धि के प्रतिपादक ग्रन्थ।
२७. मंत्रानुयोग—मंत्र-शास्त्र।
२८. योगानुयोग—वशीकरण-शास्त्र।
२९. अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग—अन्यतीर्थिकों द्वारा प्रवर्तित शास्त्र।

समवायांग में पापश्रुत के जो उनतीस प्रकार बतलाए हैं, वे आवश्यकनिर्युक्ति की अवचूर्णि तथा उत्तराध्ययन की बृहद्वृत्ति में उद्धृत दो गाथाओं में निर्दिष्ट उनतीस प्रकारों से भिन्न हैं। इनके आधार पर वे उनतीस प्रकार ये हैं[3]—

१. दिव्य, २. उत्पात, ३. अंतरिक्ष, ४. भौम, ५. अंग, ६. स्वर, ७. लक्षण, ८. व्यंजन—इन आठों के सूत्र, वृत्ति और वार्तिक—ये तीन-तीन प्रकार हैं। २५. गन्धर्व, २६. नाट्य, २७. वास्तु, २८. आयुर्वेद और २९. धनुर्वेद।

इन दोनों स्थलों के तुलनात्मक अध्ययन से समवायांग में निर्दिष्ट प्रकार प्राचीन प्रतीत होते हैं।

अष्टांग निमित्त के प्रत्येक अंग के तीन-तीन प्रकार किए गए हैं—सूत्र, वृत्ति और वार्तिक। आवश्यकनिर्युक्ति की अवचूर्णि में दो गाथाएं उद्धृत हैं। उनके अनुसार अंग को छोड़कर शेष सात अंगों के सूत्र का ग्रंथमान एक हजार, वृत्ति का ग्रंथमान एक लाख और वार्तिक का ग्रंथमान एक करोड़ होता है। अंग के सूत्र का ग्रंथमान एक लाख, वृत्ति का ग्रंथमान

---

१. उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति पत्र ६१७ :
पापोपादानानि श्रुतानि पापश्रुतानि, तेषु प्रसञ्जनानि प्रसंगाः तथाविधासक्तिरूपाः पापश्रुतप्रसंगाः।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ४७ :
पापोपादानि श्रुतानि पापश्रुतानि, तेषां प्रसंगः—तथाऽऽसेवनरूपः पापश्रुतप्रसंगः।

३. (क) आवश्यक निर्युक्ति, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० १३६ :
अट्ठनिमित्तंगाइं दिव्वुप्पायंतलिक्खं भोमं च।
अंग सरलक्खणवंजणं च तिविहं पुणोक्केक्कं॥
सुत्तं वित्ती तह वित्तियं च पावसुयं अउणतीसविहं।
गंधव्वनट्टवत्थुं आउं धणुवेयसंजुत्तं॥
(ख) उत्तराध्ययन, बृहद्वृत्ति पत्र ६१७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक करोड़ और वार्त्तिक का ग्रंथमान अपरिमित है।[1]

आचार्य अभयदेवसूरी ने विकथानुयोग की व्याख्या में अर्थशास्त्र के रूप में 'कामन्दक' और कामशास्त्र के रूप में वात्स्यायन के कामसूत्र 'कामशास्त्र' का उल्लेख किया है।[2] योगानुयोग की व्याख्या में उन्होंने वशीकरण शास्त्र के रूप में 'हरमेखला' का उल्लेख किया है।[3]

सूत्रकृतांग २/२/१८ में अनेकविध पापश्रुत अध्ययनों का निर्देश है। उनकी संख्या चौसठ है। उनमें प्रथम आठ वे ही हैं जो यहां निर्दिष्ट हैं। विशेष जानकारी के लिए देखें—सूत्रकृतांग २/२/१८ का टिप्पण।

२. अन्यतीर्थिकप्रवृत्तानुयोग (अण्णतित्थियपवत्ताणुजोगे)

अन्यतीर्थिक शास्त्रों को पाप-श्रुत इसलिए नहीं माना गया कि वे 'स्व-समय' (जैनधर्म) से भिन्न विचारों के प्रतिपादक हैं, किन्तु उन्हें पाप-श्रुत इस दृष्टि से कहा गया है कि उनमें हिंसा, युद्ध आदि की प्रेरणा है। इसका फलितार्थ यह है कि जिन शास्त्रों में हिंसा आदि पापकर्म की प्रेरणा है, वे पाप-श्रुत हैं।

३. आषाढ़ (आसाढे)

आषाढ़ आदि छह महीनों में कृष्णपक्ष में एक तीथि का क्षय होता है। चन्द्रमास $२९\frac{३२}{६२}$ दिन का होता है और ऋतुमास ३० दिन का। इस प्रकार चन्द्रमास से ऋतुमास $\frac{३०}{६२}$ दिन अधिक होता है। इसका फलित यह हुआ कि प्रत्येक अहोरात्र में $\frac{१}{६२}$ दिन चन्द्रमास में कम होता जाता है। इस प्रकार ६२ चन्द्रदिनों से ६१ अहोरात्र होते हैं। इसलिए साधिक दो महीनों में एक तिथि का क्षय होता है।[4]

४. चन्द्रमास का दिन (चंददिणे)

चन्द्रमास $२९\frac{३३}{६२}$ दिन का होता है। इसके $२९\frac{३२}{६२} \times ३०$ मुहूर्त्त हुए। इसको ३० से विभाजित करने पर ($२९\frac{३२}{६२} \times ३० \div ३०$) $२९\frac{३२}{६२}$ मुहूर्त्त होंगे।[5]

५. उनतीस प्रकृतियां (एगूणतीसं उत्तरपगडीओ)

उनतीस प्रकृतियां ये हैं—देवगतिनाम, पंचेन्द्रियजातिनाम, वैक्रिय द्वय—वैक्रियशरीरनाम और वैक्रियमिश्रशरीरनाम, तैजसशरीरनाम, कार्मणशरीरनाम, समचतुरस्रसंस्थाननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, देवानुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम, प्रशस्तविहायोगतिनाम, त्रसनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, प्रत्येकनाम, स्थिरनाम और अस्थिरनाम (दोनों में से एक), शुभनाम और अशुभनाम (दोनों में से एक), सुभगनाम, सुस्वरनाम, आदेयनाम और अनादेयनाम (दोनों में से एक), यशःकीर्त्तिनाम और अयशःकीर्त्तिनाम (दोनों में से एक), निर्माणनाम और तीर्थङ्करनाम।

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि, द्वितीय विभाग, पृ० १३७ :

दिक्वाईण सरूवं अंगविवज्जाण होइ सत्तण्हं।
सुत्तं सहस्सलक्खो अ वित्ती तह कोडि वक्खाणं॥
अंगस्स सयसहस्सं सुत्तं वित्ती अ कोडि विन्नेआ।
वक्खाणं अपरिमिअं एमेव य वत्तियं जाण॥

२ समवायांगवृत्ति, पत्र ४७ :

विकयानुयोग—अर्थकामोपायप्रतिपादनपराणि कामन्दकवात्स्यायनादीनि भारतादीनि शास्त्राणि वा।

३. वही, पत्र ४७ :

योगानुयोगो—वशीकरणादियोगाभिधायकानि हरमेखलादि शास्त्राणि

४. वही, पत्र ४७, ४८।

५. वही, पत्र ४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०
तीसइमो समवाओ : तीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तीसं मोहणोयठाणा पण्णत्ता, तं जहा—	त्रिशद् मोहनीयस्थानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१. मोहनीय-स्थान तीस हैं' जैसे—
संगहणी-गाहा	संग्रहणी गाथा	
१. जे यावि तसे पाणे, वारिमज्झे विगाहिया। उदएण क्कम्म मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥	यश्चापि त्रसान् प्राणान्, वारिमध्ये विगाह्य। उदकेनाक्रम्य मारयति, महामोहं प्रकरोति ॥	१. जो व्यक्ति किसी त्रस प्राणी को पानी में ले जा, पैर आदि से आक्रमण कर पानी के द्वारा उसे मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।
२. सीसावेढेण जे केई, आवेढेइ अभिक्खणं। तिव्वासुभसमायारे, महामोहं पकुव्वइ ॥	शीर्षविष्टेन यः कश्चिद्, आवेष्टयत्यभीक्ष्णम्। तीव्राशुभसमाचारः, महामोहं प्रकरोति ॥	२. जो व्यक्ति तीव्र अशुभ समाचरण-पूर्वक किसी त्रस प्राणी को गीले चमड़े की बाध से बांध कर मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।
३. पाणिणा संपिहित्ताणं, सोयमावरिय पाणिणं। अंतोनदंतं मारेई, महामोहं पकुव्वइ ॥	पाणिना संपिधाय, श्रोत आवृत्य प्राणिनम्। अन्तर्नदन्तं मारयति, महामोहं प्रकरोति ॥	३. जो व्यक्ति अपने हाथ से किसी मनुष्य का मुंह बंद कर, उसे कमरे में रोक कर, अन्तर्विलाप करते हुए को मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।
४. जायतेयं समारब्भ, बहुं ओरुंभिया जणं। अंतोधूमेण मारेई, महामोहं पकुव्वइ ॥	जाततेजसं समारभ्य बहुमवरुध्य जनम्। अन्तोधूमेन मारयति, महामोहं प्रकरोति ॥	४. जो व्यक्ति अनेक जीवों को किसी एक स्थान में अवरुद्ध कर, अग्नि जलाकर उसके धुंए से मारता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।
५. सिस्सम्मि जे पहणइ, उत्तमंगम्मि चेयसा। विभज्ज मत्थयं फाले, महामोहं पकुव्वइ ॥	शीर्षे यः प्रहन्ति, उत्तमाङ्गे चेतसा। विभज्य मस्तकं पाटयति, महामोहं प्रकरोति ॥	५. जो व्यक्ति संक्लिष्ट चित्त से किसी प्राणी के सर्वोत्तम अंग (सिर) पर प्रहार कर, उसे खंड-खंड कर फोड़ देता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।
६. पुणो पुणो पणिहिए, हणित्ता उवहसे जणं। फलेणं अदुव दंडेणं, महामोहं पकुव्वइ ॥	पुनः पुनः प्रणिधिना, हत्वोपहसेज्जनम्। फलेनाथवा दण्डेन, महामोहं प्रकरोति ॥	६. जो व्यक्ति प्रणिधि से (वेश बदल कर) किसी मनुष्य को विजन में फलक या डंडे से मार कर खुशी मनाता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. गूढायारी निगूहेज्जा,
मायं मायाए छायए।
असच्चवाई णिण्हाई,
महामोहं पकुव्वइ ॥

गूढाचारी निगूहेत,
मायां मायया छादयेत् ।
असत्यवादी निह्नवी,
महामोहं प्रकरोति ॥

७. जो व्यक्ति गोपनीय आचरण कर उसे छिपाता है, माया से माया को ढांकता है, असत्यवादी है, यथार्थ का अपलाप करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

८. धंसेइ जो अभूएणं,
अकम्मं अत्तकम्मुणा।
अदुवा तुम कासित्ति,
महामोहं पकुव्वइ ॥

ध्वंसयति योऽभूतेन,
अकर्म आत्मकर्मणा ।
अथवा त्वमकार्षीरिति,
महामोहं प्रकरोति ॥

८. जो व्यक्ति अपने दुराचरित कर्म का दूसरे निर्दोष व्यक्ति पर आरोप करता है, अथवा किसी एक व्यक्ति के दोष का किसी दूसरे व्यक्ति पर—'तुमने यह कार्य किया था'—ऐसा आरोपण करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

९. जाणमाणो परिसओ,
सच्चामोसाणि भासइ।
अज्झीणझंझे पुरिसे,
महामोहं पकुव्वइ ॥

जानानः परिषदः,
सत्या-मृषा भाषते ।
अक्षीणझञ्झः पुरुषः,
महामोहं प्रकरोति ॥

९. जो व्यक्ति यथार्थ को जानते हुए भी सभा के समक्ष मिश्र (सत्य और मृषा) भाषा बोलता है और जो निरन्तर कलह करते रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१०. अणायगस्स नयवं,
दारे तस्सेव धंसिया।
विउलं विक्खोभइत्ताणं,
किच्चा णं पडिबाहिरं ॥

अनायकस्य नयवान्,
दारान् तस्यैव ध्वंसयित्वा ।
विपुलं विक्षोभ्य,
कृत्वा प्रतिबाह्यम ॥

११. उवगसंतंपि झंपित्ता,
पडिलोमाहिं वग्गुहिं।
भोगभोगे वियारेई,
महामोहं पकुव्वइ ॥
(युग्मम्)

उपकसन्तमपि झम्पयित्वा,
प्रतिलोमाभिर्वाग्भिः ।
भोगभोगान् विदारयति,
महामोहं प्रकरोति ॥

१०. ११. जो अमात्य शासन-तंत्र में भेद डालने की प्रवृत्ति से अपने राजा को संक्षुब्ध और अधिकार से वंचित कर उसकी अर्थ-व्यवस्था (या अन्तः-पुर) का ध्वंस कर देता है और जब वह अधिकार-मुक्त राजा अपेक्षा लिए सामने आता है तब प्रतिलोम वाणी द्वारा उसकी भर्त्सना करता है। इस प्रकार अपने स्वामी के विशिष्ट भोगों को विदीर्ण करने वाला महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१२. अकुमारभूए जे केई,
कुमारभूएत्तहं वए।
इत्थीहिं गिद्धे वसए,
महामोहं पकुव्वइ ॥

अकुमारभूतो यः कश्चित्,
कुमारभूत इत्यहं वदेत् ।
स्त्रीभिर्गृद्धो वसति,
महामोहं प्रकरोति ॥

१२. जो व्यक्ति अकुमार-ब्रह्मचारी होते हुए भी अपने को कुमार-ब्रह्मचारी (बाल ब्रह्मचारी) कहता है तथा दूसरी ओर स्त्रियों में आसक्त रहता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१३. अबंभयारी जे केई,
बंभयारीत्तहं वए।
गद्दभेव्व गवां मज्झे,
विस्सरं नयई नदं ॥

अब्रह्मचारी यः कश्चिद्,
ब्रह्मचारीत्यहं वदेत् ।
गर्दभ इव गवां मध्ये,
विस्वरं नदति नदम् ॥

१३. १४. जो व्यक्ति अब्रह्मचारी होते हुए भी अपने आपको ब्रह्मचारी कहता है, वह गायों के समूह में गधे की भांति रेंकता है, विस्वर नाद करता है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. अप्पणो अहिए बाले,
मायामोसं बहुं भसे।
इत्थीविसयगेहीए,
महामोहं पकुव्वइ ॥
(युग्मम्)

आत्मनो ऽहितो बालो,
मायामृषा बहु भाषते।
स्त्रीविषयगृद्धया,
महामोहं प्रकरोति ॥

अज्ञानी व्यक्ति अपनी आत्मा का अहित करता है और स्त्री विषयक आसक्ति के कारण मायायुक्त मिथ्या-वचन का बहुत प्रयोग कर महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१५. जं निस्सिए उव्वहइ,
जससाअहिमेण वा।
तस्स लुब्भइ वित्तम्मि,
महामोहं पकुव्वइ ॥

यं निश्रितमुद्वहते,
यशसाधिगमेन वा।
तस्य लुभ्यति वित्ते,
महामोहं प्रकरोति ॥

१५. जो व्यक्ति राजा आदि के आश्रित होकर उसके संबंध से प्राप्त यश और सेवा का लाभ उठा कर जीविका चलाता है और उसी के धन में लुब्ध होता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१६. ईसरेण अदुवा गामेणं,
अणिस्सरे ईसरीकए।
तस्स संपग्गहीयस्स,
सिरी अतुलमागया ॥

१७. ईसादोसेण आइट्ठे,
कलुसाविलचेयसे ।
जे अंतरायं चेएइ,
महामोहं पकुव्वइ ॥
(युग्मम्)

ईश्वरेणाथवा ग्रामेण,
अनीश्वर ईश्वरीकृतः।
तस्य संप्रगृहीतस्य,
श्रीरतुलाऽगता ॥
ईर्ष्यादोषेणाविष्टः,
कलुषाविलचेताः ।
योऽन्तरायं चेतयते,
महामोहं प्रकरोति ॥

१६. १७. ईश्वर या ग्राम (जनता) ने किसी अनीश्वर को ईश्वर बनाया। उसके द्वारा पुरस्कृत होने पर उसे अतुल वैभव प्राप्त हुआ। वह ईर्ष्या-दोष से आविष्ट तथा पाप से पंकिल चित्त वाला होकर अपने भाग्य-निर्माताओं के जीवन या सम्पदा में अन्तराय डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१८. सप्पी जहा अंडउडं,
भत्तारं जो विहिंसइ।
सेणावइं पसत्थारं,
महामोहं पकुव्वइ ॥

सर्पी यथाण्डपुटं,
भर्तारं यो विहिनस्ति।
सेनापतिं प्रशास्तारं,
महामोहं प्रकरोति ॥

१८. जैसे नागिन अपने अंड-पुट को खा जाती है, वैसे ही जो व्यक्ति अपने पोषण करने वाले को तथा सेनापति और प्रशास्ता[२] को मार डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

१९. जे नायगं व रट्ठस्स,
नेयारं निगमस्स वा।
सेट्ठिं बहुरवं हंता,
महामोहं पकुव्वइ ॥

यो नायकं वा राष्ट्रस्य,
नेतारं वा निगमस्य।
श्रेष्ठिनं बहुरवं हत्वा,
महामोहं प्रकरोति ॥

१९. जो व्यक्ति राष्ट्र के नायक तथा प्रचुर यशस्वी निगम-नेता श्रेष्ठी को मार डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है[१]।

२०. बहुजणस्स णेयारं,
दीवं ताणं च पाणिणं।
एयारिसं नरं हंता,
महामोहं पकुव्वइ ॥

बहुजनस्य नेतारं,
द्वीपं (दीपं) त्राणं च प्राणिनाम्।
एतादृशं नरं हत्वा,
महामोहं प्रकरोति ॥

२०. जो व्यक्ति जन-नेता तथा प्राणियों के लिए द्वीप (आश्वासनभूत) और त्राण है, ऐसे व्यक्ति को मार डालता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२१. उवट्ठियं पडिविरयं,
संजयं सुतवस्सियं।
वोकम्म धम्माओ भंसे,
महामोहं पकुव्वइ ॥

उपस्थितं प्रतिविरत,
संयतं सुतपस्विनम्।
व्यपक्रम्य धर्माद् भ्रंसयति,
महामोहं प्रकरोति ॥

२१. जो व्यक्ति प्रव्रज्या के लिए उपस्थित है अथवा जो प्रतिविरत (प्रव्रजित) होकर संयत और सुतपस्वी हो गया, उन्हें बरगला कर, फुसला कर या बलात् धर्म से भ्रष्ट करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. तहेवाणंतणाणीणं,
जिणाणं वरदंसिणं।
तेसिं अवण्णवं बाले,
महामोहं पकुव्वइ ॥

तथैवानन्तज्ञानिनां,
जिनानां वरदर्शिनाम् ।
तेषामवर्णवान् बालः,
महामोहं प्रकरोति ॥

२२. जो व्यक्ति अनन्तज्ञानी और वरदर्शी अर्हत् का अवर्णवाद बोलता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२३. नेयाउअस्स मग्गस्स,
दुट्ठे अवयरई बहुं।
तं तिप्पयंतो भावेइ,
महामोहं पकुव्वइ ॥

नैर्यातृकस्य मार्गस्य,
दुष्टोऽपचरति बहु ।
तं तेवयन् भावयति,
महामोहं प्रकरोति ॥

२३. जो व्यक्ति द्वेषवश नैर्यातृक (मोक्ष की ओर ले जाने वाले) मार्ग के बहुत प्रतिकूल चलता है[४] तथा उसकी निन्दा के द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२४. आयरियउवज्झाएहिं,
सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले,
महामोहं पकुव्वइ ॥

आचार्योपाध्यायाभ्यां,
श्रुतं विनयं च ग्राहितः ।
तौ चैव खिसयति (निंदति) बालः,
महामोहं प्रकरोति ॥

२४. जिन आचार्य अथवा उपाध्याय के पास श्रुत और विनय (चारित्र) की शिक्षा प्राप्त की, उन्हीं की निन्दा करने वाला अज्ञानी महामोहयीय कर्म का बंध करता है।

२५. आयरियउवज्झायाणं,
सम्मं नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे,
महामोहं पकुव्वइ ॥

आचार्योपाध्याययोः,
सम्यक् न प्रतितर्पयति ।
अप्रतिपूजकः स्तब्धः,
महामोहं प्रकरोति ॥

२५. जो व्यक्ति आचार्य और उपाध्याय का सम्यक् प्रकार से प्रतितर्पण (सेवा-शुश्रूषा) नहीं करता, उनकी पूजा नहीं करता और अभिमान करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२६. अबहुस्सुए य जे केई,
सुएण पविकत्थइ।
सज्झायवायं वयइ,
महामोहं पकुव्वइ।

अबहुश्रुतश्च यः कश्चित्,
श्रुतेन प्रविकत्थते ।
स्वाध्यायवादं वदति,
महामोहं प्रकरोति ॥

२६. जो व्यक्ति अबहुश्रुत होते हुए भी श्रुत के द्वारा अपना श्यापन करता है तथा किसी व्यक्ति द्वारा पूछे जाने पर 'बहुश्रुत मुनि के बारे में सुना है, वे आप ही हैं?', 'हां, मैं ही हूं', मैंने घोष-विशुद्धि का अभ्यास किया है, बहुत ग्रंथों का पारायण किया है—इस प्रकार जो स्वाध्यायवाद[५] का निर्वचन करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२७. अतवस्सीए य जे केई,
तवेण पविकत्थइ।
सव्वलोयपरे तेणे,
महामोहं पकुव्वइ ॥

अतपस्विकश्च यः कश्चित्,
तपसा प्रविकत्थते ।
सर्वलोकपरः स्तेनः,
महामोहं प्रकरोति ॥

२७. जो व्यक्ति अतपस्वी होते हुए भी तपस्वी के रूप में अपना श्यापन करता है, वह सबसे बड़ा चोर है। ऐसा व्यक्ति महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२८. साहारणट्ठा जे केई,
गिलाणम्मि उवट्ठिए।
पभू ण कुणई किच्चं,
मज्झंपि से न कुव्वइ ॥

साधारणार्थं यः कश्चित्
ग्लाने उपस्थिते ।
प्रभु र्न करोति कृत्यं,
ममापि स न करोति ॥

२८. २६. सहकार[१] लेने के लिए ग्लान के उपस्थित होने पर जो समर्थ होते हुए भी 'यह मेरी सेवा नहीं करता है'—इस दृष्टि से उसका कृत्य (करणीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. सढे नियडीपण्णाणे,
कलुसाउलचेयसे ।
अप्पणो य अबोहीए,
महामोहं पकुव्वइ ॥
(युग्मम्)

शठो निकृतिप्रज्ञानः,
कलुषाकुलचेताः ।
आत्मनश्चाबोधिकः,
महामोहं प्रकरोति ॥

सेवा) नहीं करता, वह शठ, माया-प्रज्ञान (छद्मग्लानवेषी), पाप से पंकिल चित्त वाला व्यक्ति दुर्लभबोधि होता है। ऐसा व्यक्ति महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

३०. जे कहाहिगरणाइं,
संपउंजे पुणो पुणो ।
सव्वतित्थाण भेयाय,
महामोहं पकुव्वइ ॥

यः कथाधिकरणानि,
संप्रयुङ्क्ते पुनः पुनः ।
सर्वतीर्थानां भेदाय,
महामोहं प्रकरोति ॥

३०. जो व्यक्ति सर्व तीर्थों के भेद के लिए कथा और अधिकरण का बार-बार संप्रयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

३१. जे य आहम्मिए जोए,
संपउंजे पुणो पुणो ।
सहाहेउं सहीहेउं,
महामोहं पकुव्वइ ॥

यश्चाधार्मिकान् योगान्,
संप्रयुङ्क्ते पुनः पुनः ।
श्लाघाहेतोः सखिहेतोः,
महामोहं प्रकरोति ॥

३१. जो व्यक्ति श्लाघा[७] अथवा मित्र-गण के लिए आधार्मिक योग (निमित्त, वशीकरण आदि) का बार-बार संप्रयोग करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

३२. जे य माणुस्सए भोए,
अदुवा पारलोइए ।
तेऽतिप्पयंतो आसयइ,
महामोहं पकुव्वइ ॥

यश्च मानुष्यकान् भोगान्,
अथवा परलौकिकान् ।
तेष्वतृप्यन् आस्वदते,
महामोहं प्रकरोति ॥

३२. जो व्यक्ति मानुषी अथवा पार-लौकिक भोगों का अतृप्तभाव[८] से आस्वादन करता है, वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

३३. इड्ढी जुई जसो वण्णो,
देवाणं बलवीरियं ।
तेसिं अवण्णवं बाले,
महामोहं पकुव्वइ ॥

ऋद्धिर्द्युतिर्यशो वर्णः,
देवानां बलवीर्यम् ।
तेषामवर्णवान् बालः,
महामोहं प्रकरोति ॥

३३. जो व्यक्ति देवों की ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण और बल-वीर्य का अवर्णवाद बोलता है—उनका अपलाप करता है—वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

३४. अपस्समाणो पस्सामि,
देवे जक्खे य गुज्झगे ।
अण्णाणि जिणपूयट्ठी,
महामोहं पकुव्वइ ॥

अपश्यन् पश्यामि,
देवान् यक्षांश्च गुह्यकान् ।
अज्ञानी जिनपूजार्थी,
महामोहं प्रकरोति ॥

३४. जो अज्ञानी जिन की भांति पूजा का अर्थी होकर देव, यक्ष और गुह्यक को नहीं देखता हुआ भी कहता है कि 'मैं उन्हें देखता हूं', वह महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

२. थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

स्थविरः मण्डितपुत्रः त्रिंशद् वर्षाणि श्रामण्यपर्यायं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःख-प्रहीणः ।

२. स्थविर मंडितपुत्र तीस वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।[९]

३. एगमेगे णं अहोरत्ते तीसं मुहुत्ता मुहुत्तग्गेणं पण्णत्ते । एएसि णं तीसाए मुहुत्ताणं तीसं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—रोद्दे सेते मित्ते वाऊ सुपीए अभियंदे माहिंदे पलंबे

एकैकं अहोरात्रं त्रिंशद्मुहूर्त्तानि मुहूर्त्ताग्रेण प्रज्ञप्तम् । एतेषां त्रिंशतो मुहूर्त्तानां त्रिंशन्नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रौद्रः श्रेयान् मित्रं वायुः सुपीतः अभिचन्द्रः माहेन्द्रः प्रलम्बः ब्रह्म सत्यं

३. मुहूर्त्त के परिमाण से प्रत्येक अहोरात्र तीस मुहूर्त्त का होता है। इन तीस मुहूर्त्तों के तीस नाम हैं, जैसे—रौद्र, श्रेयान्, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, प्रलम्ब, ब्रह्म, सत्य, आनन्द,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंभे सच्चे आणंदे विजए वीससेणे वायावच्चे उवसमे ईसाणे तिट्ठे भावियप्पा वेसमणे वरुणे सतरिसभे गंधव्वे अग्गिवेसायणे आतवं आवधं तट्ठवे भूमहे रिसभे सव्वट्ठसिद्धे रक्खसे।

आनन्दः विजयः विश्वसेनः प्राजापत्यः उपशमः ईशानः त्वष्टा भावितात्मा वैश्रमणः वरुणः शतऋषभः गन्धर्वः अग्निवैश्यायनः आतपः आव्यधः तष्टपः भूमहः ऋषभः सर्वार्थसिद्धः राक्षसः।

विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम, ईशान, त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रमण, वरुण, शतऋषभ, गन्धर्व, अग्निवैश्यायन, आतप, आव्यध, तष्टप, भूमह, ऋषभ, सर्वार्थसिद्ध और राक्षस[10]।

४. अरे णं अरहा तीसं धणुइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अरः अर्हन् त्रिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

४. अर्हन् अर की ऊंचाई तीस धनुष्य की थी।

५. सहस्सारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तीसं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।

सहस्रारस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य त्रिंशद् सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।

५. सहस्रारकल्प के देवेन्द्र देवराज के तीस हजार समानिक देव थे।

६. पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता (मुंडे भवित्ता ?) अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

पार्श्वः अर्हन् त्रिंशद् वर्षाणि अगारमध्ये उषित्वा (मुण्डो भूत्वा ?) अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।

६. अर्हन् पार्श्व तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर (मुंड होकर), अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।

७. समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता (मुंडे भवित्ता ?) अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

श्रमणः भगवान् महावीरः त्रिंशद् वर्षाणि अगारमध्ये उषित्वा (मुण्डो भूत्वा ?) अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।

७. श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक गृहवास में रहकर (मुंड होकर), अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।

८. रयणप्पभाए णं पुढवीए तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

रत्नप्रभायां पृथिव्यां त्रिंशद् निरयावास-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

८. रत्नप्रभा पृथ्वी में तीस लाख नरकावास हैं।

९. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तीस पल्योपम की है।

१०. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तीस सागरोपम की है।

११. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तीस पल्योपम की है।

(सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ?)।

(सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता)।

(सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तीस पल्योपम की है।)

१२ उवरिम - उवरिम - गेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयकाणां देवानां जघन्येन त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१२. तृतीय त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जे देवा उवरिम-मज्झिम-गेवेज्ज-एसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा उपरितन-मध्यम-ग्रैवेयकेषु विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१३. तृतीय त्रिक की द्वितीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति तीस सागरोपम की है।

१४. ते णं देवा तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवाः त्रिंशता अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१४. वे देव तीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१५. तेसि णं देवाणं तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां त्रिंशता वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१५. उन देवों के तीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१६. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये त्रिंशता भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१६. कुछ भव-सिद्धिक जीव तीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. मोहनीय स्थान तीस हैं (तीसं मोहनीय ठाणा)

महामोहनीय कर्म-बन्ध के तीस कारणों का उल्लेख दशाश्रुतस्कंध (दशा—नौ) में भी हुआ है। उसमें प्रथम पांच स्थान कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। वहां दूसरे के स्थान पर पांचवें, तीसरे के स्थान पर दूसरे, चौथे के स्थान पर तीसरे और पांचवें के स्थान पर चौथे कारण का उल्लेख है। शेष कारण समवायांग में उल्लिखित कारणों के समान ही हैं।

प्रश्नव्याकरण (वृत्ति, पत्र ८६, ८७) तथा उत्तराध्ययन (वृत्ति, पत्र ६१७, ६१८) में भी महामोहनीय कर्म-बन्ध के तीस कारणों का उल्लेख है। वे दोनों प्रायः समान हैं। प्रश्नव्याकरण की वृत्ति के अनुसार वे इस प्रकार हैं—

१. त्रस जीवों को पानी में डुबो कर मारना।
२. हाथ आदि से मुख आदि अंगों को बंद कर प्राणी को मारना।
३. सिर पर चर्म आदि बांध कर मारना।
४. मुद्गर आदि से सिर पर प्रहार कर मारना।
५. प्राणियों के लिए जो आधारभूत व्यक्ति हैं, उनको मारना।
६. सामर्थ्य होते हुए भी कलुषित भावना से ग्लान की औषधि आदि से सेवा न करना।
७. तपस्वियों को बलात् धर्म से भ्रष्ट करना।
८. दूसरों को मोक्षमार्ग से विमुख कर अपकार करना।
९. जिनदेव की निन्दा करना।
१०. आचार्य आदि की निन्दा करना।
११. ज्ञान आदि से उपकृत करने वाले आचार्य आदि की सेवा-शुश्रूषा नहीं करना।
१२. बार-बार अधिकरण करना।
१३. वशीकरण करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. प्रत्याख्यात भोगों की पुनः अभिलाषा करना।
१५. अबहुश्रुती होते हुए भी बार-बार अपने को बहुश्रुती बताना।
१६. अतपस्वी होते हुए भी तपस्वी बताना।
१७. प्राणियों को घेर, वहां अग्नि जला, धुंए की घुटन से उन्हें मारना।
१८. अपने अकृत्य को दूसरों के सिर मढ़ना।
१९. विविध प्रकार की माया से दूसरों को ठगना।
२०. अशुभ आशय से सत्य को मृषा बताना।
२१. सदा कलह करते रहना।
२२. विश्वास उत्पन्न कर दूसरों के धन का अपहरण करना।
२३. विश्वास उत्पन्न कर दूसरों की स्त्रियों को लुभाना।
२४. अकुमार होते हुए भी अपने को कुमार कहना।
२५. अब्रह्मचारी होते हुए भी अपने आपको ब्रह्मचारी कहना।
२६. जिसके द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त किया, परोक्ष में उसी के धन की वांछा करना।
२७. जिसके प्रभाव से कीर्ति प्राप्त की, उसी को ज्यों-त्यों अन्तराय देना।
२८. राजा, सेनापति, राष्ट्रचिन्तक आदि जन-नेताओं को मारना।
२९. देव-दर्शन न होते हुए भी 'मुझे देव-दर्शन होता है'—ऐसा कहना।
३०. देवों की अवज्ञा करते हुए अपने आपको देव घोषित करना।

२. प्रशास्ता (पसत्थारं)

वृत्तिकार ने इसके दो अर्थ किए हैं—अमात्य अथवा धर्मपाठक।[1] वैदिक कोश में इसका अर्थ स्तुति-पाठक है।[2] कौटलीय अर्थशास्त्र में इसके दो अर्थ प्राप्त होते हैं[3]—

(१) कण्टक-शोधनाध्यक्ष—सामाजिक अपराध करने वालों का शोधन करने वाला।
(२) आयुधशाला का अध्यक्ष।

३. निगम-नेता श्रेष्ठी (नेयारं निगमस्स वा, सेट्ठि)

व्यापारियों के समूह को 'निगम' कहा जाता है। आज की तरह उस जमाने में भी विभिन्न वर्गों के व्यापारियों के भिन्न-भिन्न संगठन होते थे और उनका एक-एक अध्यक्ष होता था। प्राचीन भारत में शिल्पियों के संगठन को श्रेणी, व्यापारियों के संगठन को निगम और एक साथ माल लाद कर वाणिज्य करने वालों के संगठन को सार्थ कहते थे। श्रेष्ठी निगम के नेता होते थे और वे राज्य द्वारा मान्य साहूकार होते थे। इनके श्रीदेवी से अंकित एक पट्ट बंधा रहता था।[4]

४. प्रतिकूल चलता है (अवयरई)

वृत्तिकार ने 'अवयरई' का अर्थ 'अपकार करना' किया है।[5] किन्तु 'अवयरई' पाठ है इसलिए इसका संस्कृत रूप हमने 'अपचरति' किया है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ५१ :
प्रशास्तारं—अमात्यं अथवा धर्मपाठकं वा।

२. वैदिक कोष, पृ० १२०।

३ कौटलीय अर्थशास्त्र, परिशिष्ट ३, पृ० २८१, फुटनोट नं० ८ :
कण्टकशोधनाध्यक्षः आयुधाध्यक्षश्च।
देखो—कौटलीय अर्थशास्त्र का चौथा अधिकरण।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र ५१।

५. वही पत्र ५२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. स्वाध्यायवाद (सज्झायवाय)

प्रस्तुत सूत्र के पाठ संस्करण में हमने 'सब्भाववयं' पाठ की सम्भावना और उसकी समीचीनता का विमर्श किया।[1] उसका आधार दशाश्रुतस्कंध (६/२/२६) की वृत्ति में प्राप्त 'सद्भाववाद' शब्द रहा। किन्तु दशाश्रुतस्कंध की चूर्णि में 'सज्झायवायं' (स्वाध्यायवाद) की व्याख्या मिलती है, जैसे मैं सूत्र का विशुद्ध उच्चारण करने वाला हूं' मैंने बहुत ग्रन्थों का पारायण किया है। इसलिए 'स्वाध्यायवाद' पाठ भी असमीचीन नहीं है।

६. सहकार (साहारण)

इसका मूल 'साहारण' शब्द है। इसके संस्कृत रूप तीन हो सकते हैं—

(१) संधारण—अच्छी प्रकार से धारण करना।

(२) स्वाधारण—सहारा देना, उपकार करना।

(३) संहरण—संकोचन।

एक शब्द 'साहार' भी है, जिसका अर्थ है—सहकार या सहारा। यहां 'साहारण' का अर्थ सहकार ही संगत लगता है।

७. श्लाघा (सहाउं)

यहां श्लाघा के लिए 'सहा' शब्द प्रयुक्त है। यह मूलतः 'साहा' शब्द है। आदि के 'आकार' को ह्रस्व कर 'साहा' के स्थान पर 'सहा' का प्रयोग किया है। इस प्रकार के अन्य प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे साहा (शाखा) के स्थान पर 'सहा' का भी प्रयोग होता है।

८. अतृप्तभाव (ऽतिप्पयंतो)

यहां 'अतिप्पयंतो' का अकार 'ते' के साथ संधि होने के कारण लुप्त है।

९. स्थविर मंडितपुत्र (थेरे णं मंडियपुत्ते)

ये मगध जनपद के मौर्य सन्निवेश के वासी थे। इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम वीरदेवी था। ये वाशिष्ठ गोत्री ब्राह्मण थे। जब ये महावीर के पास दीक्षित हुए तब इनका आयुष्य ६५ वर्ष का था। ये चौदह वर्ष तक छद्मस्थ तथा सोलह वर्ष तक केवली पर्याय में रहे। इनका पूरा श्रामण्य काल तीस वर्ष का था और ये ९५ वर्ष की आयु पूरी कर निर्वृत हुए। ये छठे गणधर थे।[2]

१०. रौद्र⋯राक्षस (रोद्दे⋯रक्खसे)

सूर्यप्रज्ञप्ति (२०/८४) में ये तीस नाम निम्न प्रकार से उपलब्ध होते हैं—रुद्र, श्रेयान्, मित्र, वायु, सुपीत, अभिचन्द्र, माहेन्द्र, बलवान्, ब्रह्मा, बहुसत्य, ईशान, त्वष्टा, भावितात्मा, वैश्रमण, वारुण, आनन्द, विजय, विश्वसेन, प्राजापत्य, उपशम, गन्धर्व, अग्निवेश्य, शतवृषभ, आतपवान्, अमम, ऋणवान्, भौम, वृषभ, सर्वार्थ और राक्षस।

---

१. अंगसुत्ताणि भाग १, पृ० ८७२।

२. आवश्यकचूर्णि, पृ० ३३८, ३३९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१

एक्कतीसइमो समवाओ : इकतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. इक्कतीसं सिद्धाइगुणा पण्णत्ता, तं जहा—	एकत्रिंशत् सिद्धादिगुणाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. सिद्ध के आदि-गुण[1] (मुक्त होने के प्रथम क्षण में होने वाले गुण) इकतीस हैं, जैसे—
खीणे आभिणिबोहियणाणावरणे	क्षीणं आभिनिबोधिकज्ञानावरणं	१. आभिनिबोधिक ज्ञानावरण की क्षीणता।
खीणे सुयणाणावरणे	क्षीणं श्रुतज्ञानावरणं	२. श्रुत ज्ञानावरण की क्षीणता।
खीणे ओहिणाणावरणे	क्षीणं अवधिज्ञानावरणं	३. अवधि ज्ञानावरण की क्षीणता।
खीणे मणपज्जवणाणावरणे	क्षीणं मनःपर्यवज्ञानावरणं	४. मनःपर्यव ज्ञानावरण की क्षीणता।
खीणे केवलणाणावरणे	क्षीणं केवलज्ञानावरणं	५. केवल ज्ञानावरण की क्षीणता।
खीणे चक्खुदंसणावरणे	क्षीणं चक्षुर्दर्शनावरणं	६. चक्षु दर्शनावरण की क्षीणता।
खीणे अचक्खुदंसणावरणे	क्षीणं अचक्षुर्दर्शनावरणं	७. अचक्षु दर्शनावरण की क्षीणता।
खीणे ओहिदंसणावरणे	क्षीणं अवधिदर्शनावरणं	८. अवधि दर्शनावरण की क्षीणता।
खीणे केवलदंसणावरणे	क्षीणं केवलदर्शनावरणं	९. केवल दर्शनावरण की क्षीणता।
खीणा निद्दा	क्षीणा निद्रा	१०. निद्रा की क्षीणता।
खीणा णिद्दाणिद्दा	क्षीणा निद्रानिद्रा	११. निद्रा-निद्रा की क्षीणता।
खीणा पयला	क्षीणा प्रचला	१२. प्रचला की क्षीणता।
खीणा पयलापयला	क्षीणा प्रचलाप्रचला	१३. प्रचला-प्रचला की क्षीणता।
खीणा थीणगिद्धी	क्षीणा स्त्यानगृद्धिः	१४. स्त्यानगृद्धि की क्षीणता।
खीणे सायावेयणिज्जे	क्षीणं सातवेदनीयं	१५. सातवेदनीय की क्षीणता।
खीणे असायावेयणिज्जे	क्षीणं असातवेदनीयं	१६. असातवेदनीय की क्षीणता।
खीणे दंसणमोहणिज्जे	क्षीणं दर्शनमोहनीयं	१७. दर्शन मोहनीय की क्षीणता।
खीणे चरित्तमोहणिज्जे	क्षीणं चरित्रमोहनीयं	१८. चरित्र मोहनीय की क्षीणता।
खीणे नेरइयाउए	क्षीणं नैरयिकायुः	१९. नैरयिक आयुष्य की क्षीणता।
खीणे तिरियाउए	क्षीणं तिर्यगायुः	२०. तिर्यञ्च आयुष्य की क्षीणता।
खीणे मणुस्साउए	क्षीणं मनुष्यायुः	२१. मनुष्य आयुष्य की क्षीणता।
खीणे देवाउए	क्षीणं देवायुः	२२. देव आयुष्य की क्षीणता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खीणे उच्चागोए	क्षीणं उच्चगोत्रं	२३. उच्चगोत्र की क्षीणता।
खीणे नियागोए	क्षीणं नीचगोत्रं	२४. नीचगोत्र की क्षीणता।
खीणे सुभणामे	क्षीणं शुभनाम	२५. शुभनाम की क्षीणता।
खीणे असुभणामे	क्षीणं अशुभनाम	२६. अशुभनाम की क्षीणता।
खीणे दाणंतराए	क्षीणः दानान्तरायः	२७. दानान्तराय की क्षीणता।
खीणे लाभंतराए	क्षीणः लाभान्तरायः	२८. लाभान्तराय की क्षीणता।
खीणे भोगंतराए	क्षीणः भोगान्तरायः	२९. भोगान्तराय की क्षीणता।
खीणे उवभोगंतराए	क्षीणः उपभोगान्तरायः	३०. उपभोगान्तराय की क्षीणता।
खीणे वीरियंतराए।	क्षीणः वीर्यान्तरायः।	३१. वीर्यान्तराय की क्षीणता।
२. मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्च तेवीसे जोयणसए किंचिदेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते।	मन्दरः पर्वतः धरणीतले एकत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् च त्रयोविंशतिं योजनशतं किञ्चिद् देशोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः।	२. मंदर पर्वत की पृथ्वीतल पर परिधि ३१६२३ योजन से कुछ कम है।
३. जया णं सूरिए सव्वबाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि य एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ।	यदा सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा इहगतस्य मनुष्यस्य एकत्रिंशता योजनसहस्रैः अष्टभिश्च एकत्रिंशता योजनशतैः त्रिंशता षष्ठि-भागैर्योजनस्य सूर्यः चक्षुःस्पर्शं अर्वाग् आगच्छति।	३. जब सूर्य सर्व-बाह्य-मंडल में उपसंक्रमण कर गति करता है तब वह भरतक्षेत्र में रहने वाले मनुष्य को ३१८३१$\frac{१}{२}$ योजन दूर से दीख पड़ता है[२]।
४. अभिवड्ढिए णं मासे एक्कतीसं सातिरेगाणि राइंदियाणि राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	अभिवर्द्धितः मासः एकत्रिंशत् सातिरेकाणि रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दि-वाग्रेण प्रज्ञप्तः।	४. रात-दिन के परिमाण से अभिवर्द्धित मास सातिरेक इकतीस दिन-रात का होता है[३]।
५. आइच्चे णं मासे एक्कतीसं राइंदियाणि किंचि विसेसूणाणि राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	आदित्यः मासः एकत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि किञ्चिद् विशेषोनानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	५. रात-दिन के परिमाण से आदित्यमास (सूर्यमास) कुछ-विशेष-न्यून इकतीस दिन-रात का होता है[४]।
६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं इक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इकतीस पल्योपम की है।
७. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं इक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां एकत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	७. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति इकतीस सागरोपम की है।
८. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं इक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां एकत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	८. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति इकतीस पल्योपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं इक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां एकत्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	९. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति इकतीस पल्योपम की है।
१०. विजय - वेजयंत - जयंत - अपराजियाणं देवाणं जहण्णेणं इक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	विजय - वैजयन्त-जयन्त- अपराजितानां देवानां जघन्येन एकत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	१०. विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की जघन्य स्थिति इकतीस सागरोपम की है।
११. जे देवा उवरिम-उवरिम-गेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं इक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।	ये देवा उपरितन-उपरितन-ग्रैवेयक-विमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानामुत्कर्षेण एकत्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	११. तृतीय त्रिक की तृतीय श्रेणी के ग्रैवेयक विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागरोपम की है।
१२. ते णं देवा इक्कतीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।	ते देवाः एकत्रिंशता अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।	१२. वे देव इकतीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।
१३. तेसि णं देवाणं इक्कतीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।	तेषां देवानां एकत्रिंशता वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।	१३. उन देवों के इकतीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।
१४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे इक्कतीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये एकत्रिंशता भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	१४. कुछ भव-सिद्धिक जीव इकतीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. सिद्ध के आदि-गुण (सिद्धाइगुणा)

आदि-गुण का अर्थ है—मुक्त होने के प्रथम क्षण में होने वाला गुण। इनकी उत्पत्ति में क्रम-भावित्व नहीं होता। ये सब युगपद्—एकसाथ उत्पन्न होते हैं। ये सहभावी गुण हैं।[1]

प्रस्तुत आलापक में सिद्धों के इकतीस गुणों का निर्देश है। यह निर्देश दो प्रकार से प्राप्त होता है। प्रस्तुत आगम में निर्दिष्ट इकतीस गुण आठ कर्मों के क्षय के आधार पर संगृहीत हैं—

१. ज्ञानावरण कर्म के क्षय से निष्पन्न	५	(१-५)
२. दर्शनावरण कर्म के क्षय से निष्पन्न	९	(६-१४)
३. वेदनीय कर्म के क्षय से निष्पन्न	२	(१५-१६)
४. मोहनीय कर्म के क्षय से निष्पन्न	२	(१७-१८)

१. आवश्यक, प्रतिक्रमणाध्ययन, पृ० १५१ :
सिद्धाणं आदीए गुणा सिद्धादिगुणा, सिद्धेहिं सहभाविन इत्यर्थः। ते य अपज्जवसिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. आयुष्य कर्म के क्षय से निष्पन्न	४	(१६-२२)
६. गोत्र कर्म के क्षय से निष्पन्न	२	(२३-२४)
७. नाम कर्म के क्षय से निष्पन्न	२	(२५-२६)
८. अन्तराय कर्म के क्षय से निष्पन्न	५	(२७-३१)

दूसरा प्रकार

संस्थान, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श तथा वेद के आधार पर इकतीस गुणों का विभाजन इस प्रकार है—

१. संस्थान के पांच—न परिमंडल, न वृत्त, न त्रिकोण, न चतुष्कोण और न आयत।

२. वर्ण के पांच—न कृष्ण, न नील, न लाल, न पीत और न शुक्ल।

३. गंध के दो—न सुगंध और न दुर्गन्ध।

४. रस के पांच—न तिक्त, न कटु, न कषाय, न अम्ल और न मधुर।

५. स्पर्श के आठ—न कर्कश, न मृदु, न गुरु, न लघु, न शीत, न उष्ण, न स्निग्ध और न रूक्ष।

६. वेद के तीन—न स्त्रीवेद, न पुरुष वेद, न नपुंसक वेद।

७. न शरीरवान्, न जन्मधर्मा और न लेपयुक्त।[1]

आत्मा की स्वरूप-व्याख्या में ये गुण आचारांग में भी निर्दिष्ट हैं।[2]

२. जब सूर्य······दीख पड़ता है (जया णं सूरिए······हव्वमागच्छइ) :

सूर्य के १४८ मंडल होते हैं। मंडल का अर्थ है—ज्योतिष्-चक्र का मार्ग या कक्ष। जम्बूद्वीप में १८० योजन में ६५ मंडल हैं और लवणसमुद्र में ३३० योजन में ११६ मंडल हैं। उनमें सर्व-बाह्य अर्थात् समुद्र में रहे हुए मंडलों में अन्तिम मंडल का आयाम-विष्कंभ १००६६० योजन है। गोलाकार के रूप में उसकी परिधि ३१८३१५ योजन होती है। सूर्य इतने क्षेत्र का अवगाहन दो दिन-रात में करता है अर्थात् ६० मुहूर्त्तों में सूर्य ३१८३१५ योजन क्षेत्र को पार करता है। इसके अनुसार एक मुहूर्त्त में वह ५३०५$\frac{१५}{६०}$ योजन क्षेत्र को पार करता है।

जब सूर्य सर्व-बाह्य-मंडल में होता है, तब दिन बारह मुहूर्त्त का होता है। आधे दिन के छह मुहूर्त्त होते हैं। ५३०५$\frac{१५}{६०}$ को छह से गुणित करने पर दीखने का गतिप्रमाण प्राप्त होता है। वह ३१८३१$\frac{१}{२}$ योजन होता है। अर्थात् सूर्य जब इतना दूर होता है, तब भरतक्षेत्र में रहने वाला मनुष्य उसे देख सकता है।[3]

३. अभिवर्द्धित मास······(अभिवड्ढिए णं मासे...)।

जिस वर्ष में अधिक मास होता है, उसे अभिवर्द्धित वर्ष कहते हैं। उसके ३८३$\frac{४४}{६२}$ दिन होते हैं अथवा तेरह चन्द्रमास होते हैं। एक-एक चन्द्रमास २९$\frac{३२}{६२}$ दिन का होता है। सातिरेक का अर्थ है—एक अहोरात्र का $\frac{१२१}{१२४}$ भाग अधिक।[4]

४. आदित्य मास······(आइच्चे णं मासे······) :

सूर्य जितने समय में एक राशि का भोग करता है, उतने समय को एक आदित्य-मास कहते हैं। कुछ विशेष-न्यून का अर्थ है—अर्द्ध अहोरात्र जितना न्यून।[5]

---

१. आवश्यक, प्रतिक्रमणाध्ययन, पृष्ठ १५१, १५२।

२. आयारो ५/१२७-१३४।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ५३, ५४।

४. वही, पत्र ५४।

५. वही, पत्र ५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२

बत्तीसइमो समवाओ : बत्तीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया
१. बत्तीसं जोगसंगहा पण्णत्ता, तं जहा—	द्वात्रिंशत् योगसंग्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा
१. आलोयणा निरवलावे, आवईसु दढधम्मया। अणिस्सिओवहाणे य, सिक्खा निप्पडिकम्मया॥	आलोचना निरपलापः, आपत्सु दृढधर्मता। अनिश्रितोपधानश्च, शिक्षा निष्प्रतिकर्मता॥
२. अण्णातता अलोभे य, तितिक्खा अज्जवे सुती। सम्मदिट्ठी समाही य, आयारे विणओवए॥	अज्ञातता अलोभश्च, तितिक्षा आर्जवं शुचिः। सम्यग्दृष्टिः समाधिश्च, आचारः विनयोपगः॥
३. धिईमई य संवेगे, पणिही सुविहि संवरे। अत्तदोसोवसंहारे, सव्वकामविरत्तया॥	धृतिमतिश्च संवेगः, प्रणिधिः सुविधिः संवरः। आत्मदोषोपसंहारः, सर्वकामविरक्तता॥
४. पच्चक्खाणे विउस्सग्गे, अप्पमादे लवालवे। झाणसंवरजोगे य, उदए मारणंतिए॥	प्रत्याख्यानं व्युत्सर्गः, अप्रमादः लवालवः। ध्यानसंवरयोगश्च, उदये मारणान्तिके॥
५. संगाणं च परिण्णा, पायच्छित्तकरणेत्ति य। आराहणा य मरणंते, बत्तीसं जोगसंगहा॥	संगानां च परिज्ञा, प्रायश्चित्तकरणमिति च। आराधना च मरणान्ते, द्वात्रिंशद् योगसंग्रहाः॥

हिन्दी अनुवाद

१. योग-संग्रह[1] बत्तीस हैं, जैसे—

१. आलोचना
२. निरपलाप
३. आपत्काल में दृढ़धर्मता
४. अनिश्रितोपधान
५. शिक्षा
६. निष्प्रतिकर्मता
७. अज्ञातता
८. अलोभ
९. तितिक्षा
१०. आर्जव
११. शुचि
१२. सम्यग्दृष्टि
१३. समाधि
१४. आचार
१५. विनयोपग
१६. धृतिमति
१७. संवेग
१८. प्रणिधि
१९. सुविधि
२०. संवर
२१. आत्मदोषोपसंहार
२२. सर्वकामविरक्तता
२३. प्रत्याख्यान
२४. प्रत्याख्यान
२५. व्युत्सर्ग
२६. अप्रमाद
२७. लवालव
२८. ध्यानसंवरयोग
२९. मारणान्तिक उदय
३०. संग-परिज्ञा
३१. प्रायश्चित्तकरण
३२. मारणान्तिक आराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. बत्तीसं देविंदा पण्णत्ता, तं जहा—चमरे बली धरणे भूयाणंदे वेणुदेवे वेणुदालो हरि हरिस्सहे अग्गिसिहे अग्गिमाणवे पुन्ने विसिट्ठे जलकंते जलप्पभे अमियगती अमितवाहणे वेलंबे पभंजणे घोसे महाघोसे चंदे सूरे सक्के ईसाणे सणंकुमारे माहिंदे बंभे लंतए महासुक्के सहस्सारे पाणए अच्चुए।

द्वात्रिंशद् देवेन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चमरः बली धरणः भूतानन्दः वेणुदेवः वेणुदाली हरिः हरिस्सहः अग्निशिखः अग्निमाणवः पूर्णः विशिष्टः जलकान्तः जलप्रभः अमितगतिः अमितवाहनः वैलम्बः प्रभंजनः घोषः महाघोषः चन्द्रः सूरः शक्रः ईशानः सनत्कुमारः माहेन्द्रः ब्रह्मः लान्तकः महाशुक्रः सहस्रारः प्राणतः अच्युतः।

२. देवेन्द्र बत्तीस हैं,[१] जैसे—
भवनपति देवों के बीस इन्द्र—चमर, बली, धरण, भूतानन्द, वेणुदेव, वेणुदाली, हरि, हरिस्सह, अग्निशिख, अग्निमाणव, पूर्ण, विशिष्ट, जलकान्त, जलप्रभ, अमितगति, अमितवाहन, वैलंब, प्रभंजन, घोष और महाघोष।
ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र—चन्द्र और सूर्य।
वैमानिक देवों के दस इन्द्र—शक्र, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, प्राणत और अच्युत।

३. कुंथुस्स णं अरहओ बत्तीसहिया बत्तीसं जिणसया होत्था।

कुन्थोः अर्हतः द्वात्रिंशदधिकानि द्वात्रिंशद् जिनशतानि आसन्।

३. अर्हत् कुन्थु के ३२३२ केवली थे।

४. सोहम्मे कप्पे बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

सौधर्मे कल्पे द्वात्रिंशद विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

४. सौधर्मकल्प में बत्तीस लाख विमान हैं।

५. रेवइणक्खत्ते बत्तीसइतारे पण्णत्ते।

रेवतीनक्षत्रं द्वात्रिंशत्तारं प्रज्ञप्तम्।

५. रेवती नक्षत्र के बत्तीस तारे हैं।

६. बत्तीसतिविहे णट्टे पण्णत्ते।

द्वात्रिंशद् विधं नाट्यं प्रज्ञप्तम्।

६. नाट्य बत्तीस प्रकार का है[२]।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वात्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की है।

८. अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां द्वात्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. नीचे की सातवीं पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति बत्तीस सागरोपम की है।

९. असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां देवानां अस्ति एकेषां द्वात्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की है।

१०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः देवानां अस्ति एकेषां द्वात्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति बत्तीस पल्योपम की है।

११. जे देवा विजय - वेजयंत - जयंत-अपराजियविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवा विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितविमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां अस्ति एकेषां द्वात्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवरूप में उत्पन्न होने वाले कुछ देवों की स्थिति बत्तीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. ते णं देवा बत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।	ते देवाः द्वात्रिंशता अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।	१२. वे देव बत्तीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।
१३. तेसि णं देवाणं बत्तीसाए वास-सहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।	तेषां देवानां द्वात्रिंशता वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।	१३. उन देवों के बत्तीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।
१४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे बत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।	सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये द्वात्रिंशता भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।	१४. कुछ भव-सिद्धिक जीव बत्तीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. योग-संग्रह बत्तीस हैं (बत्तीसं जोगसंगहा पण्णत्ता)

जैन परंपरा में 'योग' शब्द मन, वचन और काया की प्रवृत्ति के लिए प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत प्रसंग में 'योग' शब्द समाधि का वाचक है। यहां जिन बत्तीस योगों का संग्रहण किया है, वे सब समाधि के कारणभूत हैं। इसे हम 'समाधि सूत्र' भी कह सकते हैं। उत्तराध्ययन के उनतीसवें अध्ययन में इनमें से अनेक सूत्रों का उल्लेख है, जैसे—संवेग, अनुप्रेक्षा, आलोचना, तितिक्षा, आर्जव, योग-प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, संवर, व्युत्सर्ग, अप्रमाद, अलोभ आदि सूत्र अर्थबोध तथा तात्पर्य की दृष्टि से अवश्य द्रष्टव्य हैं।

बत्तीस योग-संग्रह ये हैं —

१. आलोचना—अपने प्रमाद का निवेदन करना।
२. निरपलाप—आलोचित प्रमाद का अप्रकटीकरण।
३. आपत्काल में दृढधर्मता—किसी भी प्रकार की आपत्ति में दृढधर्मी बने रहना।
४. अनिश्रितोपधान—दूसरों की सहायता लिए बिना तपःकर्म करना।
५. शिक्षा—सूत्रार्थ का पठन-पाठन तथा क्रिया का आचरण।
६. निष्प्रतिकर्मता—शरीर की सार-संभाल या चिकित्सा का वर्जन।
७. अज्ञातता—अज्ञात रूप में तप करना, उसका प्रदर्शन या प्रख्यापन नहीं करना।
८. अलोभ—निर्लोभता का अभ्यास करना।
९. तितिक्षा—कष्ट-सहिष्णुता, परीसहों पर विजय पाने का अभ्यास करना।
१०. आर्जव—सरलता।
११. शुचि—पवित्रता, सत्य, संयम आदि का आचरण।
१२. सम्यग्दृष्टि—सम्यग्दर्शन की शुद्धि।
१३. समाधि—चित्त-स्वास्थ्य।
१४. आचार—आचार का सम्यक् प्रकार से पालन करना, उसमें माया न करना।
१५. विनयोपग—विनम्र होना, अभिमान न करना।
१६. धृतिमति—धैर्ययुक्त बुद्धि, अदीनता।
१७. संवेग—संसार-वैराग्य अथवा मोक्ष की अभिलाषा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. प्रणिधि—अध्यवसाय की एकाग्रता।

वृत्तिकार ने इसका अर्थ 'मायाशल्य' किया है और उसका आचरण न करने का निर्देश दिया है।[1] आवश्यकवृत्ति में भी 'पणिही' का अर्थ माया किया है और उसे न करने की बात कही है।[2] किन्तु दशवैकालिक (८/१) के 'आयारपणिहिं लद्धुं'—इस वाक्य के संदर्भ में 'पणिहि'—प्रणिधान का अर्थ चित्त की निर्मलता या समाधि होना चाहिए। अवधान, समाधान और प्रणिधान—ये तीनों समाधि के पर्यायवाची शब्द हैं। राग-द्वेष-मुक्त भाव में चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास प्रणिधि है। इसके दो भेद होते हैं—दुष्प्रणिधि और सुप्रणिधि[3]। यहां सुप्रणिधि विवक्षित है।

१९. सुविधि—सद् अनुष्ठान।

२०. संवर—आस्रवों का निरोध।

२१. आत्मदोषोपसंहार—अपने दोषों का उपसंहरण।

२२. सर्वकामविरक्तता—समस्त विषयों से विमुखता।

२३. प्रत्याख्यान—मूलगुण विषयक त्याग।

२४. प्रत्याख्यान—उत्तरगुण विषयक त्याग।

२५. व्युत्सर्ग—शरीर, भक्तपान, उपधि तथा कषाय का विसर्जन।

२६. अप्रमाद—प्रमाद का वर्जन।

२७. लवालव—सामाचारी के पालन में सतत जागरूक रहना। 'लव' शब्द कालवाची है। इसका अर्थ है—क्षण। 'लवालव' अर्थात् प्रतिक्षण अप्रमाद की साधना करना। यथालंदक मुनि निरंतर अप्रमाद की साधना करते हैं। वे क्षणभर के लिए भी प्रमाद नहीं करते और यदि कभी प्रमाद आ जाता है तो उसका तत्काल प्रायश्चित्त कर लेते हैं।

२८. ध्यानसंवरयोग—महाप्राण ध्यान की साधना करना।

आवश्यक निर्युक्ति में 'झाणसंवरयोग' का अर्थ 'सूक्ष्म ध्यान' किया है।[4] अवचूर्णिकार ने इसको समझाने के लिए एक घटना का उल्लेख किया है—'सिम्बवर्द्धनपुर में मुडम्बिक (मुण्डिकाम्रक) नाम का राजा राज्य करता था। आचार्य पुष्यभूति ने उसे श्रावक बनाया। उनका बहुश्रुत गीतार्थ शिष्य पुष्यमित्र खिन्न होकर कहीं अन्यत्र विहरण करने लगा। समीप आने वाले शिष्य अगीतार्थ थे। आचार्य ने एक बार पुष्यमित्र को बुला भेजा और सारी जानकारी दे 'सूक्ष्म ध्यान' की साधना में संलग्न हो गए। वे एक कमरे के भीतर निश्चेष्ट अवस्था में मृतवत् लेटे हुए थे। पुष्यमित्र द्वार पर बैठा रहता था। कमरे में प्रवेश निषिद्ध था। एक बार एक शिष्य ने छिपकर कमरे के भीतर झांका और उसने देखा कि आचार्य भूमि पर निश्चेष्ट पड़े हैं। उसने अन्य सार्धमिक साधुओं से कहा—आचार्य दिवंगत हो गए हैं'। यह संवाद राजा तक जा पहुंचा। वह आचार्य का परम श्रद्धालु श्रावक था। उसने वहां आकर पूछताछ की। पुष्यमित्र ने सारी बात बताते हुए कहा कि आचार्य ध्यान-संलग्न हैं, मृत नहीं। किसी ने भी उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। अनेक शिष्यों ने कहा—'पुष्यमित्र सर्व-लक्षण-संपन्न आचार्य के देह से वेताल को साध रहा है।' सबको यह बात यथार्थ लगी। आचार्य के मृत देह को श्मशान ले जाने के लिए शिविका तैयार की गई। पुष्यमित्र कमरे के भीतर गया और आचार्य के द्वारा पूर्व संकेतित अंगुष्ठ को दबाया। आचार्य सचेत हुए और बोले—'आर्य! तुमने मेरे ध्यान में व्याघात क्यों डाला?' उसने शिष्यों द्वारा प्रचारित बात उन्हें कह सुनाई।[5]

२९. मारणांतिक उदय—मारणांतिक वेदना का उदय होने पर भी क्षुब्ध न होना, शांत और प्रसन्न रहना।

३०. संग-परिज्ञा—आसक्ति का त्याग।

३१. प्रायश्चित्तकरण—दोष-विशुद्धि का अनुष्ठान करना।

३२. मारणांतिक आराधना—मृत्यु-काल में आराधना करना।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ५५:
पणिहि त्ति प्रणिधिः—मायाशल्यं न कार्यमित्यर्थः।

२. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ ११६:।
पणिहि त्ति प्रणिधिस्त्याज्या, माया न कार्येत्यर्थः।

३. देखें—ठाणं ४/१०४-१०६।

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० १३३१, अवचूर्णि द्वितीय विभाग, पृ० १५६।

५. आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि द्वितीय विभाग, पृ० १५६,।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. देवेन्द्र बत्तीस हैं (बत्तीसं देविंदा)

यद्यपि देवेन्द्र चौसठ होते हैं, किन्तु यह बत्तीसवां समवाय है अतः बत्तीस की संख्या का नियमन होने के कारण यहां बत्तीस देवेन्द्रों के नामों का प्रज्ञापन किया गया है। वृत्तिकार के अनुसार सोलह व्यन्तर इन्द्र और आणपण्णीक इन्द्र—ये बत्तीस अल्प ऋद्धि वाले देवेन्द्र होते हैं। प्रस्तुत विभाजन में बत्तीस महर्द्धिक देवेन्द्र विवक्षित हैं।[1]

३. नाट्य बत्तीस (बत्तीसतिविहे णट्टे)

प्रस्तुत सूत्र में नाट्यों का नामोल्लेख नहीं है। उनकी जानकारी के लिए देखें—'रायपसेणइय सुत्त' (सूत्र ६६-११३)। वृत्तिकार ने पक्षान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है, जिस नाट्य में बत्तीस पात्र हों वैसा नाट्य।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ५५।

२. वही, पत्र ५५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३
तेत्तीसइमो समवाओ : तेतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	त्रयस्त्रिंशदाशात(द)नाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. आशातनाएं तेतीस[1] हैं, जैसे—
१. सेहे राइणियस्स आसन्नं गंता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य आसन्नं गन्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	१. शैक्ष रात्निक (पर्याय-ज्येष्ठ) मुनि से सटकर चलता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
२. सेहे राइणियस्स पुरओ गंता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य पुरतो गन्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	२. शैक्ष रात्निक मुनि से आगे चलता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
३. सेहे राइणियस्स सपक्खं गंता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य सपक्षं गन्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	३. शैक्ष रात्निक मुनि के समपार्श्व (बराबर) चलता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
४. सेहे राइणियस्स आसन्नं ठिच्चा भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य आसन्नं स्थाता भवति—आशातना शैक्षस्य।	४. शैक्ष रात्निक मुनि से सटकर खड़ा रहता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
५. सेहे राइणियस्स पुरओ ठिच्चा भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य पुरतः स्थाता भवति—आशातना शैक्षस्य।	५. शैक्ष रात्निक मुनि के आगे खड़ा रहता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
६. सेहे राइणियस्स सपक्खं ठिच्चा भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य सपक्षं स्थाता भवति—आशातना शैक्षस्य।	६. शैक्ष रात्निक मुनि के समपार्श्व में खड़ा रहता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
७. सेहे राइणियस्स आसन्नं निसीइत्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य आसन्नं निषत्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	७. शैक्ष रात्निक मुनि से सटकर बैठता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
८. सेहे राइणियस्स पुरओ निसीइत्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शक्षः रात्निकस्य पुरतः निषत्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	८. शैक्ष रात्निक मुनि के आगे बैठता है, यह शैक्षकृत आशातना है।
९. सेहे राइणियस्स सपक्खं निसीइत्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।	शैक्षः रात्निकस्य सपक्षं निषत्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।	९. शैक्ष रात्निक मुनि के समपार्श्व में बैठता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. सेहे राइणिएण सद्धिं बहिया वियारभूमिं निक्खंते समाणे पुव्वामेव सेहतराए आयामेइ पच्छा राइणिए- आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकेन सार्द्धं बहिस्तात् विचारभूमिं निष्क्रान्तः सन् पूर्वमेव शैक्षतरः आचमति, पश्चाद् रात्निकः— आशातना शैक्षस्य।

१०. रात्निक मुनि के साथ बाह्य-विचार-भूमि (शौच-भूमि) जाने पर शैक्ष पहले आचमन (शौच) करता है और रात्निक उसके पश्चात्, यह शैक्षकृत आशातना है।

११. सेहे राइणिएण सद्धिं बहिया विहारभूमिं वा वियारभूमिं वा निक्खंते समाणे तत्थ पुव्वामेव सेहतराए आलोएति, पच्छा राइणिए—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकेन सार्द्धं बहिस्तात् विहारभूमिं वा विचारभूमिं वा निष्क्रान्तः सन् तत्र पूर्वमेव शैक्षतरः आलोचयति, पश्चाद् रात्निकः— आशातना शैक्षस्य।

११. रात्निक मुनि के साथ बाह्य-विहार भूमि (स्वाध्याय-भूमि) और विचार-भूमि जाने पर शैक्ष पहले गमनागमन विषयक आलोचना करता है और रात्निक उसके पश्चात्, यह शैक्षकृत आशातना है।

१२. सेहे राइणियस्स रातो वा वियाले वा वाहरमाणस्स अज्जो के सुत्ते? के जागरे? तत्थ सेहे जागरमाणे राइणियस्स अपडिसुणेत्ता भवति—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकस्य रात्रौ वा विकाले वा व्याहरमाणस्य आर्य! कः सुप्तः? कः जागृतः? तत्र शैक्षः जाग्रत् रात्निकस्य अप्रतिश्रोता भवति—आशातना शैक्षस्य।

१२. रात्री या विकाल में रात्निक मुनि द्वारा यह पूछे जाने पर—"आर्य! कौन सो रहा है और कौन जाग रहा है?" शैक्ष जागता हुआ भी उसके प्रश्न को सुना-अनसुना कर देता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

१३. केइ राइणियस्स पुव्वं संलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवेति, पच्छा राइणिए— आसायणा सेहस्स।

कश्चिद् रात्निकस्य पूर्वं संलपितुं स्यात्, तत् शैक्षः पूर्वतरकं आलपति, पश्चाद् रात्निकः—आशातना शैक्षस्य।

१३. रात्निक को किसी से कोई बात कहनी है, यह बात शैक्ष पहले ही उससे कह देता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

१४. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ, पच्छा राइणियस्स—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य तत् पूर्वमेव शैक्षतर-कस्य आलोचयति, पश्चाद् रात्निकस्य—आशातना शैक्षस्य।

१४. शैक्ष अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य लाकर पहले शैक्षतर के सामने उसकी आलोचना (निवेदन) करता है, फिर रात्निक मुनि के सामने, यह शैक्षकृत आशातना है।

१५. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेति, पच्छा राइणियस्स—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य तत् पूर्वमेव शैक्षतरकस्य उपदर्शयति, पश्चाद् रात्निकस्य— आशातना शैक्षस्य।

१५. शैक्ष अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य लाकर पहले शैक्षतर को दिखाता है, फिर रात्निक को, यह शैक्षकृत आशातना है।

१६. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं पुव्वमेव सेहतरागं उवणिमंतेइ, पच्छा राइणियं आसायणा सेहस्स।

शैक्षः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य तत् पूर्वमेव शैक्षतरकं उपनिमंत्रयति, पश्चाद् रात्निकम्— आशातना शैक्षस्य।

१६. शैक्ष अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य लाकर पहले शैक्षतर को निमंत्रित करता है, फिर रात्निक को, यह शैक्षकृत्त आशातना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. सेहे राइणिएण सद्धिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता तं राइणियं अणापुच्छित्ता जस्स-जस्स इच्छइ तस्स-तस्स खद्धं-खद्धं दलयइ—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकेन सार्द्धं अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य तद् रात्निकं अनापृच्छ्य यस्मै यस्मै इच्छति तस्मै तस्मै 'खद्धं-खद्धं' (प्रचुरं-प्रचुरं) ददाति—आशातना शैक्षस्य।

१७. शैक्ष रात्निक मुनि के साथ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य लाकर, रात्निक मुनि के पूछे बिना ही, जिस-जिस को देना चाहता है उस-उस को वह आहार प्रचुर मात्रा में देता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

१८. सेहे असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहेत्ता राइणिएण सद्धिं आहरेमाणे तत्थ सेहे खद्धं-खद्धं डायं-डायं ऊसढं-ऊसढं रसितं-रसितं मणुण्णं-मणुण्णं मणामं-मणामं निद्धं-निद्धं लुक्खं-लुक्खं आहरेत्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः अशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा प्रतिगृह्य रात्निकेन सार्द्धं आहरन् तत्र शैक्षः 'खद्धं-खद्धं' (प्रचुरं-प्रचुरं) 'डायं-डायं' (पत्रशाकं-पत्रशाकं) उच्छ्रितं-उच्छ्रितं रसितं-रसितं मनोज्ञं-मनोज्ञं मनआपं-मनआपं स्निग्धं-स्निग्धं रूक्षं-रूक्षं आहर्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।

१८. शैक्ष अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य लाकर रात्निक मुनि के साथ खाता हुआ डाक[1] उच्छ्रत (ताजा), रसित[2] मनोज्ञ, मनोभिलषणीय, स्निग्ध और रूक्ष—जो आहार श्रेष्ठ होता है उसे प्रचुर मात्रा में (खद्धं-खद्धं) खाता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

१९. सेहे राइणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणेत्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकस्य व्याहरमाणस्य अप्रतिश्रोता भवति—आशातना शैक्षस्य।

१९. रात्निक मुनि के कहने पर शैक्ष उसके वचन को अनसुना कर देता है, यह शैक्षकृत आशातना है।[1]

२०. सेहे राइणियस्स खद्धं-खद्धं वत्ता भवति—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकस्य 'खद्धं-खद्धं' (उच्चैः-उच्चैः) वक्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।

२०. शैक्ष रात्निक मुनि के सामने उद्धततापूर्वक बोलता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

२१. सेहे राइणियस्स 'किं' ति वइत्ता भवति आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकस्य 'किं' इति वदिता भवति—आशातना शैक्षस्य।

२१. शैक्ष रात्निक मुनि को 'क्या है' इस प्रकार कहता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

२२. सेहे राइणियं 'तुमं'ति वत्ता भवति—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकं 'त्वं' इति वक्ता भवति—आशातना शैक्षस्य।

२२. शैक्ष रात्निक मुनि को 'तू' कहता है, यह शैक्षकृत आशातना है।

२३. सेहे राइणियं तज्जाएण-तज्जाएण पडिभणित्ता भवइ—आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकं तज्जातेन-तज्जातेन प्रतिभणिता भवति—आशातना शैक्षस्य।

२३. रात्निक मुनि जो कहता है, शैक्ष वही प्रत्युत्तर में कह देता है, जैसे—"आर्य! ग्लान की सेवा क्यों नहीं करते हो?' यह कहने पर शैक्ष कहता है—'तुम क्यों नहीं करते?', यह शैक्षकृत आशातना है।

२४. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स 'इति एवं'ति वत्ता न भवति - आसायणा सेहस्स।

शैक्षः रात्निकस्य कथां कथयतः 'इति एवं' इति वक्ता न भवति—आशातना शैक्षस्य।

२४. शैक्ष रात्निक मुनि की धर्म-कथा का अनुमोदन नहीं करता, यह शैक्षकृत आशातना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स 'नो सुमरसी'ति वत्ता भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य कथां कथयतः न स्मरसीति वक्ता भवति—आशातना शैक्षस्य ।

२५. शैक्ष रात्निक मुनि को धर्म-कथा करते समय, 'आपको यह याद नहीं है'—इस प्रकार कहता है, यह शैक्ष-कृत आशातना है ।

२६. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं अच्छिदित्ता भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य कथां कथयतः कथां आछेत्ता भवति—आशातना शैक्षस्य ।

२६. शैक्ष रात्निक मुनि द्वारा की जा रही धर्म-कथा का विच्छेद करता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

२७. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य कथां कथयतः पर्षदं भेत्ता भवति—आशातना शैक्षस्य ।

२७. रात्निक मुनि जब धर्म-कथा करते हैं, तब शैक्ष उस समय परिषद् में भेद डालता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

२८. सेहे राइणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए अणुट्ठिताए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए अव्वोगडाए दोच्चं पि तमेव कहं कहित्ता भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य कथां कथयतः तस्यां परिषदि अनुत्थितायां अभिन्नायां अव्युच्छिन्नायां अव्याकृतायां द्वितीयमपि तामेव कथां कथयिता भवति—आशातना शैक्षस्य ।

२८. रात्निक मुनि धर्म-कथा कर रहे हैं, परिषद् अभी तक उठी नहीं है, भंग नहीं हुई है, व्युच्छिन्न नहीं हुई है, अविभक्त नहीं हुई है— वैसे ही व्यवस्थित है, शैक्ष उस परिषद् में दूसरी बार वही धर्म-कथा करता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

२९. सेहे राइणियस्स सेज्जा-संथारगं पाएणं संघट्टित्ता, हत्थेणं अणणुण्णवेत्ता गच्छति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य शय्या-संस्तारकं पादेन संघट्य, हस्तेन अननुज्ञाप्य गच्छति—आशातना शैक्षस्य ।

२९. शैक्ष रात्निक के शय्या, संस्तारक का पैरों से संघट्टन कर, उन्हें अनुज्ञापित नहीं करता[1], यह शैक्षकृत आशातना है ।

३०. सेहे राइणियस्स सेज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवइ—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य शय्या-संस्तारके स्थाता वा निषत्ता वा त्वग्वर्तयिता वा भवति—आशातना शैक्षस्य ।

३०. शैक्ष रात्निक मुनि के शय्या, संस्तारक पर खड़ा होता है, बैठता है या सोता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

३१. सेहे राइणियस्स उच्चासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य उच्चासने स्थाता वा निषत्ता वा त्वग्वर्तयिता वा भवति—आशातना शैक्षस्य ।

३१. शैक्ष रात्निक मुनि से ऊंचे आसन पर खड़ा रहता है, बैठता है या सोता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

३२. सेहे राइणियस्स समासणे चिट्ठित्ता वा निसीइत्ता वा तुयट्टित्ता वा भवति—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य समासने स्थाता वा निषत्ता वा त्वग्वर्तयिता वा भवति—आशातना शैक्षस्य ।

३२. शैक्ष रात्निक मुनि के बराबर आसन पर खड़ा रहता है, बैठता है या सोता है, यह शैक्षकृत आशातना है ।

३३. सेहे राइणियस्स आलवमाणस्स तत्थगते चिय पडिसुणित्ता भवइ—आसायणा सेहस्स ।

शैक्षः रात्निकस्य आलपतस्तत्रगत एव प्रतिश्रोता भवति—आशातना शैक्षस्य ।

३३. रात्निक मुनि के कुछ कहने पर शैक्ष अपने आसन पर बैठे-बैठे ही उसे स्वीकार करता है (या प्रत्युत्तर देता है), यह शैक्षकृत आशातना है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए एक्कमेक्के वारे तेत्तीसं-तेत्तीसं भोमा पण्णत्ता।

चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरराजस्य चमरचञ्चायां राजधान्यां एकैकस्मिन् द्वारे त्रयस्त्रिंशत्-त्रयस्त्रिंशत् भौमानि प्रज्ञप्तानि।

२. असुरेन्द्र असुरराज चमर की राजधानी चमरचंचा के प्रत्येक के द्वार पर तेतीस-तेतीस भौम (उपनगर, विशेषस्थान) हैं।

३. महाविदेहे णं वासे तेत्तीसं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

महाविदेहः वर्षः त्रयस्त्रिंशद् योजन-शतानि सातिरेकाणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

३. महाविदेह क्षेत्र का विष्कंभ तेतीस हजार योजन से कुछ अधिक है।

४. जया णं सूरिए बाहिराणं अंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ, तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचि-विसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्व-मागच्छइ।

यदा सूर्यः बाह्यानामन्तरं तृतीयं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति, तदा इहगतस्य पुरुषस्य त्रयस्त्रिंशता योजनसहस्रैः किंचिद्विशेषोनैः चक्षुःस्पर्शं अर्वाग् आगच्छति।

४. जब सूर्य सर्व-बाह्य-मंडल से अन्तवर्त्ती तीसरे मंडल में गति करता है तब भरतक्षेत्र में रहे हुए मनुष्य को वह कुछ विशेष न्यून तेतीस हजार योजन की दूरी से दिखाई देता है।[१]

५. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अस्ति एकेषां नैरयिकाणां त्रयस्त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

५. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के कुछ नैरयिकों की स्थिति तेतीस पल्योपम की है।

६. अहेसत्तमाए पुढवीए काल-महा-काल-रोरुय-महारोरुएसु नेरइयाणं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अधःसप्तम्यां पृथिव्यां काल-महाकाल-रौरुक (त)-महारौरुकेषु नैरयिकाणां उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

६. नीचे की सातवीं पृथ्वी के काल, महाकाल, रोरुक और महारोरुक— इन चार नरकावासों के नैरयिकों की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

७. अप्पइट्ठाणनरए नेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

अप्रतिष्ठाननरके नैरयिकाणां अजघन्या-नुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

७. अप्रतिष्ठान-नरक[२] के नैरयिकों की सामान्य स्थिति (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से मुक्त) तेतीस सागरोपम की है।

८. असुरकुमाराणं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

असुरकुमाराणां अस्ति एकेषां देवानां त्रयस्त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

८. कुछ असुरकुमार देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की है।

९. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोरस्ति एकेषां देवानां त्रयस्त्रिंशत् पल्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

९. सौधर्म और ईशानकल्प के कुछ देवों की स्थिति तेतीस पल्योपम की है।

१०. विजय-वेजयंत जयंत-अपराजिएसु विमाणेसु उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

विजय - वैजयन्त - जयन्त- अपराजितेषु विमानेषु उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

१०. विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपरा-जित विमानों में (देवों की) उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जे देवा सव्वट्ठसिद्धं महाविमाणं देवत्ताए उववण्णा, तेसि णं देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

ये देवाः सर्वार्थसिद्धं महाविमानं देवत्वेन उपपन्नाः, तेषां देवानां अजघन्यानुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

११. सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप में उत्पन्न होने वाले देवों की सामान्य स्थिति (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से मुक्त) तेतीस सागरोपम की है।

१२. ते णं देवा तेत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा।

ते देवा त्रयस्त्रिंशता अर्द्धमासैः आनन्ति वा प्राणन्ति वा उच्छ्वसन्ति वा निःश्वसन्ति वा।

१२. वे देव तेतीस पक्षों से आन, प्राण, उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं।

१३. तेसि णं देवाणं तेत्तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ।

तेषां देवानां त्रयस्त्रिंशता वर्षसहस्रैराहारार्थः समुत्पद्यते।

१३. उन देवों के तेतीस हजार वर्षों से भोजन करने की इच्छा उत्पन्न होती है।

१४. संतेगइया भवसिद्धिया जीवा, जे तेत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति।

सन्ति एके भवसिद्धिका जीवाः, ये त्रयस्त्रिंशता भवग्रहणैः सेत्स्यन्ति भोत्स्यन्ते मोक्ष्यन्ति परिनिर्वास्यन्ति सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्ति।

१४. कुछ भव-सिद्धिक जीव तेतीस बार जन्म ग्रहण कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होंगे तथा सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

टिप्पण

१. आशातनाएं तेतीस हैं (तेत्तीसं आसायणाओ)

वृत्तिकार ने इसका निरुक्तगत अर्थ इस प्रकार किया है—'आयस्य शातना आशातना—आय का अर्थ है—सम्यग् दर्शन आदि की अवाप्ति और शातना का अर्थ है—खंडन, भंग। जो आय का नाश करती है, वह आशातना है।'[1]

इसका अर्थ आत्मा को दुःखित करना भी हो सकता है।

प्रस्तुत आलापक में तेतीस आशातनाएं बताई गई हैं। वे सारी शैक्ष से संबंधित हैं। इनके निर्देश से शैक्ष को कर्त्तव्य-बोध करवाया गया है।

आवश्यकवृत्ति में भी ये ही तेतीस आशातनाएं मुख्य रूप से गृहीत हैं। वृत्तिकार हरिभद्रसूरी ने वैकल्पिक रूप में आवश्यक सूत्रान्तर्गत तेतीस आशातनाएं भी मानी हैं[2]—

१. अरहन्तों की आशातना।
२. सिद्धों की आशातना।
३. आचार्यों की आशातना।
४. उपाध्यायों की आशातना।
५. साधुओं की आशातना।
६. साध्वियों की आशातना।
७. श्रावकों की आशातना।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ५६ :
आयः—सम्यग्दर्शनाद्यवाप्तिलक्षणस्तस्य शातना—खण्डनं निरुक्तादाशातना।

२. आवश्यक, हारिभद्रीयावृत्ति, भाग २, पृष्ठ १५८ :
अथवा अयमन्यः प्रकारः, अर्हतां तीर्थंकृतामाशातना आदिशब्दात् सिद्धादिग्रहः यावत् स्वाध्याये किञ्चिन्नाधीतं सज्झाए ण सज्झाइयंति वृत्तं यावत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. श्राविकाओं की आशातना।
९. देवताओं की आशातना।
१०. देवियों की आशातना।
११. इहलोक की आशातना।
१२. परलोक की आशातना।
१३. केवलिप्रज्ञप्त धर्म की आशातना।
१४. देव, मनुष्य और असुरों की आशातना।
१५. सभी प्राण, भूत, जीव और सत्वों की आशातना।
१६. काल की आशातना।
१७. श्रुत की आशातना।
१८. श्रुतदेवता की आशातना।
१९. वाचनाचार्य की आशातना।
२०. श्रुत की विपर्यस्तता।
२१. पदों का मिश्रण करना।
२२. अक्षरों की न्यूनता करना।
२३. अक्षरों का आधिक्य करना।
२४. पदों की न्यूनता करना।
२५. विराम रहित पढना या विनयरहित पढना।
२६. उच्चारण की अमर्यादा।
२७. योगरहितता।
२८. योग्य को श्रुत न देना।
२९. अयोग्य को श्रुत देना।
३०. अकाल में स्वाध्याय करना।
३१. उपयुक्त काल में स्वाध्याय न करना।
३२. अस्वाध्यायिक में स्वाध्याय करना।
३३. स्वाध्यायिक में स्वाध्याय न करना।

वृत्तिकार हरिभद्रसूरी ने इन तेतीस आशातनाओं की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है। देखें—आवश्यक भाग-२, पृष्ठ १५९-१६१।

मूलाचार में आशातना शब्द के स्थान पर 'अत्याशना' या 'आशना' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसमें तेतीस अत्याशनाएं ये हैं—पांच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पांच महाव्रत, आठ प्रवचनमाताएं और नौ तत्त्व—इन तेतीस तत्त्वों के प्रति अविनय करना 'आशना' है।[1]

२. डाक (डायं-डायं)

प्रवचनसारोद्धार के अनुसार 'डाय' का अर्थ बेंगन, ककड़ी, चना, पत्ती आदि का शाक होता है।[2]

इसी ग्रंथ में एक दूसरे प्रसंग में 'डाय' का अर्थ मसालों से पकाई हुई बथुआ, राई आदि की भाजी किया गया है।[3]

---

१. मूलाचार २/५४ :
पंचवे अत्थिकाया छज्जीवनिकाय महव्वया पंच।
पवयणमाउ पयत्था, तेतीसच्चासणा भणिया॥

२. प्रवचनसारोद्धार, पृ० ३३ :
डायं होइ पुणो पत्तसागंते—वृन्ताकचिर्भटिकाचणकादय सुसंस्कृताः पत्रशाकान्ता डायशब्देन भण्यन्ते।

३. वही, २५९/१५ :
डाओ वत्थुलराईण भज्जिया हिंगुजीरयाइजुया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. रसित (रसितं-रसितं)

रसित—दाडिम, आम्रफल आदि ।[1]

४. अनसुना (अपडिसुणेत्ता)

अप्रतिश्रवण के विषय में दो पाठ प्राप्त हैं—एक बारहवीं आशातना का पाठ है और दूसरा प्रस्तुत पाठ। इस पाठ में रात्निक मुनि के प्रति उपेक्षा या अवज्ञा का भाव झलकता है और पूर्वपाठ में मायावृत्ति की झलक है। प्रवचनसारोद्धार के अनुसार बारहवां पाठ रात्री विषयक और प्रस्तुत पाठ दिवस विषयक है।[2]

५. अनुज्ञापित नहीं करता (अणणुण्णवेत्ता)

प्रस्तुत सूत्र की वृत्ति में 'अणणुण्णवेत्ता' की व्याख्या प्राप्त नहीं है। प्रवचनसारोद्धार के अनुसार इसका अर्थ यह होना चाहिए कि रात्निक के उपकरणों का पैरों से संघट्टन हो जाने पर जो शैक्ष रात्निक से क्षमायाचना नहीं करता, वह आशातना का भागी होता है।[3]

तत्कालीन परम्परा के अनुसार क्षमायाचना के समय संघट्टित उपकरणों का हाथ से स्पर्श किया जाता था।[4]

६. कुछ विशेष न्यून···से (किंचिविसेसूणेहिं)

यहां कुछ विशेष न्यून से एक हजार योजन न्यून विवक्षित है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में चक्षुस्पर्श का प्रमाण ३२००१$\frac{४६}{६०}$+$\frac{२३}{६१}$योजन बताया है।[5]

७. अप्रतिष्ठान नरक (अप्पइट्ठाण-नरए)

सातवीं पृथ्वी में पांच नरकावास हैं। उसमें से चार का उल्लेख पूर्व सूत्र में हुआ है। यह उसका पांचवां नरकावास है।

---

१. प्रवचनसारोद्धार, पृ० ३४।

२. वही, २/१४१ :
अप्पडिसुणणे नवरमिणं दिवस विसयंमि।

३. वही, २/१४८, पृ० ३२।

४. वही, पृ० ३४।

५. समवायांगवृत्ति, पत्र ५६, ५७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४

चोत्तीसइमो समवाओ : चौतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चोत्तीसं बुद्धाइसेसा पण्णत्ता, तं जहा—	चतुस्त्रिंशत् बुद्धातिशेषाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	१. तीर्थङ्करों के अतिशेष (अतिशय) चौतीस हैं', जैसे—
१. अवट्ठिए केसमंसुरोमनहे।	अवस्थितः केशश्मश्रुरोमनखः।	१. उनके शिर के केश, दाढी, मूछ, रोम और नख अवस्थित रहते हैं—न बढते हैं न घटते हैं।
२. निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी।	निरामया निरुपलेपा गात्रयष्टिः।	२. उनका शरीर रोगरहित और निरुपलेप (रज और स्वेद रहित) होता है।
३. गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए।	गोक्षीरपाण्डुरं मांसशोणितम्।	३. उनका मांस और शोणित दूध की तरह पाण्डुर होता है।
४. पउमुप्पलगंधिए उस्सास-निस्सासे।	पद्मोत्पलगन्धिकः उच्छ्वास-निःश्वासः।	४. उनके उच्छ्वास-निःश्वास कमल और नीलोत्पल की तरह सुगंधित होते हैं।
५. पच्छन्ने आहारनीहारे, अद्दिस्से मंसचक्खुणा।	प्रच्छन्नः आहारनीहारः अदृश्यो मांसचक्षुषा।	५. उनका आहार और नीहार—दोनों प्रच्छन्न होते हैं, मांस-चक्षु द्वारा दृश्य नहीं होते।
६. आगासगयं चक्कं।	आकाशगतं चक्रम्।	६. उनके आगे-आगे आकाश में धर्म-चक्र चलता है।
७. आगासगयं छत्तं।	आकाशगतं छत्रम्।	७. उनके ऊपर आकाशगत छत्र होता है।
८. आगासियाओ सेयवरचाम-राओ।	आकाशिके श्वेतवरचामरे।	८. उनके प्रकाशमय श्वेतवर चामर डुलते हैं।
९. आगासफालियामयं सपायपीढं सीहासणं।	आकाशस्फटिकमयं सपादपीठं सिंहासनम्।	९. उनके आकाश जैसा स्वच्छ स्फटिक-मय पादपीठ सहित सिंहासन होता है।
१०. आगासगओ कुडभीसहस्स-परिमंडिआभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ।	आकाशगतः 'कुडभी' (ध्वज) सहस्र-परिमण्डिताभिरामः इन्द्रध्वजः पुरतो गच्छति।	१०. उनके आगे-आगे आकाश में हजारों लघुपताकाओं से शोभित इन्द्रध्वज चलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जत्थ जत्थवि य णं अरहंता भगवंतो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थवि य णं तक्खणादेव संछन्नपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ।

यत्र यत्रापि च अर्हन्तो भगवन्तः तिष्ठन्ति वा निषीदन्ति वा तत्र तत्रापि च तत्क्षणादेव संच्छन्नपत्रपुष्पपल्लव-समाकुलः सच्छत्रः सध्वजः सघण्टः सपताकः अशोकवरपादपः अभिसंजायते।

११. जहां-जहां अर्हन्त भगवन्त ठहरते हैं, बैठते हैं, वहां-वहां तत्क्षण पत्र से भरा हुआ और पल्लव से व्याकुल, छत्र, ध्वजा, घंटा और पताका सहित अशोक-वृक्ष उत्पन्न हो जाता है।

१२. ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं अभिसंजायइ, अंधकारेवि य णं दस दिसाओ पभासेइ।

ईषत् पृष्ठतः मुकुटस्थाने तेजोमण्डलं अभिसंजायते, अन्धकारेऽपि च दश दिशः प्रभासन्ते।

१२. मस्तक के कुछ पीछे मुकुट के स्थान में तेजमंडल (भामंडल) होता है। वह अन्धकार में भी दसों दिशाओं को प्रभासित करता है।

१३. बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे।

बहुसमरमणीयः भूमिभागः।

१३. उनके पैरों के नीचे का भूमिभाग सम और रमणीय होता है।

१४. अहोसिरा कंटया भवंति।

अधःशिरसः कण्टकाः भवन्ति।

१४. कण्टक अधोमुख हो जाते हैं।

१५. उडुविवरीया सुहफासा भवंति।

ऋतवोऽविपरीताः सुखस्पर्शाः भवन्ति।

१५. ऋतुएं अनुकूल और सुखदायी हो जाती हैं।

१६. सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जति।

शीतलेन सुखस्पर्शेन सुरभिणा मारुतेन योजनपरिमण्डलं सर्वतः समन्तात् संप्रमार्ज्यते।

१६. शीतल, सुखद और सुगंधित वायु योजन प्रमाण भूमि का चारों ओर से प्रमार्जन करती है।

१७. जुत्त-फुसिएण य मेहेण निहय-रय-रेणुयं कज्जइ।

युक्त-पृषतेन च मेघेन निहतरजो-रेणुकं क्रियते।

१७. छोटी फुहार वाली वर्षा द्वारा रज (आकाशवर्ती) और रेणु (भूवर्ती) का शमन होता है।

१८ जल - थलय - भासुर-पभूतेणं बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे कज्जइ।

जल-स्थलज-भास्वर-प्रभूतेन वृन्त-स्थायिना दशार्द्धवर्णेन कुसुमेन जानू-त्सेधप्रमाणमात्रः पुष्पोपचारः क्रियते।

१८. भास्वर, ऊर्ध्वमुखी जलज और स्थलज पंचवर्ण प्रचुर पुष्पों का घुटने जितना ऊंचा उपचार (राशीकरण) होता है।

१९. अमणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं अवकरिसो भवइ।

अमनोज्ञानां शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धानां अपकर्षो भवति।

१९. अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का अपकर्ष होता है।

२०. मणुण्णाणं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाणं पाउब्भावो भवइ।

मनोज्ञानां शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्धानां प्रादुर्भावो भवति।

२०. मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध का प्रादुर्भाव होता है।

२१. पच्चाहरओवि य णं हिययगमणीओ जोयणनीहारी सरो।

प्रत्याहरतोपि च हृदयगमनीयः योजननीहारी स्वरः।

२१. प्रवचन काल में उनका स्वर हृदयं-गम और योजनगामी होता है।

२२. भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ।

भगवांश्च अर्द्धमागध्यां भाषायां धर्ममाख्याति।

२२. भगवान् अर्द्धमागधी भाषा में[1] धर्म का व्याख्यान करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३ साविय णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पय-चउप्पय - मिय-पसु - पक्खि-सिरी-सिवाणं अप्पणो हिय-सिव-सुहदाभासत्ताए परिणमइ।	सापि च अर्द्धमागधी भाषा भाष्यमाणा तेषां सर्वेषां आर्यानार्याणां द्विपद-चतुष्पद- मृग- पशु-पक्षि - सरीसृपाणां आत्मनः हित-शिव-सुखदभाषात्वेन परिणमति।	२३. वह भाष्यमाण अर्द्धमागधी भाषा सुनने वाले आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग (वन्य-पशु), पशु (ग्राम्य-पशु), पक्षी, सरीसृप आदि की अपनी-अपनी हित, शिव और सुखद भाषा में परिणत हो जाती है।
२४. पुव्वबद्धवेराविय णं देवासुर - नाग - सुवण्ण - जक्ख-रक्खस - किन्नर - किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति।	पूर्वबद्धवैरा अपि च देवासुर-नाग-सुपर्ण-यक्ष-राक्षस-किन्नर-किंपुरुष-गरुड-गंधर्व-महोरगाः अर्हतः पादमूले प्रशान्तचित्त-मानसाः धर्मं निशाम्यन्ति।	२४. पूर्वबद्ध वैर वाले तथा देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व और महोरग अर्हन्त के पास प्रशांत चित्त और प्रशान्त मन वाले होकर[1] धर्म सुनते हैं।
२५. अण्णउत्थिय - पावयणियावि य ण मागया वंदंति।	अन्ययूथिकप्रावचनिका अपि च आगताः वन्दन्ते।	२५. अन्यतीर्थिक प्रावचनिक भी पास में आने पर भगवान् को बन्दन करते हैं।
२६. आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पडिवयणा हवंति।	आगताः सन्तः अर्हतः पादमूले निष्प्रति-वचनाः भवन्ति।	२६. अर्हत् के सम्मुख वे निरुत्तर हो जाते हैं।
२७ जओ जओवि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओवि य णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवइ।	यत्र यत्रापि च अर्हन्तो भगवन्तो विहरन्ति, तत्र तत्रापि च योजनपञ्च-विंशत्यां ईतिर्न भवति।	२७. अर्हत् भगवान् जहां-जहां विहार करते हैं, वहां-वहां पचीस योजन में ईति (धान्य आदि का उपद्रव-हेतु) नहीं होती।
२८. मारी न भवइ।	मारी न भवति।	२८. मारी नहीं होती।
२९. सचक्कं न भवइ।	स्वचक्रं न भवति।	२९. स्वचक्र (अपनी सेना का विप्लव) नहीं होता।
३०. परचक्कं न भवइ।	परचक्रं न भवति।	३०. परचक्र (दूसरे राज्य की सेना से होने वाला उपद्रव) नहीं होता।
३१. अइवुट्ठी न भवइ।	अतिवृष्टिर्न भवति।	३१. अतिवृष्टि नहीं होती।
३२. अणावुट्ठी न भवइ।	अनावृष्टिर्न भवति।	३२. अनावृष्टि नहीं होती।
३३. दुब्भिक्खं न भवइ।	दुर्भिक्षं न भवति।	३३. दुर्भिक्ष नहीं होता।
३४. पुव्वुप्पण्णावि य णं उप्पाइया वाही खिप्पामेव उवसमंति।	पूर्वोत्पन्ना अपि च औत्पातिकाः व्याधयः क्षिप्रमेव उपशाम्यन्ति।	३४. पूर्व उत्पन्न औत्पातिक व्याधियां[1] शीघ्र ही उपशान्त हो जाती हैं।
२. जंबुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टिविजया पण्णत्ता, तं जहा—बत्तीसं महाविदेहे, दो भरहेरवए।	जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुस्त्रिंशत् चक्रवर्ति-विजयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्वात्रिंशद् महाविदेहे, द्वौ भरतैरवतयोः।	२. जम्बूद्वीप द्वीप में चक्रवर्ती के विजय चौतीस हैं, जैसे—महाविदेह में बत्तीस, भरत में एक और ऐरवत में एक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जंबुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा पण्णत्ता।	जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुस्त्रिंशद् दीर्घवैताढ्यानि प्रज्ञप्तानि।	३. जम्बूद्वीप द्वीप में दीर्घवैताढ्य चौतीस हैं।
४. जंबुद्दीवे णं दीवे उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थंकरा समुप्पज्जंति।	जम्बूद्वीपे द्वीपे उत्कृष्टपदे चतुस्त्रिंशत् तीर्थङ्कराः समुत्पद्यन्ते।	४. जम्बूद्वीप द्वीप में उत्कृष्टतः चौतीस तीर्थङ्कर उत्पन्न होते हैं।[1]
५. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरराजस्य चतुस्त्रिंशद् भवनावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	५. असुरेन्द्र असुरराज चमर के चौतीस लाख भवनावास हैं।
६. पढमपंचमछट्ठीसत्तमासु— चउसु पुढवीसु चोत्तीसं निरयावास-सयसहस्सा पण्णत्ता।	प्रथमपञ्चमषष्ठीसप्तमीषु— चतसृषु पृथ्वीषु चतुस्त्रिंशद् निरयावासशत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	६. पहली, पांचवी, छठी और सातवीं— इन चार पृथ्वियों में चौतीस लाख नरकावास हैं।[1]

टिप्पण

१. सूत्र १ :

इस आलापक की वृत्ति में वृत्तिकार दो स्थानों पर बृहद्वाचना का उल्लेख करते हुए मतान्तर की सूचना देते हैं। उनके अनुसार प्रस्तुत आलापक गत १९ वें और २० वें अतिशय के स्थान पर ये दो अतिशय हैं—

१. तीर्थंकर का निषीदन स्थान कालागुरु, प्रवरकंदुरुक्क आदि धूपों से अत्यन्त सौरभमय जैसा होता है।

२. तीर्थंकरों के दोनों पार्श्वों में कड़े और भुजबंध पहने हुए दो यक्ष चामर डुलाते रहते हैं।[1]

पचीसवें और छबीसवें अतिशयों के स्थान पर बृहद्वाचना में दूसरे दो अतिशय माने हैं। वे दो मान्य अतिशय कौन से हैं, इसका उल्लेख वृत्तिकार ने नहीं किया है।[2]

वृत्तिकार के अनुसार इनमें से २, ३, ४, ५—ये चार अतिशय जन्मजात होते हैं। इक्कीसवें अतिशय से चौतीसवें अतिशय तक तथा बारहवां अतिशय—ये पन्द्रह कर्मक्षय से उत्पन्न होते हैं। शेष पन्द्रह अतिशय (१, ६ से ११ तथा १३ से २०) देवकृत होते हैं। वृत्तिकार का अभिमत है कि ये अतिशय अन्यान्य ग्रंथों में दूसरे-दूसरे प्रकार से भी प्राप्त होते हैं। उसे मतान्तर मानना चाहिए।[3]

प्रवचनसारोद्धार में निर्दिष्ट चौतीस अतिशयों तथा समवायांग में प्राप्त अतिशयों में अन्तर है। यहां क्रम-भेद का निर्देश नहीं किया गया है, केवल विषय-भेद बतलाया जा रहा है। वह इस प्रकार है—

(५) योजनमात्र क्षेत्र में करोड़ों लोग समा जाते हैं।

(७) पूर्वभव के रोग उपशान्त हो जाते हैं।

(१०) डमर—स्वचक्र और परचक्र कृत विप्लव नहीं होता।

(२२) चतुर्मुखांगता।

(२३) देवकृत तीन कोट।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ५८ :
कालागुरुप्रवरकुंदुरुक्क…………निषीदनस्थानमिति प्रक्रम इत्येकोनविंशतितमः। उभयो पासिं च णं…………यक्षौ देवाविति विंशतितमः। बृहद्वाचनायामनन्तरोक्तमतिशयद्वयं नाधीयते।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ५९ :
बृहद्वाचनायामिदमन्यदतिशयद्वयमधीयते।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ५८, ५९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२४) नौ स्वर्ण-कमलों का निर्माण। दो कमल भगवान् के दोनों पैरों के नीचे होते हैं और सात पीछे होते हैं। ज्यों-ज्यों भगवान् चलते हैं, त्यों-त्यों सबसे पीछे का कमल आगे आ जाता है। यह क्रम सतत चलता रहता है।

(३१) पक्षी प्रदक्षिणा करते हैं।

(३२) पवन अनुकूल होता है।

(३३) वृक्ष प्रणत हो जाते हैं।

(३४) दुन्दुभि बजती है।[1]

२. अर्द्धमागधी भाषा में (अद्धमागहीए भासाए)

भगवान् महावीर अर्धमागधी भाषा में प्रवचन करते थे। जैन आगमों की भाषा अर्धमागधी है। इसे उस समय की देवभाषा[2] और इसका प्रयोग करने वाले को भाषार्य कहा है।[3] यह प्राकृत का ही एक रूप है। यह मगध के आधे भाग में बोली जाती है। इसमें मागधी और दूसरी भाषाओं—अठारह देशी भाषाओं के लक्षण मिश्रित हैं। इसमें मागधी शब्दों के साथ-साथ देश्य शब्दों की भी प्रचुरता है। इसलिए यह अर्द्धमागधी कहलाती है।[4] भगवान् महावीर के शिष्य मगध, मिथिला, कौशल आदि अनेक प्रदेश, वर्ग और जाति के थे। इसलिए जैन साहित्य की प्राचीन प्राकृत में देश्य शब्दों की बहुलता है। 'मागधी और देश्य शब्दों का मिश्रण अर्ध मागधी कहलाता है'—यह चूर्णि का मत संभवतः सबसे प्राचीन है। इसे आर्ष भी कहा जाता है।[5] आचार्य हेमचन्द्र ने आर्ष कहा, उसका मूल आगम का ऋषिभाषित शब्द है।[6]

तत्त्वार्थ की वृत्ति के अनुसार अर्द्धमागधी भाषा वह होती है जिसमें आधे शब्द मगध देश की भाषा के हों और आधे शब्द भारत की अन्य सभी भाषाओं के हों।[7]

इसीलिए अगले तेवीसवें अतिशय की व्याख्या में कहा गया है कि भगवान् की भाषा सभी के लिए सुबोध्य हो जाती है।

वृत्तिकार[8] ने प्राकृत आदि छह भाषाओं—प्राकृत, सौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका और अपभ्रंश में मागधी को गिनाया है। यह अर्द्धमागधी भाषा ही है। इसके लक्षण का निरूपण करते हुए उन्होंने "रसोर्लसौ मागध्यां" का उल्लेख किया है। 'र' को 'ल' और 'स' को 'श' हो जाता है, जैसे—नले, हंशे।[9]

३. प्रशान्त चित्त और प्रशान्त मन वाले होकर (पसंतचित्तमाणसा)

वृत्तिकार ने 'चित्त' का संस्कृत रूप चित्र कर उसका अर्थ विविध किया है। उनके अनुसार इस पद का अर्थ है—राग-द्वेष आदि अनेक प्रकारों के विकारों के कारण जिनके मन विविध प्रकार के हो गए हैं, वैसे वे देव, असुर आदि प्रशान्त मन वाले होकर (धर्म सुनते हैं।)

---

१. प्रवचनसारोद्धार, ४०/४४१-४५०।

२. भगवती, ५/९३ :
देवा णं अद्धमागहाए भासाए भासंति।

३. पन्नवणा, १/९२ :
भासारिया जे णं अद्धमागहाए भासाए भासंति।

४. निशीथचूर्णि :
मगदद्धविसयभासाणिबद्धं अद्धमागहं अट्ठारसदेसीभासाणियतं वा अद्धमागहं।

५. प्राकृत व्याकरण (हेम) ८/१/८३।

६. ठाणं, ७/४८/१० :
सक्कता पागता चेव, दुहा भणितीओ आहिया।
सरमंडलंमि गिज्जंते, पसत्था इसिभासिता॥

७. षट्प्राभृतटीका, पृ० ९९ :
सर्वार्द्धं मागधीया भाषा भवति। कोऽर्थः? अर्द्धं भगवद्भाषाया मगधदेशभाषात्मकं, अर्द्धं च सर्वभाषात्मकम्।

८. समवायांगवृत्ति, पत्र ५९ :
प्राकृतादीनां षण्णां भाषाविशेषाणां मध्ये या मागधी नाम भाषा 'रसोर्लसौ मागध्या' मित्यादिलक्षणवती सा असमाश्रितस्वकीयसमग्रलक्षणाऽर्द्धमागधीत्युच्यते।

९. (क) हेमचन्द्र, प्राकृत व्याकरण ४/२८८।
(ख) युवाचार्य महाप्रज्ञ, तुलसी मंजरी ९५९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. औत्पातिक व्याधियां (उप्पाइया वाही)

उत्पात का अर्थ है—अनिष्टसूचक रुधिरवृष्टि आदि। इनके द्वारा अनेक अनिष्ट घटित होते हैं। वे औत्पातिक कहलाते हैं। व्याधि का अर्थ है ज्वर आदि। वृत्तिकार ने इस प्रकार दोनों को भिन्न माना है।

५. चौतीस तीर्थङ्कर (चोत्तीसं तित्थंकरा)

जम्बूद्वीप में चौतीस विजय हैं—महाविदेह में बत्तीस तथा भरत क्षेत्र में एक और ऐरवत क्षेत्र में एक।[1] इन चौतीस विजयों में एक-एक तीर्थङ्कर हों तो उत्कृष्टतः चौतीस हो सकते हैं। चार तीर्थङ्कर ही एक साथ हो सकते हैं। उनकी संगति इस प्रकार है—मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम शिलातल पर दो-दो सिंहासन होते हैं। उन चार सिंहासनों पर चार तीर्थङ्करों का ही एक साथ अभिषेक हो सकता है। इसलिए मेरु पर्वत की पूर्व दिशावर्ती विजयों में दो तीर्थङ्कर तथा पश्चिम दिशावर्ती विजयों में दो तीर्थङ्कर ही होंगे। उस समय मेरु पर्वत के दक्षिण और उत्तर दिशा में स्थित भरत और ऐरवत क्षेत्र में दिन होता है। तीर्थङ्कर दिन में जन्म नहीं लेते। उनका जन्म आधी रात के समय ही होता है। इसलिए उन दोनों क्षेत्रों में उस समय तीर्थङ्करों की उत्पत्ति नहीं होती।[2]

६. चौतीस लाख नरकावास हैं (चोत्तीसं निरयावाससयसहस्सा)

पहली पृथ्वी में तीस लाख, पांचवीं में तीन लाख, छठी में एक लाख में पांच कम और सातवीं में पांच नरकवास हैं।

---

१. समवाओ ३४/२।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ५६ :

उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थगरा समुप्पज्जंति 'त्ति समुत्पद्यन्ते सम्भवन्तीत्यर्थः न त्वेकसमये जायन्ते, चतुर्णामेवैकदा जन्मसम्भवात्, तथाहि—मेरौ पूर्वापरशिलातलयोर्द्वे द्वे सिंहासने भवतोऽतो द्वौ द्वावेवाभिषिच्येते अतो द्वयोर्द्वयोरेव जन्मेति, दक्षिणोत्तरयोस्तु क्षेत्रयोस्तदानीं दिवससद्भावात् न भरतैरावतयोर्जिनोत्पत्तिरर्द्धरात्र एव जिनोत्पत्तेरिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५

पणतीसइमो समवाओ : पैंतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पणतीसं सच्चवयणाइसेसा पण्णत्ता।	पञ्चत्रिंशत् सत्यवचनातिशेषाः प्रज्ञप्ताः।	१. सत्य-वचन के अतिशय पैंतीस हैं[1]।
२. कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	कुन्थुः अर्हन् पञ्चत्रिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	२. अर्हत् कुन्थु पैंतीस धनुष्य ऊंचे थे।
३. दत्ते णं वासुदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	दत्तः वासुदेवः पञ्चत्रिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. वासुदेव दत्त पैंतीस धनुष्य ऊंचे थे[2]
४. नंदणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	नन्दनः बलदेवः पञ्चत्रिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	४. बलदेव नन्दन पैंतीस धनुष्य ऊंचे थे[3]।
५. सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयक्खंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस-अद्धतेरस जोयणाणि वज्जेत्ता मज्झे पणतीस जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिण-सकहाओ पण्णत्ताओ।	सौधर्मे कल्पे सुधर्मायां सभायां माणवकः चैत्यस्तम्भः अधः उपरि च अर्द्धत्रयोदश-अर्द्धत्रयोदश योजनानि वर्जयित्वा मध्ये पञ्चत्रिंशद् योजनेषु वज्रमयेषु गोल-वृत्तसमुद्गकेषु जिनसक्थीनि प्रज्ञप्तानि।	५. सौधर्मकल्प की सुधर्मा सभा में माणवक नामक चैत्यस्तंभ के नीचे और ऊपर साढ़े बारह साढ़े बारह योजनों को छोड़-कर मध्य के पैंतीस योजन में वज्रमय गोलवृत्त—वर्त्तुलाकार पेटियों में जिनेश्वर देव की अस्थियां हैं।
६. बितियचउत्थीसु—दोसु पुढवीसु पणतीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	द्वितीयचतुर्थ्योः द्वयोः पृथिव्योः पञ्चत्रिंशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	६. दूसरी और चौथी—इन दो पृथ्वियों में पैंतीस लाख नरकावास हैं[4]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सत्य वचन के अतिशय पैंतीस हैं (पणतीसं सच्चवयणाइसेसा)

वृत्तिकार के अनुसार सत्य-वचन के पैंतीस अतिशेष यहां निर्दिष्ट नहीं हैं। उन्हें दूसरे ग्रंथों में सत्य-वचन के पैंतीस प्रकार प्राप्त हुए, वे उन्होंने उल्लिखित किए हैं—[1]

शब्दाश्रयी अतिशय

१. संस्कारवत्—व्याकरण-शुद्ध वचन।
२. उदात्त—उदात्त स्वर वाला वचन।
३. उपचारोपेत—अग्राम्य वचन।
४. गम्भीर शब्द—गम्भीर वचन।
५. अनुनादि—प्रतिध्वनि उत्पन्न करने वाला वचन।
६. दक्षिण—सरल वचन।
७. उपरीत राग—मालकोश आदि रागों से युक्त वचन।

अर्थाश्रयी अतिशय

१. महार्थ—महान् अर्थ वाला वचन।
२. अव्याहतपौर्वापर्य—पौर्वापर्य-अविरोधी वचन।
३. शिष्ट—अभिमत सिद्धान्त का प्रतिपादक वचन अथवा शिष्ट-वचन।
४. असंदिग्ध—सन्देह रहित वचन।
५. अपहृतान्योत्तर—प्रतिपक्ष द्वारा निकाले जाने वाले दोष से मुक्त वचन।
६. हृदयग्राही।
७. देशकालाव्यतीत—प्रसंगोचित वचन।
८. तत्त्वानुरूप—विवक्षित वस्तु स्वरूपानुसारी वचन।
९. अप्रकीर्णप्रसृत—सुसंबद्ध, अधिकृत और संक्षिप्त वचन।
१०. अन्योन्यप्रगृहीत—परस्पर सापेक्ष वचन।
११. अभिजात—वक्ता अथवा प्रतिपाद्य अर्थ की भूमिका के अनुरूप वचन।
१२. अतिस्निग्धमधुर—स्नेह और माधुर्यपूर्ण वचन।
१३. अपरमर्मवेधी—पर-मर्म का प्रकाशन न करने वाला वचन।
१४. अर्थधर्माभ्यासानपेत—अर्थ और धर्म के अभ्यास से प्रतिबद्ध वचन।
१५. उदार—अभिधेय अर्थ के गौरव से युक्त वचन।
१६. परनिन्दा-आत्मोत्कर्ष-विप्रयुक्त।
१७. उपगतश्लाघ—श्लाघनीय वचन।
१८. अनपनीत—कारक, काल, लिंग, वचन आदि के व्यत्यय रूप दोषों से मुक्त वचन।

---

१. समवायांग वृत्ति, पत्र ५९, ६० :

सत्यवचनातिशया आगमे न दृष्टा: एते तु ग्रन्थान्तरदृष्टाः सम्भाविताः, वचनं हि गुणवद्वक्तव्यं, तद्यथा—संस्कारवत् १. उदात्तं २. उपचारोपेतं ३. गम्भीरशब्दं ४. अनुनादि ५. दक्षिणं ६. उपनीतरागं ७. महार्थं ८. अव्याहतपौर्वापर्यं ९. शिष्टं १०. असंदिग्धं ११. अपहृतान्योत्तरं १२. हृदयग्राहि १३. देशकालाव्यतीतं १४. तत्त्वानुरूपं १५. अप्रकीर्णप्रसृतं १६ अन्योऽन्यप्रगृहीतं १७. अभिजातं १८. अतिस्निग्धमधुरं १९. अपरमर्मविद्धं २०. अर्थधर्माभ्यासानपेतं २१. उदारं २२. परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तं २३. उपगतश्लाघं २४. अनपनीतं २५. उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलं २६. अद्भुतं २७. अनतिविलम्बितं २८. विभ्रमविक्षेपकिलिकिञ्चितादिविमुक्तं २९. अनेकजातिसंश्रयाद्विचित्रं ३०. आहितविशेषं ३१. साकारं ३२. सत्त्वपरिग्रहं ३३. अपरिखेदितं ३४. अव्युच्छेदं ३५. चेति वचनं महानुभावैर्वक्तव्यमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. उत्पादिताछिन्नकौतूहल—श्रोतृगण में अविच्छिन्न कुतूहल उत्पन्न करने वाला वचन।

२०. अद्‌भुत।

२१. अनतिविलम्बित—धाराप्रवाही वचन।

२२. विभ्रमादि विमुक्त—

विभ्रम—वक्ता के मन की भ्रान्ति।

विक्षेप—वक्ता की अभिधेय अर्थ के प्रति अनासक्तता।

किलिकिंचित्—दोष, भय, अभिलाषा आदि मानसिक भावों का प्रदर्शन।

उक्त दोषों तथा इस कोटि के अन्य मानसिक आवेगों से जनित दोषों के संस्पर्श से मुक्त वचन।

२३. अनेकजातिसंश्रयाद् विचित्र—अनेक जातियों (वर्णनीयवस्तु के रूप का वर्णनों) के संश्रयण से विचित्र वचन।

२४. आहितविशेष—सामान्य वचन की अपेक्षा विशेषता सम्पन्न वचन।

२५. साकार—विच्छिन्न वर्ण, पद और वाक्य के द्वारा आकारप्राप्त वचन।

२६. सत्वपरिग्रह—साहसपूर्ण वचन।

२७. अपरिखेदित—अनायास निकला हुआ वचन।

२८. अव्युच्छेद—विवक्षित अर्थ की सिद्धि होने तक अनवच्छिन्न प्रवाह वाला वचन।

२-३. पैंतीस धनुष्य ऊंचे (पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं)

दत्त सातवें वासुदेव और नन्दन सातवें बलदेव थे। आवश्यक निर्युक्ति (गा० ४०३) के अनुसार उनकी ऊंचाई छब्बीस धनुष्य की है और यह सुबोध है, क्योंकि ये दोनों अरनाथ और मल्लिनाथ के अन्तराल काल में हुए हैं। अरनाथ और मल्लिनाथ की ऊंचाई क्रमशः तीस और पचीस धनुष्य की थी। अतः उनके अन्तराल-काल में होने वाले छठे और सातवें वासुदेव की-ऊंचाई उनतीस और छब्बीस धनुष्य होनी चाहिए। किन्तु प्रस्तुत सूत्रों में सातवें वासुदेव और बलदेव की ऊंचाई पैंतीस-पैंतीस धनुष्य की बतलाई गई है। परन्तु यदि ये दोनों (दत्त और नन्दन) कुन्थु के अन्तराल-काल में होते तो उनकी उक्त ऊंचाई संगत हो जाती। किन्तु उनका अस्तित्व-काल अरनाथ और मल्लिनाथ के अन्तराल-काल में माना है इसलिए उनकी ऊंचाई का उक्त प्रमाण सहज बुद्धिगम्य नहीं है।[1]

४. पैंतीस लाख नरकावास हैं (पणतीसं निरयावाससयसहस्सा)

दूसरी पृथ्वी में पचीस लाख और चौथी पृथ्वी में दस लाख नरकावास हैं।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६० :

दत्तः—सप्तमवासुदेवः नन्दनः—सप्तम बलदेवः एतयोश्चावश्यकाभिप्रायेण षड्विंशतिर्धनुषामुच्चत्वं भवति, सुबोधं च तत्, यतोऽरनाथमल्लिस्वामीनोरन्तरे तावभिहितौ यतोऽवाचि—"अरमल्लिअंतरे दोण्णि केसवा पुरिसपुंडरीय दत्त" त्ति, अरनाथमल्लिनाथयोश्च क्रमेण त्रिंशत्पञ्चविंशतिश्च धनुषामुच्चत्वं, एतदन्तरालवर्त्तिनोश्च वासुदेवयो. षष्ठ सप्तमयोरेकोन त्रिंशत्षड्विंशतिश्च धनुषां युज्यत इति, इहोक्ता तु पञ्चत्रिंशत् स्यात् यदि दत्तनन्दनौ कुन्थुनाथतीर्थकाले भवतो, न चैतदेवं जिनान्तरेष्वधीयत इति दुरवबोधमिदमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६
छत्तीसइमो समवाओ : छत्तीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—विणयसुयं परीसहो चाउरंगिज्जं असंखयं अकाममरणिज्जं पुरिसविज्जा उरब्भिज्जं काविलिज्जं नमिपव्वज्जा दुमपत्तयं बहुसुयपूया हरिएसिज्जं चित्तसंभूयं उसुकारिज्जं सभिक्खुगं समाहिठाणाइं पावसमणिज्जं संजइज्जं मिगचारिया अणाहपव्वज्जा समुद्दपालिज्जं रहनेमिज्जं गोयमकेसिज्जं समितीओ जण्णइज्जं सामायारी खलुंकिज्जं मोक्खमग्गगई अप्पमाओ तवोमग्गो चरणविही पमायठाणाइं कम्मपगडी लेसज्झयणं अणगारमग्गे जीवाजीवविभत्ती य।	षट्त्रिंशद् उत्तराध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—विनयश्रुतं परीषहः चातुरङ्गीयं असंस्कृतं अकाममरणीयं पुरुषविद्या औरभ्रीयं कापिलीयं नमिप्रव्रज्या द्रुमपत्रकं बहुश्रुतपूजा हरिकेशीयं चित्रसंभूतं इषुकारीयं सभिक्षुकं समाधिस्थानानि पापश्रमणीयं संयतीयं मृगचारिका अनाथप्रव्रज्या समुद्रपालीयं रथनेमीयं गौतमकेशीयं समितयः यज्ञीयं सामाचारी खलुंकीयं मोक्षमार्गगतिः अप्रमादः तपोमार्गः चरणविधिः प्रमादस्थानानि कर्मप्रकृतिः लेश्याध्ययनं अनगारमार्गः जीवाजीवविभक्तिश्च।	१. उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन हैं[1], जैसे—विनयश्रुत, परीषह, चातुरंगीय, असंस्कृत, अकाममरणीय, पुरुषविद्या, औरभ्रीय, कापिलीय, नमिप्रव्रज्या, द्रुमपत्रक, बहुश्रुतपूजा, हरिकेशीय, चित्रसंभूत, इषुकारीय, सभिक्षुक, समाधिस्थान, पापश्रमणीय, संजतीय, मृगचारिका, अनाथप्रव्रज्या, समुद्रपालीय, रथनेमीय, गौतमकेशीय, समिति, यज्ञीय, सामाचारी, खलुंकीय, मोक्षमार्गगति, अप्रमाद, तपोमार्ग, चरणविधि, प्रमादस्थान, कर्मप्रकृति, लेश्याध्ययन, अनगारमार्ग और जीवाजीवविभक्ति।
२. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरराजस्य सभा सुधर्मा षट्त्रिंशद् योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	२. असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा छत्तीस योजन ऊंची है।
३. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था।	श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य षट्त्रिंशद् आर्याणां साहस्र्यः आसन्।	३. श्रमण भगवान् महावीर के छत्तीस हजार आर्याएं थीं।
४. चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं निव्वत्तइ।	चैत्राश्वयुजयोः मासयोः सकृत् षट्त्रिंशदङ्गुलिकां सूर्यः पौरुषीच्छायां निर्वर्तयति।	४. चैत्र और आश्विन मास में एक बार सूर्य प्रहर की छत्तीस अंगुल प्रमाण[2] छाया निष्पन्न करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन हैं (छत्तीसं उत्तरज्झयणा पण्णत्ता)

उत्तराध्ययन सूत्र में ये नाम इस प्रकार हैं—

१. विनयश्रुत
२. परीषह-प्रविभक्ति
३. चतुरंगीय
४. असंस्कृत
५. अकाम-मरणीय
६. क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय
७. उरभ्रीय
८. कापिलीय
९. नमिप्रव्रज्या
१०. द्रुमपत्रक
११. बहुश्रुतपूजा
१२. हरिकेशीय
१३. चित्रसंभूति
१४. इषुकारीय
१५. सभिक्षुक
१६. ब्रह्मचर्यसमाधिस्थान
१७. पापश्रमणीय
१८. संजयीय
१९. मृगापुत्रीय
२०. महानिर्ग्रन्थीय
२१. समुद्रपालीय
२२. रथनेमीय
२३. केशि-गौतमीय
२४. प्रवचन-माता
२५. यज्ञीय
२६. सामाचारी
२७. खलुंकीय
२८. मोक्ष-मार्ग-गति
२९. सम्यक्त्वपराक्रम
३०. तपोमार्गगति
३१. चरणविधि
३२. प्रमादस्थान
३३. कर्मप्रकृति
३४. लेश्याध्ययन
३५. अनगार-मार्ग-गति
३६. जीवाजीवविभक्ति

२. छत्तीस अंगुल प्रमाण (छत्तीसंगुलियं)

वृत्तिकार के अनुसार व्यवहार में चैत्र और आश्विन की पूर्णिमा और निश्चय में मेष और तुला संक्रान्ति के दिन छत्तीस अंगुल (अर्थात् तीन पैर) प्रमाण का प्रहर होता है।[1]

---

1. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७

सत्ततीसइमो समवाओ : सैंतीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. कुंथुस्स णं अरहओ सत्ततीसं गणा, सत्ततीसं गणहरा होत्था।	कुन्थोः अर्हतः सप्तत्रिंशद् गणाः सप्तत्रिंशद् गणधराः आसन्।	१. अर्हत् कुन्थु के सैंतीस गण और सैंतीस गणधर थे।[1]
२. हेमवय-हेरण्णवइयाओ णं जीवाओ सत्ततीसं-सत्ततीसं जोयणसहस्साइं छच्च चोवत्तरे जोयणसए सोलसयएगूवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं पण्णत्ताओ।	हैमवत-हैरण्यवत्यौ जीवे सप्तत्रिंशद्-सप्तत्रिंशद् योजनसहस्राणि षट् च चतुःसप्तति योजनशतं षोडशकैकोन-विंशतिभागं योजनस्य किञ्चिद् विशेषोने आयामेन प्रज्ञप्ते।	२. हैमवत और हैरण्यवत की प्रत्येक जीवा की लम्बाई ३७६७४ १६/१९ योजन से कुछ विशेष-न्यून है।
३. सव्वासु णं विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियासु रायहाणीसु पागारा सत्ततीसं-सत्ततीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	सर्वासु विजय-वैजयन्त-जयन्त-अपराजितासु राजधानीषु प्राकाराः सप्तत्रिंशत्-सप्तत्रिंशद् योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।	३. विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित—इन सभी राजधानियों[2] के प्राकार सैंतीस-सैंतीस योजन ऊंचे हैं।
४. खुड्डियाए णं विमाणप्पविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।	क्षुद्रिकायां विमानप्रविभक्तौ प्रथमे वर्गे सप्तत्रिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	४. क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति[3] के प्रथम वर्ग में सैंतीस उद्देशन-काल हैं।
५. कत्तियबहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसिच्छायं निव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ।	कार्त्तिकबहुलसप्तम्यां सूर्यः सप्तत्रिंशद् अंगुलिकां पौरुषीच्छायां निर्वर्त्य चारं चरति।	५. कार्तिक कृष्णा सप्तमी के दिन सूर्य सैंतीस अंगुल प्रमाण प्रहर की छाया[4] निष्पन्न कर गति करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. कुन्थु…गणधर (कुंथुस्स…गणहरा)

प्रस्तुत सूत्र के प्रसंग में वृत्तिकार का कथन है कि 'आवश्यक में अर्हत् कुन्थु के तैंतीस गणधर बतलाए हैं, उसे मतान्तर मानना चाहिए।'[1] किन्तु आवश्यकनिर्युक्ति में जो पाठ आज प्राप्त है उसमें कुन्थु के पैंतीस गणों का उल्लेख हुआ है। भगवान् महावीर के अतिरिक्त सभी तीर्थंकरों के जितने गण थे, उतने ही गणधर थे। अतः आवश्यक के अनुसार कुन्थु के पैंतीस गणधर सिद्ध होते हैं।[2]

२. विजय…राजधानियों (विजय…रायहाणीसु)

जम्बूद्वीप के पूर्व आदि दिशाओं में विजय, वैजयंत आदि चार द्वार हैं। उन द्वारों के नायकों तथा राजधानियों के भी ये ही नाम हैं। वे राजधानियां यहां से दूर असंख्यातवें जम्बू नामक द्वीप में है।[3]

३. क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति (खुड्डियाए णं विमाणप्पविभत्तीए)

यह कालिक श्रुत है। नंदी (सूत्र ७७) में भी इसका उल्लेख है।

४. प्रहर की छाया (पोरिसिच्छायं)

यदि चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन प्रहर की छत्तीस अंगुल प्रमाण छाया होती है तो वैशाख कृष्णा सप्तमी के दिन (सात दिन में एक अंगुल की वृद्धि होने से) सैंतीस अंगुल का प्रहर होगा। इसी प्रकार आश्विन पूर्णिमा को छत्तीस अंगुल का प्रहर होगा और कार्तिक कृष्णा सप्तमी को सैंतीस अंगुल का।[4]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१:
आवश्यके तु त्रयस्त्रिंशद् श्रूयते इति मतान्तरम्।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६७, अवचूर्णि, प्रथम विभाग, पृ० २११।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१।

४. वही, पत्र ६१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८

अट्ठतीसइमो समवाओ : अड़तीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठतीसं अज्जियासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था।	पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य अष्टत्रिंशत् आर्यिकासाहस्र्यः उत्कृष्टा आर्यिकासम्पद् आसीत्।	१. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व की उत्कृष्ट श्रमणी-सम्पदा अड़तीस हजार श्रमणियों की थी।
२. हेमवत-हेरण्णवतियाणं जीवाणं धणुपट्ठे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दस एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसूणे परिक्खेवेणं पण्णत्ते।	हैमवत-हैरण्यवत्योः जीवयोः धनुःपृष्ठं अष्टत्रिंशद् योजनसहस्राणि सप्त च चत्वारिंशद् योजनशतं दश एकोनविंशतिभागं योजनस्य किंचिद्विशेषोनं परिक्षेपेण प्रज्ञप्तम्।	२. हैमवत और हैरण्यवत की प्रत्येक जीवा के धनुःपृष्ठ का परिक्षेप (परिधि) ३८७४० १०/१९ योजन से कुछ विशेष-न्यून है।
३. अत्थस्स णं पव्वयरण्णो बितिए कंडे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।	अस्तस्य पर्वतराजस्य द्वितीयं काण्डं अष्टत्रिंशद् योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तम्।	३. पर्वतराज मेरु[1] का दूसरा काण्ड अड़तीस हजार योजन ऊंचा है।
४. खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे अट्ठतीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।	क्षुद्रिकायां विमानप्रविभक्तौ द्वितीये वर्गे अष्टत्रिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	४. क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में अड़तीस उद्देशन-काल हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. हैरण्यवत (हेरण्णवतियाणं)

मूल पाठ में 'एरण्णवय' पद प्राप्त है, किन्तु वास्तविक पद 'हैरण्यवत' है। प्रतीत होता है कि 'हैरण्यवत' के हकार का लोप करने पर 'एरण्णवय' पद बना है।

२. अस्त (अत्थस्स)

यहां प्रस्तुत सूत्र में 'अत्थ' शब्द है। वृत्तिकार ने इसका संस्कृत रूप 'अस्त' और इसका अर्थ 'मेरु' किया है, क्योंकि सूर्य पर्वत से अन्तरित होकर अस्तंगत होता है, इसलिए उपचार से मेरु पर्वत को भी 'अस्त' कहा गया है।[1] सोलहवें समवाय में मेरु पर्वत के सोलह नाम आए हैं। उनमें एक नाम है 'अत्थ'। इसके संस्कृत रूप 'अर्थ' और 'अस्त' दोनों होते हैं। देखें—सोलहवें समवाय में मन्दर पर्वत का टिप्पण।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१ :
अत्थस्सत्ति अस्तो—मेरुर्यतस्तेनान्तरितो रविरस्तं गत इति व्यपदिश्यते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९

एगूणचत्तालीसइमो समवाओ : उनतालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. नमिस्स णं अरहओ एगूणचत्तालीसं आहोहियसया होत्था।	नमेः अर्हतः एकोनचत्वारिंशद् आधोऽवधिकशतानि आसन्।	१. अर्हत् नमि के उनतालीस सौ आधोवधिक (नियत क्षेत्र को जानने वाले अवधिज्ञानी) थे।
२. समयखेत्ते णं एगूणचत्तालीसं कुलपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—तीसं वासहरा, पंच मंदरा, चत्तारि उसुकारा।	समयक्षेत्रे एकोनचत्वारिंशत् कुलपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—त्रिंशद् वर्षधराः पञ्च मन्दराः चत्वारः इषुकाराः।	२. समय-क्षेत्र[1] में उनतालीस कुल-पर्वत[2] हैं, जैसे—तीस वर्षधर, पांच मंदर और चार इषुकार।
३. दोच्चचउत्थपंचमछट्ठसत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूणचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	द्वितीयचतुर्थपञ्चमषष्ठसप्तमीसु—पञ्चसु पृथिवीषु एकोनचत्वारिंशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	३. दूसरी, चौथी, पांचवीं, छठी और सातवीं—इन पांच पृथ्वियों में उनतालीस लाख नरकावास हैं।[3]
४. नाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउस्स—एयासि णं चउण्हं कम्मपगडीणं एगूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	ज्ञानावरणीयस्य मोहनीयस्य गोत्रस्य आयुषः—एतासां चतसृणां कर्मप्रकृतीनां एकोनचत्वारिंशद् उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	४. ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयुष्य—इन चार कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां उनतालीस हैं।[4]

टिप्पण

१. समय क्षेत्र (समयखेत्ते)

जम्बूद्वीप, धातकीखंड तथा पुष्करार्द्ध को समयक्षेत्र कहते हैं। इसका शब्दार्थ है—कालोपलक्षित भूमि और तात्पर्यार्थ है—मनुष्यलोक।[1]

२. कुल-पर्वत (कुलपव्वया)

कुल-पर्वत का अर्थ है—क्षेत्र की मर्यादा करने वाले पर्वत। तीस वर्षधर पर्वत ये हैं—जम्बूद्वीप में छह, धातकीखंड की पूर्व दिशा के अर्धभाग में छह, पश्चिम दिशा के अर्धभाग में छह, पुष्करार्ध के पूर्वार्ध भाग में छह और पश्चिमार्ध में छह।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६५ :
समयखेत्ते त्ति कालोपलक्षितं क्षेत्रं मनुष्यक्षेत्रमित्यर्थः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरु पर्वत पांच हैं—जम्बूद्वीप में एक, धातकीखंड में दो और पुष्करार्ध में दो। इसी प्रकार धातकीखंड और पुष्करार्ध के पूर्व तथा पश्चिम विभाग करने वाले चार इषुकार पर्वत हैं।[1]

३. उनतालीस लाख नरकावास (एगूणचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा)

दूसरी पृथ्वी में	२५ लाख
चौथी पृथ्वी में	१० लाख
पांचवीं पृथ्वी में	३ लाख
छठी पृथ्वी में	९९९९५
सातवीं पृथ्वी में	५
कुल योग	३९ लाख

४. उत्तर-प्रकृतियां उनतालीस हैं (एगूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ)

ज्ञानावरणीय कर्म की	५
मोहनीय कर्म की	२८
गोत्र कर्म की	२
आयुष्य कर्म की	४
कुल यौग	३९

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०

चत्तालीसइमो समवाओ : चालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था।	अर्हतः अरिष्टनेमेः चत्वारिंशत् आर्यिकासाहस्र्यः आसन्।	१. अर्हत् अरिष्टनेमि के चालीस हजार साध्वियां थीं।
२. मंदरचूलिया णं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	मन्दरचूलिका चत्वारिंशद् योजनानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता।	२. मन्दरपर्वत की चूलिका चालीस योजन ऊंची है।
३. संती अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	शान्तिः अर्हन् चत्वारिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. अर्हत् शान्ति चालीस धनुष्य ऊंचे थे।
४. भूयाणंदस्स णं नागरण्णो चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	भूतानन्दस्य नागराजस्य चत्वारिंशद् भवनावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	४. नागराज भूतानंद के चालीस लाख भवनावास हैं।
५. खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।	क्षुद्रिकायां विमानप्रविभक्तौ तृतीये वर्गे चत्वारिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	५. क्षुद्रिकाविमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में चालीस उद्देशन-काल हैं।
६. फग्गुणपुण्णिमासिणीए णं सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरिसिच्छायं निव्वट्टइत्ता णं चारं चरइ।	फाल्गुनपूर्णमास्यां सूर्यः चत्वारिंशद् अंगुलिका पौरुषीच्छायां निर्वर्त्य चारं चरति।	६. फाल्गुन की पूर्णिमा को सूर्य चालीस अंगुल प्रमाण प्रहर की छाया निष्पन्न कर गति करता है।
७. एवं कत्तियाएवि पुण्णिमाए।	एवं कार्तिक्यामपि पूर्णिमायाम्।	७. कार्तिक की पूर्णिमा को सूर्य चालीस अंगुल प्रमाण प्रहर की छाया निष्पन्न कर गति करता है।
८. महासुक्के कप्पे चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता।	महाशुक्रे कल्पे चत्वारिंशद् विमानावाससहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	८. महाशुक्रकल्प में चालीस हजार विमानावास हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१
एक्कचत्तालीसइमो समवाओ : इकतालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. नमिस्स णं अरहओ एक्कचत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था।	नमेः अर्हतः एकचत्वारिंशद् आर्यिका-साहस्र्यः आसन्।	१. अर्हत् नमि के इकतालीस हजार साध्वियां थीं।
२. चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभाए पंकप्पभाए तमाए तमतमाए।	चतसृषु पृथिवीषु एकचत्वारिंशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रत्नप्रभायां पङ्कप्रभायां तमायां तमस्तमायाम्।	२. रत्नप्रभा, पंकप्रभा, तमा और तमतमा—इन चार पृथ्वियों में इकतालीस लाख नरकावास हैं।[1]
३. महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एक्कचत्तालीसं उद्देसण-काला पण्णत्ता।	महत्यां विमानप्रविभक्तौ प्रथमे वर्गे एकचत्वारिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	३. महतीविमानप्रविभक्ति[2] के प्रथम वर्ग में इकतालीस उद्देशन-काल हैं।

टिप्पण

१. इकतालीस लाख नरकावास (एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा)

रत्नप्रभा में तीस लाख, पंकप्रभा में दस लाख, तमा में ९९९९५ और तमतमा में पांच।

२. महतीविमानप्रविभक्ति (महालियाए णं विमाणपविभत्तीए)

नंदी (सू० ७८) में इसको कालिक श्रुत के अन्तर्गत उल्लिखित किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२
बायालीसइमो समवाओ : बयालीसवां समवाय

मूल

१. समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।

२. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाते अंतरे पण्णत्ते ।

३. एवं चउद्दिसिं पि दओभासे संखे दयसीमे य ।

४. कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा, बायालीसं सूरिया पभासिंसु वा प्रभासिंति वा पभासिस्संति वा ।

५. संमुच्छिमभुयपरिसप्पाणं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता ।

संस्कृत छाया

श्रमणः भगवान् महावीरः द्विचत्वारिंशद् वर्षाणि साधिकानि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः ।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पश्चिमं चरमान्तं, एतद् द्विचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।

एवं चतुर्दिक्षु अपि दकावभासः शङ्खः दकसीमश्च ।

कालोदे समुद्रे द्विचत्वारिंशच्चन्द्राः अद्योतिषत वा द्योतन्ते वा द्योतिष्यन्ते वा, द्विचत्वारिंशत् सूर्याः प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा ।

सम्मूर्च्छिमभुजपरिसर्पाणां उत्कर्षेण द्विचत्वारिंशद् वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

हिन्दी अनुवाद

१. श्रमण भगवान् महावीर कुछ अधिक बयालीस वर्षों तक[1] श्रामण्य-पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा समस्त दुःखों से रहित हुए ।

२. जम्बूद्वीप द्वीप के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवास पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर[2] बयालीस हजार योजन का है ।

३. इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का, जम्बूद्वीप के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त[3] का और जम्बूद्वीप के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बयालीस-बयालीस हजार योजन का है ।

४. कालोद समुद्र में बयालीस चन्द्रमाओं ने उद्योत किया था, करते हैं और करेंगे । वहीं बयालीस सूर्यों ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे ।

५. सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. नामे णं कम्मे बायालीसविहे पण्णत्ते, तं जहा—गइनामे जातिनामे सरीरनामे सरीरंगोवंगनामे सरीरबंधणनामे सरीरसंघायणनामे संघयणनामे संठाणनामे वण्णनामे गंधनामे रसनामे फासनामे अगरुयलहुयनामे उवघायनामे पराघायनामे आणुपुव्वीनामे उस्सासनामे आतवनामे उज्जोयनामे विहगगइनामे तसनामे थावरनामे सुहुमनामे बायरनामे पज्जत्तनामे अपज्जत्तनामे साधारणसरीरनामे पत्तेयसरीरनामे थिरनामे अथिरनामे सुभनामे असुभनामे सुभगनामे दूभगनामे सुस्सरनामे दुस्सरनामे आएज्जनामे अणाएज्जनामे जसोकित्तिनामे अजसोकित्तिनामे निम्माणनामे तित्थकरनामे ।

नाम कर्म द्विचत्वारिंशद् विधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—गतिनाम जातिनाम शरीरनाम शरीराङ्गोपाङ्गनाम शरीरबन्धननाम शरीरसंघातननाम संहनननाम संस्थाननाम वर्णनाम गन्धनाम रसनाम स्पर्शनाम अगुरुकलघुकनाम उपघातनाम पराघातनाम आनुपूर्वीनाम उच्छ्वासनाम आतपनाम उद्योतनाम विहगगतिनाम त्रसनाम स्थावरनाम सूक्ष्मनाम बादरनाम पर्याप्तनाम अपर्याप्तनाम साधारणशरीरनाम प्रत्येकशरीरनाम स्थिरनाम अस्थिरनाम शुभनाम अशुभनाम सुभगनाम दुर्भगनाम सुस्वरनाम दुःस्वरनाम आदेयनाम अनादेयनाम यशःकीर्तिनाम अयशःकीर्तिनाम निर्माणनाम तीर्थकरनाम ।

६. नाम कर्म के बयालीस प्रकार हैं, जैसे—गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीरांगोपांगनाम, शरीरबंधननाम, शरीरसंघातननाम, संहनननाम, संस्थाननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, अगुरुलघुनाम उपघातनाम, पराघातनाम, आनुपूर्वीनाम, उच्छ्वासनाम, आतपनाम, उद्योतनाम, विहगगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, सूक्ष्मनाम, बादरनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, साधारणशरीरनाम, प्रत्येकशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थङ्करनाम ।

७. लवणे णं समुद्दे बायालीसं नागसाहस्सीओ अब्भिंतरियं वेलं धारेंति ।

लवणे समुद्रे द्विचत्वारिंशद् नागसाहस्र्यः आभ्यन्तरिकीं वेलां धारयन्ति ।

७. बयालीस हजार नाग लवणसमुद्र की आभ्यन्तर वेला को धारण करते हैं ।

८. महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे बायालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता ।

महत्यां विमानप्रविभक्तौ द्वितीये वर्गे द्विचत्वारिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः ।

८. महतीविमानप्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में बयालीस उद्देशन-काल हैं ।

९. एगमेगाए ओसप्पिणीए पंचमछट्ठीओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ ।

एकैकस्यां अवसर्पिण्यां पञ्चमषष्ठ्यौ समे द्विचत्वारिंशद् वर्षसहस्राणि कालेन प्रज्ञप्ते ।

९. प्रत्येक अवसर्पिणी के पांचवें (दुःषमा) और छठे (एकान्त दुःषमा)—इन दो आरों का कालमान बयालीस हजार वर्ष का है ।

१०. एगमेगाए उस्सप्पिणीए पढमबीयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं पण्णत्ताओ ।

एकैकस्यां उत्सर्पिण्यां प्रथमद्वितीये समे द्विचत्वारिंशद् वर्षसहस्राणि कालेन प्रज्ञप्ते ।

१०. प्रत्येक उत्सर्पिणी के पहले (एकान्त दुःषमा) और दूसरे (दुःषमा)—इन दो आरों का कालमान बयालीस हजार वर्ष का है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. कुछ अधिक बयालीस वर्षों तक (बायालीसं वासाइं साहियाइं)

भगवान् महावीर बारह वर्ष और साढे छह मास तक छद्मस्थ रहे और कुछ न्यून तीस वर्ष तक केवली। भगवान् को केवलज्ञान वैशाख शुक्ला दसमी को हुआ और निर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावस्या को। इससे यह फलित होता है कि भगवान् २९ वर्ष ५ मास और २० दिन तक केवली रहे। छद्मस्थ अवस्था को मिलाने पर उनका योग ४२ वर्ष ५ दिन होता है। इसीलिए प्रस्तुत सूत्र में कुछ अधिक बयालीस वर्षों का उल्लेख हुआ है।

पर्युषणा कल्प में भगवान् महावीर का श्रामण्य-पर्याय-काल बयालीस वर्ष का बतलाया गया है। वहां अतिरिक्त दिनों की विवक्षा नहीं की गई है।[1]

२. व्यवधानात्मक अन्तर (अबाहाते अंतरे)

'व्यवधानात्मक'—यह अबाधा शब्द का अनुवाद है। अभयदेव सूरी ने अबाधा का अर्थ—'व्यवधान की अपेक्षा से होने वाला'—किया है।[2] आचार्य मलयगिरि ने इसका शाब्दिक अर्थ भी समझाया है। उन्होंने बाधा का अर्थ 'आक्रमण' किया है। इस आधार पर 'अबाधा' का अर्थ 'अनाक्रमण'—'एक दूसरे की संलग्नता न होना'—किया जा सकता है।[3]

३. जम्बूद्वीप······पूर्वी चरमान्त (चउद्दिसि)

प्रस्तुत सूत्र में 'चउद्दिसि' पाठ है। पूर्व दिशा का निरूपण इससे पूर्ववर्ती सूत्र में किया जा चुका है, इसलिए यहां 'तिदिसि' पाठ होना चाहिए। वृत्तिकार ने तेंतालीसवें समवाय में इस विषय का विमर्श किया है।[4] प्रस्तुत सूत्र में उन्होंने इसका कोई विमर्श नहीं किया। उन्हें यह पाठ प्राप्त था या नहीं, इस विषय में कुछ भी निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता। चारों आवास-पर्वतों की अवस्थिति इस प्रकार है—

१. पूर्व में गोस्तूप पर्वत
२. दक्षिण में दकावभास पर्वत
३. पश्चिम में शंख पर्वत
४. उत्तर में दकसीम पर्वत।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६३ :
छद्मस्थपर्याये द्वादश वर्षाणि षण्मासा अर्द्धमासश्चेति, केवलिपर्यायस्तु देशोनानि त्रिंशद् वर्षाणीति, पर्युषणाकल्पे द्विचत्वारिंशदेव वर्षाणि महावीर-पर्यायोभिहितः, इह तु साधिकः उक्तः, तत्र पर्युषणाकल्पे यदल्पमधिकं तन्न विवक्षितमिति सम्भाव्यत इति।

२. वही, पत्र ६३ :
अबाहाए त्ति व्यवधानापेक्षया।

३. जीवाजीवाभिगमवृत्ति, पत्र २२२ :
इति बाधनं बाधा—आक्रमणं तस्यामबाधायां कृत्वेति गम्यते, अपान्तरालेषु मुक्त्वेति भावः।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र ६४ :
चउद्दिसिंपि' त्ति उक्तदिगन्तर्भावेन चतस्रो दिश उक्ता अन्यथा एवं 'तिदिसिंपि' त्ति वाच्यं स्यात्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३

तेयालीसइमो समवाओ : तेंतालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा पण्णत्ता ।	त्रयश्चत्वारिंशत् कर्मविपाकाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ।	१. कर्मविपाक के अध्ययन तेंतालीस हैं ।[1]
२. पढमचउत्थपंचमासु—तीसु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ।	प्रथमचतुर्थपञ्चमीषु—तिसृषु पृथिवीषु त्रयश्चत्वारिंशद् निरयावासशत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।	२. पहली, चौथी और पांचवीं—इन तीन पृथ्वियों में तेंतालीस लाख नरकावास हैं ।[2]
३. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरत्थि-मिल्लाओ चरिमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ।	जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यं चरमान्तं, एतत् त्रयश्चत्वारिं-शद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	३. जम्बूद्वीप द्वीप के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर तेंतालीस हजार योजन का है ।
४. एवं चउद्दिसिंपि दओभासे संखे दयसीमे (य ?) ।	एवं चतुर्दिक्षु अपि दकावभासः शङ्खः दकसीमः (च ?) ।	४. इसी प्रकार जम्बूद्वीप के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का, जम्बूद्वीप के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का और जम्बू-द्वीप के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर तेंतालीस-तेंतालीस हजार योजन का है ।
५. महालियाए णं विमाणपविभत्तीए ततिये वग्गे तेयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता ।	महत्यां विमानप्रविभक्तौ तृतीये वर्गे त्रयश्चत्वारिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः ।	५. महतीविमानप्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में तेंतालीस उद्देशन-काल हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. कर्मविपाक के अध्ययन (कम्मविवागज्झयणा)

वृत्तिकार ने विपाकसूत्र को सामने रख कर प्रस्तुत सूत्र की व्याख्या की है। वर्तमान में लब्ध विपाकसूत्र के बीस अध्ययन हैं।[1] सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन सम्मिलित करने पर कर्मविपाक के तेंतालीस अध्ययनों की संख्या पूर्ण हो सकती है। वृत्तिकार ने यह संभावना प्रस्तुत की है।[2] उन्होंने इसका कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है। किन्तु द्वादशांगी के निरूपण में सूत्रकृतांग का कर्मविपाक सम्बन्धी विषय उल्लिखित नहीं है।[3] कर्मविपाक की पहचान 'विपाकसूत्र' के रूप में करने पर उक्त समस्या उत्पन्न हुई है। यदि हम कर्मविपाक को एक स्वतंत्र आगम मान लेते हैं तो वह समस्या स्वयं सुलझ जाती है। कर्मविपाक, जो आज उपलब्ध नहीं है, के तेंतालीस अध्ययन थे।

२. तेंतालीस लाख नरकावास (तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा)

पहली पृथ्वी में तीस लाख, चौथी पृथ्वी में दस लाख और पांचवीं पृथ्वी में तीन लाख नरकावास हैं।

---

१ समवायांग, प्रकीर्ण समवाय ९९ :
वीसं अज्झयणा।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ६४ :
एतानि च एकादशाङ्गद्वितीयाङ्गयो: संभाव्यन्ते।

३. समवायांग, प्रकीर्ण समवाय ९० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४

चोयालीसइमो समवाओ : चौवालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चोयालीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुयाभासिया पण्णत्ता।	चतुश्चत्वारिंशद् अध्ययनानि ऋषिभाषितानि द्युलोकच्युताभाषितानि प्रज्ञप्तानि।	१. देवलोक से च्युत जीवों द्वारा भाषित अध्ययन, जिनकी संज्ञा ऋषिभाषित[1] है, चौवालीस हैं।
२. विमलस्स णं अरहतो चोयालीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठिं सिद्धाइं बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुयाइं सव्वदुक्खप्पहीणाइं।	विमलस्य अर्हतः चतुश्चत्वारिंशत् पुरुषयुगानि अनुपृष्ठि सिद्धानि बुद्धानि मुक्तानि अन्तकृतानि परिनिर्वृतानि सर्वदुःखप्रहीणानि।	२. अर्हत् विमल के चौवालीस पुरुषयुग[2] अनुक्रम से सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
३. धरणस्स णं नागिंदस्स नागरण्णो चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	धरणस्य नागेन्द्रस्य नागराजस्य चतुश्चत्वारिंशद् भवनावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	३. नागराज नागेन्द्र धरण के चौवालीस लाख भवनावास हैं।
४. महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसणकाला पण्णत्ता।	महत्यां विमानप्रविभक्तौ चतुर्थे वर्गे चतुश्चत्वारिंशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	४. महतीविमानप्रविभक्ति के चौथे वर्ग में चौवालीस उद्देशन-काल हैं।

टिप्पण

१. ऋषिभाषित (इसिभासिया)

वर्तमान में उपलब्ध ऋषिभाषित सूत्र में पैंतालीस अध्ययन प्राप्त होते हैं और वे पैंतालीस अर्हतों द्वारा भाषित हैं।[1] प्रस्तुत सूत्र में चौवालीस अध्ययनों वाला ऋषिभाषित संगृहीत है। वह कौन-सा है, यह निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता।

२. पुरुषयुग (पुरिसजुगाइं)

इसका अर्थ है—शिष्य-प्रशिष्य से क्रम से व्यवस्थित युगपुरुष।[2]

---

१. इसिभासिय, पढमा संगहिणी, गा० १–६।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ६४:
पुरुषाः—शिष्यप्रशिष्यादिक्रमव्यवस्थिता युगानीव—कालविशेषा इव क्रमसाधर्म्यात् पुरुषयुगानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५

पणयालीसइमो समवाओ : पैंतालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. समयखेत्ते णं पणयालीसं जोयण-सयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।	समयक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशद् योजनशत-सहस्राणि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।	१. समयक्षेत्र (सूर्य-चन्द्रकृत कालमर्यादा वाला क्षेत्र) पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।
२. सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खं-भेणं पण्णत्ते।	सीमन्तकः नरकः पञ्चचत्वारिंशद् योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।	२. सीमंतक[1] नरक पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।
३. एवं उडुविमाणे पण्णत्ते।	एवं उडुविमानं प्रज्ञप्तम्।	३. उडुविमान[2] पैंतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।
४. ईसिपब्भारा णं पुढवी पण्णत्ता एवं चेव।	ईषत्प्राग्भारा पृथिवी प्रज्ञप्ता एवं चैव।	४. ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी है।
५. धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	धर्मः अर्हन् पञ्चचत्वारिंशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	५. अर्हत् धर्म पैंतालीस धनुष ऊंचे थे।
६. मंदरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिंपि पणयालीसं-पणयालीसं जोयण-सहस्साइं अबाहाते अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य चतुर्दिक्षु अपि पञ्चचत्वारिंशद् - पञ्चचत्वारिंशद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	६. मेरुपर्वत का (लवण समुद्र की आभ्यन्तर परिधि से) चारों दिशाओं में पैंतालीस-पैंतालीस हजार योजन का व्यवधानात्मक अन्तर है।
७. सव्वेवि णं दिवड्ढखेत्तिया नक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा जोइंति वा जोइ-स्संति वा—	सर्वाण्यपिद्व्यर्द्धक्षेत्रकाणि नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तांश्चन्द्रेण सार्द्धं योगं अयूयुजन् वा योजयन्ति वा योजयिष्यन्ति वा।	७. द्व्यर्धक्षेत्र[3] के सभी नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त्त तक चन्द्रमा के साथ योग करते थे, करते हैं और करेंगे।
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा	
१. तिन्नेव उत्तराइं, पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य। एए छ नक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा॥	त्रीण्येवोत्तराणि, पुनर्वसू रोहिणी विशाखा च। एतानि षड् नक्षत्राणि, पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तसंयोगानि॥	वे नक्षत्र ये हैं—उत्तराषाढ़ा, उत्तर-फल्गुनी, उत्तरभद्रपदा, पुनर्वसु, रोहिणी और विशाखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसण-काला पण्णत्ता।	महत्यां विमानप्रविभक्तौ पञ्चमे वर्गे पञ्चचत्वारिंशद् उद्देशनकाला: प्रज्ञप्ताः।	८. महतीविमानप्रविभक्ति के पांचवें वर्ग में पैंतालीस उद्देशन-काल हैं।

टिप्पण

१. सीमंतक (सीमंतए)

पहली नरक पृथ्वी के पहले प्रस्तट के मध्यभाग में जो गोल नरकेन्द्र है, उसे 'सीमन्तक' कहते हैं।[1]

२. उडुविमान (उडुविमाणे)

सौधर्म और ईशान देवलोक के प्रथम प्रस्तटवर्ती, चार विमानावलियों के मध्यभागवर्ती गोलाकार विमान केन्द्र को 'उडुविमान' कहते हैं।[2]

३. द्व्यर्धक्षेत्र (दिवड्ढखेत्तिया)

चन्द्रमा के तीस मुहूर्त में भोगे जाने वाले नक्षत्र-क्षेत्र को 'सम-क्षेत्र' कहते हैं। ऐसे द्व्यर्ध (डेढ़) सम-क्षेत्र के नक्षत्र पैंतालीस मुहूर्त (३०+१५) तक चन्द्रमा के साथ योग करते हैं।[3]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६५ :

प्रथमपृथिव्यां प्रथमप्रस्तटे मध्यभागवर्ती वृत्तो नरककेन्द्र: सीमन्तक इति।

२. वही, पत्र ६५ :

सौधर्मेशानयो: प्रथमप्रस्तटवर्त्ति चतसृणां विमानावलिकानां मध्यभागवर्त्ति वृत्तं विमानकेन्द्रकमुडुविमानमिति।

३. वही, पत्र ६५ :

चन्द्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यं नक्षत्रक्षेत्रं समयक्षेत्रमुच्यते, तदेव सार्द्धं द्व्यर्द्धं द्वितीयमर्द्धमस्येति द्व्यर्द्धमित्येवं व्युत्पादनात् तथाविधं क्षेत्रं येषामस्ति तानि द्व्यर्द्धक्षेत्रकाणि नक्षत्राणि, अतएव पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता: चन्द्रेण सार्द्धं योग:—सम्बन्धो योजितवन्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६

छायालीसइमो समवाओ : छियालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया पण्णत्ता।	दृष्टिवादस्य षट्चत्वारिंशद् मातृकापदानि प्रज्ञप्तानि।	१. दृष्टिवाद के मातृकापद[1] छियालीस हैं।
२. बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा पण्णत्ता।	ब्राह्म्याः लिपेः षट्चत्वारिंशद् मातृकाक्षराणि प्रज्ञप्तानि।	२. ब्राह्मी लिपि के मातृकाक्षर[2] छियालीस हैं।
३. पभंजणस्स णं वातकुमारिंदस्स छायालीसं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	प्रभञ्जनस्य वातकुमारेन्द्रस्य षट्चत्वारिंशद् भवनावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	३. वायुकुमारेन्द्र प्रभंजन के छियालीस लाख भवनावास हैं।

टिप्पण

१. दृष्टिवाद के मातृकापद (दिट्ठीवायस्स णं···माउयापया)

जिस प्रकार अ, आ, इत्यादि अक्षर समस्त वाङ्मय के मातृकापद (स्रोतभूत) होते हैं उसी प्रकार उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—ये तीनों दृष्टिवाद के मातृकापद हैं। सिद्धश्रेणी, मनुष्यश्रेणी आदि के विषयभेद से ये छियालीस हैं, ऐसी संभावना वृत्तिकार ने की है।[1]

२. ब्राह्मीलिपि के मातृकाक्षर (बंभीए णं लिवीए···माउयक्खरा)

'अ' से 'क्ष' पर्यन्त वर्ण मातृका कहलाते हैं।[2]

वृत्तिकार ने सम्भावित रूप से ४६ मातृकाक्षरों का निर्देश इस प्रकार किया है[3]—

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६५ :
द्वादशाङ्गस्य 'माउयापय' त्ति सकलवाङ्मयस्य अकारादिमातृकापदानीव दृष्टिवादार्थप्रसवनिबन्धनत्वेन मातृकापदानि उत्पादविगमध्रौव्यलक्षणानि, तानि च सिद्धश्रेणिमनुष्यश्रेण्यादिना विषयभेदेन कथमपि भिद्यमानानि षट्चत्वारिंशद्भवन्तीति सम्भाव्यन्ते।

२. जयसेन प्रतिष्ठापाठ, ३७६ :
'अकारादिक्षकारान्ता, वर्णा प्रोक्तास्तु मातृकाः।'

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ६५ :
लेख्यविधौ षट्चत्वारिंशन्मातृकाक्षराणि, तानि चाकारादीनि हकारान्तानि सक्षकाराणि ऋॠ लृॡ ल इत्येवं तदक्षरपञ्चकवर्जितानि सम्भाव्यन्ते, (स्वरचतुष्टयवर्जनात् विसर्गान्तानि द्वादश पञ्चविंशतिः स्पर्शाः चतस्रोऽन्तःस्थाः ऊष्माणश्चत्वारः क्षवर्णश्चेति षट्चत्वारिंशद्वर्णाः)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अ से अः तक (ऋ ॠ लृ ॡ को छोड़कर)	१२ स्वर
क से म तक (५ x ५)	२५ व्यंजन
य र ल व	४ अन्तस्थ
श ष स ह	४ ऊष्म
क्ष	१
	४६

श्रीयुत् ओझा ने ये ही ४६ अक्षर माने हैं। चीनी यात्री ह्वाएन्सेग ने इसके साथ 'ज्ञ' अक्षर जोड़कर ४७ अक्षर माने हैं।[1]

वैदिक कालीन ब्राह्मी लिपि के सामान्यतः ६४ अक्षर हैं, ऐसा ओझा ने प्रतिपादित किया है।[2] यह संख्या दीर्घ और प्लुत के आधार पर की गई है।

१. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० ४६।
२. वही, पृ० ४४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७
सत्तचालीसइमो समवाओ : सैंतालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. जया णं सूरिए सव्वब्भंतरमंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणूसस्स सत्तचत्तालीसं जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ।	यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा इहगतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः द्वाभ्यां च त्रिषष्ठ्या योजनशतैः एकविंशत्या च षष्ठिभागैर्योजनस्य सूर्यः चक्षुःस्पर्शं अर्वाग् आगच्छति।	१. जब सूर्य सर्व-आभ्यंतर मण्डल का उपसंक्रमण कर गति करता है तब यहां रहे हुए मनुष्य को वह ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ योजन की दूरी से दिखलाई पड़ता है।[1]
२. थेरे णं अग्गिभूई सत्तालीसं वासाइं अगारमज्झा वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।	स्थविरः अग्निभूतिः सप्तचत्वारिंशद् वर्षाणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	२. स्थविर अग्निभूति सैंतालीस वर्ष[2] तक गृह में रह कर मुंड हुए और अगार से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।

टिप्पण

१. ४७२६२$\frac{२१}{६०}$ योजन की दूरी (सत्तचत्तालीसं जोयणसहस्सेहिं ⋯ जोयणस्स)

जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है। उसके दोनों पार्श्वों में १८०-१८० योजन अर्थात् ३६० योजन को छोड़ने से आभ्यंतर सूर्यमंडल का विष्कंभ आता है। वह ९९६४० योजन है। उसकी परिधि ३१५०८९ योजन होती है। इस परिधि को सूर्य साठ मुहूर्त्त में पार करता है। अतः एक मुहूर्त्त में सूर्य (३१५०८९÷६०) ५२५१$\frac{२९}{६०}$ योजन गति करता है। जब सूर्य आभ्यंतर मंडल में गति करता है तब दिवस अठारह मुहूर्त्त का होता है। इसके आधे नौ हुए। एक मुहूर्त्त की गतिको नौ से गुणित करने पर (५२५१$\frac{२९}{६०}$×९) ४७२६३$\frac{२१}{६०}$ योजन प्राप्त होते हैं।[1]

२. सैंतालीस वर्ष (सत्तालीसं वासाइं)

आवश्यकनिर्युक्ति में अग्निभूति का गृहवास छियालीस वर्ष का बतलाया है और यहां सैंतालीस वर्ष का। संभव है वे छियालीस वर्षों से कुछ अधिक समय तक गृहवास में रहे हों। अतः यह भेद पूर्णता और अपूर्णता की अपेक्षा से है।[2]

---

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ६६।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ६५०, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० १०७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८

अडयालीसइमो समवाओ : अड़तालीसवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टणसहस्सा पण्णत्ता।	एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः अष्टचत्वारिंशत् पत्तनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	१. प्रत्येक चातुरंत चक्रवर्ती के अड़तालीस हजार पत्तन होते हैं।
२. धम्मस्स णं अरहओ अडयालीसं गणा अडयालीसं गणहरा होत्था।	धर्मस्य अर्हतः अष्टचत्वारिंशद् गणाः अष्टचत्वारिंशद् गणधराः आसन्।	२. अर्हत् धर्म के अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर[1] थे।
३. सूरमंडले णं अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं पण्णत्ते।	सूर्यमण्डलं अष्टचत्वारिंशद् एकषष्ठिभागं योजनस्य विष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।	३. सूर्यमण्डल की चौड़ाई $\frac{४८}{६१}$ योजन है।

टिप्पण

१. अड़तालीस गण और अड़तालीस गणधर (अडयालीसं गणा अडयालीसं गणहरा)

आवश्यकनिर्युक्ति (गा० २६७) में अर्हत् धर्म के गण और गणधरों की संख्या तैंतालीस-तैंतालीस बतलाई गई है।[1] यह मतान्तर जानना चाहिए।

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९
एगूणपण्णासइमो समवाओ : उनचासवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सत्तसत्तमिया णं भिक्खुपडिमा एगूणपण्णाए राइंदिएहिं छन्नउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आणाए आराहिया यावि भवइ।	सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः षण्णवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातथ्यं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आज्ञया आराधिता चापि भवति।	१. सप्तसप्तमिका भिक्षुप्रतिमा उनचास दिन-रात की अवधि में १९६ भिक्षा-दत्तियों से सूत्र, कल्प, मार्ग तथा तथ्य के अनुरूप काया से सम्यक् स्पृष्ट, पालित, शोधित, पारित, कीर्तित और आज्ञा से आराधित होती है।
२. देवकुरु-उत्तरकुरासु णं मणुया एगूणपण्णाए राइंदिएहिं संपत्त-जोव्वणा भवंति।	देवकुरु-उत्तरकुर्वो मनुजाः एकोनपञ्चाशता रात्रिन्दिवैः सम्प्राप्तयौवनाः भवन्ति।	२. देवगुरु और उत्तरकुरु के मनुष्य उनचास दिन-रात में यौवन-सम्पन्न हो जाते हैं।
३. तेइंदियाणं उक्कोसेणं एगूणपण्णं राइंदिया ठिई पण्णत्ता।	त्रीन्द्रियाणां उत्कर्षेण एकोनपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	३. त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति उनचास दिन-रात की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०

पण्णासइमो समवाओ : पचासवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था।	मुनिसुव्रतस्य अर्हतः पञ्चाशद् आर्यिकासाहस्र्यः आसन्।	१. अर्हन् मुनिसव्रत के पचास हजार साध्वियां थीं।
२. अणंते णं अरहा पण्णासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	अनन्तः अर्हन् पञ्चाशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	२. अर्हन् अनन्त पचास धनुष्य ऊंचे थे।
३. पुरिसोत्तमे णं वासुदेवे पण्णासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	पुरुषोत्तमः वासुदेवः पञ्चाशद् धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. वासुदेव पुरुषोत्तम पचास धनुष्य ऊंचे थे।
४. सव्वेवि णं दीहवेयड्ढा मूले पण्णासं-पण्णासं जोयणाणि विक्खंभेणं पण्णत्ता।	सर्वाण्यपि दीर्घवैताढ्यानि मूले पञ्चाशत्-पञ्चाशत् योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तानि।	४. सभी दीर्घ-वैताढ्य पर्वत मूल में पचास-पचास योजन चौड़े हैं।
५. लंतए कप्पे पण्णासं विमाणावास-सहस्सा पण्णत्ता।	लान्तके कल्पे पञ्चाशद् विमानावास-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	५. लान्तककल्प में पचास हजार विमाभा-वास हैं।
६. सव्वाओ णं तिमिस्सगुहाखंडगप्प-वायगुहाओ पण्णासं-पण्णासं जोयणाइं आयामेणं पण्णत्ता।	सर्वाः तमिस्रगुहाखण्डकप्रपातगुहाः पञ्चाशत्-पञ्चाशत् योजनानि आयामेन प्रज्ञप्ताः।	६. सभी तमिस्रगुफाएं तथा खंडप्रपातगुफाएं पचास-पचास योजन लम्बी हैं।
७. सव्वेवि णं कंचणगपव्वया सिहरतले पण्णासं-पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि काञ्चनकपर्वताः शिखरतले पञ्चाशत्-पञ्चाशत् योजनानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।	७. सभी कांचनक[1] पर्वत शिखरतल पर पचास-पचास योजन चौड़े हैं।

टिप्पण

१. सभी कांचनक पर्वत (सव्वेवि णं कंचणगपव्वया)

उत्तरकुरु क्षेत्र में नीलवत् आदि पांच महाह्रद अनुक्रम से हैं। प्रत्येक ह्रद के पूर्व और पश्चिम दिशा में दस-दस कांचनक-पर्वत हैं। अतः वहां कुल सौ कांचनक-पर्वत हैं। इसी प्रकार देवकुरु क्षेत्र में निषध आदि पांच महाह्रदों के दोनों पार्श्वों में कांचनक-पर्वत हैं। वे भी सौ हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप में दो सौ कांचनक-पर्वत हुए। वे सभी सौ-सौ योजन ऊंचे और मूल में सौ-सौ योजन चौड़े हैं तथा उनके शिखरों पर उन-उन नाम के देवताओं के भवन हैं।[1]

---

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ६६, ६७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५१

एगपण्णासइमो समवाओ : इक्यावनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. नवण्हं बंभचेराणं एकावण्णं उद्देसणकाला पण्णत्ता ।	नवानां ब्रह्मचर्याणां एकपञ्चाशद् उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः ।	१. नौ ब्रह्मचर्य अध्ययनों के इक्यावन उद्देशन-काल[1] हैं ।
२. चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुधम्मा एकावण्णखंभसय-संनिविट्ठा पण्णत्ता ।	चमरस्य असुरेन्द्रस्य असुरराजस्य सभा सुधर्मा एकपञ्चाशत् स्तम्भशत-संनिविष्टा प्रज्ञप्ता ।	२. असुरराज असुरेन्द्र चमर की सुधर्मा सभा इक्यावन सौ खंभों पर अवस्थित है ।
३. एवं चेव बलिस्सवि ।	एवं चैव बलिनोऽपि ।	३. असुरराज असुरेन्द्र बली की सुधर्मा सभा इक्यावन सौ खंभों पर अवस्थित है ।
४. सुप्पभे णं बलदेवे एकावण्णं वाससयसहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे ।	सुप्रभः बलदेवः एकपञ्चाशद् वर्षशतसहस्राणि परमायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः ।	४. बलदेव सुप्रभ[2] इक्यावन लाख वर्ष के परम आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए ।
५. दंसणावरणनामाणं—दोण्हं कम्माणं एकावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ ।	दर्शनावरणनाम्नोः द्वयोः कर्मयोः एकपञ्चाशद् उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ।	५. दर्शनावरण और नाम—इन दो कर्मों की उत्तर-प्रकृतियां इक्यावन हैं ।[1]

टिप्पण

१. ब्रह्मचर्य···उद्देशन-काल (बंभचेराणं···उद्देसणकाला)

प्रस्तुत सूत्र में ब्रह्मचर्य का अर्थ है—आचारांग सूत्र । उसके नौ अध्ययन, इक्यावन उद्देशक और इक्यावन उद्देशन-काल हैं—

अध्ययन	उद्देशक	उद्देशन-काल
(१) शस्त्रपरिज्ञा	७	७
(२) लोकविजय	६	६
(३) शीतोष्णीय	४	४
(४) सम्यक्त्व	४	४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) लोकसार	६	६
(६) धुत	५	५
(७) महापरिज्ञा	७	७
(८) विमोक्ष	८	८
(९) उपधानश्रुत	४	४

वृत्तिकार ने उद्देशकों का उल्लेख करते हुए अन्त में सात उद्देशकों का उल्लेख किया है। वे कहते हैं—ये सात उद्देशक सातवें अध्ययन के हैं। वह सातवां अध्ययन व्युच्छिन्न हो गया। अतः उसको अन्त में रखा गया है। समवाय ९/३ में भी यही क्रम है। वहां 'महापरिज्ञा' को नौवां अध्ययन माना है। वास्तव में यह सातवां अध्ययन है। नौवें समवाय को ध्यान में रखकर ही यहां उस अध्ययन के उद्देशक अन्त में गिनाएं हैं।[1]

वृत्तिकार ने समवाय ८५/१ की वृत्ति में भी यही क्रम रखा है।[2]

२. सुप्रभ (सुप्पभे)

सुप्रभ ये चौथे बलदेव अनंतजित तीर्थङ्कर के समय में हुए हैं। आवश्यकनिर्युक्ति (गा० ४०६) में उनका आयुष्य पचपन लाख वर्ष का बतलाया है।

३. दर्शनावरण···की उत्तर-प्रकृतियां (दंसणावरणनामाणं···उत्तरपगडीओ)

दर्शनावरण कर्म की नौ उत्तर-प्रकृतियां हैं।[3]

नामकर्म की बयालीस उत्तर-प्रकृतियां हैं।[4]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६७ :

आचारप्रथमश्रुतस्कन्धाध्ययनानां शस्त्रपरीज्ञादीनां, तत्र प्रथमे सप्तोद्देशका इति सप्तैवोद्देशनकालाः, एवं द्वितीयादिषु क्रमेण षट् चत्वारः चत्वारः एवं षट् पञ्च अष्ट चत्वारः सप्तमे महापरिज्ञायाः सप्तोद्देशाः व्युच्छिन्नं च तदिति प्रान्ते प्रागप्यध्ययनोल्लेखे उद्दिष्टं प्रान्त्य एवात्तोद्दिष्टा उद्देशा अपि तस्य क्रमापेक्षया सप्तमस्य चेत्येवमेकपञ्चाशदिति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८६।

३. समवाय, ९/११।

४. वही, ४२/१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२
बावण्णइमो समवाओ : बावनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—	मोहनीयस्य कर्मणः द्विपञ्चाशद् नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—	१. मोहनीय कर्म के[1] नाम बावन हैं, जैसे—
कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए।	क्रोधः कोपः रोषः दोषः अक्षमा संज्वलनं कलहः चाण्डिक्यं भण्डनं विवादः ।	क्रोध, कोप, रोष, अक्षमा, संज्वलन, कलह, चांडिक्य, भंडन और विवाद।
माणे मदे दप्पे थंभे अत्तुक्कोसे गव्वे परपरिवाए उक्कोसे अवक्कोसे उन्नए उन्नामे।	मानः मदः दर्पः स्तम्भः आत्मोत्कर्षः गर्वः परपरिवादः उत्कर्षः अपकर्षः उन्नतः उन्नामः ।	मान, मद, दर्प, स्तंभ, आत्मोत्कर्ष, गर्व, परपरिवाद, उत्कर्ष, अपकर्ष, उन्नत और उन्नाम।
माया उवही नियडी वलए गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे कूडे जिम्हे किब्बिसिए अणायरणया गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे।	माया उपधिः निकृति, वलयः गहनं 'णूमं' कल्कं कुरुकं दम्भः कूटं जैम्हं किल्विषिकं अनाचरणं गूहनं वञ्चनं परिकुञ्चनं साचियोगः ।	माया, उपधि, निकृति, वलय, गहन, नूम, कल्क, कुरुक, दंभ, कूट, जैह्म, किल्विषिक, अनाचरण, गूहन, वंचन, परिकुंचन और साचियोग।
लोभे इच्छा मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा नंदी रागे।	लोभः इच्छा मूर्च्छा कांक्षा गृद्धिः तृष्णा भिध्या अभिध्या कामाशा भोगाशा जीविताशा मरणाशा नन्दिः रागः ।	लोभ, इच्छा, मूर्च्छा, कांक्षा, गृद्धि, तृष्णा, भिध्या, अभिध्या, कामाशा, भोगाशा, जीविताशा, मरणाशा, नंदी और राग।
२. गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं बावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् वडवामुखस्य महापातालस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् द्विपञ्चाशद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	२. गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त से वडवामुख महापाताल के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बावन हजार योजन का है।
३. एवं दओभासस्स णं केउकस्स (य?), संखस्स जूयकस्स (य?), दयसीमस्स ईसरस्स (य?)।	एवं दकावभासस्य केतुकस्य (च?) शंखस्य यूपकस्य (च?) दकसीमस्य ईश्वरस्य (च?)।	३. इसी प्रकार दकावभास आवास-पर्वत से केतुक महापाताल कलश का, शंख आवास-पर्वत से यूप महापाताल का और दकसीम आवास-पर्वत से ईश्वर महापाताल का व्यवधानात्मक अन्तर बावन-बावन हजार योजन का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. नाणावरणिज्जस्स नामस्स अंतरातियस्स—एतासि णं तिण्हं कम्मपगडीणं बावन्नं उत्तर-पयडीओ पण्णत्ताओ ।	ज्ञानावरणोयस्य नाम्नः आन्तरायिकस्य—एतासां तिसृणां कर्मप्रकृतोनां द्विपञ्चाशद् उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ।	४. ज्ञानावरणीय, नाम और अंतराय—इन तीन कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां बावन हैं ।[2]
५. सोहम्म - सणंकुमार - माहिंदेसु—तिसु कप्पेसु बावन्नं विमाणावास-सयसहस्सा पण्णत्ता ।	सौधर्म - सनत्कुमार - माहेन्द्रेषु —त्रिषु कल्पेषु द्विपञ्चाशद् विमानावासशत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।	५. सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र—इन तीन कल्पों में बावन लाख विमानावास हैं ।[3]

टिप्पण

१. मोहनीय कर्म के (मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स)

क्रोध, मान, माया और लोभ—ये चार कषाय मोहनीय कर्म के अवयव हैं। अवयवों में अवयवी का अथवा खंड में समुदय का उपचार कर इन चारों कषायों के पर्याय-नामों को मोहनीय के नामरूप में उल्लिखित किया है। इनमें क्रोध के दस, मान के ग्यारह, माया के सतरह और लोभ के चौदह नाम गिनाए हैं। उनका योग (१०+११+१७+१४) बावन होता है।[1]

२. तीन कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां बावन हैं (तिण्हं कम्मपगडीणं बावन्नं उत्तरपयडीओ)

ज्ञानावरणीय की पांच, नाम की बयालीस तथा अन्तराय की पांच—इस तरह कुल बावन उत्तर प्रकृतियां होती हैं।

३. बावन लाख विमानावास (बावन्नं विमाणावाससयसहस्सा)

सौधर्म में बत्तीस लाख, सनत्कुमार में बारह लाख तथा माहेन्द्र में आठ लाख —इस तरह कुल ५२ लाख विमानावास हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३

तेवण्णइमो समवाओ : तिरपनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. देवकुरुउत्तरकुरियातो णं जीवाओ तेवन्नं-तेवन्नं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं पण्णत्ताओ।	देवकुरूत्तरकुर्वीये जीवे त्रिपञ्चाशत्-त्रिपञ्चाशत् योजनसहस्राणि सातिरेकाणि आयामेन प्रज्ञप्ते।	१. देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवा तिरपन-तिरपन हजार योजन से कुछ अधिक लम्बी है।
२. महाहिमवंतरुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवन्नं-तेवन्नं जोयणसहस्साइं नव य एगतीसे जोयणसए छच्च एक्कूणवीसइ-भाए जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।	महाहिमवद्रुक्मिणोः वर्षधरपर्वतयोः जीवे त्रिपञ्चाशत्-त्रिपञ्चाशद् योजन-सहस्राणि नव च एकत्रिंशद् योजनशतं षट् च एकोनविंशतिभागं योजनस्य आयामेन प्रज्ञप्ते।	२. महाहिमवान और रुक्मी—इन दो वर्षधर पर्वतों की प्रत्येक जीवा की लम्बाई ५३९३१ ६/१९ योजन है।
३. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्नं अणगारा संवच्छरपरियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना।	श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य त्रिपञ्चाशद् अनगाराः संवत्सरपर्यायाः पञ्चसु अनुत्तरेषु महातिमहत्सु महाविमानेषु देवत्वेन उपपन्नाः।	३. श्रमण भगवान् महावीर के एक वर्ष की दीक्षा-पर्याय वाले तिरपन अनगार[1] पांच अनुत्तर के अति-विस्तीर्ण महाविमानों में देवरूप में उत्पन्न हुए।
४. संमुच्छिम-उरपरिसप्पाणं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्सा ठिई पण्णत्ता।	सम्मूर्च्छिम-उरःपरिसर्पाणां उत्कर्षेण त्रिपञ्चाशद् वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	४. सम्मूर्च्छिम उरपरिसृप जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तिरपन हजार वर्ष की है।

टिप्पण

१. तिरपन अनगार (तेवन्नं अणगारा)

प्रस्तुत सूत्र में एक वर्ष की पर्याय वाले तिरपन अनगारों का कथन है। किन्तु ये अप्रतीत हैं। अनुत्तरोपपातिक में तेतीस श्रमणों का पांच अनुत्तरविमानों में उत्पन्न होने का उल्लेख हुआ है। उनका श्रामण्य-पर्याय भी अनेक वर्षों का था।[1] अतः ये अनगार कौन थे, इसका निश्चित उत्तर संभव नहीं है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६८ :
संवत्सरमेकं यावत् पर्यायः प्रव्रज्यालक्षणो येषां ते संवत्सरपर्यायाः·····एते चाप्रतीताः, अनुत्तरोपपातिकांगेषु तु येऽधीयन्ते ते त्रयस्त्रिंशत् बहुवर्षपर्यायाश्चेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४

चउवण्णइमो समवाओ : चौवनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणीए एगमेगाए उस्सप्पिणीए चउप्पण्णं-चउप्पण्णं उत्तमपुरिसा उप्पज्जिसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा—चउवीसं तित्थकरा, बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।	भरतैरवतयोः वर्षयोः एकैकस्यां अवसर्पिण्यां एकैकस्यां उत्सर्पिण्यां चतुःपञ्चाशत्-चतुःपञ्चाशत् उत्तमपुरुषाः उदपदिषत वा उत्पद्यन्ते वा उत्पत्स्यन्ते वा तद्यथा—चतुर्विशतिः तीर्थंकराः द्वादश चक्रवर्त्तिनः, नव बलदेवाः नव वासुदेवाः।	१. भरत और ऐरवत क्षेत्रों में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में चौवन-चौवन उत्तम पुरुष हुए थे, होते हैं और होंगे, जैसे—चौवीस तीर्थङ्कर, बारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव और नौ वासुदेव।
२. अरहा णं अरिट्ठनेमी चउप्पण्णं राइंदियाइं छउमत्थपरियागं पाउणित्ता जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी।	अर्हन् अरिष्टनेमिः चतुःपञ्चाशद् रात्रिन्दिवानि छद्मस्थपर्यायं प्राप्य जिनो जातः केवली सर्वज्ञः सर्वभावदर्शी।	२. अर्हत् अरिष्टनेमि चौवन दिन-रात तक छद्मस्थ-पर्याय का पालन कर जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वभावदर्शी हुए।
३. समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनिसेज्जाए चउप्पण्णाइं वागरणाइं वागरित्था।	श्रमणो भगवान् महावीरः एकदिवसे एकनिषद्यायां चतुःपञ्चाशद् व्याकरणानि व्याकार्षीत्।	३. श्रमण भगवान् महावीर ने एक दिन में एक ही आसन पर बैठे हुए चौवन प्रश्नों का व्याकरण किया—उत्तर दिया।[1]
४. अणंतस्स णं अरहओ चउप्पण्णं गणा चउप्पण्णं गणहरा होत्था।	अनन्तस्य अर्हतः चतुःपञ्चाशद् गणाः चतुःपञ्चाशद् गणधराः आसन्।	४. अर्हत् अनन्त के चौवन गण और चौवन गणधर[2] थे।

टिप्पण

१. चौवन प्रश्नों का···उत्तर दिया (चउप्पणाइं वागरणाइं वागरित्था)

भगवान् महावीर से किसने कब, क्या और कहां चौवन प्रश्न किए और उन्होंने क्या उत्तर दिए, इसका आज विवरण प्राप्त नहीं है।[1]

२. अर्हत् अनन्त के···चौदह गणधर (अणंतस्स णं ··चउप्पण्णं गणहरा)

आवश्यकनिर्युक्ति में अर्हत् अनन्त के पचास गण तथा पचास गणधर बतलाए हैं।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६८ :
एकेनासनपरिग्रहेण वागरणाइंति व्याक्रियन्ते—अभिधीयन्ते इति व्याकरणानि—प्रश्ने सति निर्वचनतयोच्यमानाः पदार्थाः······व्याकृतवान् तानि चाप्रतीतानि।

२. आवश्यकनिर्युक्ति गा० २६७, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० १११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५
पणपण्णइमो समवाओ : पचपनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. मल्ली णं अरहा पणपण्णं वाससहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	मल्ली अर्हन् पञ्चपञ्चाशद् वर्षसहस्राणि परमायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	१. अर्हत् मल्ली पचपन हजार वर्ष के परम-आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
२. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ विजयदारस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं पणपण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्ताद् विजयद्वारस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् पञ्चपञ्चाशद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	२. मेरु पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से विजयद्वार के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर पचपन हजार योजन का हैं।
३. एवं चउद्दिसिपि वेजयंत-जयंत-अपराजियंति।	एवं चतुर्दिक्षु अपि वैजयन्त-जयन्त-अपराजितं इति।	३. इसी प्रकार मेरु पर्वत के उत्तरी चरमान्त से वैजयन्तद्वार के उत्तरी चरमान्त का, मेरु पर्वत के पूर्वी चरमान्त से जयन्तद्वार के पूर्वी चरमान्त का और मेरु पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से अपराजितद्वार के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर पचपन-पचपन हजार योजन का है।
४. समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणपण्णं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं, पणपण्णं अज्झयणाणि पावफलविवागाणि वागरित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	श्रमणः भगवान् महावीरः अन्तिमरात्रौ पञ्चपञ्चाशद् अध्ययनानि कल्याणफलविपाकानि पञ्चपञ्चाशद् अध्ययनानि पापफलविपाकानि व्याकृत्य सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	४. श्रमण भगवान् महावीर अंतिम रात्री में कल्याणफलविपाक वाले पचपन अध्ययन तथा पापफलविपाक वाले पचपन अध्ययनों की प्ररूपणा कर[1] सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
५. पढमबिइयासु—दोसु पुढवीसु पणपण्णं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	प्रथमद्वितीययोः—द्वयोः पृथिव्योः पञ्चपञ्चाशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	५. पहली और दूसरी—इन पृथ्वियों में पचपन लाख नरकावास हैं।[2]
६. दंसणावरणिज्जनामाउयाणं तिण्हं कम्मपगडीणं पणपण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	दर्शनावरणीयनामायुषां—तिसृणां कर्मप्रकृतीनां पञ्चपञ्चाशद् उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	६. दर्शनावरणीय, नाम तथा आयुष्य—इन तीन कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां पचपन हैं।[3]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. भगवान् महावीर···प्ररूपणा कर (भगवं महावीरे···वागरित्ता)

आयुष्य की अन्तिम रात्री के अन्तिम प्रहर में भगवान् महावीर मध्यम पापा में हस्तिपाल राजा की कार्य-सभा में पर्यङ्क आसन में स्थित थे। उस दिन कार्तिक अमावस्या थी। स्वाति नक्षत्र था। चन्द्रमायुक्त नागकरण था। प्रातःकाल के समय भगवान् ने पुण्य-कर्मों के शुभ फल को प्रकट करने वाले तथा पाप कर्मों के अशुभ फल को प्रकट करने वाले पचपन-पचपन अध्ययनों का व्याकरण किया था।[1]

२. पचपन लाख नरकावास (पणपण्णं निरयावाससयसहस्सा)

पहली पृथ्वी में तीस लाख तथा दूसरी में पचीस लाख नरकावास हैं।[2]

३. उत्तर-प्रकृतियां पचपन हैं (पणपण्णं उत्तरपगडीओ)

दर्शनावरणीय कर्म का नौ, नाम कर्म की बयालीस और आयुष्य कर्म की चार—इस तरह कुल उत्तर-प्रकृतियां ५५ हैं।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६६ :

सर्वायुःकालपर्यवसानरात्रौ रात्रेरन्तिमे भागे पापायां मध्यमायां नगर्यां हस्तिपालस्य राज्ञः करणसभायां कार्त्तिकमासामावास्यायां स्वातिनक्षत्रेण चन्द्रमसा युक्तेन नागकरणे प्रत्युषसि पर्यंकासननिषण्णः पञ्चपञ्चाशदध्ययनानि······कल्याणस्य-पुण्यस्य कर्मणः फलं—कार्यं विपाच्यते—व्यक्तीक्रियते यैस्तानि कल्याणफलविपाकानि, एवं पापफलविपाकानि व्याकृत्य—प्रतिपाद्य······।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ६६ :

प्रथमायां त्रिंशन्नरकलक्षाणि द्वितीयायां पञ्चविंशतिरिति पञ्चपञ्चाशत्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६

छप्पण्णइमो समवाओ : छप्पनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. जंबुद्दीवे णं दीवे छप्पण्णं नक्खत्ता चंदेण सद्धिं जोगं जोएंसु वा जोएंति वा जोइस्संति वा।	जम्बूद्वीपे द्वीपे षट्पञ्चाशद् नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्द्धं योगं अयूयुजन् वा योजयन्ति वा योजयिष्यन्ति वा।	१. जम्बूद्वीप द्वीप में छप्पन नक्षत्रों[1] ने चन्द्रमा के साथ योग किया था, करते हैं और करेंगे।
२. विमलस्स णं अरहओ छप्पण्णं गणा छप्पण्णं गणहरा होत्था।	विमलस्य अर्हतः षट्पञ्चाशद् गणाः षट्पञ्चाशद् गणधराः आसन्।	२. अर्हत् विमल के छप्पन गण और छप्पन गणधर[2] थे।

टिप्पण

१. छप्पन नक्षत्र (छप्पण्णं नक्खत्ता)

जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा हैं। प्रत्येक चन्द्रमा के अट्ठाईस-अट्ठाईस नक्षत्र हैं[1]—

१. अभिजित्	८. अश्विनी	१५. पुष्य	२२. स्वाति
२. श्रवण	९. भरणी	१६. आश्लेषा	२३. विशाखा
३. धनिष्ठा	१०. कृत्तिका	१७. मघा	२४. अनुराधा
४. शतभिषग्	११. रोहिणी	१८. पूर्वफल्गुनी	२५. ज्येष्ठा
५. पूर्वभद्रपदा	१२. मृगशीर्ष	१९. उत्तरफल्गुनी	२६. मूला
६. उत्तरभद्रपदा	१३. आर्द्रा	२०. हस्त	२७. पूर्वाषाढ़ा
७. रेवती	१४. पुनर्वसु	२१. चित्रा	२८. उत्तराषाढ़ा।

२. छप्पन गण और छप्पन गणधर (छप्पण्णं गणा छप्पण्णं गणहरा)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनके सत्तावन गण और सत्तावन गणधरों का उल्लेख है।[2]

---

१. सूर्यप्रज्ञप्ति, १०/१३२।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६७, अवचूर्णि, प्रथम विभाग, पृ० २११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७

सत्तावण्णइमो समवाओ : सत्तावनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलिया-वज्जाणं सत्तावण्णं अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—आयारे सूयगडे ठाणे।	त्रयाणां गणिपिटकानां आचारचूलिका-वर्जानां सप्तपञ्चाशद् अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आचारः सूत्रकृतं स्थानम्।	१. आचारचूलिका को छोड़ कर तीन गणिपिटकों—आचार, सूत्रकृत और स्थान—के सत्तावन अध्ययन हैं।[1]
२. गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए, एस णं सत्ता-वण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् वडवामुखस्य महापातालस्य बहुमध्यदेशभागः, एतत् सप्तपञ्चाशद् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	२. गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त से वडवामुख महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तावन हजार योजन का है।
३. एवं दओभासस्स (णं?) केउयस्स य, संखस्स जूयकस्स य, दयसीमस्स ईसरस्स य।	एवं दकावभासस्य केतुकस्य च, शंखस्य यूपकस्य च, दकसीमस्य ईश्वरस्य च।	३. इसी प्रकार दकावभास आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से केतुक महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का, शंख आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से यूप महापाताल कलश के बहुमध्यदेश-भाग का और दकसीम आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त से ईश्वर महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तावन-सत्तावन हजार योजन का है।
४. मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावण्णं मणपज्जवनाणिसया होत्था।	मल्ल्याः अर्हतः सप्तपञ्चाशद् मनःपर्यवज्ञानिशतानि आसन्।	४. अर्हत् मल्ली के सत्तावन सौ मनःपर्यव-ज्ञानी थे।
५. महाहिमवंतरुप्पीणं वासधरपव्व-याणं जीवाणं धणुपट्ठा सत्तावण्णं-सत्तावण्णं जोयणसहस्साइं दोण्णि य तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता।	महाहिमवद्रुक्मिणोः वर्षधरपर्वतयोः जीवयोः धनुःपृष्ठानि सप्तपञ्चाशत्-सप्तपञ्चाशत् योजनसहस्राणि द्वे च त्रिनवतियोजनशते दश च एकोन-विंशतिभागं योजनस्य परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि।	५. महाहिमवान तथा रुक्मी—इन दो वर्षधर पर्वतों की प्रत्येक जीवा के धनुः-पृष्ठ की परिधि $५७२९३\frac{१०}{१९}$ योजन की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. तीन गणिपिटकों के…अध्ययन (तिण्हं गणिपिडगाणं…अज्झयणा)

आचारांग के दो श्रुतस्कंध हैं। उसका अन्तिम अध्ययन है 'विमुक्ति'। यहां आचारचूला के रूप में यही विवक्षित है। उसे छोड़ देने पर आचारांग के चौबीस अध्ययन शेष रहते हैं। तीनों अंगों के सत्तावन अध्ययन इस प्रकार हैं[1]—

१. आचारांग (प्रथम श्रुतस्कंध)—	९ अध्ययन
,, (द्वितीय श्रुतस्कंध)—	१५ ,,
२. सूत्रकृतांग (प्रथम श्रुतस्कंध)—	१६ ,,
,, (द्वितीय श्रुतस्कंध)—	७ ,,
३. स्थानांग—	१० ,,
	कुल—५७ अध्ययन

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ६९, ७० :
आचारस्य श्रुतस्कंधद्वयरूपस्य प्रथमांगस्य चूलिका—सर्वान्तिममध्ययनं विमुक्त्यभिधानमाचारचूलिका तद् वर्जा, तत्राचारे प्रथमश्रुतस्कंधे नवाध्ययनानि, द्वितीये षोडश निशीथाध्ययनस्य प्रस्थानान्तरत्वेन इहानाश्रयणात्, षोडशानां मध्ये एकस्याचारचूलिकेति परिहृतत्वात् शेषाणि पञ्चदश, सूत्रकृते द्वितीयाङ्गे प्रथमश्रुतस्कधे षोडश, द्वितीये सप्त, स्थानके दशेत्येवं सप्तपञ्चाशदिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८

अट्ठावण्णइमो समवाओ : अट्ठावनवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पढमदोच्चपंचमासु—तिसु पुढवीसु अट्ठावण्णं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	प्रथमद्वितीयपञ्चमीषु—तिसृषु पृथिवीषु अष्टपञ्चाशद् निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	१. पहली, दूसरी और पांचवीं—इन तीनों पृथ्वियों में अट्ठावन लाख नरकावास हैं।
२. नाणावरणिज्जस्स वेयणिज्जस्स आउयनामअंतराइयस्स य—एयासि णं पंचण्हं कम्मपगडीणं अट्ठावण्णं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	ज्ञानावरणीयस्य वेदनीयस्य आयुष्क-नाम-आन्तरायिकस्य च—एतासां पञ्चानां कर्मप्रकृतीनां अष्टपञ्चाशद् उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	२. ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम और अन्तराय—इन पांच कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां अट्ठावन हैं।
३. गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए, एस णं अट्ठावण्णं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्तात् वडवामुखस्य महापातालस्य बहुमध्यदेशभागः, एतत् अष्टपञ्चाशत् योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	३. गोस्तूप आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से वडवामुख महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर अट्ठावन हजार योजन का है।
४. एवं दओभासस्स णं केउकस्स (य?), संखस्स जूयकस्स (य?), दयसीमस्स ईसरस्स (य?)।	एवं दकावभासस्य केतुकस्य (च?) शंखस्य यूपकस्य (च?) दकसीमस्य ईश्वरस्य (च?)।	४. इसी प्रकार दकावभास आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त से केतुक महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का, शंख आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त से यूप महापाताल कलश के बहुमध्यदेश-भाग का और दकसीम आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से ईश्वर महापाताल कलश के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर अट्ठावन-अट्ठावन हजार योजन का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९

एगूणसट्ठिमो समवाओ : उनसठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे उदू एगूणसट्ठि राइंदियाणि राइंदियग्गेणं पण्णत्ते।	चन्द्रस्य संवत्सरस्य एकैकः ऋतुः एकोनषष्ठि रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	१. चन्द्र-संवत्सर की प्रत्येक ऋतु दिन-रात के परिमाण से उनसठ दिन-रात[1] की होती है।
२. संभवे णं अरहा एगूणसट्ठि पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	सम्भवः अर्हत् एकोनषष्ठि पूर्वशतसहस्राणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	२. अर्हत् संभव उनसठ लाख पूर्व[2] तक गृहवास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।
३. मल्लिस्स णं अरहओ एगूणसट्ठि ओहिनाणिसया होत्था।	मल्ल्याः अर्हतः एकोनषष्ठिः अवधिज्ञानिशतानि आसन्।	३. अर्हत् मल्ली के उनसठ सौ अवधिज्ञानी थे।

टिप्पण

१. उनसठ दिन-रात (एगूणसट्ठि राइंदियाणि)

चन्द्र की गति के आधार पर जो संवत्सर प्रवर्तित होता है, उसे 'चन्द्र-संवत्सर' कहते हैं। इसमें बारह महीने और दो-दो महीनों की छह ऋतुएं होती हैं। प्रत्येक ऋतु ५९$\frac{२}{६२}$ दिन-रात की होती है। यहां $\frac{२}{६२}$ की विवक्षा नहीं की गई है।[1]

स्थानांग में अनेकविध संवत्सरों का उल्लेख है। विशेष जानकारी के लिए देखें—ठाणं ५/२१०-२१३, टिप्पण पृ० ६४८, ६४९।

२. उनसठ लाख पूर्व (एगूणसट्ठि पुव्वसयसहस्साइं)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनके गृहवास का काल उनसठ लाख पूर्व तथा चार पूर्वाङ्ग है।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७० :

यश्चन्द्रगतिमंगीकृत्य संवत्सरो विवक्ष्यते स चन्द्र एव, तत्र च द्वादश मासाः षट् च ऋतवो भवन्ति, तत्र चैकैक ऋतुरेकोनषष्टिरात्रिन्दिवानां रात्रिन्दिवाग्रेण भवति कथं एकोनत्रिंशद् रात्रिदिवानि द्वात्रिंशच्च षष्टिभागा अहोरात्रस्येत्येवंप्रमाणः कृष्णप्रतिपदमारभ्य पौर्णमासीपरिनिष्ठितः चन्द्रमासो भवति द्वाभ्यां च ताभ्यामृतुर्भवति, तत एकोनषष्टिः, अहोरात्राण्यसौ भवति, यच्चेह द्विषष्टिभागद्वयमधिकं तन्न विवक्षितम्।

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २७९, अवचूर्णि, प्रथम विभाग, पृ० २१४।

पण्णरस सहसहस्सा, कुमारवासो अ संभवजिणस्स।
चोआलीसं रज्जे, चउरंगं चेव बोद्धव्वं॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सट्ठिमो समवाओ : साठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगमेगे णं मंडले सूरिए सट्ठिए-सट्ठिए मुहुत्तेहिं संघाएइ।	एकैकं मण्डलं सूर्यः षष्ठ्या-षष्ठ्या मुहूर्त्तैः संघातयति।	१. सूर्य (एक सौ चौरासी में से) प्रत्येक मंडल को साठ-साठ मुहूर्त्तों[1] से निष्पन्न (पूर्ण) करता है।
२. लवणस्स णं समुद्दस्स सट्ठि नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारेंति।	लवणस्य समुद्रस्य षष्ठिः नागसाहस्र्यः अग्रोदकं धारयन्ति।	२. लवण समुद्र के अग्रोदक[2] को साठ हजार नागदेवता धारण करते हैं।
३. विमले णं अरहा सट्ठि धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	विमलः अर्हन् षष्ठि धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. अर्हत् विमल साठ धनुष्य ऊंचे थे।
४. बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	बलेः वैरोचनेन्द्रस्य षष्ठिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	४. वैरोचनेन्द्र बली के साठ हजार सामानिक देव हैं।
५. बंभस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	ब्रह्मणः देवेन्द्रस्य देवराजस्य षष्ठिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	५. देवराज देवेन्द्र ब्रह्म के साठ हजार सामानिक देव हैं।
६. सोहम्मीसाणेसु—दोसु कप्पेसु सट्ठि विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः—द्वयोः कल्पयोः षष्ठिः विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	६. सौधर्म और ईशान—इन दो कल्पों में साठ लाख विमानावास हैं।[3]

टिप्पण

१. साठ-साठ मुहूर्त्तों (सट्ठिए-सट्ठिए मुहुत्तेहिं)

सूर्य जब मेरु की सम्पूर्ण प्रदक्षिणा करता है तब उसका एक मंडल पूर्ण होता है। एक मंडल को पूर्ण करने में उसे साठ मुहूर्त्त अथवा दो अहोरात्र लगते हैं। जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं। एक दिन एक सूर्य और दूसरे दिन दूसरा सूर्य उदित होता है। इस प्रकार तीसरे दिन सूर्य पुनः स्वस्थान में उदित होता है।[1]

२. अग्रोदक (अग्गोदयं)

लवण समुद्र की वेला सोलह हजार योजन ऊंची है। उसके ऊपर दो गाउ प्रमाण वृद्धि-हानि के स्वभाव वाली जो जलशिखा है, उसे 'अग्रोदक' कहा जाता है।[2]

३. साठ लाख विमानावास (सट्ठि विमाणावाससयसहस्सा)

सौधर्म में बत्तीस लाख और ईशान में अट्ठाईस लाख—इस तरह कुल ६० लाख विमानावास हैं।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७०, ७१।
२. वही, पत्र ७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१
एगसट्ठिमो समवाओ : इकसठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स रिदुमासेणं मिज्जमाणस्स एगसट्ठि उदुमासा पण्णत्ता।	पञ्चसांवत्सरिकस्य युगस्य ऋतुमासेन मीयमानस्य एकषष्ठिः ऋतुमासाः प्रज्ञप्ताः।	१. ऋतुमास से अनुमापित पंचसांवत्सरिक युग के ऋतुमास[1] इकसठ होते हैं।
२. मंदरस्स णं पव्वयस्स पढमे कंडे एगसट्ठिजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य प्रथमं काण्डं एकषष्ठियोजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तम्।	२. मन्दर पर्वत का प्रथम कांड इकसठ हजार योजन ऊंचा है।
३. चंदमंडलेणं एगसट्ठिविभागविभाइए समंसे पण्णत्ते।	चन्द्रमण्डलं एकषष्ठिविभागविभाजितं समांशं प्रज्ञप्तम्।	३. चन्द्रमण्डल (चन्द्रविमान) योजन के इकसठवें भाग से विभाजित होने पर समांश[2] होता है।
४. एवं सूरस्सवि।	एवं सूरस्यापि।	४. सूर्यमण्डल (सूर्यविमान) योजन के इकसठवें भाग से विभाजित होने पर समांश[3] होता है।

टिप्पण

१. ऋतुमास (उदुमासा)

युग में पांच संवत्सर होते हैं—

(१) चन्द्र संवत्सर
(२) चन्द्र संवत्सर
(३) अभिवर्धित संवत्सर
(४) चन्द्र संवत्सर
(५) अभिवर्धित संवत्सर।

प्रत्येक चन्द्रमास $२९\frac{३२}{६२}$ दिन का होता है और एक चन्द्रसंवत्सर $(२९\frac{३२}{६२} X १२)$ $३५४\frac{१२}{६२}$ दिन का होता है। प्रत्येक अभिवर्धितमास $३१\frac{१२१}{१२४}$ दिन का होता है और एक अभिवर्धित संवत्सर $(३१\frac{१२१}{१२४} X १२)$ $३८३\frac{४४}{६२}$ दिन का होता है। इस प्रकार एक युग में पांच संवत्सरों के कुल दिन $(३५४\frac{१२}{६२} X ३ + ३८३\frac{४४}{६२} X २)$ १८३० होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक ऋतुमास तीस दिन का होता है, अतः एक युग के (१८३०÷३०) इकसठ ऋतुमास होते हैं।[१]
देखें—ठाणं ५।२११।

२,३. **समांश (समंसे)**

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (वक्ष चार) में चन्द्रमंडल का आयाम-विष्कंभ योजन का $\frac{५६}{६१}$ भाग तथा सूर्यमंडल का आयाम-विष्कंभ योजन का $\frac{४८}{६१}$ भाग माना है। इसके अनुसार चन्द्रमंडल के छप्पन विभाग (प्रत्येक विभाग योजन का $\frac{१}{६१}$ वां भाग) तथा सूर्यमण्डल के अड़तालीस विभाग (प्रत्येक विभाग योजन का $\frac{१}{६१}$ वां भाग) करने पर समांश (समविभाग) होता है।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२

बावट्ठिमो समवाओ : बासठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पंचसंवच्छरिए णं जुगे बावट्ठि पुण्णिमाओ बावट्ठि अमावसाओ पण्णत्ताओ।	पञ्चसांवत्सरिके युगे द्विषष्ठिः पूर्णिमाः द्विषष्ठिः अमावस्याः प्रज्ञप्ताः।	१. पंच सांवत्सरिक युग में बासठ पूर्णिमाएं और बासठ अमावस्याएं[1] होती हैं।
२. वासुपुज्जस्स णं अरहओ बावट्ठि गणा बावट्ठि गणहरा होत्था।	वासुपूज्यस्य अर्हतः द्विषष्ठिः गणाः द्विषष्ठिः गणधराः आसन्।	२. अर्हत् वासुपूज्य के बासठ गण और बासठ गणधर[2] थे।
३. सुक्कपक्खस्स णं चंदे बावट्ठि भागे दिवसे-दिवसे परिवड्ढइ, ते चेव बहुलपक्खे दिवसे-दिवसे परिहायइ।	शुक्लपक्षस्य चन्द्रः द्विषष्ठिं भागान् दिवसे-दिवसे परिवर्द्धते, तांश्चैव बहुलपक्षे दिवसे-दिवसे परिहीयते।	३ शुक्लपक्ष का चन्द्र प्रतिदिन बासठ भाग बढ़ता है। कृष्णपक्ष का चन्द्र प्रतिदिन बासठ भाग घटता है।[3]
४. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए बावट्ठि-बावट्ठि विमाणा पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः कल्पयोः प्रथमे प्रस्तटे प्रथमावलिकायाः एकैकस्यां दिशि द्विषष्ठिः-द्विषष्ठिः विमानानि प्रज्ञप्तानि।	४. सौधर्म और ईशानकल्प के प्रथम प्रस्तट की, प्रथम आवलिका की प्रत्येक दिशा में बासठ-बासठ विमान हैं।
५. सव्वे वेमाणियाणं बावट्ठि विमाणपत्थडा पत्थडग्गेणं पण्णत्ता।	सर्वे वैमानिकानां द्विषष्ठिः विमान-प्रस्तटाः प्रस्तटाग्रेण प्रज्ञप्ताः।	५. प्रस्तट-परिमाण से वैमानिकों के सर्व विमान-प्रस्तट बासठ[4] हैं।

टिप्पण

१. पंच सांवत्सरिक···अमावस्याएं (पंचसंवच्छरिए···अमावसाओ)

एक युग में तीन चन्द्र-संवत्सर और दो अभिवर्धित संवत्सर होते हैं। प्रत्येक चन्द्र-संवत्सर में बारह चन्द्रमास और प्रत्येक अभिवर्धित संवत्सर में तेरह चन्द्रमास होते है। इस प्रकार तीन चन्द्र-संवत्सरों में छत्तीस पूर्णिमाएं और छत्तीस अमावस्याएं तथा दो अभिवर्धित संवत्सरों में छब्बीस पूर्णिमाएं और छब्बीस अमावस्याएं होती हैं।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७१ :
युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति, तेषु षट्त्रिंशत् पौर्णमास्यो भवन्ति, द्वौ चाभिवर्द्धितसंवत्सरौ भवतः, तत्र चाभिवर्द्धितसंवत्सरस्त्रयोदशभिश्चन्द्रमासैर्भवतीति तयोः षड्विंशतिः पौर्णमास्य इत्येवं द्विषष्टिस्ता भवन्ति इत्येवममावस्या अपीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. बासठ गण और बासठ गणधर (बावट्ठि गणा बावट्ठि गणहरा)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनके छासठ गण और छासठ गणधर बतलाए हैं।[1]

३. शुक्ल पक्ष का चन्द्र···घटता है (सुक्कपक्खस्स णं चंदे···परिहायइ)

वृत्तिकार ने सूर्यप्रज्ञप्ति के दो उद्धरणों से यह बताया है कि पूर्ण चंद्रमंडल के ९३१ भाग होते हैं। इनमें एक भाग अवस्थित रहता है, शेष घटते बढ़ते हैं। शुक्लपक्ष में प्रतिदिन बासठ भाग बढ़ते हैं और पूर्णिमा के दिन वह मंडल पूर्णरूप से प्रकाशित हो जाता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में प्रतिदिन बासठ भाग घटते हैं और अमावस्या के दिन वह मंडल पूर्णरूप से आच्छादित हो जाता है।[2]

४. विमान-प्रस्तट बासठ (बावट्ठि विमाणपत्थडा)

सौधर्म ईशान में तेरह, सनत्कुमार-माहेन्द्र में बारह, ब्रह्मलोक में छह, लान्तक में पांच, शुक्र में चार, सहस्रार में चार, आनत-प्राणत में चार, आरण-अच्युत में चार, ग्रैवेयक में नौ और अनुत्तर में एक—कुल बासठ विमान-प्रस्तट होते हैं।[3]

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६७, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ २११।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ७२।

३. वही, पत्र ७२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३

तेवट्ठिमो समवाओ : तिरसठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. उसभे णं अरहा कोसलिए तेसट्ठि पुव्वसयसहस्साइं महराय-वासमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।	ऋषभः अर्हन् कौशलिकः त्रिषष्ठि पूर्वशतसहस्राणि महाराजवासमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	१. अर्हत् कौशलिक ऋषभ तिरसठ लाख पूर्वों तक महाराज की अवस्था में रह कर मुंड हुए तथा अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।
२. हरिवासरम्मयवासेसु मणुस्सा तेवट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति।	हरिवर्षरम्यकवर्षयोः मनुष्याः त्रिषष्ठ्या रात्रिन्दिवैः सम्प्राप्तयौवनाः भवन्ति।	२. हरिवर्ष और रम्यकवर्ष के मनुष्य तिरसठ दिन-रात में यौवन अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।
३. निसहे णं पव्वए तेवट्ठि सूरोदया पण्णत्ता।	निषधे पर्वते त्रिषष्ठिः सूरोदयाः प्रज्ञप्ताः।	३. निषध पर्वत पर तिरसठ सूर्योदय (सूर्य-मंडल) हैं।[1]
४. एवं नीलवंतेवि।	एवं नीलवत्यपि।	४. नीलवान् पर्वत पर तिरसठ सूर्योदय हैं।[2]

टिप्पण

१,२. तिरसठ सूर्योदय (तेवट्ठि सूरोदया)

जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं। दोनों का मंडल-क्षेत्र ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन का है। इसमें से १८० योजन प्रमाण मंडल-क्षेत्र जम्बूद्वीप में और शेष लवण समुद्र में है। प्रत्येक सूर्य के सारे मंडल १८४ हैं। उनमें से ६५-६५ जम्बूद्वीप में और शेष ११९-११९ लवण समुद्र में हैं। जम्बूद्वीप के ६५-६५ मंडलों में से दो-दो मंडल उसकी जगती पर हैं। शेष ६३ मंडल निषध पर्वत पर और ६३ मंडल नीलवान् पर्वत पर हैं।

निषध पर्वत मेरु के दक्षिण में और पूर्व-पश्चिम में जम्बूद्वीप की जगती तक आयत है और नीलवान् पर्वत मेरु के उत्तर में पूर्व-पश्चिम में जगती तक आयत है।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४
चउसट्ठिमो समवाओ : चौसठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आणाए आराहिया यावि भवइ।	अष्टाष्टमिका भिक्षुप्रतिमा चतुःषष्ठ्या रात्रिन्दिवैः द्वाभ्यां च अष्टाशीत्या भिक्षाशतैः यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातथ्यं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आज्ञया आराधिता चापि भवति।	१. अष्टअष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा चौसठ दिन-रात की अवधि में २८८ भिक्षा-दत्तियों से सूत्र, कल्प, मार्ग और तथ्य के अनुरूप काया से सम्यक् स्पृष्ट, पालित, शोधित, पारित, कीर्तित और आज्ञा से आराधित होती है।
२. चउसट्ठि असुरकुमारावास-सयसहस्सा पण्णत्ता।	चतुःषष्ठिः असुरकुमारावासशतसह-स्राणि प्रज्ञप्तानि।	२. असुरकुमारावास चौसठ लाख हैं।
३. चमरस्स णं रण्णो चउसट्ठि सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	चमरस्य राज्ञः चतुःषष्ठिः सामानिक-साहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	३. राजा चमर के चौसठ हजार सामानिक देव हैं।
४. सव्वेवि णं दधिमुहा पव्वया पल्ला-संठाण-संठिया सव्वत्थ समा दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं, उस्सेहेणं चउसट्ठि-चउसट्ठि जोयणसहस्साइं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि दधिमुखाः पर्वताः पल्यसंस्थान-संस्थिताः सर्वत्र समाः दसयोजन-सहस्राणि विष्कम्भेण, उत्सेधेन चतुःषष्ठिः-चतुःषष्ठिः योजनसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	४. सभी दधिमुख पर्वत पल्य के आकार वाले हैं। वे चौड़ाई में सरीखे हैं—सर्वत्र दस हजार योजन की चौड़ाई वाले हैं और उनकी ऊंचाई चौसठ-चौसठ हजार योजन की है।
५. सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य—तिसु कप्पेसु चउसट्ठि विमाणा-वाससयसहस्सा पण्णत्ता।	सौधर्मेशानयोः ब्रह्मलोके च—त्रिषु कल्पेषु चतुःषष्ठिः विमानावासशत-सहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	५ सौधर्म, ईशान और ब्रह्मलोक—इन तीन कल्पों में चौसठ लाख विमानावास हैं।
६. सव्वस्सवि य णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउसट्ठि-लट्ठीए महग्घे मुत्तामणिमए हारे पण्णत्ते।	सर्वस्यापि च राज्ञः चातुरन्त-चक्रवर्तिनः चतुःषष्ठियष्टिकः महार्घ्यः मुक्तामणि-मयः हारः प्रज्ञप्तः।	६. सभी चातुरन्त चक्रवर्ती राजाओं के चौसठ लड़ियों वाला महार्घ्य मुक्ता-मणिमय हार होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५

पणसट्ठिमो समवाओ : पैंसठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. जंबुद्दीवे णं दीवे पणसट्ठि सूरमंडला पण्णत्ता।	जम्बूद्वीपे द्वीपे पञ्चषष्ठिः सूरमंडलानि प्रज्ञप्तानि।	१. जम्बूद्वीप द्वीप में सूर्यमंडल पैंसठ है।[1]
२. थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।	स्थविरः मौर्यपुत्रः पञ्चषष्ठिवर्षाणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	२. स्थविर मौर्यपुत्र पैंसठ वर्ष[2] तक अगारवास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।
३. सोहम्मवडेंसयस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठि-पणसट्ठि भोमा पण्णत्ता।	सौधर्मावतंसकस्य विमानस्य एकैकस्मिन् बाहौ पञ्चषष्ठिः-पञ्चषष्ठिः भौमानि प्रज्ञप्तानि।	३. सौधर्मावतंसक विमान की प्रत्येक वाहा (शाखा) में पैंसठ-पैंसठ भौम हैं।

टिप्पण

१. सूर्यमंडल पैंसठ हैं (पणसट्ठि सूरमंडला)

देखें—समवाय ६३ का १, २ टिप्पण।

१. पैंसठ वर्ष (पणसट्ठिवासाइं)

यहां मौर्यपुत्र का गृहस्थ-पर्याय पैंसठ वर्ष का बतलाया गया है। ये भगवान् महावीर के सातवें गणधर थे। छठे गणधर मंडितपुत्र मौर्यपुत्र के बड़े भाई थे। उनका गृहस्थ-पर्याय तिरपन वर्ष का था। ये दोनों एक साथ हुए थे। आवश्यकनिर्युक्ति में 'तेवन्न पणसट्ठि' पाठ है। आचार्य मलयगिरि ने इसका व्यत्यय कर मंडितपुत्र का गृहस्थ-पर्याय पैंसठ वर्ष का और मौर्य-पुत्र का तिरपन वर्ष का प्रमाणित किया है।[1] आचार्य अभयदेव सूरि ने भी यही संभावना की है।[2] यदि हम अर्थ की संगति बैठाते हैं तो पाठ विसंगत हो जाता है। अतः यह संभावना अधिक संगत हो सकती है कि लिपि-दोष से 'मंडियपुत्ते' के स्थान में 'मोरियपुत्ते' पाठ हो गया।

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, मलयगिरिवृत्ति, पत्र २३९।

२ समवायांगवृत्ति, पत्र ७३, ७४ :
मोर्यपुत्रो भगवतो महावीरस्य सप्तमो गणधरस्तस्य पञ्चषष्ठिवर्षाणि गृहस्थपर्यायः, आवश्यकेप्येवमेवोक्तो, नवरमेतस्यैव यो बृहत्तरो भ्राता मण्डित-पुत्राभिधानं षष्ठी गणधरः तद्दीक्षादिन एव प्रव्रजितस्तस्यावश्यके त्रिपञ्चाशद्वर्षाणि गृहस्थपर्याय उक्तो न च बोधविषयमुपगच्छति यतो बृहत्तरस्य पञ्चषष्ठिर्युज्यते लघुतरस्य त्रिपञ्चाशदिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६

छावट्ठिमो समवाओ : छासठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. दाहिणड्ढमणुस्सखेत्ता णं छावट्ठिं चंदा पभासेंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा, छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा ।	दाक्षिणार्द्धमनुष्यक्षेत्राः षट्षष्ठिः चन्द्राः प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा, षट्षष्ठिः सूर्याः अतपन् वा तपन्ति वा तपिष्यन्ति वा ।	१. दक्षिणार्द्ध मनुष्य-क्षेत्र के छासठ चन्द्रों ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे। दक्षिणार्द्ध मनुष्य-क्षेत्र के छासठ सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे ।[1]
२. उत्तरड्ढमणुस्सखेत्ता णं छावट्ठिं चंदा पभासेंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा, छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा ।	औत्तरार्द्धमनुष्यक्षेत्राः षट्षष्ठिः चन्द्राः प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा, षट्षष्ठिः सूर्याः अतपन् वा तपन्ति वा तपिष्यन्ति वा ।	२. उत्तरार्द्ध मनुष्य-क्षेत्र के छासठ चन्द्रों ने प्रकाश किया था, करते हैं और करेंगे। उत्तरार्द्ध मनुष्य-क्षेत्र के छासठ सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे ।
३. सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठिं गणा छावट्ठिं गणहरा होत्था ।	श्रेयांसस्य अर्हतः षट्षष्ठिः गणाः षट्षष्ठिः गणधराः आसन् ।	३. अर्हत् श्रेयांस के छासठ गण और छासठ गणधर थे ।
४. आभिणिबोहियनाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता ।	आभिनिबोधिकज्ञानस्य उत्कर्षेण षट्षष्ठि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।	४. आभिनिबोधिक ज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागरोपम की है ।

टिप्पण

१. छासठ चन्द्र ··· छासठ सूर्य (छावट्ठिं चंदा ··· छावट्ठिं सूरिया)

मनुष्य-क्षेत्र में एक सौ बत्तीस चन्द्र और एक सौ बत्तीस सूर्य हैं। उनका क्रम इस प्रकार है—

मनुष्य-क्षेत्र	चन्द्र	सूर्य
जम्बूद्वीप	२	२
लवण समुद्र	४	४
धातकीखंड	१२	१२
कालोदधि समुद्र	४२	४२
पुष्करार्द्ध	७२	७२
	१३२	१३२

मनुष्य-क्षेत्र दो पंक्तियों में विभक्त है—दक्षिण-पंक्ति और उत्तर-पंक्ति। प्रत्येक पंक्ति में छासठ-छासठ चन्द्र-सूर्य हैं।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तसट्ठिमो समवाओ : सड़सठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स नक्खत्तमासेणं मिज्जमाणस्स सत्तसट्ठि नक्खत्तमासा पण्णत्ता।	पञ्चसांवत्सरिकस्य युगस्य नक्षत्रमासेन मीयमानस्य सप्तषष्ठिः नक्षत्रमासाः प्रज्ञप्ताः ।	१. नक्षत्रमास से अनुमापित पंचसांवत्सरिक युग के नक्षत्र-मास सड़सठ होते हैं।[1]
२. हेमवत-हेरण्णवतियाओ णं बाहाओ सत्तसट्ठि-सत्तसट्ठि जोयणसयाइं पणपण्णाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।	हैमवत-हैरण्यवत्यः बाह्वः सप्तषष्ठि-सप्तषष्ठि योजनशतानि पञ्चपञ्चाशत् त्रींश्च भागान् योजनस्य आयामेन प्रज्ञप्ताः ।	२. हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र की बाहाएं ६७५५$\frac{१}{३}$ योजन लम्बी हैं।
३. मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोयमस्स णं दोवस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तसट्ठि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यात् चरमान्ताद् 'गोतमस्य' द्वीपस्य पौरस्त्यं चरमान्तं, एतत् सप्तषष्ठि योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	३. मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से गोतम द्वीप के पूर्वी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सड़सठ हजार योजन का है।
४. सव्वेसिपि णं नक्खत्ताणं सीमाविक्खंभेणं सत्तसट्ठि भागं भइए समंसे पण्णत्ते।	सर्वेषामपि नक्षत्राणां सीमाविष्कम्भः सप्तषष्ठ्या भागैः भाजितः समांशः प्रज्ञप्तः ।	४. सभी नक्षत्रों का सीमा-विष्कंभ सड़सठ की संख्या से भाजित करने पर समांश होता है।

टिप्पण

१. नक्षत्र-मास सड़सठ होते हैं (सत्तसट्ठि नक्खत्तमासा पण्णत्ता)

चन्द्रमा जितने समय में सम्पूर्ण नक्षत्र-मंडल का भोग करता है, उसे 'नक्षत्र-मास' कहते हैं। वह २७$\frac{२१}{६७}$ दिन का होता है। पंच सांवत्सरिक युग में तीन चन्द्र-संवत्सर तथा दो अभिवर्धित संवत्सर होते हैं। उसके कुल १८३० दिन होते हैं। इसके अनुसार इस एक युग में (१८३० ÷ २७$\frac{२१}{६७}$) सड़सठ नक्षत्र-मास होते हैं।

विशेष विवरण के लिए देखें—ठाणं ५/२१०-२१३, टिप्पण पृ० ६४८, ६४९।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सीमा-विष्कंभ (सीमाविक्खंभेणं)

नक्षत्र अट्ठाईस हैं। प्रत्येक नक्षत्र एक अहोरात्र में अमुक-अमुक क्षेत्र का अवगाहन करता है। उस क्षेत्र-अवगाहना में जो नक्षत्र जितने क्षेत्र तक चन्द्रमा के साथ योग करता है, वह उस नक्षत्र का क्षेत्र की दृष्टि से सीमा-विष्कंभ होता है।

अभिजित् नक्षत्र द्वारा एक अहोरात्र में अवगाढ़ क्षेत्र के यदि हम सडसठ भाग करते हैं तो नक्षत्र इक्कीस भाग तक चन्द्र के साथ योग करता है अर्थात् क्षेत्र की दृष्टि से अभिजित् नक्षत्र का सीमा-विष्कंभ $\frac{२१}{६७}$ है। इसी प्रकार अन्य नक्षत्रों का क्षेत्र की दृष्टि से तथा काल की दृष्टि से सीमा-विष्कंभ इस प्रकार हैं[1]—

नक्षत्र	क्षेत्र-सीमा	काल-सीमा
१. अभिजित्	$\frac{२१}{६७}$	$९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त्त
२. शतभिषग्, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा	$\frac{३३\frac{१}{२}}{६७}$	१५ मुहूर्त्त
३. उत्तरभद्रपदा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पुनर्वसु, रोहिणी, विशाखा	$\frac{१००\frac{१}{२}}{६७}$	४५ मुहूर्त्त
४. शेष पन्द्रह नक्षत्र	$\frac{६७}{६७}=१$	३० मुहूर्त्त

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८
अट्ठसट्ठिमो समवाओ : अड़सठवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. धायइसंडे णं दीवे अट्ठसट्ठि चक्कवट्टिविजया अट्ठसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ।	धातकीषण्डे द्वीपे अष्टषष्ठिः चक्रवर्त्तिविजयाः अष्टषष्ठिः राजधान्यः प्रज्ञप्ताः ।	१. धातकीखंड द्वीप में चक्रवर्त्तियों के अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियां हैं।
२. धायइसंडे णं दीवे उक्कोसपए अट्ठसट्ठि अरहंता समुप्पज्जिंसु वा समुप्पज्जंति वा समुप्पज्जिस्संति वा।	धातकीषण्डे द्वीपे उत्कर्षपदे अष्टषष्ठिः अर्हन्तः समुदपदिषत वा समुत्पद्यन्ते वा समुत्पत्स्यन्ते वा ।	२. धातकीखंड द्वीप में उत्कृष्टतः अड़सठ अर्हत् उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।
३. एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।	एवं चक्रवर्त्तिनः बलदेवाः वासुदेवाः ।	३. इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी अड़सठ-अड़सठ उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।[1]
४. पुक्खरवरदीवड्ढे णं अट्ठसट्ठि चक्कवट्टिविजया अट्ठसट्ठि रायहाणीओ पण्णत्ताओ।	पुष्करवरद्वीपार्द्धे अष्टषष्ठिः चक्रवर्त्तिविजयाः अष्टषष्ठिः राजधान्यः प्रज्ञप्ताः ।	४. अर्द्धपुष्करवरद्वीप में चक्रवर्त्तियों के अड़सठ विजय और अड़सठ राजधानियां हैं।
५. पुक्खरवरदीवड्ढे णं उक्कोसपए अट्ठसट्ठि अरहंता समुप्पज्जिंसु वा समुप्पज्जंति वा समुप्पज्जिस्संति वा।	पुष्करवरद्वीपार्द्धे उत्कर्षपदे अष्टषष्ठिः अर्हन्तः समुदपदिषत वा समुत्पद्यन्ते वा समुत्पत्स्यन्ते वा ।	५. अर्द्धपुष्करवरद्वीप में उत्कृष्टत अड़सठ अर्हत् उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।
६. एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा।	एवं चक्रवर्त्तिनः बलदेवाः वासुदेवाः ।	६. इसी प्रकार चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव भी अड़सठ-अड़सठ उत्पन्न हुए थे, होते हैं और होंगे।
७. विमलस्स णं अरहओ अट्ठसट्ठि समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था।	विमलस्य अर्हतः अष्टषष्ठिः श्रमणसाहस्र्यः उत्कृष्टा श्रमणसम्पद् आसीत् ।	७. अर्हत् विमल के उत्कृष्ट श्रमण-सम्पदा अड़सठ हजार श्रमणों की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र ३

प्रस्तुत आलापक का उल्लेख है कि धातकीषंड में उत्कृष्टतः अड़सठ चक्रवर्ती, अड़सठ वासुदेव होते हैं। वृत्तिकार ने इस संख्या की आलोचना प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि अड़सठ चक्रवर्ती और वासुदेव एक साथ होना संभव नहीं है। जहां चक्रवती होते हैं वहा वासुदेव नहीं होते और जहां वासुदेव होते हैं वहा चक्रवर्ती नहीं होते। यह संख्या अड़सठ विजयों में उनके होने की संभावना से दी गई है। अन्यथा साठ चक्रवर्ती और आठ वासुदेव या साठ वासुदेव और आठ चक्रवर्ती ही एक साथ भिन्न-भिन्न विजयों में हो सकते हैं। अड़सठ कभी नहीं होते।[1]

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति (७/१९९, २००) में जंबूद्वीप में तीस चक्रवर्ती, तीस वासुदेव होने का उल्लेख प्राप्त है। इससे भी उपरोक्त समालोचना ही सिद्ध होती है। समवाय ३४/४ में तथा जंम्बूद्वीप में उत्कृष्टतः चौंतीस तीर्थंकरों के होने का ही उल्लेख है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७५, ७६ :
यद्यपि चक्रवर्तिनां वासुदेवानां नैकदा अष्टषष्टिः सम्भवति यतो जघन्यतोऽप्येकैकस्मिन् महाविदेहे चतुर्णां चतुर्णां तीर्थंकरादीनामवश्यं भावः स्थानाङ्गादिष्वभिहितः, न चैकक्षेत्रे चक्रवर्ती वासुदेवश्चैकदा भवतोऽतः अष्टषष्टिरेवोत्कर्षतश्चक्रवर्तिनां वासुदेवानां चाष्टषष्ट्यां विजयेषु भवति तथापीह सूत्रे एक समयेनेत्यविशेषणात् कालभेदभाविनां चक्रवर्त्यादीनां विजयभेदेनाष्टषष्टिरविरुद्धा, अभिलप्यन्ते च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्या भारतकच्छाद्यभिलापेन चक्रवर्तिन इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६९

एगूणसत्तरिमो समवाओ : उनहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. समयखेत्ते णं मंदरवज्जा एगूणसत्तरिं वासा वासधरपव्वया पण्णत्ता, तं जहा—पणतीसं वासा, तीसं वासहरा, चत्तारि उसुयारा।	समयक्षेत्रे मन्दरवर्जाः एकोनसप्ततिः वर्षाणि वर्षधरपर्वताः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पञ्चत्रिंशद् वर्षाणि, त्रिंशद् वर्षधराः, चत्वारः इषुकाराः।	१. समयक्षेत्र में उनहत्तर वर्ष (क्षेत्र) और मेरुवर्जित उनहत्तर वर्षधर पर्वत हैं, जैसे—पैंतीस वर्ष, तीस वर्षधर और चार इषुकार[1]।
२. मंदरस्स पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोयमदीवस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं एगूणसत्तरिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्ताद् गौतमद्वीपस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् एकोनसप्ततिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	२ मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गौतम द्वीप के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर उनहत्तर हजार योजन का है।
३. मोहणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं कम्माणं एगूणसत्तरिं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	मोहनीयवर्जानां सप्तानां कर्मणां एकोनसप्ततिः उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	३. मोहनीय-वर्जित शेष सात कर्मों की उत्तर-प्रकृतियां उनहत्तर हैं[2]।

टिप्पण

१. पैंतीस वर्ष…इषुकार (पणतीसं वासा…उसुयारा)

पैंतीस वर्ष ये हैं—पांच मेरु पर्वतों से प्रतिबद्ध सात भरत, सात हैमवत, सात हरिवर्ष, सात रम्यक्वर्ष और सात महाविदेह।

तीस वर्षधर पर्वत ये हैं—पांच मेरु पर्वतों से प्रतिबद्ध छह-छह हिमवत वर्षधर पर्वत। चार इषुकार।

२. उत्तर-प्रकृतियां उनहत्तर (एगूणसत्तरिं उत्तरपगडीओ)

ज्ञानावरणीय कर्म की पांच, दर्शनावरणीय कर्म की नौ, वेदनीय कर्म की दो, आयुष्य कर्म की चार, नामकर्म की बयालीस, गोत्र कर्म की दो और अन्तराय कर्म की पांच—ये उनहत्तर उत्तर-प्रकृतियां हैं।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०

सत्तरिमो समवाओ : सत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वीतिक्कंते सत्तरिए राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ।	श्रमणः भगवान् महावीरः वर्षाणां सविंशतिरात्रे मासे व्यतिक्रान्ते सप्तत्यां रात्रिन्दिवेषु शेषेषु वर्षावासं परिवसति।	१. श्रमण भगवान् महावीर वर्षाऋतु के पचास दिन-रात बीत जाने तथा सत्तर दिन-रात शेष रहने पर वर्षावास के लिए पर्युषित (स्थित) हुए[1]।
२. पासे णं अरहा पुरिसादाणीए सत्तरिं वासाइं बहुपडिपुण्णाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः सप्तति वर्षाणि बहुप्रतिपूर्णानि श्रामण्यपर्यायं प्राप्य सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व सम्पूर्ण सत्तर वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत तथा सर्वदुःखो से रहित हुए।
३. वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	वासुपूज्यः अर्हन् सप्तति धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. अर्हत् वासुपूज्य सत्तर धनुष्य ऊंचे थे।
४. मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ अबाहूणिया कम्मठिई कम्मणिसेगे पण्णत्ते।	मोहनीयस्य कर्मणः सप्तति सागरोपम-कोटिकोटीः अबाधोनिका कर्मस्थितिः कर्मनिषेकः प्रज्ञप्तः।	४. मोहनीय कर्म की अबाधाकाल से न्यून (सात हजार वर्ष कम) सत्तर कोडाकोड सागर की स्थिति उसका निषेक-काल[2] (उदयकाल) होता है।
५. माहिंदस्स णं देविंदस्स देवरण्णो सत्तरिं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	माहेन्द्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य सप्ततिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	५. देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र के सत्तर हजार समानिक देव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. पर्युषित हुए (पज्जोसवेइ)

प्राचीन परम्परा के अनुसार वर्षावास में मुनि पचास दिन तक उपयुक्त वसति की गवेषणा के लिए इधर-उधर आ-जा सकता है। किन्तु भाद्रव शुक्ला पंचमी के दिन उसे जो स्थान प्राप्त हो उसी में स्थित होना पड़ता है। इसे पर्युषणा कहते हैं। यदि कोई स्थान न मिले तो वृक्ष के नीचे ही उसे स्थित हो जाना चाहिए।[1]

२. अबाधाकाल…निषेक-काल (अबाहूणिया…कम्मणिसेगे)

कर्म की स्थिति दो प्रकार की होती है—कर्मत्वापादनात्मक और अनुभवात्मक। जीव जिस क्षण में कर्म पुद्गलों का बंध करता है उसी क्षण से उनमें फलदान की क्षमता उत्पन्न नहीं होती। प्रारम्भ में उनका केवल कर्मात्मक रूप बनता है। इस फलदान रहित स्थिति को 'अबाधाकाल' कहा जाता है। बाधा का अर्थ 'अन्तर' है। कर्म-बन्ध और कर्मोदय के बीच का काल 'अबाधा-काल' है। इसके पूर्ण होने पर कर्म-पुद्गलों का निषेक (उदय-योग्य-रचना) होता है। अबाधा-काल में केवल कर्मत्व का आपादान होता है, अनुभव नहीं होता। इस तथ्य के आधार पर स्थिति के दो रूप बन जाते हैं। मोहनीय कर्म की कर्मात्मक स्थिति सत्तर कोडाकोड सागरोपम की है। उसका अबाधा-काल सात हजार वर्ष का है। इसलिए उसकी अबाधात्मक या निषेकात्मक स्थिति सात हजार वर्ष कम सत्तर कोडाकोड सागरोपम की है।

इस सूत्र की दूसरी अर्थ-परम्परा भी प्राप्त होती है। उसके अनुसार मोहनीय कर्म की अबाधा-काल सहित स्थिति सत्तर कोडाकोड सागर और सात हजार वर्ष की है। उसका निषेक-काल सत्तर कोडाकोड सागर का है। इस स्थिति में उसका सात हजार वर्ष का अबाधा-काल छूट जाता है।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७६ :

वर्षाणां—चतुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिरात्रे—विंशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः, सप्तत्यां च रात्रिदिनेषु शेषेषु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः वर्षास्वावासो वर्षावासः—वर्षावस्थानं……परिवसति सर्वथा वासं करोति। पञ्चाशति प्राक्तनेषु दिवसेषु तथा-विधवसत्यभावादिकारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयमिति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७१

एक्कसत्तरिमो समवाओ : इकहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्वबाहिराओ मंडलाओ सूरिए आउट्टिं करेइ।	चतुर्थस्य चन्द्रसंवत्सरस्य हेमन्तानां एकसप्तत्यां रात्रिन्दिवेषु व्यतिक्रान्तेषु सर्वबाह्यात् मण्डलात् सूर्यः आवृत्तिं करोति।	१. चौथे चन्द्र-सम्वत्सर के हेमन्त ऋतु के इकहत्तर दिन-रात बीतने पर सूर्य सर्व-बाह्यमण्डल से आवृत्ति करता है[1]।
२. वीरियप्पवायस्स णं एक्कसत्तरिं पाहुडा पण्णत्ता।	वीर्यप्रवादस्य एकसप्ततिः प्राभृतानि प्रज्ञप्तानि।	२. वीर्यप्रवाद के प्राभृत इकहत्तर हैं।
३. अजिते णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	अजितः अर्हन् एकसप्ततिं पूर्वशतसहस्राणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	३. अर्हत् अजित इकहत्तर लाख पूर्वों तक[2] गृहस्थावास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।
४. सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	सगरो राजा चातुरन्तचक्रवर्त्ती एकसप्ततिं पूर्वशतसहस्राणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	४. चातुरन्त चक्रवर्ती राजा सगर इकहत्तर लाख पूर्वों तक गृहस्थावास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।

टिप्पण

१. सूत्र १:

एक युग में पांच संवत्सर होते हैं। उनमें पहला और दूसरा चन्द्र-संवत्सर, तीसरा अभिवर्धित संवत्सर, चौथा चन्द्र-संवत्सर और पांचवां अभिवर्धित संवत्सर होता है। चन्द्र-संवत्सर में $२९\frac{३२}{६२}$ दिन का चन्द्रमास होता है। इसको बारह से गुणित करने पर एक चन्द्र-संवत्सर और तेरह से गुणित करने पर एक अभिवर्धित संवत्सर होता है। इस प्रकार इन तीनों (चन्द्र, चन्द्र और अभिवर्धित) संवत्सरों के कुल दिन $१०९२\frac{६}{६२}$ होते हैं। एक सूर्य-संवत्सर के ३६६ दिन होते हैं। तीनसूर्य-संवत्सरों के १०९८ दिन होते हैं। तीन सूर्य-संवत्सरों की अपेक्षा तीन चन्द्र-संवत्सरों में $५\frac{५६}{६२}$ दिन न्यून होते हैं। तीन सूर्य-संवत्सर श्रावण कृष्णा छठ को पूरे होते हैं और तीन चन्द्र-संवत्सर आषाढ़ पूर्णिमा को। सूर्य श्रावण कृष्णा सप्तमी को दक्षिणायन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में गति करता हुआ चन्द्र युग के चौथे वर्ष की चतुर्थ मास की कार्तिकी पूर्णिमा को ११२वें मंडल में पहुंचता है। चौथे चन्द्र-संवत्सर में हेमन्त ऋतु मृगशिर कृष्णा १ को प्रारम्भ होता है। सूर्य शेष मंडलों को हेमन्त ऋतु के ७१ दिनो में पार करता हैं, अर्थात् वह माघ शुक्ला १३ को दक्षिणायन से उत्तरायण में गति करता है।

ज्योतिष्करंड में पांच युग संवत्सर संबंधी उत्तरायण और दक्षिणायन की तिथियों का अनुक्रम इस प्रकार है[1]—

	उत्तरायण	**दक्षिणायन**
	माघमास	**श्रावण मास**
पहली आवृत्ति	कृष्णा सप्तमी	कृष्णा एकम
दूसरी आवृत्ति	शुक्ला चतुर्थी	कृष्णा त्रयोदशी
तीसरी आवृत्ति	कृष्णा एकम	शुक्ला दशम
चौथी आवृत्ति	कृष्णा त्रयोदशी	कृष्णा सप्तमी
पांचवीं आवृत्ति	शुक्ला दशम	शुक्ला चतुर्थी

२. इकहत्तर लाख पूर्वो तक (एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं)

ये अठारह लाख पूर्व तक कुमार अवस्था नें और तिरपन लाख पूर्व तथा एक पूर्वाङ्ग तक राज्य का पालन करते रहे। जो एक पूर्वाङ्ग अधिक है, उसकी यहां विवक्षा नहीं की गई है।[2]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७७।

२. वही, पत्र ७७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२
बावत्तरिमो समवाओ : बहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. बावत्तरिं सुवण्णकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	द्विसप्ततिः सुपर्णकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	१. सुपर्णकुमार देवों के बहत्तर लाख आवास[1] हैं।
२. लवणस्स समुद्दस्स बावत्तरिं नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति।	लवणस्य समुद्रस्य द्विसप्ततिः नागसाहस्र्यः बाह्यां वेलां धारयन्ति।	२. लवण समुद्र की बाह्य वेला[2] को बहत्तर हजार नागकुमार देव धारण करते हैं।
३. समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	श्रमणः भगवान् महावीरः द्विसप्ततिं वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	३. श्रमण भगवान् महावीर बहत्तर वर्ष के सर्व आयुष्य का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
४. थेरे णं अयलभाया बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिब्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः अचलभ्राता द्विसप्ततिं वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	४. स्थविर अचलभ्राता[3] बहत्तर वर्ष के सर्व आयुष्य का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत्त हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
५. अब्भंतरपुक्खरद्धे णं बावत्तरिं चंदा पभासिंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा, बावत्तरिं सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा।	आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे द्विसप्ततिः चन्द्राः प्राभासिषत वा प्रभासन्ते वा प्रभासिष्यन्ते वा, द्विसप्ततिः सूर्याः अतपन् वा तपन्ति वा तपिष्यन्ति वा।	५. आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में बहत्तर चन्द्र प्रभासित हुए थे, होते हैं और होंगे। आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध में बहत्तर सूर्य तपे थे, तपते हैं और तपेंगे।
६. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स बावत्तरिं पुरवरसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः द्विसप्ततिः पुरवरसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	६. प्रत्येक चातुरन्त चक्रवर्ती राजा के बहत्तर हजार पुर होते हैं।
७. बावत्तरिं कलाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	द्विसप्ततिः कलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—	७. कलाएं बहत्तर हैं[4], जैसे—
१. लेहं	लेखः	१. लेख[5]—लिपि कला और लेख विषयक कला।
२. गणियं	गणितं	२. गणित—संख्या कला।
३. रूवं	रूपं	३. रूप—रूप निर्माण कला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. नट्टं	नृत्यं	४. नाट्य—ताण्डव
५. गीयं	गीतं	५. गीत—गायन विज्ञान
६. वाइयं	वाद्यं	६. वाद्य—वाद्य विज्ञान
७. सरगयं	स्वरगतं	७. स्वरगत—स्वर विज्ञान
८. पुक्खरगयं	पुष्करगतं	८. पुष्करगत—मृदङ्ग आदि का विज्ञान
९. समतालं	समतालं	९. समताल—ताल विज्ञान
१०. जूयं	द्यूतं	१०. द्यूत—द्यूत कला
११. जणवायं	जनवादः	११. जनवाद—विशेष प्रकार की द्यूत कला।
१२. पोरेकव्वं	पुरःकाव्यं	१२. पुरःकाव्य—शीघ्रकवित्व
१३. अट्ठावयं	अष्टापदं	१३. अष्टापद—शतरंज खेलने की कला।
१४. दगमट्टियं	दकमृत्तिका	१४. दकमृत्तिका—जल-शोधन की कला।
१५. अण्णविहिं	अन्नविधिः	१५. अन्नविधि—अन्न-संस्कार कला
१६. पाणविहिं	पानविधिः	१६. पानविधि—जल-संस्कार कला
१७. लेणविहिं	लयनविधिः	१७. लयनविधि—पर्वतीय गृह-निर्माण कला।
१८. सयणविहिं	शयनविधिः	१८. शयनविधि—शय्या-विज्ञान या शयन-विज्ञान।
१९. अज्जं	आर्या	१९. आर्या—आर्या-छन्द
२०. पहेलियं	प्रहेलिका	२०. प्रहेलिका—पहेली रचने की कला
२१. मागहियं	मागधिका	२१. मागधिका—मागधिका छन्द
२२. गाहं	गाथा	२२. गाथा—संस्कृत से इतर भाषाओं में निबद्ध आर्या छन्द।
२३. सिलोगं	श्लोकः	२३. श्लोक—अनुष्टुप् छन्द
२४. गंधजुत्तिं	गन्धयुक्तिः	२४. गंधयुक्ति—पदार्थ को सुगंधित करने की कला।
२५. मधुसित्थं	मधुसिक्थं	२५. मधुसिक्थ—मोम के प्रयोग की कला।
२६. आभरणविहिं	आभरणविधिः	२६. आभरणविधि—अलंकरण बनाने या पहनने की कला।
२७. तरुणीपडिकम्मं	तरुणीप्रतिकर्म	२७. तरुणीप्रतिकर्म—तरुणी की प्रसाधन कला।
२८. इत्थीलक्खणं	स्त्रीलक्षणं	२८. स्त्रीलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त स्त्रीलक्षण विज्ञान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. पुरिसलक्खणं	पुरुषलक्षणं	२९. पुरुषलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त पुरुष-लक्षण विज्ञान।
३०. हयलक्खणं	हयलक्षणं	३०. हयलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त हय-लक्षण विज्ञान।
३१. गयलक्खणं	गजलक्षणं	३१. गजलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त गज-लक्षण विज्ञान।
३२. गोणलक्खणं	गोलक्षणं	३२. लोलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त गोलक्षण विज्ञान।
३३. कुक्कुडलक्खणं	कुक्कुटलक्षणं	३३. कुक्कुटलक्षण— सामुद्रशास्त्रोक्त कुक्कुटलक्षण विज्ञान।
३४. मिंढयलक्खणं	मेषलक्षणं	३४. मेषलक्षण— सामुद्रशास्त्रोक्त मेषलक्षण विज्ञान।
३५. चक्कलक्खणं	चक्रलक्षणं	३५. चक्रलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त चक्रलक्षण विज्ञान।
३६. छत्तलक्खणं	छत्रलक्षणं	३६. छत्रलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त छत्रलक्षण विज्ञान।
३७. दंडलक्खणं	दण्डलक्षणं	३७. दंडलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त दंडलक्षण विज्ञान।
३८. असिलक्खणं	असिलक्षणं	३८. असिलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त असिलक्षण विज्ञान।
३९. मणिलक्खणं	मणिलक्षणं	३९. मणिलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त मणिलक्षण विज्ञान।
४०. काकणिलक्खणं	काकिणीलक्षणं	४०. काकिणीलक्षण—ज्योतिष्शास्त्रोक्त काकिणीलक्षण विज्ञान।
४१. चम्मलक्खणं	चर्मलक्षणं	४१. चर्मलक्षण— ज्योतिष्शास्त्रोक्त चर्मलक्षण विज्ञान।
४२. चंदचरियं	चन्द्रचरितं	४२. चन्द्रचरित—चन्द्रगति-विज्ञान
४३. सूरचरियं	सूरचरितं	४३. सूर्यचरित—सूर्यगति-विज्ञान
४४. राहुचरियं	राहुचरितं	४४. राहुचरित—राहुगति-विज्ञान
४५. गहचरियं	ग्रहचरितं	४५. ग्रहचरित—ग्रहगति-विज्ञान
४६. सोभाकरं	सोभाकरः	४६. सोभाकर—सौभाग्य को जानने की कला।
४७. दोभाकरं	दुर्भाकरः	४७. दुर्भाकर—दुर्भाग्य को जानने की कला।
४८. विज्जागयं	विद्यागतं	४८. विद्यागत—रोहिणी, प्रज्ञप्ति आदि विद्या-विज्ञान।
४९. मंतगयं	मन्त्रगतं	४९. मंत्रगत—मंत्र-विज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. रहस्सगयं	रहस्यगतं	५०. रहस्यगत—गुप्त वस्तुओं को जानने की कला।
५१. सभासं	सभासः	५१. सभास—वस्तुओं को प्रत्यक्ष जानने की कला।
५२. चारं	चारः	५२. चार—ज्योतिष्-चक्र का गति-विज्ञान
५३. पडिचारं	प्रतिचारः	५३. प्रतिचार—ग्रहों के प्रतिकूल गति का विज्ञान अथवा चिकित्सा विज्ञान।
५४. वूहं	व्यूहं	५४. व्यूह—व्यूह रचने की कला
५५. पडिवूहं	प्रतिव्यूहं	५५. प्रतिव्यूह—व्यूह के प्रति व्यूह रचने की कला।
५६. खंधावारमाणं	स्कन्धावारमानं	५६. स्कन्धावारमान— सैन्यसंस्थान-शास्त्र।
५७. नगरमाणं	नगरमानं	५७. नगरमान—नगर-शास्त्र
५८. वत्थु माणं	वस्तुमानं	५८. वस्तुमान—वास्तु-शास्त्र
५९. खंधावारनिवेसं	स्कन्धावारनिवेशः	५९. स्कन्धावारनिवेश— सैन्यसंस्थान रचना की कला।
६०. नगरनिवेसं	नगरनिवेशः	६०. नगरनिवेश—नगर-निर्माण कला
६१. वत्थुनिवेसं	वास्तुनिवेशः	६१. वास्तुनिवेश—ग्रह-निर्माण कला
६२. ईसत्थं	इष्वस्त्रं	६२. इषुअस्त्र—दिव्य अस्त्र संबंधी शास्त्र।
६३. छरुप्पगयं	त्सरुप्रगतं	६३. त्सरुप्रगत—खड्गशास्त्र
६४. आससिक्खं	अश्वशिक्षा	६४. अश्वशिक्षा
६५. हत्थिसिक्खं	हस्तिशिक्षा	६५. हस्तिशिक्षा
६६. धणुव्वेयं	धनुर्वेदः	६६. धनुर्वेद
६७. हिरण्णपागं सुवण्णपागं मणिपागं धातुपागं	हिरण्यपाकः सुवर्णपाकः मणिपाकः धातुपाकः	६७. हिरण्यपाक—रजत-सिद्धि की कला। सुवर्णपाक—स्वर्ण-सिद्धि की कला मणिपाक—रत्न-सिद्धि की कला धातुपाक—धातु-सिद्धि की कला
६८. बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजुद्धं जुद्धातिजुद्धं	बाहुयुद्धं दण्डयुद्धं मुष्टियुद्धं अस्थियुद्धं युद्धं नियुद्धं युद्धातियुद्धं	६८. बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, अस्थियुद्ध, युद्ध, नियुद्ध, युद्धातियुद्ध।
६९. सुत्तखेड्डं नालियाखेड्डं वट्टखेड्डं	सूत्रखेटः नालिकाखेटः वृत्तखेलः	६९. सूत्रखेट—सूत्रक्रीड़ा नालिकाखेट—नली के द्वारा पाशा डाल कर खेला जाने वाला जुआ। वृत्तखेल—वृत्तक्रीड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं पत्तगच्छेज्जं	पत्रच्छेद्यं कटकच्छेद्यं पत्रकच्छेद्यं	७०. पत्रच्छेद्य—निशानेबाजी, पत्रवेध। कटकच्छेद्य—क्रमपूर्वक छेदने की कला। पत्रकच्छेद्य—पुस्तक के पत्तों—ताड़-पत्र आदि को छेदने की कला।
७१. सज्जीवं निज्जीवं	सजीवः निर्जीवः	७१. सजीवकरण—मृत धातु को सजीव करना—उसको अपने मौलिक रूप में ला देना। निर्जीवकरण—धातुमारण कला
७२. सउणरुयं	शकुनरुतम्।	७२. शकुनरुत—शकुनशास्त्र।
८. सम्मुच्छिमखयरपंचिदिय तिरिक्ख-जोणियाणं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता।	सम्मूर्च्छिमखचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनि-कानां उत्कर्षेण द्विसप्तर्तिं वर्षसहस्राणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।	८. सम्मूर्च्छिमखेचरपञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च-योनिक जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बहत्तर हजार वर्षों की है।

टिप्पण

१. बहत्तर लाख आवास (बावत्तरिं···आवाससयसहस्सा)

दक्षिण निकाय के सुपर्णकुमारों के अड़तीस लाख और उत्तर निकाय वालों के चौंतीस लाख आवास हैं।[1]

२. बाह्य वेला (बाहिरियं वेलं)

यह वेला धातकीखंडद्वीपाभिमुखी है। यह सोलह हजार योजन ऊंची और दस हजार योजन चौड़ी है।[2]

३. अचलभ्राता (अयलभाया)

ये भगवान् महावीर के नौवें गणधर थे। ये ४६ वर्ष गृहस्थावस्था में, १२ वर्ष छद्मस्थ अवस्था में और १४ वर्ष केवली अवस्था में रहे।

४. कलाएं बहत्तर हैं (बावत्तरीं कलाओ)

प्रस्तुत आगम के अतिरिक्त ज्ञाताधर्मकथा, औपपातिक, राजप्रश्नीय और जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की वृत्ति में भी बहत्तर कलाओं का कुछ नाम और क्रम-भेद के साथ उल्लेख मिलता है। उनका तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार है—

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७८।
सुवर्णकुमाराणां द्विसप्ततिर्लक्षाणि भवनानि, कथं ? दक्षिणनिकाये अष्टत्रिंशदुत्तरनिकाये तु चतुस्त्रिंशदिति।

२. वही, पत्र ७८।
वेलां—षोडशसहस्रप्रमाणामुत्सेधतो विष्कम्भतश्च दशसहस्रमानां लवणजलधिशिखां बाह्यां धातकीखण्डद्वीपाभिमुखीम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवाय	ज्ञाताधर्मकथा १/१/८५	औपपातिक १४६	राजप्रश्नीय ८०५	जम्बू० वृत्ति पत्र १३६-३७
१. लेहं	लेहं	लेहं	लेहं	लेहं
२. गणियं	गणियं	गणियं	गणियं	गणियं
३. रूवं	रूवं	रूवं	रूवं	रूवं
४. नट्टं	नट्टं	णट्टं	नट्टं	नट्टं
५. गीयं	गीयं	गीयं	गीयं	गीअं
६. वाइयं	वाइयं	वाइयं	वाइयं	वाइयं
७. सरगयं	सरगयं	सरगयं	सरगयं	सरगयं
८. पुक्खरगयं	पोक्खरगयं	पुक्खरगयं	पुक्खरगयं	पोक्खरगयं
९. समतालं	समतालं	समतालं	समतालं	समतालं (तालमानं)
१०. जूयं	जूयं	जूयं	जूयं	जूयं
११. जणवायं	जणवायं	जणवायं	जणवायं	जणवायं
१२. पोरेकव्वं	पासयं	पासगं	पासगं	पासयं
१३. अट्ठावयं	अट्ठावयं	अट्ठावयं	अट्ठावयं	अट्ठावयं
१४. दगमट्टियं	पोरेकव्वं	पोरेकव्वं	पोरेकव्वं	पोरेकव्वं
१५. अण्णविहिं	दगमट्टियं	दगमट्टियं	दगमट्टियं	दगमट्टियं
१६. पाणविहिं	अण्णविहिं	अण्णविहिं	अन्नविहिं	अन्नविहिं
१७. लेणविहिं	पाणविहिं	पाणविहिं	पाणविहिं	पाणविहिं
१८. सयणविहिं	वत्थविहिं	वत्थविहिं	वत्थविहिं	वत्थविहिं
१९. अज्जं	विलेवणविहिं	विलेवणविहिं	विलेवणविहिं	विलेवणविहिं
२०. पहेलियं	सयणविहिं	सयणविहिं	सयणविहिं	सयणविहिं
२१. मागहियं	अज्जं	अज्जं	अज्जं	अज्जं
२२. गाहं	पहेलियं	पहेलियं	पहेलियं	पहेलियं
२३. सिलोगं	मागहियं	मागहियं	मागहियं	मागहियं
२४. गंधजुत्ति	गाहं	गाहं	गाहं	गाहं
२५. मधुसित्थं	गीइयं	गीइयं	गीइयं	गीइयं
२६. आभरणविहिं	सिलोयं	सिलोयं	सीलोगं	सीलोगं
२७. तरुणीपडिकम्मं	हिरण्णजुत्ति	हिरण्णजुत्ति	हिरण्णजुत्ति	हिरण्णजुत्ति
२८. इत्थीलक्खणं	सुवण्णजुति	सुवण्णजुत्ति	सुवण्णजुत्ति	सुवण्णजुत्ति
२९. पुरिसलक्खणं	चुण्णजुत्ति	गंधजुत्ति	आभरणविहिं	चुण्णजुत्ति
३०. हयलक्खणं	आभरणविहिं	चुण्णजुत्ति	तरुणीपडिकम्मं	आभरणविहिं
३१. गयलक्खणं	तरुणीपडिकम्मं	आभरणविहिं	इत्थिलक्खणं	तरुणीपरिकम्मं
३२. गोणलक्खणं	इत्थिलक्खणं	तरुणीपडिकम्मं	पुरिसलक्खणं	इत्थिलक्खणं
३३. कुक्कुडलक्खणं	पुरिसलक्खणं	इत्थिलक्खणं	हयलक्खणं	पुरिसलक्खणं
३४. मिंढयलक्खणं	हयलक्खणं	पुरिसलक्खणं	गयलक्खणं	हयलक्खणं
३५. चक्कलक्खणं	गयलक्खणं	हयलक्खणं	गोणलक्खणं	गयलक्खणं
३६. छत्तलक्खणं	गोणलक्खणं	गयलक्खणं	कुक्कुडलक्खणं	गोणलक्खणं
३७. दंडलक्खणं	कुक्कुडलक्खणं	गोणलक्खणं	छत्तलक्खणं	कुक्कुडलक्खणं
३८. असिलक्खणं	छत्तलक्खणं	कुक्कुडलक्खणं	चक्कलक्खणं	छत्तलक्खणं
३९. मणिलक्खणं	दंडलक्खणं	छत्तलक्खणं	दंडलक्खणं	दंडलक्खणं
४०. काकणिलक्खणं	असिलक्खणं	दंडलक्खणं	असिलक्खणं	असिलक्खणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवाय	ज्ञाताधर्मकथा १/१/८५	औपपातिक १४६	राजप्रश्नीय ८०५	जम्बू० वृत्ति पत्र १३६-३७
४१. चम्मलक्खणं	मणिलक्खणं	असिलक्खणं	मणिलक्खणं	मणिलक्खणं
४२. चंदचरियं	कागणिलक्खणं	मणिलक्खणं	कागणिलक्खणं	कागणिलक्खणं
४३. सूरचरियं	वत्थुविज्जं	काकणिलक्खणं	वत्थुविज्जं	वत्थुविज्जं
४४. राहुचरियं	खंधारमाणं	वत्थुविज्जं	णगरमाणं	खंधावारमाणं
४५. गहचरियं	नगरमाणं	खंधावारमाणं	खंधावारमाणं	नगरमाणं
४६. सोभाकरं	वूहं	नगरमाणं	चारं	चारं
४७. दोभाकरं	पडिवूहं	वूहं	पडिचारं	पडिचारं
४८. विज्जागयं	चारं	पडिवूहं	वूहं	वूहं
४९. मंतगयं	पडिचारं	चारं	पडिवूहं	पडिवूहं
५०. रहस्सगयं	चक्कवूहं	पडिचारं	चक्कवूहं	चक्कवूहं
५१. सभासं	गरुलवूहं	चक्कवूहं	गरुलवूहं	गरुडवूहं
५२- चारं	सगडवूहं	गरुलवूहं	सगडवूहं	सगडवूहं
५३. पडिचारं	जुद्धं	सगडवूहं	जुद्धं	जुद्धं
५४. वूहं	निजुद्धं	जुद्धं	निजुद्धं	नियुद्धं
५५. पडिवूहं	जुद्धाइजुद्धं	निजुद्धं	जुद्धजुद्धं	जुद्धातियुद्धं
५६. खंधावारमाणं	अट्ठिजुद्धं	जुद्धाइजुद्धं	अट्ठिजुद्धं	दिट्ठिजुद्धं
५७. नगरमाणं	मुट्ठिजुद्धं	मुट्ठिजुद्धं	मुट्ठिजुद्धं	मुट्ठिजुद्धं
५८. वत्थुमाणं	बाहुजुद्धं	बाहुजुद्धं	बाहजुद्धं	बाहुजुद्धं
५९. खंधावारनिवेसं	लयाजुद्धं	लयाजुद्धं	लयाजुद्धं	लयाजुद्धं
६०. नगरनिवेसं	ईसत्थं	ईसत्थं	ईसत्थं	ईसत्थं
६१. वत्थुनिवेसं	छरुप्पवायं	छरुप्पवादं	छरुप्पवायं	छरुप्पवायं
६२. ईसत्थं	धणुवेयं	धणुवेदं	धणुवेयं	धणुव्वेयं
६३. छरुप्पगयं	हिरण्णपागं	हिरण्णपागं	हिरण्णपागं	हिरण्णपागं
६४. आससिक्खं	सुवण्णपागं	सुवण्णपागं	सुवण्णपागं	सुवण्णपागं
६५. हत्थिसिक्खं	वट्टखेड्डं	वट्टखेड्डं	सुत्तखेड्डं	सुत्तखेड्डं
६६. धणुव्वेयं	सुत्तखेड्डं	सुत्तखेड्डं	वट्टखेड्डं	वत्थखेड्डं
६७. हिरण्णपागं सुवण्णपागं मणिपागं धातुपागं	नालियाखेड्डं	णालियाखेड्डं	णालियाखेड्डं	नालिआखेड्डं
६८. बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजुद्धं जुद्धातिजुद्धं	पत्तच्छेज्जं	पत्तच्छेज्जं	पत्तच्छेज्जं	पत्तच्छेज्जं
६९. सुत्तखेड्डं नालियाखेड्डं वट्टखेड्डं	कडच्छेज्जं	कडगच्छेज्जं	कडगच्छेज्जं	कडच्छेज्जं
७०. पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं पत्तगच्छेज्जं	सज्जीवं	सज्जीवं	सज्जीवं	सज्जीवं
७१. सज्जीवं निज्जीवं	निज्जीवं	निज्जीवं	निज्जीवं	निज्जीवं
७२. सउणरुयं	सउणरुतं	सउणरुयं	सउणरुयं	सउणरुअं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (२/६४) में बहोत्तर कलाओं का उल्लेख है। वृत्तिकार ने उनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. लेख—अक्षर-विन्यास की कला। (देखें—लेख शब्द का टिप्पण)
२. गणित—जोड़, बाकी आदि पाटीगणित।
३. रूप—शिला, सुवर्ण, मणि, वस्त्र, चित्र आदि में विभिन्न रूपों का निर्माण।
४. नाट्य—अभिनययुक्त और अभिनयरहित नाट्य।
५. गीत—गान विज्ञान।
६. वादित—तत, वितत आदि वाद्यविज्ञान।
७. स्वरगत—षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि स्वर विज्ञान, जो संगीत के मूलभूत तत्त्व हैं।
८. पुष्करगत—मृदंग, अंग्य आदि वाद्य विषयक विज्ञान। ये संगीत के परम प्रधान अंग हैं, इसलिए इनका वाद्य से भिन्न कथन किया गया है।
९. समताल—गीत आदि का कालमान 'ताल' कहलाता है। ताल संबंधी सम-विषम काल का ज्ञान कराने वाला विज्ञान।
१०. द्यूत—द्यूतकला।
११. जनवाद—विशेष प्रकार का द्यूत।
१२. पाशक—पाशाओं से खेला जाने वाला द्यूत।
१३. अष्टापद—शतरंज खेलने का विज्ञान।
१४. पुरःकाव्य—आशु कविता का विज्ञान।
१५. दमकमृत्तिका—जल-शोधन का विज्ञान।
१६. अन्नविधि—अन्न-संस्कार का विज्ञान।
१७. पानविधि—जल-संस्कार विज्ञान, अथवा जलपान के गुणों और दोषों का विज्ञान। जैसे—भोजन के बीच जलपान अमृत होता है और भोजन के अन्त में जलपान विष होता है।
१८. वस्त्रविधि—वस्त्र पहनने का विज्ञान। वस्त्र के दैविक आदि नौ कोण होते हैं। उनको कहां-कैसे धारण करने का विज्ञान।
१९. विलेपनविधि—यक्षकर्दम—कपूर, अगरु, कंकोल। कस्तूरी और चंदन आदि गन्ध-द्रव्यों के मिश्रण का विज्ञान।
२०. शयनविधि—राजा, राजपुत्र, मंत्री, सेनापति, पुरोहित आदि का शय्या-विज्ञान अथवा स्वप्न विज्ञान।
२१. आर्या—मात्राछंद के निर्माण का विज्ञान।
२२. प्रहेलिका—गूढ आशय वाले पद्यों के निर्माण का विज्ञान।
२३. मागधिका—मागधिका छन्द में पद्य-निर्माण का विज्ञान।
२४. गाथा—संस्कृत से भिन्न भाषाओं में निबद्ध आर्या छन्द के निर्माण का विज्ञान।
२५. गीतिका—जिसमें पहला-दूसरा चरण सदृश और तीसरा-चौथा चरण आर्या छंद का हो, उसे गीतिका कहते हैं। उसके निर्माण का विज्ञान।
२६. श्लोक—अनुष्टुप् श्लोक-निर्माण का विज्ञान।
२७. हिरण्ययुक्ति—चांदी को यथास्थान योजित करने का विज्ञान।
२८. स्वर्णयुक्ति—स्वर्ण को यथास्थान योजित करने का विज्ञान।
२९. चूर्णयुक्ति—विविध गंधचूर्णों के निर्माण का विज्ञान।
३०. आभरणविधि—आभूषण बनाने या पहनने का विज्ञान।
३१. तरुणीपरिकर्म—स्त्रियों की प्रसाधन कला, जिससे उनके अवयवों के वर्ण आदि सुन्दर बनते हों।
३२. स्त्रीलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त स्त्रीलक्षण विज्ञान।
३३. पुरुषलक्षण—सामुद्रशास्त्रोक्त पुरुषलक्षण विज्ञान।
३४. हयलक्षण—घोड़े के लक्षणों को जानने का विज्ञान।
३५. गजलक्षण—हाथी के लक्षणों को जानने का विज्ञान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. गोणलक्षण—गाय के लक्षणों को जानने का विज्ञान ।

३७. कुर्कुटलक्षण—कुक्कुट के लक्षणों को जानने का विज्ञान ।

३८. छत्रलक्षण—छत्र के लक्षणों को जानने का विज्ञान ।

३९. दंडलक्षण—डंडे के लक्षणों—शुभ-अशुभ को जानने का विज्ञान ।

४०. असिलक्षण—तलवार के लक्षणों—शुभ-अशुभ को जानने का विज्ञान ।

४१. मणिलक्षण—रत्नपरीक्षा के ग्रन्थ में उक्त मणि के दोष-गुण को जानने का विज्ञान ।

४२. काकणी—चक्रवर्ती के काकणी रत्न के लक्षणों को जानने का विज्ञान ।

४३. वास्तुविद्या—वास्तुशास्त्र प्रसिद्ध गृहभूमि के गुण-दोष को जानने का विज्ञान ।

४४. स्कन्धावारमान—सेना परिमाण का विज्ञान ।

४५. नगरमान—नगर निर्माण का विज्ञान ।

४६. चार—ग्रहगति विज्ञान ।

४७. प्रतिचार—ग्रहों की प्रतिकूल गति को जानने का विज्ञान अथवा रोग के प्रतिकार का विज्ञान ।

४८. व्यूह—व्यूह रचना का विज्ञान ।

४९. प्रतिव्यूह—शत्रुओं की व्यूह-रचना को भंग करने का विज्ञान ।

५०. चक्रव्यूह—चक्र के आकार की सैन्य-रचना के निर्माण का विज्ञान ।

५१. गरुडव्यूह—गरुड के आकार की सैन्य-रचना के निर्माण का विज्ञान ।

५२. शकटव्यूह—शकट के आकार की सैन्य-रचना के निर्माण का विज्ञान ।

५३. युद्ध—कुक्कुट, बैल आदि की तरह लड़ने के लिए योद्धाओं का दौड़ना ।

५४. नियुद्ध—मल्लयुद्ध का विज्ञान ।

५५. युद्धातियुद्ध—महायुद्ध का विज्ञान ।

५६. दृष्टियुद्ध—शत्रु-योद्धाओं के साथ आंखों को निर्निमेष रखकर लड़ने का विज्ञान ।

५७. मुष्टियुद्ध—मुट्ठियों से लड़ने का विज्ञान ।

५८. बाहुयुद्ध—भुजाओं से लड़ने का विज्ञान, परस्पर एक-दूसरे को पकड़ने की इच्छा से भुजाओं को फैलाकर दौड़ना ।

५९. लतायुद्ध—जैसे लतावृक्ष के मूल से ऊपर तक उसे आवेष्टित कर लेती है, वैसे ही योद्धा अपने प्रतिद्वन्दी के शरीर को गहरा आवेष्टित कर, उसे भूमि पर गिरा देने का विज्ञान ।

६०. ईषुशास्त्र—नागबाण आदि दिव्य अस्त्र आदि के प्रयोग का विज्ञान ।

६१. त्सरुप्रवाद—खड्ग-शिक्षा शास्त्र ।

६२. धनुर्वेद—धनुःशास्त्र ।

६३. हिरण्यपाक—चांदी-निर्माण का विज्ञान ।

६४. सुवर्णपाक—स्वर्ण-निर्माण का विज्ञान ।

६५. सूत्रखेल—सूत्रक्रीड़ा का विज्ञान ।

६६. वस्त्रखेल—वस्त्रक्रीड़ा का विज्ञान ।

६७. नालिकाखेल—नली से पाशा डालकर द्यूत खेलने का विज्ञान ।

६८. पत्रच्छेद्य—एक सौ आठ पत्रों में से किसी विवक्षित पत्र को बाण से छेदने का हस्त-कौशल सिखाने वाला विज्ञान ।

६९. कटच्छेद्य—कट की भांति क्रमशः वस्तु-भंग करने का विज्ञान ।

७०. सजीव—मृत धातु को सजीव करना—उसको मौलिक रूप में लाने का विज्ञान ।

७१. निर्जीव—स्वर्ण आदि धातुओं को मारने का विज्ञान, पारद को मूर्च्छित करने का विज्ञान ।

७२. शकुनरुत—वसन्तराज आदि शकुन शास्त्रों में उक्त विज्ञान ।[1]

समवायांगवृत्ति पत्र ७९ में इन बहत्तर कलाओं की विशेष व्याख्या नहीं है। वहां केवल प्रथम छह कलाओं का अर्थबोध कराया गया है। वृत्तिकार ने नाट्यकला के लिए 'भरतशास्त्र', गीतकला के लिए 'विशाखिलशास्त्र' तथा शेष कलाओं के

१. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २/६४, वृत्ति पत्र १३७-१३९ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए लौकिकशास्त्र देखने का निर्देश दिया है।[1]

५. लेख (लेहं)

लेख के दो प्रकार हैं—लिपि और विषय। लिपि अनेक प्रकार की है—ब्राह्मी, यवनी आदि-आदि।[2] वृत्ति में लिपि के विषय, आधार तथा अक्षरों की अभिव्यक्ति के प्रकार बतलाए गए हैं। लिपि के विषय हैं—स्वामि-भृत्य, पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, भार्या-पति, शत्रु-मित्र आदि। पत्र (ताडपत्र, भोजपत्र आदि), वल्क, काष्ठ, दन्त, लोह, ताम्र, रजत आदि—ये लिपि के आधार हैं।[3] लेखन, उत्कीर्ण, स्यूत—सीना, व्यूत—बुनना, छिन्न, भिन्न, दग्ध और संक्रान्ति—ठप्पा मारना—ये अक्षरों की अभिव्यक्ति के साधन हैं।[4]

प्राचीनकाल में कागज पर विविध प्रकार की स्याही से लिखा जाता था। ताडपत्र व भोजपत्र पर तीखी नोक वाली लोहे की कलम से अक्षर उत्कीर्ण किए जाते थे। आज जिस प्रकार कपड़ों पर कसीदा निकाला जाता है, उसी प्रकार प्राचीन भारत में डोरों से सीकर कपड़ों पर चित्र या नाम भी उल्लिखित कर देते थे। किसी पदार्थ को छील कर, काष्ठ आदि को भेद कर—टुकड़े-टुकड़े कर—अक्षरों के आकार बना लिए जाते थे। किसी वस्तु को अत्यन्त गर्म कर काष्ठ पर उसको इधर-उधर घुमा कर अक्षर बनाए जाते थे। संक्रान्ति से अक्षरों को अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया आज के लिथो या मुद्रण से मिलती है।

अत्यन्त सूक्ष्म लिपि में लिखना, अति-स्थूल लिखना, विषमता से लिखना, पंक्तियों की वक्रता, असमान वर्णों को सदृशता से लिखना, (अर्थात् 'प' और 'य' लिखते समय उनके आकार-प्रत्याकार को एक बना देना) तथा अक्षरों के अवयवों का विभाग न करना, जैसे—वरवर्णिका के स्थान हर 'वर्खणिका' लिख देना, ये सारे लेखन के दोष माने जाते थे।[5]

वर्तमान में ईस्वीसन् की दूसरी शताब्दी के ताडपत्रीय लेख तथा चौथी शताब्दी के भोजपत्रीय लेख उपलब्ध होते हैं। कागज पर लिखी हुई अत्यन्त प्राचीन प्रति ईस्वी सन् की पांचवीं शताब्दी की उपलब्ध होती है।[6]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७८, ७९ :

······कला : विज्ञानानीत्यर्थ:, ताश्च कलनीयभेदाद् द्विसप्ततिर्भवन्ति, तत्र लेखनं··············।

नाट्यकला······स्वरूपं चात्र भरतशास्त्रादवसेयम्······

गीतकला······इयं च विशाखिलशास्त्रादवसेया······।

वाइयं ति वाद्यकला, सा च ततविततशुषिरघनवाद्यानां चतुष्पञ्च (त्र्ये) कप्रकारतया त्रयोदशधा···इत्यादिक :

कलाविभागो लौकिकशास्त्रेभ्योऽवसेय:, इह च द्विसप्ततिरिति कलासंख्योक्ता, बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभ्यन्ते, तत्र च कासांचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति।

२. (क) समवायांगवृत्ति, पत्र ७८, ७९।

(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, वक्ष २, सू० ३०, वृत्ति पत्र १३६-१३९।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ७८ :

पत्रवल्ककाष्ठदन्तलोहताम्ररजतादयोऽक्षराणामाधारा: ।

४. वही पत्र ७८ :

लेखनोत्कीर्णनस्यूतव्यूतछिन्नभिन्नदग्धसंक्रान्तितोऽक्षराणि भवन्ति।

५. वही, पत्र ७८ :

अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं, वैषम्यं पंक्तिवक्रता ।
अतुल्यानाञ्च सादृश्यमभागोऽवयवेषु च ।।

६. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, पृ० २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७३

तेवत्तरिमो समवाओ : तिहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. हरिवासरम्मयवासियाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं-तेवत्तरिं जोयणसहस्साइं नव य एक्कुत्तरे जोयणसए सत्तरस य एकूणवीसइ-भागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं पण्णत्ताओ।	हरिवर्षरम्यकवर्षीये जीवे त्रिसप्तति-त्रिसप्तति योजनसहस्राणि नव च एकोत्तर योजनशतं सप्तदश च एकोनविंशतिभागान् योजनस्य अर्द्ध-भागं च आयामेन प्रज्ञप्ते।	१. हरिवर्ष और रम्यक वर्ष की जीवा ७३९०१ $\frac{१७}{१९}+\frac{१}{२}$ योजन लम्बी है।
२. विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	विजयः बलदेवः त्रिसप्ततिं वर्षशतसह-स्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. बलदेव विजय तिहत्तर लाख वर्षों के सर्व आयु[1] का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत, परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

टिप्पण

१. तिहत्तर लाख वर्षों के सर्व आयु (तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनका आयुष्य सतहत्तर लाख वर्ष माना है।[1] वृत्तिकार अभयदेवसूरि के अनुसार यह मतान्तर है।[2] हरिवंशपुराण में इनका आयुष्य सत्तासी लाख बतलाया है।[3]

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ४०६, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २४४।
२. समवायांगवृत्ति, पत्र ७९।
३. हरिवंशपुराण, ६०/३२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४

चोवत्तरिमो समवाओ : चौहत्तरवां समवाय

मूल

१. थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

२. निसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिंछिद्दहाओ सीतोतामहानदी चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहुत्ति पवहित्ता वतिरामतियाए जिब्भियाए चउजोयणायामाए पण्णासजोयणविक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठाणसंठिएणं पवाएणं महया सद्देणं पवडइ।

३. एवं सीतावि दक्खिणहुत्ति भाणियव्वा।

४. चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

संस्कृत छाया

स्थविरः अग्निभूतिः गणधरः चतुःसप्तति वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।

निषधात् वर्षधरपर्वतात् तिगिंछिद्रहात् शीतोदामहानदी चतुःसप्तति योजनशतानि साधिकानि उत्तरमुखी प्रोह्य वज्रमय्या जिह्विकया चतुर्योजनायामया पञ्चाशद् योजनविष्कम्भया वज्रतले कुण्डे महता घटमुखप्रवर्त्तितेन मुक्तावलीहारसंस्थानसंस्थितेन प्रपातेन महता शब्देन प्रपतति।

एवं शीता अपि दक्षिणमुखी भणितव्या।

चतुर्थवर्जासु षट्सु पृथ्वीषु चतुःसप्ततिः निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

हिन्दी अनुवाद

१. स्थविर गणधर अग्निभूति चौहत्तर वर्ष के सर्व आयु का[1] पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

२. निषध वर्षधर पर्वत के तिगिंछिद्रह से शीतोदा महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ योजन उत्तर दिशा की ओर बह कर चार योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी वज्ररत्नमय जिह्वा से महान् घटमुख से प्रवर्तित, मुक्तावलिहार के संस्थान से संस्थित प्रपात से महान् शब्द करती हुई वज्रतल कुंड (शीतोदा प्रपात ह्रद) में गिरती है।

३. इसी प्रकार नीलवान वर्षधर पर्वत के केसरी द्रह से शीता महानदी कुछ अधिक चौहत्तर सौ योजन दक्षिण दिशा की ओर बह कर……वज्रतल कुंड (शीता प्रपात ह्रद) में गिरती है।

४. चौथी पृथ्वी के अतिरिक्त शेष छह पृथ्वियों में चौहत्तर लाख नरकावास हैं।

टिप्पण

१. चौहत्तर वर्ष के सर्व आयु (चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं)

गृहस्थ पर्याय ४६ वर्ष, छद्मस्थ पर्याय १२ वर्ष और केवली पर्याय १६ वर्ष।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७६, ८० ;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७५

पण्णत्तरिमो समवाओ : पचहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पण्णर्त्तारं जिणसया होत्था।	सुविधेः पुष्पदन्तस्य अर्हतः पञ्चसप्ततिः जिनशतानि आसन्।	१. अर्हत् सुविधि पुष्पदंत के पचहत्तर सौ केवली थे।
२. सीतले णं अरहा पण्णर्त्तारं पुव्वसहस्साइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	शीतलः अर्हन् पञ्चसप्ततिं पूर्वसहस्राणि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	२. अर्हत् शीतल पचहत्तर हजार पूर्वों तक[1] गृहवास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।
३. संती णं अरहा पण्णर्त्तारं वाससहस्साइं अगारवासमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।	शान्तिः अर्हन् पञ्चसप्ततिं वर्षसहस्राणि अगारवासमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	३. अर्हत् शान्ति पचहत्तर हजार वर्षों तक[2] गृहवास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।

टिप्पण

१. पचहत्तर हजार पूर्वों तक (पण्णर्त्तारं पुव्वसहस्साइं)

कुमारावस्था—२५ हजार पूर्व, राज्यपालन—५० हजार पूर्व, कुल ७५ हजार पूर्व[1]।

२. पचहत्तर हजार वर्षों तक (पण्णर्त्तारं वाससहस्साइं)

कुमारावस्था—२५ हजार वर्ष, मांडलिक राजा—२५ हजार वर्ष, चक्रवर्ती—२५ हजार वर्ष, कुल ७५ हजार वर्ष[2]।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८० :
शीतलस्य पञ्चसप्ततिः पूर्वसहस्राणि गृहवासे, कथं ? पञ्चविंशतिः कुमारत्वे पञ्चाशच्च राज्य इति।

२. वही, पत्र ८० :
शान्तिः पञ्चसप्ततिवर्षसहस्राणि गृहवासमध्युष्य प्रव्रजितः, कथं ? पञ्चविंशतिः कुमारत्वे, पञ्चविंशतिः माण्डलिकत्वे, पञ्चविंशतिः चक्रवर्त्तित्वे इति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६

छावत्तरिमो समवाओ : छिहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. छावत्तरिं विज्जुकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	षट्सप्ततिः विद्युत्कुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	१. विद्युत्कुमार देवों के छिहत्तर लाख आवास हैं।
२. एवं—	एवं—	२. इसी प्रकार—
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा	
दीवदिसाउदहीणं, विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं। छण्हंपि जुगलयाणं, छावत्तरिमो सयसहस्सा॥	द्वीपदिगुदधीनां, विद्युत्कुमारेन्द्रस्तनिताग्नीनाम्। षण्णामपि युगलकानां, षट्सप्ततिः शतसहस्राणि॥	द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार—इन छह देव-निकाय युगलों में प्रत्येक निकाय के छिहत्तर-छिहत्तर लाख[1] आवास हैं।

टिप्पण

१. छिहत्तर लाख (छावत्तरिमो सयसहस्सा)

ये भवनवासी देव दो दिशाओं में रहते हैं, अतः इनके दो निकाय हो जाते हैं—दक्षिण निकाय और उत्तर निकाय। इन्हीं को यहां युगल कहा गया है। प्रत्येक निकाय के छिहत्तर लाख आवास होते हैं—दक्षिण निकाय के चालीस लाख और उत्तर निकाय के छत्तीस लाख[1]।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८०।
तत्र विद्युत्कुमाराणां भवनावासलक्षाणि दक्षिणस्यां चत्वारिंशदुत्तरस्यां तु षट्त्रिंशदिति षट्सप्ततिरिति, एवमिति इदमेव भवनमानं शेषाणां द्वीपकुमारादि-भवनपतिनिकायानाम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७

सत्ततरिमो समवाओ : सतहत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झावसित्ता महारायाभिसेयं संपत्ते।	भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्ती सप्तसप्तर्ति पूर्वशतसहस्राणि कुमारवासमध्युष्य महाराजाभिषेकं संप्राप्तः।	१. चातुरंत चक्रवर्ती राजा भरत सतहत्तर लाख पूर्वों तक[1] कुमार अवस्था में रहने के पश्चात् महाराजा के अभिषेक को प्राप्त हुए थे।
२. अंगवंसाओ णं सत्तत्तरिं रायाणो मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइया।	अङ्गवंशात् सप्तसप्ततिः राजानः मुण्डाः भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिताः।	२. अंग वंश (अंग राजा की सन्तति) के सतहत्तर राजा मुंड होकर अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।
३. गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्तत्तरिं देवसहस्सा परिवारा पण्णत्ता।	गर्दतोयतुषितयोर्देवयोः सप्तसप्ततिः देवसहस्राणि परिवाराः प्रज्ञप्ताः।	३. गर्दतोय और तुषित—इन दो देवनिकायों का परिवार सतहत्तर हजार देवों[2] का है।
४. एगमेगे णं मुहुत्ते सत्तत्तरिं लवे लवग्गेणं पण्णत्ते।	एकैकः मुहूर्त्तः सप्तसप्ततिं लवान् लवाग्रेण प्रज्ञप्तः।	४. प्रत्येक मुहूर्त्त लव प्रमाण से सतहत्तर लव[3] का होता है।

टिप्पण

१. सतहत्तर लाख पूर्वों तक (सत्तत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं)

राजा भरत भगवान् ऋषभ के ज्येष्ठ पुत्र थे। जब भगवान् ऋषभ का आयुष्य छह लाख पूर्व का हुआ, तब भरत का जन्म हुआ। भगवान् ऋषभ तिरासी लाख पूर्व की अवस्था में दीक्षित हुए। उनके प्रव्रजित होने पर भरत राजा बने। उस समय उनका आयुष्य सतहत्तर लाख पूर्व का था।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८० :
तत्र भरतचक्रवर्ती ऋषभस्वामिनः षट्सु पूर्वलक्षेष्वतीतेषु जातः, अशीतितमे च तत्रातीते भगवति च प्रव्रजिते राजा संवृत्तः, ततश्च त्र्यशीत्याः षट्सु निष्कर्षितेषु सप्तसप्ततिस्तस्य कुमारवासो भवतीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सतहत्तर हजार देवों (सत्तत्तरिं देवसहस्सा)

स्थानांग में गर्दतोय के सात देव और उसके परिवार के देव सात हजार तथा तुषित के सात देव और उसके परिवार के देव सात हजार बतलाए हैं।[1] प्रस्तुत सूत्र से यह भिन्न है। संभव है यह वाचना-भेद हो।

स्थानांग के आधार पर यह कल्पना भी की जा सकती है कि सूत्रकार ने सात और सात हजार की संख्या का सूचन 'सत्तसत्तरिं·· सहस्स···' इन शब्दों के द्वारा की हो और दो अकों (७७) की समानता के कारण प्रस्तुत समवाय में उसका समावेश किया हो।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि प्रस्तुत सूत्र का पाठ 'सत्त सत्त देव सहस्सा परिवारा' रहा हो और लिपिकाल में उसका परिवर्तन हो जाने के कारण उसका स्थान सातवें समवाय की अपेक्षा सतहत्तरवें समवाय में कर दिया गया हो।

वृत्तिकार ने गर्दतोय और तुषित—दोनों के संयुक्त परिवार की संख्या सतहत्तर हजार बतलाई है।[2]

३. लव (लवे)

हृष्ट, नीरोग और निरुपक्लेश प्राणियों के श्वासोच्छ्वास को 'प्राण' कहा जाता है। ऐसे सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव और सतहत्तर लवों का एक मुहूर्त्त होता है। दूसरे शब्दों में ३७७३ प्राणों का एक मुहूर्त्त होता है।[3]

---

१. ठाणं, ७/१०१।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८० :
गर्दतोयानां तुषितानां च देवानामुभयपरिवारसंख्यामीलनेन सप्तसप्ततिर्देवसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तानीति।

३. वही, पत्र ८० :
हट्ठस्स अनवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो।
एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चई॥ १॥
सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे।
लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए॥ २॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठसत्तरिमो समवाओ : अठत्तरवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वेसमणे महाराया अट्ठसत्तरीए सुवण्णकुमारदीवकुमारावाससय-सहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं भट्टित्तं सामित्तं महारायत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।	शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य वैश्रमणः महाराजः अष्टसप्तत्याः सुपर्णकुमार-द्वीपकुमारावासशतसहस्राणां आधिपत्यं पौरपत्यं भर्तृत्वं स्वामित्वं महाराजत्वं आज्ञा-ईश्वर-सैनापत्यं कुर्वन् पालयन् विहरति।	१. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रमण[1] सुपर्णकुमारनिकाय और द्वीपकुमारनिकाय के अठत्तर लाख आवासों का आधिपत्य, पौरपत्य, भर्तृत्व, स्वामित्व, महाराजत्व तथा आज्ञा, ऐश्वर्य और सेनापतित्व करता हुआ, उनका पालन करता हुआ विचरता है।
२. थेरे णं अकंपिए अट्ठसत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः अकम्पितः अष्टसप्ततिं वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. स्थविर अकंपित अठत्तर वर्ष[2] के सर्व आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
३. उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए पढमाओ मंडलाओ एगूण-चत्तालीसइमे मंडले अट्ठहत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं चारं चरइ।	उत्तरायणनिवृत्तः सूर्यः प्रथमात् मण्डलात् एकोनचत्वारिंशत्तमे मण्डले अष्टसप्ततिं एकषष्टिभागान् दिवस-क्षेत्रस्य निवर्ध्य रजनीक्षेत्रस्य अभिनिवर्ध्य चारं चरति।	३. उत्तरायण से निवृत्त सूर्य प्रथम मंडल से उनतालीसवें मंडल में दिवस-क्षेत्र को $\frac{७८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण न्यून और रात्री-क्षेत्र को इसी प्रमाण में अधिक करता हुआ गति करता है[3]।
४. एवं दक्खिणायणनियट्टेवि।	एवं दक्षिणायननिवृत्तोऽपि।	४. दक्षिणायन से निवृत्त सूर्य प्रथम मंडल से उनतालीसवें मंडल में दिवस-क्षेत्र को $\frac{७८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण अधिक और रात्री-क्षेत्र को इसी प्रमाण में न्यून करता हुआ गति करता है[4]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. वैश्रमण (वेसमणे)

शक्र के चार लोकपाल हैं—सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। वैश्रमण उत्तर दिशा के लोकपाल हैं। ये भवनपति निकाय में रहने वाले सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार के देव तथा देवी और व्यन्तर तथा व्यन्तरियों पर आधिपत्य—अनुशासन करते हैं। इनमें दक्षिण दिशा में सुपर्णकुमारों के अड़तीस लाख और द्वीपकुमारों के चालीस लाख भवन हैं। दोनों की सम्मिलित संख्या अठत्तर लाख है।

वैश्रमण लोकपाल द्वीपकुमार देवों पर आधिपत्य करता है—यह बात भगवती सूत्र में उल्लिखित नहीं है। प्रस्तुत सूत्र में उसका उल्लेख है। वृत्तिकार के अनुसार यह मतान्तर है।[1]

प्रस्तुत सूत्र में नेतृत्व के द्योतक पांच शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनका अर्थबोध इस प्रकार है[2]—

१. आधिपत्य—अनुशासन
२. पौरपत्य—अग्रगामिता
३. भर्तृत्व—संरक्षण और पोषण
४. स्वामित्व—स्वामिभाव
५. महाराजत्व—लोकपालभाव।

२. अठत्तर वर्ष (अट्ठसत्तरिं वासाइं)

गृहस्थ पर्याय—	४८ वर्ष
छद्मस्थ पर्याय—	९ वर्ष
केवली पर्याय—	२१ वर्ष
कुल योग	७८ वर्ष[3]

३,४. सूर्य...गति करता है (सूरिए...चरइ)

सूर्य जब दक्षिणायन में गति करता है तब प्रत्येक मंडल में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन घटता है और इतने ही प्रमाण में रात बढ़ती है। इस प्रकार जब सूर्य उनतालीसवें मंडल में पहुंचता है तब $\left(\frac{२}{६१} \times ३९\right)\frac{७८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन घटता है और इसी प्रमाण में रात बढ़ती है।

सूर्य जब उत्तरायण में गति करता है तब प्रत्येक मंडल में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन बढ़ता है और इतने ही प्रमाण में रात घटती है। इस प्रकार उनतालीसवें मंडल में $\frac{७८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन बढ़ता है और रात घटती है।[4]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८१ :
द्वीपकुमाराधिपत्यमेतस्य भगवत्यां न दृश्यते, इह तूक्तमिति मतान्तरमिदम्।

२. वही, पत्र ८१ :
आधिपत्यं—अधिपतिकर्म्म, पोरेवच्चं—पुरोवर्त्तित्वं अग्रगामित्वमित्यर्थः, भट्टित्वं—भर्तृत्वं—पोषकत्वं, सामित्तं—स्वामित्वं—स्वामिभावं, महारायंति महाराजत्वं लोकपालत्वमित्यर्थः।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ८१।

४. वही, पत्र ८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९
एगूणासीइमो समवाओ : उन्नासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. वलयामुहस्स णं पायालस्स हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए हेठिल्ले चरिमंते, एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	वडवामुखस्य पातालस्य अधस्तनात् चरमान्तात् अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः अधस्तनं चरमान्तं, एतत् एकोनाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	१. वडवामुख पातालकलश के नीचे के चरमान्त से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर उन्नासी हजार योजन का है।[१]
२. एवं केउस्सवि जूयस्सवि ईसरस्सवि।	एवं केतुकस्यापि यूपस्यापि ईश्वरस्यापि।	२. इसी प्रकार केतु पातालकलश, यूप पातालकलश और ईश्वर पातालकलश के विषय में जानना चाहिए।[२]
३. छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं एगूणासीतिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	षष्ठ्याः पृथिव्याः बहुमध्यदेशभागात् षष्ठस्य घनोदधेः अधस्तनं चरमान्तं, एतत् एकोनाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	३. छठी पृथ्वी के बहुमध्यदेशभाग से छठे घनोदधि के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर उन्नासी हजार योजन[३] का है।
४. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स बारस्स य बारस्स य एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य द्वारस्य च द्वारस्य च एतत् एकोनाशीतिं योजनसहस्राणि सातिरेकाणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ।	४. जम्बूद्वीप द्वीप के प्रत्येक द्वार का व्यवधानात्मक अन्तर कुछ अधिक उन्नासी हजार योजन[४] का है।

टिप्पण

१,२. उन्नासी हजार योजन (एगूणासीइं जोयणसहस्साइं)

वडवामुख आदि चार पातालकलश पूर्व आदि चार दिशाओं में हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजन की है। उसमें से एक हजार योजन समुद्रगत है। पातालकलशों की अवगाहना एक लाख योजना की है। समुद्रगत अवगाहना को छोड़ देने पर कलशों के चरमान्त से पृथ्वी का चरमान्त उन्नासी हजार रह जाता है।[१]

---

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. उन्नासी हजार योजन (एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं)

छठी पृथ्वी का बाहल्य एक लाख सोलह हजार योजन का है। उसका बहुमध्यदेशभाग अट्ठावन हजार योजन का है। छठे घनोदधि का बाहल्य बीस हजार योजन का है। दोनों को मिलाने से (५८०००+२००००)=अठत्तर हजार योजन होते हैं। वृत्तिकार ने यहां तीन मत प्रस्तुत किए हैं—

१. सूत्रकार ने संभवतः छठे घनोदधि का बाहल्य इक्कीस हजार योजन माना हो।

२. ग्रन्थान्तरों के मतानुसार यह अन्तर पांचवीं पृथ्वी का होना चाहिए, क्योंकि पांचवीं पृथ्वी का बहुमध्यदेशभाग उनसठ हजार योजन का है और पांचवें घनोदधि का बाहल्य बीस हजार योजन का है।

३. यहां छठी पृथ्वी का बहुमध्यदेशभाग एक हजार योजन अधिक (अर्थात् उनसठ हजार योजन) विवक्षित है। 'बहु' शब्द इस आशय का सूचक माना जा सकता है।[1]

४. कुछ अधिक उन्नासी हजार योजन (एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं)

जम्बूद्वीप की जगती की चारों दिशाओं में चार द्वार हैं—पूर्व में विजय, पश्चिम में वैजयन्त, उत्तर में जयन्त और दक्षिण में अपराजित। प्रत्येक द्वार का विष्कंभ चार-चार योजन का है और प्रत्येक द्वार की द्वार-शाखा दो-दो गाउ की है। जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२७ योजन ५ कोश १२८ धनुष्य और १३-$\frac{१}{२}$ अंगुल की है। इसमें से चारों द्वारों तथा द्वार-शाखाओं का विष्कंभ $\left(४\frac{१}{२}\times४\right)$ १८ योजन निकाल लेने पर शेष ३१६२०९ योजन रहे। इनको चार से भाजित करने पर ७९०५२ योजन आता है। यही उनका साधिक अन्तर हैं।[2]

---

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ८२।

२. वही, पत्र ८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असीइइमो समवाओ : अस्सिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सेज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	श्रेयांसः अर्हन् अशीतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	१. अर्हत् श्रेयांस अस्सी धनुष्य ऊंचे थे।
२. तिविट्ठू णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	त्रिपृष्ठः वासुदेवः अशीतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	२. वासुदेव त्रिपृष्ठ अस्सी धनुष्य ऊंचे थे।
३. अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	अचलः बलदेवः अशीतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. बलदेव अचल अस्सी धनुष्य ऊंचे थे।
४. तिविट्ठू णं वासुदेवे असीइं वाससयसहस्साइं महाराया होत्था।	त्रिपृष्ठः वासुदेवः अशीतिं वर्षशतसहस्राणि महाराजः आसीत्।	४. वासुदेव त्रिपृष्ठ अस्सी लाख वर्ष तक महाराज रहे।
५. आउबहुले णं कंडे असीइं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं पण्णत्ते।	अब्बहुलं काण्डं अशीतिं योजनसहस्राणि बाहल्येन प्रज्ञप्तम्।	५. रत्नप्रभा का अप्कायबहुल काण्ड अस्सी हजार योजन मोटा है।
६. ईसाणस्स णं देविंदस्स देवरण्णो असीइं सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	ईशानस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य अशीतिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	६. देवेन्द्र देवराज ईशान के अस्सी हजार सामानिक देव हैं।
७. जंबुद्दीवे णं दीवे असीउत्तरं जोयणसयं ओगाहेत्ता सूरिए उत्तरकट्ठोवगए पढमं उदयं करेइ।	जम्बूद्वीपे द्वीपे अशीत्युत्तरं योजनशतं अवगाह्य सूर्यः उत्तरकाष्ठोपगतः प्रथमं उदयं करोति।	७. जम्बूद्वीप द्वीप में एक सौ अस्सी योजन[1] का अवगाहन कर उत्तर दिशा में गया हुआ सूर्य प्रथम उदय करता है—उदित होता है।

टिप्पण

१. एक सौ अस्सी योजन (असीउत्तरं जोयणसयं)

जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं। उनके १८४-१८४ मंडल हैं। इतने ही उनके उदय-स्थान हैं। जम्बूद्वीप में सूर्यों का मंडल-क्षेत्र १८०-१८० योजन का है। उत्तरायण की ओर गति करता हुआ सूर्य लवणसमुद्र से जम्बूद्वीप की ओर १८० योजन का अवगाहन कर जब १८४वें मंडल में पहुंचता है तब वह सूर्य का सर्वाभ्यन्तर मंडल कहलाता है। यही सूर्य का प्रथम उदय स्थान है और यही उत्तरायण का अन्तिम अहोरात्र है।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१

एक्कासीइइमो समवाओ : इक्यासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. नवनवमिया णं भिक्खुपडिमा एक्कासीइ राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आणाए आराहिया यावि भवति।	नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा एकाशीत्या रात्रिन्दिवैः चतुर्भिश्च पञ्चोत्तरैः भिक्षाशतैः यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातथ्यं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आज्ञया आराधिता चापि भवति।	१. नव-नवमिका भिक्षु-प्रतिमा इक्यासी दिन-रात की अवधि में ४०५ भिक्षा-दत्तियों से सूत्र, कल्प, मार्ग और तथ्य के अनुरूप, काया से सम्यक स्पृष्ट, पालित, शोधित पारित, कीर्तित और आज्ञा से आराधित होती है।
२. कुंथुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणपज्जवनाणिसया होत्था।	कुन्थोः अर्हतः एकाशीतिः मनःपर्यवज्ञानिशतानि आसन्।	२. अर्हत् कुन्थु के इक्यासी सौ मनःपर्यवज्ञानी थे।
३. विआहपण्णत्तीए एकासीतिं महाजुम्मसया पण्णत्ता।	व्याख्याप्रज्ञप्त्यां एकाशीतिः महायुग्मशतानि आसन्।	३. व्याख्याप्रज्ञप्ति में इक्यासी महायुग्मशत[1] हैं।

टिप्पण

१. इक्यासी महायुग्मशत (एकासीतिं महाजुम्मसया)

वृत्तिकार के अनुसार 'शत' शब्द अध्ययनों का द्योतक है। उन अध्ययनों में कृतयुग्म आदि लक्षणवाली राशि विशेष का विवरण है।[1]

भगवती सूत्र के पैंतीसवें से चालीसवें शतक तक महायुग्मों का वर्णन है। वहां उनका क्रम यह है—

१. एकेन्द्रिय के महायुग्मशत	—१२
२. द्वीन्द्रिय के महायुग्मशत	—१२
३. त्रीन्द्रिय के महायुग्मशत	—१२
४. चतुरिन्द्रिय के महायुग्मशत	—१२
५. असन्नी पंचेन्द्रिय के महायुग्मशत	—१२
६. सन्नी पंचेन्द्रिय के महायुग्मशत	—२१
कुल योग	८१

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ८३ :

याख्याप्रज्ञप्त्यामेकाशीतिर्महायुग्मशतानि प्रज्ञप्तानि, इह च शतशब्देनाध्ययनान्युच्यन्ते, तानि कृतयुग्मादिलक्षणराशिविशेषविचाररूपाणि अवान्तराध्ययनस्वभावानि तदवगमावगम्यानीति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२

बासीतिइमो समवाओ : बयासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. जंबुद्दीवे दीवे बासीतं मंडलसयं जं सूरिए दुक्खुत्तो संकमित्ता णं चारं चरइ, तं जहा— निक्खममाणे य पविसमाणे य।	जम्बूद्वीपे द्वीपे द्व्यशीतिः मण्डलशतं यत् सूर्यः द्विःकृत्वः संक्रम्य चारं चरति, तद्यथा—निष्क्रामँश्च प्रविशँश्च।	१. जम्बूद्वीप द्वीप में एक सौ बयासी मंडल[1]—सूर्यमार्ग हैं। सूर्य उनमें दो बार संक्रमण कर गति करता है— जम्बूद्वीप से निष्क्रमण करता हुआ और जम्बूद्वीप में प्रवेश करता हुआ।
२. समणे भगवं महावीरे बासीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए।	श्रमणः भगवान् महावीरः द्व्यशीत्यां रात्रिन्दिवेषु व्यतिक्रान्तेषु गर्भात् गर्भं संहृतः।	२. श्रमण भगवान् महावीर का बयासी दिन-रात[2] बीत जाने पर एक गर्भ से दूसरे गर्भ में संहरण किया गया।
३. महाहिमवंतस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं बासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	महाहिमवतः वर्षधरपर्वतस्य उपरितनात् चरमान्तात् सौगन्धिकस्य काण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् द्व्यशीतिं योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	३. महाहिमवान् वर्षधर पर्वत के ऊपर के चरमान्त से सौगन्धिक कांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बयासी सौ योजन[3] का है।
४. एवं रुप्पिस्सवि।	एवं रुक्मिणोऽपि।	४. रुक्मी वर्षधर पर्वत के ऊपर के चरमान्त से सौगन्धिक कांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बयासी सौ योजन का है।

टिप्पण

१. एक सौ बयासी मंडल (बासीतं मंडलसयं)

सूर्य के गति करने के १८४ मंडल हैं। इनमें सर्वाभ्यन्तर और सव-बाह्य-मंडल में सूर्य एक-एक बार जाता है और शेष १८२ मंडलों में, जम्बूद्वीप में प्रवेश करता हुआ तथा उससे निष्क्रमण करता हुआ, दो-दो बार गति करता है।

जम्बूद्वीप के पैंसठ मंडल हैं। तो भी जम्बूद्वीप संबंधी सूर्य की गति का उल्लेख होने के कारण अन्य बाह्य-मंडलों का भी यहां उन्हीं में समावेश किया गया है।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. बयासी दिन-रात (बासीए राइंदिएहिं)

श्रमण भगवान् महावीर आषाढ़ शुक्ला छठ को देवानन्दा के गर्भ में आए। बयासी दिन-रात बीत जाने पर अर्थात् आश्विन कृष्णा त्रयोदशी को, शक्रेन्द्र की आज्ञा से, हरिणेगमेषी देव ने देवानन्दा के गर्भ से महावीर का अपहरण कर त्रिशला महारानी के गर्भ में रख दिया।

३. बयासी सौ योजन (बासीइं जोयणसयाइं)

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन कांड हैं—खरकांड, पंककांड और अब्बहुलकांड। खरकांड सोलह प्रकार का है। सभी कांड हजार-हजार योजन प्रमाण के हैं। सौगंधिककांड आठवां है। अतः वहां तक आठ हजार योजन हुए। महाहिमवान् दूसरा वर्षधर पर्वत है। वह दो सौ योजन ऊंचा है। उसके ऊपर के चरमान्त से सौगंधिककांड के नीचे के चरमान्त तक बयासी सौ योजन का अन्तर है।[1]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३

तेयासिइइमो समवाओ : तिरासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. समणे भगवं महावीरे बासीइराइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वट्टमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए।	श्रमणः भगवान् महावीरः द्व्यशीति-रात्रिन्दिवेषु व्यतिक्रान्तेषु त्र्यशीतितमे रात्रिन्दिवे वर्तमाने गर्भात् गर्भं संहृतः।	१. श्रमण भगवान् महावीर का बयासी दिन-रात बीत जाने पर तथा तिरासिवें दिन-रात के वर्तने पर एक गर्भ से दूसरे गर्भ में संहरण किया गया।
२. सीयलस्स णं अरहओ तेसीति गणा तेसीति गणहरा होत्था।	शीतलस्य अर्हतः त्र्यशीतिः गणाः त्र्यशीतिः गणधराः आसन्।	२. अर्हत् शीतल के तिरासी गण और तिरासी गणधर[1] थे।
३. थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः मण्डितपुत्रः त्र्यशीतिं वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	३. स्थविर मंडितपुत्र तिरासी वर्ष के सर्व आयु[2] का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
४. उसभे णं अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारवास-मज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	ऋषभः अर्हन् कौशलिकः त्र्यशीतिं पूर्वशतसहस्राणि अगारवासमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	४. कौशलिक अर्हत् ऋषभ तिरासी लाख पूर्वों तक अगारवास में रहकर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।
५. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झावसित्ता जिणे जाए केवली सव्वण्णू सव्वभावदरिसी।	भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती त्र्यशीतिं पूर्वशतसहस्राणि अगारमध्युष्य जिनः जातः केवली सर्वज्ञः सर्वभावदर्शी।	४. चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत तिरासी लाख पूर्वों तक[3] अगारवास में रहकर जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वभावदर्शी हुए।

टिप्पण

१. तिरासी गण और तिरासी गणधर (तेसीति गणा तेसीति गणहरा)

आवश्यनिर्युक्ति में इनके इक्यासी गण और इक्यासी गणधर बतलाए गए हैं।[1]

२. तिरासी वर्ष के सर्व आयु (तेसोइं वासाइं सव्वाउयं)

मंडितपुत्र का गृहस्थ पर्याय ५३ वर्ष, छद्मस्थ पर्याय १४ वर्ष और केवली पर्याय १६ वर्ष का था।

३. तिरासी लाख पूर्वों तक (तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं)

चक्रवर्ती भरत कुमार अवस्था में ७७ लाख पूर्व तथा चक्रवर्ती राजा के रूप में ६ लाख पूर्व तक रहे।

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति गा० २६७, अवचूर्णि, प्रथम विभाग, पृ २११।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४

चउरासिइइमो समवाओ : चौरासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चउरासीइं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	चतुरशीतिः निरयावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	१. नरकावास चौरासी लाख[1] हैं।
२. उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	ऋषभः अर्हन् कौशलिकः चतुरशीतिं पूर्वशतसहस्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. कौशलिक (कोशल देश में उत्पन्न) अर्हत् ऋषभ चौरासी लाख पूर्वों के पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
३. एवं भरहो बाहुबली बंभी सुंदरी।	एवं भरतः बाहुबली ब्राह्मी सुन्दरी।	३. इसी प्रकार भरत, बाहुबली, ब्राह्मी और सुन्दरी चौरासी-चौरासी लाख पूर्वों के पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
४. सेज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	श्रेयांसः अर्हन् चतुरशीतिं वर्षशतसहस्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	४. अर्हत् श्रेयांस चौरासी लाख वर्षों के पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
५. तिविट्ठू णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववण्णे।	त्रिपृष्ठः वासुदेवः चतुरशीतिं वर्षशतसहस्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा अप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वेन उपपन्नः।	५. वासुदेव त्रिपृष्ठ चौरासी लाख वर्षों के पूर्ण आयु का पालन कर अप्रतिष्ठान नरक में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए।
६. सक्कस्स णं देविंदस्स देवरण्णो चउरासीई सामाणियसाहस्सीओ पण्णत्ताओ।	शक्रस्य देवेन्द्रस्य देवराजस्य चतुरशीतिः सामानिकसाहस्र्यः प्रज्ञप्ताः।	६. देवेन्द्र देवराज शक्र के चौरासी हजार सामानिक देव हैं।
७. सव्वेवि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं - चउरासीइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि बाह्याः मन्दराः चतुरशीतिं-चतुरशीतिं योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।	७. बाहर के सभी मन्दरपर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन[2] ऊंचे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. सव्वेवि णं अंजणगपव्वया चउरासीइं-चउरासीइं जोयण-सहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सर्वेपि अञ्जनकपर्वताः चतुरशीतिं-चतुरशीतिं योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।

८. सभी अञ्जन पर्वत चौरासी-चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं।

९. हरिवासरम्मयवासियाणं जीवाणं धणुपट्ठा चउरासीइं-चउरासीइं जोयणसहस्साइं सोलस जोयणाइं चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं पण्णत्ता।

हरिवर्षरम्यकवर्षीययो र्जीवयोः धनुःपृष्ठानि चतुरशीतिं-चतुरशीतिं योजनसहस्राणि षोडशयोजनानि चतुरश्चभागान् योजनस्य परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि।

९. हरिवर्ष और रम्यकवर्ष की जीवा के धनुःपृष्ठ का परिक्षेप ८४०१६ ४/१९ योजन है।

१०. पंकबहुलस्स णं कंडस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं चोरासीइं जोयण-सयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

पंकबहुलस्य काण्डस्य उपरितनात् चरमान्तात् अधस्तनं चरमान्तं, एतत् चतुरशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

१०. पंकबहुलकांड के ऊपर के चरमान्त से नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर चौरासी लाख योजन का है।

११. वियाहपण्णत्तीए णं भगवतीए चउरासीइं पयसहस्सा पदग्गेणं पण्णत्ता।

व्याख्याप्रज्ञप्त्यां भगवत्यां चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण प्रज्ञप्तानि।

११. भगवती व्याख्याप्रज्ञप्ति के पद-परिमाण से चौरासी हजार पद[3] हैं।

१२. चोरासीइं नागकुमारवाससय-सहस्सा पण्णत्ता।

चतुरशीतिः नागकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१२. नागकुमार देवों के आवास चौरासी लाख हैं।

१३. चोरासीइं पइण्णगसहस्सा पण्णत्ता।

चतुरशीतिः प्रकीर्णकसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१३. प्रकीर्णक चौरासी हजार[4] हैं।

१४. चोरासीइं जोणिप्पमुहसयसहस्सा पण्णत्ता।

चतुरशीतिः योनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

१४. योनि-प्रमुख (योनि-द्वार) चौरासी लाख[5] हैं।

१५. पुव्वाइयाणं सीसपहेलिया-पज्जवसाणाणं सट्ठाणट्ठाणंतराणं चोरासीए गुणकारे पण्णत्ते।

पूर्वादिकानां शीर्षप्रहेलिकापर्यवसानानां स्वस्थानस्थानान्तराणां चतुरशीत्या गुणकारः प्रज्ञप्तः।

१५. पूर्व से लेकर शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त स्वस्थान (पूर्व का अंक) से स्थानान्तर[6] (उत्तर का अंक) चौरासी लाख से गुणित होता है।

१६. उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स चउरासीइं गणा चउरासीइं गणहरा होत्था।

ऋषभस्य अर्हतः कौशलिकस्य चतुरशीतिः गणाः चतुरशीतिः गणधराः आसन्।

१६. कौशलिक अर्हत् ऋषभ के चौरासी गण और चौरासी गणधर थे।

१७. उसभस्स णं कोसलियस्स उसभसेणपामोक्खाओ चउरासीइं समणसाहस्सीओ होत्था।

ऋषभस्य कौशलिकस्य ऋषभसेन-प्रमुखाः चतुरशीतिः श्रमणसाहस्र्यः आसन्।

१७. कौशलिक अर्हत् ऋषभ के ऋषभसेन प्रमुख चौरासी हजार श्रमण थे।

१८. चउरासीइं विमाणावास-सयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खायं।

चतुरशीतिः विमानावासशतसहस्राणि सप्तनवतिश्च सहस्राणि त्रयोविंशतिश्च विमानानि भवन्तीति आख्यातम्।

१८. वैमानिकों के सभी विमान[7] ८४९७०२३ हैं, ऐसा कहा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. चौरासी लाख नरकावास (चउरासीइं निरयावाससयसहस्सा)

चौरासी लाख नरकावासों का विवरण इस प्रकार है—

पहली नारकी में ३० लाख, दूसरी में २५ लाख, तीसरी में १५ लाख, चौथी में १० लाख, पांचवीं में ३ लाख, छठी में ९९९९५ और सातवीं में ५ नरकावास हैं। इनका कुल योग ८४ लाख है।

२. चौरासी हजार योजन (चउरासीइं···जोयणसहस्साइं)

जम्बूद्वीप के मेरुपर्वत के अतिरिक्त शेष चार मेरुपर्वतों की ऊंचाई चौरासी-चौरासी हजार योजन की है।

३. चौरासी हजार पद (चउरासीइं पयसहस्सा)

प्रस्तुत सूत्र में भगवती सूत्र के चौरासी हजार पद बतलाए गए हैं। किन्तु नन्दी सूत्रगत द्वादशांगी के वर्णन में उल्लिखित पद-परिमाण से इसकी संगति नहीं है। वहां भगवती के दो लाख अठासी हजार पद बतलाए हैं।[1] वृत्तिकार ने प्रस्तुत सूत्र में निर्दिष्ट मत को ध्यान में रख कर उसे 'मतान्तर' कहा है।[2] ये दोनों मत दो वाचनाओं के हो सकते हैं।

४. चौरासी हजार प्रकीर्णक (चोरासीइं पइण्णगसहस्सा)

भगवान् ऋषभ के चौरासी हजार शिष्य थे। नंदीसूत्र के अनुसार भगवान् ऋषभ के चौरासी हजार शिष्यों द्वारा रचित चौरासी हजार प्रकीर्णक थे।[3]

५. चौरासी लाख योनि-प्रमुख (चोरासीइं जोणिप्पमुहसयसहस्सा)

योनि का अर्थ है 'उत्पत्ति-स्थान' और प्रमुख का अर्थ है 'द्वार'। योनि-प्रमुख अर्थात् उत्पत्ति के द्वार।

योनियां चौरासी लाख बतलाई गई हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

स्थान	योनि-संख्या
पृथ्वीकाय	७ लाख
अप्काय	७ लाख
तेजस्काय	७ लाख
वायुकाय	७ लाख
प्रत्येक वनस्पति	१० लाख
साधारण वनस्पति	१४ लाख
द्वीन्द्रिय	२ लाख
त्रीन्द्रिय	२ लाख
चतुरिन्द्रिय	२ लाख
नारक	४ लाख
देव	४ लाख
पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च	४ लाख
मनुष्य	१४ लाख

—इन सबका कुल योग चौरासी लाख होता है।

१. नंदी, सू० ४८।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८५ :

व्याख्याप्रज्ञप्त्यां भगवत्यां चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण पदपरिमाणेन···मतांतरेण तु अष्टादश पदसहस्रपरिमाणत्वादाचारस्य, एतद्द्विगुणत्वात् शेषाङ्गानां, व्याख्याप्रज्ञप्तिर्द्वे लक्षे अष्टाशीतिश्च सहस्राणीति पदानां भवतीति ।

३. नंदी, सू० ७८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवों के उत्पत्ति-स्थान असंख्य हैं किन्तु समान वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान वाले स्थानों को एक मान कर उन्हें चौरासी लाख कहा गया है।

६. शीर्षप्रहेलिका··· स्वस्थान···स्थानान्तर (सीसपहेलिया सट्ठाणट्ठाणंतराणं)

जैन गणित के अनुसार संख्या के अट्ठाईस स्थान हैं—पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अडडांग, अडड, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपूरांग, अर्थनिपूर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका।

चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है। इसको चौरासी लाख से गुणन करने से एक पूर्व की संख्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार पूर्व की संख्या को पुनः चौरासी लाख से गुणन करने पर एक त्रुटितांग की संख्या प्राप्त होती है। इसी क्रम से शीर्षप्रहेलिका की संख्या प्राप्त होती है। इसके १९४ अंक होते हैं। यह सबसे बड़ी संख्या है। इसके बाद संख्यात, असंख्यात और अनन्त—इन तीन शब्दों से संख्या को व्यवहृत किया जाता है।[1] प्रस्तुत सूत्र में स्वस्थान का अर्थ 'पूर्व पद' और स्थानान्तर का अर्थ 'उत्तर पद' है।

७. वैमानिकों के···विमान (विमाणावास···विमाणा)

विमानों की संख्या का विवरण इस प्रकार है—

देवलोक	विमान संख्या	देवलोक	विमान संख्या
सौधर्म	३२ लाख	सहस्रार	६ हजार
ईशान	२८ लाख	आनत-प्राणत	४ सौ
सनत्कुमार	१२ लाख	आरण-अच्युत	३ सौ
माहेन्द्र	८ लाख	नीचे के तीन ग्रैवेयक	१ सौ ११
ब्रह्मलोक	४ लाख	मध्य के तीन ग्रैवेयक	१ सौ ७
लान्तक	५० हजार	ऊपर के तीन ग्रैवेयक	१ सौ
शुक्र	४० हजार	अनुत्तर	५
			कुल योग ८४९७०२३

1. देखें—स्थानांग, २/३८७ का टिप्पण, पृष्ठ १४०-१४२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८५
पंचासीइइमो समवाओ : पचासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पंचासीइं उद्देसणकाला पण्णत्ता।	आचारस्य भगवतः सचूलिकाकस्य पञ्चाशीतिः उद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः।	१. चूलिका सहित आचारांग सूत्र के उद्देशनकाल[1] पचासी हैं।
२. धायइसंडस्स णं मंदरा पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता।	धातकीषण्डस्य मन्दरौ पञ्चाशीतिं योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तौ।	२. धातकीषंड के दोनों मेरु पर्वतों का पूर्ण परिमाण पचासी-पचासी हजार योजन[2] है।
३. रुयए णं मंडलियपव्वए पंचासीइं जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते।	रुचकः माण्डलिकपर्वतः पञ्चाशीतिं योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण प्रज्ञप्तः।	३. रुचक मांडलिक पर्वत का पूर्ण परिमाण पचासी हजार योजन[3] है।
४. नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं पंचासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	नन्दनवनस्य अधस्तनात् चरमान्तात् सौगन्धिकस्य काण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् पञ्चाशीतिं योजन-शतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	४. नन्दनवन के नीचे के चरमान्त से सौगन्धिक काण्ड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर पचासी सौ योजन का है।

टिप्पण

१. आचारांग के उद्देशनकाल (आयारस्स···उद्देसणकाला)

आचारांग सूत्र की पांच चूलिकाएं हैं। पांचवीं चूलिका का नाम 'निशीथ है। उसे स्वतन्त्ररूप प्राप्त है, इसलिए वह यहां गृहीत नहीं है। आचार और आचारचूला के उद्देशन-काल इस प्रकार हैं—

आचार

समवाय ५१/१ में 'आचार' के नौ अध्ययनों के ५१ उद्देशन-काल बतलाए हैं। देखें ५१/१ का टिप्पण।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचारचूला

इसकी चार चूलिकाओं के उद्देशन-काल इस प्रकार हैं। पहली चूलिका के सात अध्ययनों के पचीस उद्देशक और पचीस उद्देशन-काल क्रमशः ये हैं—११, ३, ३, २, २, २, २—२५।

दूसरी चूलिका के सात अध्ययन हैं और प्रत्येक अध्ययन का एक-एक उद्देशन-काल है—७।

तीसरी और चौथी चूलिका का एक-एक अध्ययन और एक-एक उद्देशन-काल है—२।

इस प्रकार सारे उद्देशन-काल ५१+२५+७+१+१=८५ होते हैं।[1]

२. धातकीषंड···मेरु पर्वत (धायइसंडस्स···मंदरा)

धातकीषंड के मेरुपर्वत एक हजार योजन भूमि में तथा चौरासी हजार योजन ऊंचे हैं। दोनों का योग करने पर पचासी हजार योजन होते हैं। वृत्तिकार का कथन है कि इसी प्रकार पुष्करार्द्ध के मेरुपर्वतों का पूर्ण परिमाण भी ८५-८५ हजार योजन है। किन्तु सूत्रकार ने इसका उल्लेख नहीं किया है। सूत्र की प्रतिपादन शैली विचित्र होती है।[2]

३. मांडलिक पर्वत (मंडलियपव्वए)

रुचक तेरहवां द्वीप है। उसके अन्दर प्राकार की आकृति वाला रुचक द्वीप के दो विभाग करने वाला रुचक नाम का पर्वत है। वह मंडलाकार से स्थित है, इसीलिए इसे 'मांडलिक-पर्वत' कहा गया है। यह एक हजार योजन भूमि में और चौरासी हजार योजन ऊपर है।[3]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८६।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८६ :

धातकीखंडमन्दरौ सहस्रमवगाढौ चतुरशीतिसहस्राण्युच्छ्रिताविति पञ्चाशीतिर्योजनसहस्राणि सर्वाग्रेण भवतः, पुष्करार्द्धमन्दरावप्येवं, नवरं सूत्रे नाभिहितौ विचित्रत्वात् सूत्रगतेरिति।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ८६ :

रुचको—रुचकाभिधानस्त्रयोदशद्वीपान्तर्गतः प्राकाराकृती रुचकद्वीपविभागकारितया स्थितः, अत एवं माण्डलिकपर्वतो मण्डलेन व्यवस्थितत्वात्, स च सहस्रमवगाढचतुरशीतिरुच्छ्रित इति पञ्चाशीतिः सहस्राणि सर्वाग्रेणेति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६

छलसीइइमो समवाओ : छियासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ छलसीइं गणा छलसीइं गणहरा होत्था।	सुविधेः पुष्पदन्तस्य अर्हतः षडशीतिः गणाः षडशीतिः गणधराः आसन्।	१. अर्हत् सुविधि पुष्पदंत के छियासी गण और छियासी गणधर[1] थे।
२. सुपासस्स णं अरहओ छलसीइं वाइसया होत्था।	सुपार्श्वस्य अर्हतः षडशीतिः वादिशतानि आसन्।	२. अर्हत् सुपार्श्व के छियासी सौ वादी थे।
३. दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं छलसीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	द्वितीयायाः पृथिव्याः बहुमध्यदेश-भागात् द्वितीयस्य घनोदधेः अधस्तनं चरमान्तं, एतत् षडशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	३. दूसरी पृथ्वी के बहुमध्यदेशभाग से दूसरे घनोदधि के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर छियासी हजार योजन का है।

टिप्पण

१. छियासी गण और छियासी गणधर (छलसीइं गणा छलसीइं गणहरा)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनके अठासी गण और अठासी गणधर बतलाए हैं।[1]

---

१ आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६६, अवचूर्णि, प्रथम विभाग, पृ० २१०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८७

सत्तासीइइमो समवाओ : सत्तासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् सप्ताशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	१. मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से गोस्तूप आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी हजार योजन का है।
२. मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमंताओ दओभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य दाक्षिणात्यात् चरमान्तात् दकावभासस्य आवास-पर्वतस्य उत्तरीयं चरमान्तं, एतत् सप्ताशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	२. मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी हजार योजन का है।
३. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ संखस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्तात् शंखस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यं चरमान्तं, एतत् सप्ताशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	३. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी हजार योजन का है।
४. मंदरस्स णं पव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरीयात् चरमान्तात् दकसीमस्य आवासपर्वतस्य दाक्षिणात्यं चरमान्तं, एतत् सप्ताशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	४. मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी हजार योजन का है।
५. छण्हं कम्मपगडीणं आतिम-उवरिल्लवज्जाणं सत्तासीइं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	षण्णां कर्मप्रकृतीनां आदिमउपरितन-वर्जानां सप्ताशीतिः उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	५. आदि अन्त की कर्म-प्रकृतियों को छोड़ कर शेष छह कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां सत्तासी[1] हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं सत्तासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

महाहिमवत्कूटस्य उपरितनात् चरमान्तात् सौगन्धिकस्य काण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् सप्ताशीतिं योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

६. महाहिमवंत कूट के उपरितन चरमान्त से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी सौ योजन का है।

७. एवं रुप्पिकूडस्सवि।

एवं रुक्मिकूटस्यापि।

७. रुक्मीकूट के उपरितन चरमान्त से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तासी सौ योजन का है।

टिप्पण

१. उत्तर-प्रकृतियां सत्तासी (सत्तासीइं उत्तरपगडीओ)

ज्ञानावरणीय और अन्तराय कर्म की उत्तर-प्रकृतियों को छोड़कर शेष छह कर्मों की उत्तर-प्रकृतियां इस प्रकार हैं—

दर्शनावरणीय कर्म की	— ९
वेदनीय कर्म की	— २
मोहनीय कर्म की	—२८
आयुष्य कर्म की	— ४
नाम कर्म की	—४२
गोत्र कर्म की	— २
कुल योग	८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठासीइइमो समवाओ : अठासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स अट्ठासीइं-अट्ठासीइं महग्गहा परिवारो पण्णत्तो।	एकैकस्य चन्द्रमःसूर्यस्य अष्टाशीतिः अष्टाशीतिः महाग्रहाः परिवारः प्रज्ञप्तः।	१. प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के अठासी-अठासी महाग्रहों का परिवार है।[१]
२. दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइं सुत्ताइं पण्णत्ताइं, तं जहा—उज्जुसुयं परिणयापरिणयं बहुभंगियं विजयचरियं अणंतरं परंपरं सामाणं संजूहं संभिण्णं आहच्चायं सोवत्थियं घंटं नंदावत्तं बहुलं पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवंभूयं दुयावत्तं वत्तमाणुपयं समभिरूढं सव्वओभद्दं पण्णासं दुप्पडिग्गहं।	दृष्टिवादस्य अष्टाशीतिः सूत्राणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—ऋजुसूत्रं परिणतापरिणतं बहुभङ्गिकं विजयचरितं अनन्तरं परम्परं सामानं (सत्) संयूथं संभिन्नं यथात्यागं सोवस्तिकः घण्टः नन्दावर्त्तः बहुलः पृष्टापृष्टः व्यावर्त्तः एवंभूतः द्वयावर्तः वर्तमानपदं समभिरूढः सर्वतोभद्रं पन्यासः दुष्प्रतिग्रहः।	२. दृष्टिवाद के सूत्र अठासी हैं,[२] जैसे—ऋजुसूत्र, परिणतापरिणत, बहुभंगिक, विजयचरित, अनन्तर, परंपर, सामान (सत्), संयूथ, संभिन्न, यथात्याग, सौवस्तिकघंट, नन्दावर्त्त, बहुल, पृष्टापृष्ट, व्यावर्त, एवंभूत, द्वयावर्त, वर्तमानपद, समभिरूढ, सर्वतोभद्र, पन्यास, दुष्प्रतिग्रह।
इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णच्छेयनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए।	इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्र-परिपाट्या।	ये बाईस सूत्र स्व-समय-परिपाटी (जैनागम पद्धति) के अनुसार छिन्नछेद-नयिक होते हैं।
इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिण्णच्छेयनइयाणि आजीविय-सुत्तपरिवाडीए।	इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीवकसूत्र-परिपाट्या।	ये बाईस सूत्र आजीवक परिपाटी के अनुसार अछिन्नछेद-नयिक होते हैं।
इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं तिगनइयाणि तेरासियसुत्त-परिवाडीए।	इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिक-नयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्या।	ये बाईस सूत्र त्रैराशिक परिपाटी के अनुसार त्रिक-नयिक होते हैं।
इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए।	इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरि-पाट्या।	ये बाईस सूत्र स्व-समय-परिपाटी के अनुसार चतुष्क-नयिक होते हैं।
एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीइ सुत्ताइं भवंति त्ति मक्खायं।	एवमेव सपूर्वापरेण अष्टाशीतिः सूत्राणि भवंतीति आख्यातम्।	इन सबका योग करने पर अठासी सूत्र होते हैं[३]।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यं चरमान्तं, एतत् अष्टाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

३. मन्दर पर्वत के पूर्वीय चरमान्त से गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वीय चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठासी हजार योजन का है।

४. मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरिमंताओ दओभासस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दरस्य पर्वतस्य दाक्षिणात्यात् चरमान्तात् दकावभासस्य आवासपर्वतस्य दाक्षिणात्यं चरमान्तं, एतत् अष्टाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

४. मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठासी हजार योजन का है।

५. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ संखस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्तात् शंखस्य आवासपर्वतस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् अष्टाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

५. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठासी हजार योजन का है।

६. मंदरस्स णं पव्वयस्स उत्तरिल्लाओ चरिमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरीयात् चरमान्तात् दकसीमस्य आवासपर्वतस्य उत्तरीयं चरमान्तं, एतत् अष्टाशीतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

६. मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठासी हजार योजन का है।

७. बाहिराओ णं उत्तराओ कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमीणे चोयालीसइमंमंडलगते अट्ठासीति इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ।

बाह्यायाः उत्तरस्याः काष्ठायाः सूर्यः प्रथमं षण्मासं आयान् चतुश्चत्वारिंशत्तममण्डलगतः अष्टाशीतिं एकषष्ठिभागान् मुहूर्त्तस्य दिवसक्षेत्रस्य निवर्ध्य, रजनीक्षेत्रस्य अभिनिवर्ध्य सूर्यः चारं चरति।

७. सर्वाभ्यन्तर मंडलात्मक उत्तर दिशा से पहले छह मास तक दक्षिणायन की ओर गति करता हुआ सूर्य जब चौवालीसवें मण्डल में आता है तब $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिवस-क्षेत्र की हानि तथा $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण रात्री-क्षेत्र की वृद्धि करता हुआ गति करता है।[1]

८. दक्खिणकट्ठाओ णं सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमीणे चोयालीसतिमंमंडलगते अट्ठासीई इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ।

दक्षिणकाष्ठायाः सूर्यः द्वितीयं षण्मासं आयान् चतुश्चत्वारिंशत्तममण्डलगतः अष्टाशीतिं एकषष्ठिभागान् मुहूर्त्तस्य रजनीक्षेत्रस्य निवर्ध्य, दिवसक्षेत्रस्य अभिनिवर्ध्य सूर्यः चारं चरति।

८. दक्षिण दिशा से दूसरे छह मास तक उत्तरायण की ओर गति करता हुआ सूर्य जब चौवालीसवें मंडल में आता है तब $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण रात्री-क्षेत्र की हानि तथा $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिवस-क्षेत्र की वृद्धि करता हुआ गति करता है।[1]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र १

प्रस्तुत आलापक में चन्द्र और सूर्य—दोनों के परिवार का उल्लेख है। वृत्तिकार का कथन है कि यद्यपि यह परिवार चन्द्र का ही सुना जाता है, किन्तु सूर्य भी ज्योतिष्चक्र का इन्द्र होने के कारण उसका भी यही परिवार जानना चाहिए।[1]

२,३. दृष्टिवाद के सूत्र अठासी (दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइं सुत्ताइं)

देखें—समवाय २२/२ का टिप्पण।

४,५. सूर्य···गति करता है (सूरिए···चरइ)

सूर्य जब दक्षिणायन में गति करता है तब दिन अठारह मुहूर्त्त का होता है। वह प्रत्येक मंडल को दो अहोरात्र में पार करता है। प्रत्येक मंडल में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन कम होता जाता है। इस प्रकार जब वह चौवालीसवें मंडल में जाता है तब $\frac{२}{६१} X ४४ = \frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन कम हो जाता है। इसी प्रकार चौवालीसवें मंडल में रात $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण बढ़ती है।

सूर्य जब उत्तरायण में गति करता है तब प्रति मंडल में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण दिन बढ़ता है और इसी प्रमाण में रात कम होती जाती है। जब सूर्य चौवालीसवें मंडल में पहुंचता है, तब दिन $\frac{८८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण अधिक और उसी प्रमाण में रात कम होती है।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ७८ :

एकैकस्यासंख्यातानामपि प्रत्येकमित्यर्थः, चन्द्रमाश्च सूर्यश्च चन्द्रमःसूर्यं तस्य चन्द्रसूर्ययुगलस्य इत्यर्थः, अष्टाशीतिर्महाग्रहाः एते च यद्यपि चन्द्रस्यैव परिवारोऽन्यत्र श्रूयते तथापि सूर्यस्यापीन्द्रत्वादेत एव परिवारतयाऽवसेया इति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८७, ८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८९

एगूणणउइइमो समवाओ : नवासिवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. उसभे णं अरहा कोसलिए इमीसे ओसप्पिणीए ततियाए समाए पच्छिमे भागे एगूणणउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइजरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	ऋषभः अर्हन् कौशलिकः अस्याः अवसर्पिण्याः तृतीयायाः समायाः पश्चिमे भागे एकोननवत्यां अर्द्धमासेषु शेषेषु कालगतः व्यतिक्रान्तः समुद्यातः छिन्नजातिजरामरणबन्धनः सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	१. कौशलिक अर्हत् ऋषभ इस अवसर्पिणी के तीसरे—सुषम-दुःषमा आरे के पश्चिम भाग (अन्त) में, नवासी अर्द्धमास शेष रहने पर कालगत हुए, संसार का पार पा गए, ऊर्ध्वगामी हुए, जन्म, जरा और मरण के बन्धन को छिन्न कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
२. समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थीए समाए पच्छिमे भागे एगूणणउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए वीइक्कंते समुज्जाए छिण्णजाइ-जरामरणबंधणे सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्ख-प्पहीणे।	श्रमणः भगवान् महावीरः अस्याः अवसर्पिण्याः चतुर्थ्याः समायाः पश्चिमे भागे एकोननवत्यां अर्द्धमासेषु शेषेषु कालगतः व्यतिक्रान्तः समुद्यात्ः छिन्नजातिजरामरणबन्धनः सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. श्रमण भगवान् महावीर इस अवसर्पिणी के चौथे—दुःषम-सुषमा—आरे के पश्चिम-भाग (अन्त) में, नवासी अर्द्ध-मास शेष रहने पर कालगत हुए, संसार का पार पा गए, ऊर्ध्वगामी हुए, जन्म, जरा और मरण के बन्धन को छिन्न कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
३. हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एगूणणउइं वाससयाइं महाराया होत्था।	हरिषेणः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती एकोननवतिं वर्षशतानि महाराजः आसीत्।	३. चातुरन्त चक्रवर्ती राजा हरिषेण नवासी सौ वर्षों तक महाराज रहे।[1]
४. संतिस्स णं अरहओ एगूणणउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जासंपया होत्था।	शान्तेः अर्हतः एकोननवतिः आर्यासाहस्र्यः उत्कृष्टा आर्यासम्पद् आसीत्।	४. अर्हत् शान्ति की उत्कृष्ट साध्वी-सम्पदा नवासी हजार आर्याओं[2] की थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र ३

हरिषेण दसवें चक्रवर्ती थे। उनका संपूर्ण आयु दस हजार वर्ष का था। उन्होंने नवासी सौ वर्षों तक राज्य किया और ग्यारह सौ वर्षों तक कुमार-अवस्था, मांडलिक राजा तथा मुनि के रूप में रहे।[1] समवाय ९७/४ में उनका सम्पूर्ण गृहवास सतानवें सौ वर्ष बताया है। इसका तात्पर्य है कि वे तीन सौ वर्षों तक मुनि के रूप में रहे। वृत्तिकार का कथन है कि उनकी गृहस्थ-पर्याय सतानवे सौ वर्षों से कुछ कम (देशोनानि) और प्रव्रज्या-काल तीन सौ वर्षों से कुछ अधिक का था।[2]

२. नवासी हजार आर्याओं (एगूणणउई अज्जसाहस्सीओ)

आवश्यकनिर्युक्ति में इनकी साध्वी-सम्पदा ६१६०० बतलाई है।[3] समवायांग के वृत्तिकार ने इसे मतान्तर माना है।[4]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८८ :
हरिषेणचक्रवर्ती दशमस्तस्य च दश वर्षसहस्राणि सर्वायुस्तत्र च शतोनानि नव सहस्राणि राज्यं शेषाण्येकादश शतानि कुमारत्वमाण्डलिकत्वानगारत्वेषु अवसेयानि।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ६२ :
हरिषेणो दशमचक्रवर्ती देशोनानि सप्तनवति वर्षशतानि गृहमध्युषितस्त्रीणि चाधिकानि प्रव्रज्यां पालितवान् दशवर्षसहस्रत्वात् तदायुष्कस्येति।

३. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २८४, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २०८।

४. समवायांगवृत्ति, पत्र ८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०

णउइइमो समवाओ : नब्बेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सीयले णं अरहा नउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	शीतल: अर्हन् नवतिं धनूंषि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	१. अर्हत् शीतल नब्बे धनुष्य ऊंचे थे।
२. अजियस्स णं अरहओ नउइं गणा नउइं गणहरा होत्था।	अजितस्य अर्हत: नवति: गणा: नवति: गणधरा: आसन्।	२. अर्हत् अजित के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे।
३. संतिस्स णं अरहओ नउइं गणा नउइं गणहरा होत्था।	शान्ते: अर्हत: नवति: गणा: नवति: गणधरा: आसन्।	३. अर्हत् शान्ति के नब्बे गण और नब्बे गणधर थे।[1]
४. सयंभुस्स णं वासुदेवस्स णउइवासाइं विजए होत्था।	स्वयंभुव: वासुदेवस्य नवतिवर्षाणि विजय आसीत्।	४. वासुदेव स्वयम्भू नब्बे वर्षों तक दूसरे राज्यों को जीतने में लगे रहे।
५. सव्वेसि णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं नउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	सर्वेषां वृत्तवैताढ्यपर्वतानां उपरितनात् शिखरतलात् सौगन्धिककाण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् नवति योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	५. सभी वृत्तवैताढ्य पर्वतों के उपरितन शिखरतल से सौगंधिक कांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर नौ हजार योजन का है।

टिप्पण

१. सूत्र २, ३ :

आवश्यकनिर्युक्ति में अजित के पचानवे गण और पचानवे गणधर बतलाए हैं[1] तथा शांति के छत्तीस गण और छत्तीस गणधर बतलाए हैं।[2] समवायांगवृत्ति के अनुसार ये दोनों मतान्तर हैं।[3]

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति, गा० २६६, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २१०।

२. वही, गा० २६७, अवचूर्णि प्रथम विभाग, पृ० २११।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ८८:

''''''आवश्यके तु पञ्चनवतिरजितस्य षट्त्रिंशत् तु शान्तेरुक्तास्तदिदमपि मतान्तरमिति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९१
एक्काणउइइमो समवाओ : इक्यानबेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एक्काणउई परवेयावच्च-कम्मपडिमाओ पण्णत्ताओ।	एकनवतिः परवैयावृत्यकर्मप्रतिमाः प्रज्ञप्ताः ।	१. दूसरों के वैयावृत्यकर्म की प्रतिमाएं इक्यानबे[1] हैं।
२. कालोए णं समुद्दे एक्काणउई जोयणसयसहस्साइं साहियाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ते।	कालोदः समुद्रः एकनवतिं योजनशत-सहस्राणि साधिकानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः ।	२. कालोद समुद्र का परिक्षेप इक्यानबे लाख योजन से कुछ अधिक[2] है।
३. कुंथुस्स णं अरहओ एक्काणउई अहोहियसया होत्था।	कुन्थोः अर्हतः एकनवतिः आधोवधिक-शतानि आसन् ।	३. अर्हत् कुन्थु के इक्यानबे सौ आधोवधिक ज्ञानी थे।
४. आउय-गोय-वज्जाणं छण्हं कम्मपगडीणं एक्काणउई उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	आयुष्य-गोत्र-वर्जानां षण्णां कर्मप्रकृतीनां एकनवतिः उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः ।	४. आयुष्य और गोत्रकर्म को छोड़ कर शेष छह कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां इक्यानबे हैं।

टिप्पण

१. दूसरों के वैयावृत्यकर्म की प्रतिमाएं इक्यानबे (एक्काणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ)

वैयावृत्यकर्म का अर्थ है—भक्त, पान आदि का सहयोग देने की प्रवृत्ति और प्रतिमा का अर्थ है—अभिग्रह। वृत्तिकार के अनुसार इक्यानबे प्रतिमाओं का विवरण कहीं भी उपलब्ध नहीं है। उन्होंने संभावित रूप में इक्यानबे प्रकारों का उल्लेख किया है।

दर्शनगुण से विशिष्ट व्यक्तियों के प्रति दस प्रकार का शुश्रूषा विनय होता है—सत्कार, अभ्युत्थान, सम्मान, आसनाभिग्रह, आसन-अनुप्रदान, कृतिकर्म, अंजलिप्रग्रह, अभिमुखगमन, स्थिरवास वालों की पर्युपासना और पहुंचाने जाना।

अनाशातना विनय साठ प्रकार का है—तीर्थङ्कर, धर्म, आचार्य, वाचक, स्थविर, कुल, गण, संघ, सांभोगिक, क्रिया, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान—इन पन्द्रह की अनाशातना, भक्ति, बहुमान और वर्णवाद करना।

औपचारिक विनय के सात प्रकार हैं—

१. अभ्यास-आसन—गुरू के समीप बैठना।

२. छन्दोनुवर्तन—गुरू के अभिप्राय के अनुसार चलना।

३. कृत-प्रतिकृति—प्रसन्न होने पर गुरू सूत्र आदि की वाचना देंगे—ऐसा मान कर शुश्रूषा करना।

४. कारितनिमित्तकरण—शास्त्र का सम्यक् अध्ययन कराने पर विशेष विनय करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. दु:खार्त्तगवेषण—दु:ख से पीड़ित व्यक्तियों के दु:ख की गवेषणा करना।

६. देश-काल को जानना।

७. सर्वार्थ-अनुमति—सब विषयों में अनुमति देना।

वैयावृत्य चौदह प्रकार का है—प्रव्राजनाचार्य, दिगाचार्य, उद्देशाचार्य, समुद्देशाचार्य, वाचानाचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष, साधर्मिक, कुल, गण, संघ—इन चौदह की वैयावृत्य करना।[1]

इस प्रकार विनय के कुल प्रकार (१०+६०+७+१४) ९१ होते हैं।

२. इक्यानबे लाख योजन से कुछ अधिक (एक्काणउई जोयणसयसहस्साइं साहियाइं)

कुछ अधिक से यहां ७०६०५ योजन, १७१५ धनुष्य और साधिक ८७ अंगुल ग्रहण किया गया है।[2]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ८८, ८९ :

परेषां—आत्मव्यतिरिक्तानां वैयावृत्यकर्माणि—भक्तपानादिभिरुपष्टम्भक्रियास्तद् विषयाः प्रतिमाः—अभिग्रहविशेषाः········, एतानि च प्रतिमात्वेनाभिहितानि क्वचिदपि नोपलब्धानि, केवलं विनयवैयावृत्यभेदा एते संभवन्ति,·······इत्येकनवतिर्विनयभेदा एते एव अभिग्रहविषयीभूताः प्रतिमा उच्यन्ते इति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ८९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२

बाणउइइमो समवाओ : बानबेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. बाणउइं पडिमाओ पण्णत्ताओ।	द्विनवतिः प्रतिमाः प्रज्ञप्ताः।	१. प्रतिमाएं बानबे हैं[1]।
२. थेरे णं इंदभूती बाणउइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः इन्द्रभूतिः द्विनवतिं वर्षाणि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	२. स्थविर इन्द्रभूति बानबे वर्ष के पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
३. मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं बाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य बहुमध्यदेशभागात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् द्विनवतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	३. मन्दर पर्वत के बहुमध्यदेशभाग से गोस्तूप आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बानबे हजार योजन का है।
४. एवं चउण्हंपि आवासपव्वयाणं।	एवं चतुर्णामपि आवासपर्वतानाम्।	४. इसी प्रकार मन्दर पर्वत के बहुमध्य-देशभाग से दकावभास आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का, शंख आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त का और दकसीम आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर बानबे-बानबे हजार योजन का है।

टिप्पण

१. प्रतिमाएं बानबे (बाणउइं पडिमाओ)

यहां बानबे प्रतिमाओं का नामोल्लेख नहीं है। वृत्तिकार ने दशाश्रुतस्कंध की निर्युक्ति (गाथा ४४-५१) के आधार पर उनका विवरण प्रस्तुत किया है। प्रतिमाओं के मूल प्रकार पांच हैं—समाधिप्रतिमा, उपधानप्रतिमा, विवेकप्रतिमा, प्रतिसंलीनताप्रतिमा और एकविहारप्रतिमा।

समाधिप्रतिमा के दो प्रकार हैं—श्रुतसमाधिप्रतिमा और चारित्रसमाधिप्रतिमा।

श्रुतसमाधिप्रतिमा के बासठ प्रकार हैं। आचारांग में इसके पांच प्रकार प्राप्त हैं। आचार-चूला में सैंतीस, स्थानांग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सोलह और व्यवहार सूत्र में चार—इस प्रकार बासठ प्रकार हो जाते हैं। यद्यपि ये चारित्र प्रतिमाएं हैं किन्तु ये विशिष्ट श्रुतवान् मुनि के होती हैं, इसलिए इन्हें 'श्रुतप्रतिमा' कहा गया, ऐसा सम्भव है। चारित्रसमाधिप्रतिमा के पांच प्रकार हैं—सामायिक चारित्रप्रतिमा, छेदोपस्थापनीय चारित्रप्रतिमा, परिहारविशुद्ध चारित्रप्रतिमा, सूक्ष्मसंपराय चारित्रप्रतिमा और यथाख्यात चारित्रप्रतिमा।

उपधानप्रतिमा के दो प्रकार हैं—भिक्षुप्रतिमा और उपासकप्रतिमा।

भिक्षु प्रतिमाएं बारह हैं (समवाय १२)। उपासकप्रतिमाएं ग्यारह हैं (समवाय ११)।

विवेकप्रतिमा और प्रतिसंलीनताप्रतिमा का कोई प्रकार-भेद नहीं है। एकविहारप्रतिमा बारह भिक्षुप्रतिमा के अन्तर्गत गिनी गई है, इसलिए वह यहां पृथक् विवक्षित नहीं है। प्रतिमाओं का कुल योग इस प्रकार है'—

समाधिप्रतिमा	—६२+ ५=६७	
उपधानप्रतिमा	—१२+११=२३	
विवेकप्रतिमा	—	१
प्रतिसंलीनताप्रतिमा	—	१
	कुल योग	९२

इस प्रसंग में ठाणं २/२४३-२४८ के आलापक और उनके टिप्पण पृष्ठ १३२-१३७ द्रष्टव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९३

तेणउइइमो समवाओ : तिरानवेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउइं गणा तेणउइं गणहरा होत्था ।	चन्द्रप्रभस्य अर्हतः त्रिनवतिः गणाः त्रिनवतिः गणधराः आसन् ।	१. अर्हत् चन्द्रप्रभ के तिरानवे गण और तिरानवे गणधर थे ।
२. संतिस्स णं अरहओ तेणउइं चउद्दसपुव्विसया होत्था ।	शान्तेः अर्हतः त्रिनवतिः चतुर्दशपूर्विशतानि आसन् ।	२. अर्हत् शांति के तिरानवे सौ चौदहपूर्वी थे ।
३. तेणउइमंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ ।	त्रिनवतिमण्डलगतः सूर्यः अतिवर्तमानो निवर्तमानो वा समं अहोरात्रं विषमं करोति ।	३. तिरानवे मंडल में रहा हुआ सूर्य अतिवर्तन (सर्व-बाह्य-मंडल से सर्वाभ्यंतर-मंडल की ओर जाता हुआ) तथा निवर्तन करता हुआ (सर्वाभ्यंतर-मंडल से सर्व-बाह्य-मंडल की ओर जाता हुआ) सम अहोरात्र को विषम कर देता है[1] ।

टिप्पण

१. सूर्य···विषम कर देता है (सूरिए ··विसमं करेइ)

जब दिन और रात पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्त्त के होते हैं तब उन्हें 'सम अहोरात्र' कहा जाता है। जब सूर्य सर्व-आभ्यंतर-मंडल में रहता है तब अठारह मुहूर्त्त का दिन और बारह मुहूर्त्त की रात्री होती है और जब सूर्य सर्व-बाह्य-मंडल में रहता है तब अठारह मुहूर्त्त की रात्री और बारह मुहूर्त्त का दिन होता है। शेष एक सौ तिरासी मंडलों में, प्रतिमंडल $\frac{२}{६१}$ भाग की वृद्धि या हानि होती है। जब दिन बढ़ता है तब रात घटती है और जब रात बढ़ती है तब दिन घटता है। इस प्रकार जब सूर्य बानवें मंडल में आता है तब तक $\left(\frac{२}{६१} X ९२\right)$ $३\frac{१}{६१}$ मुहूर्त्त की हानि या वृद्धि होती है। $\frac{१}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण की विवक्षा न कर हम जब अठारह मुहूर्त्तों में से घटाते हैं तो पन्द्रह मुहूर्त्त और जब बारह मुहूर्त्तों में मिलाते हैं तो पन्द्रह मुहूर्त्त होते हैं। अतः बानवें मंडल के अर्धभाग में दिन-रात की समानता होती है और बाद में विषमता। इसीलिए बानवें मंडल से प्रारम्भ कर जब सूर्य तिरानवें मंडल में आता है तब दिन-रात विषम हो जाते हैं।

१ समवायांगवृत्ति, पत्र ९० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४
चउणउइइमो समवाओ : चौरानवेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१ निसहनोलवंतियाओ णं जीवाओ चउणउइं-चउणउइं जोयण-सहस्साइं एक्कं छप्पण्णं जोयणसयं दोण्णि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं पण्णत्ताओ।	नैषधनोलवत्यौ जीवे चतुर्नवति-चतुर्नवति योजनसहस्राणि एकं षट्पञ्चाशत् योजनशतं द्वौ च एकोन-विंशतिभागान् योजनस्य आयामेन प्रज्ञप्ते।	१. निषध और नीलवान् पर्वत की प्रत्येक जीवा ९४१५६ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी है।
२. अजियस्स णं अरहओ चउणउइं ओहिनाणिसया होत्था।	अजितस्य अर्हतः चतुर्नवतिः अवधिज्ञानिशतानि आसन्।	२. अर्हत् अजित के चौरानवे सौ अवधि-ज्ञानी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९५
पंचाणउइइमो समवाओ : पंचानवेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइं गणा पंचाणउइं गणहरा होत्था।	सुपार्श्वस्य अर्हतः पञ्चनवतिः गणाः पञ्चनवतिः गणधराः आसन्।	१. अर्हत् सुपार्श्व के पंचानवे गण और पंचानवे गणधर थे।
२. जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स चरिमंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइं-पंचाणउइं जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चत्तारि महापायाला पण्णत्ता, तं जहा—वलयामुहे केउए जूवते ईसरे।	जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य चरमान्तात् चतुर्दिक्षु लवणसमुद्रं पञ्चनवतिं-पञ्चनवतिं योजनसहस्राणि अवगाह्य चत्वारः महापातालाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—वडवामुखः केतुकः यूपकः, ईश्वरः।	२. जम्बूद्वीप द्वीप के चरमान्त से चारों दिशाओं में लवण समुद्र का पंचानवे-पंचानवे हजार योजन अवगाहन करने पर वहां चार महापाताल कलश हैं, जैसे—वडवामुख, केतुक, यूपक और ईश्वर।
३. लवणसमुद्दस्स उभओ पासंपि पंचाणउइं-पंचाणउइं पदेसाओ उव्वेहुस्सेहपरिहाणीए पण्णत्ताओ।	लवणसमुद्रस्य उभयपार्श्वतः पञ्चनवतिः पञ्चनवतिः प्रदेशाः उद्वेधोत्सेधपरिहान्या प्रज्ञप्ताः।	३. लवण समुद्र के दोनों पार्श्वों (नीचे) और ऊपर) में पंचानवे-पंचानवे प्रदेशों का[1] अतिक्रमण करने पर गहराई या ऊंचाई के रूप में एक-एक प्रदेश की हानि होती है।
४. कुंथू णं अरहा पंचाणउइं वाससहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	कुन्थुः अर्हन् पञ्चनवतिं वर्षसहस्राणि परमायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	४. अर्हत् कुन्थु पंचानवे हजार वर्षों के सर्व आयुष्य का[1] पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
५. थेरे णं मोरियपुत्ते पंचाणउइवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः मौर्यपुत्रः पञ्चनवतिं वर्षाणि सर्वायुः पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	५. स्थविर मौर्यपुत्र पंचानवे वर्षों के सर्व आयुष्य का[3] पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. पंचानवे-पंचानवे प्रदेशों का (पंचाणउइं-पंचाणउइं पदेसाओ)

लवण समुद्र के मध्य भाग में दस हजार योजन प्रमाण क्षेत्र है। उसकी गहराई समभूतल से हजार योजन की है। वहां से जब हम पंचानवे प्रदेश आगे बढ़ते हैं तब गहराई में एक प्रदेश की हानि होती है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश की हानि होते-होते जब हम पंचानवे हजार योजन प्रमाण क्षेत्र का उल्लंघन करते हैं तब एक हजार योजन प्रमाण गहराई की हानि होती है।

इसी प्रकार लवण समुद्र के मध्य भाग की अपेक्षा से समुद्रतट की ऊंचाई एक हजार योजन की है। वहां समभूतलरूप समुद्रतट से जब हम पंचानवे प्रदेश आगे जाते हैं तब ऊंचाई में एक प्रदेश की हानि होती है। इस क्रम से जब पंचानवे हजार योजन प्रमाण क्षेत्र का उल्लंघन होता है तब एक हजार योजन प्रमाण ऊंचाई की हानि होती है।[1]

२. पंचानवे हजार वर्षों के सर्व आयुष्य का (पंचाणउइं वाससहस्साइं परमाउं)

कुमारावस्था—	२३७५० वर्ष
मांडलिक राजा—	२३७५० वर्ष
चक्रवर्ती—	२३७५० वर्ष
प्रव्रज्या अवस्था—	२३७५० वर्ष
कुल योग	९५००० वर्ष[2]

३. पंचानवे वर्षों के सर्व आयुष्य का (पंचाणउइवासाइं सव्वाउयं)

गृहस्थावस्था	—६५ वर्ष
छद्मस्थावस्था	—१४ वर्ष
केवली अवस्था	—१६ वर्ष
कुल योग	९५ वर्ष[3]

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ९१।

२. वही, पत्र ९१।

३. वही, पत्र ९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६

छण्णउइइमो समवाओ : छियानवेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. एगमेगस्स णं रण्णो चाउरंतचक्कवट्टिस्स छण्णउइं-छण्णउइं गामकोडीओ होत्था।	एकैकस्य राज्ञः चातुरन्तचक्रवर्तिनः षण्णवतिः षण्णवतिः ग्रामकोटयः आसन्।	१. प्रत्येक चातुरंत चक्रवर्ती राजा के छियानवे-छियानवे कोटि ग्राम होते हैं।
२. वाउकुमाराणं छण्णउइं भवणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।	वायुकुमाराणां षण्णवतिः भवनावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।	२. वायुकुमार देवों के छियानवे लाख भवनावास हैं[1]।
३. ववहारिए णं दंडे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकः दण्डः षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	३. व्यावहारिक दंड, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बा होता है[2]।
४. ववहारिए णं धणू छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकं धनुः षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	४. व्यावहारिक धनुष्य, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बा होता है।
५. ववहारिया णं नालिया छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकी नालिका षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	५. व्यावहारिक नालिका, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बी होती है।
६. ववहारिए णं जुगे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकः युगः षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	६. व्यावहारिक युग, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बा होता है।
७. ववहारिए णं अक्खे छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकः अक्षः षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	७. व्यावहारिक अक्ष, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बा होता है।
८. ववहारिए णं मुसले छण्णउइं अंगुलाइं अंगुलपमाणेणं।	व्यावहारिकः मुशलः षण्णवतिं अङ्गुलानि अङ्गुलप्रमाणेन।	८. व्यावहारिक मुशल, अंगुल-मान से, छियानवे अंगुल लम्बा होता है।
९. अब्भंतराओ आतिमुहुत्ते छण्णउइ-अंगुलछाए पण्णत्ते।	आभ्यन्तरात् आदिमुहूर्त्तः षण्णवत्यङ्गुलच्छायः प्रज्ञप्तः।	९. जब सूर्य सर्वाभ्यन्तर मंडल में रहता है, उस दिन का प्रथम मुहूर्त्त छियानवे अंगुल की छाया[3] वाला होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. सूत्र २ :

वायुकुमार देवों के दक्षिण दिशा में पचास लाख और उत्तर दिशा में छियालीस लाख भवनावास होते हैं ।[1]

२. सूत्र ३ :

जिसके द्वारा गाउ आदि का प्रमाण किया जाता है उसे 'व्यावहारिक दंड' कहते हैं। दंड चार हाथ का होता है। प्रत्येक हाथ चौबीस अंगुल का होता है, अतः प्रामाणिक दंड छियानबे अंगुल का होता है। अव्यावहारिक दंड का माप नियत नहीं होता। वह छोटा-बड़ा भी हो सकता है।[2]

३. छियानवे अंगुल की छाया (छण्णउइ-अंगुलछाए)

जब सूर्य आभ्यन्तर मंडल में रहता है तब दिन अठारह मुहूर्त्त का होता है। उस समय एक मुहूर्त्त बारह अंगुल वाले शंकु के प्रमाण से छियानवे अंगुल की छाया वाला होता है। छाया-गणित के अनुसार शंकु की लम्बाई को मुहूर्त्तों की संख्या से गुणित किया जाता है—१८X१२=२१६। इसका आधा करने पर १०८ आते हैं। इसमें शंकु का प्रमाण (१२ अंगुल) निकालने पर शेष छियानवे रहते हैं।[3]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१ :
वायुकुमाराणां षण्णवतिर्भवनलक्षाणि, दक्षिणस्यां पञ्चाशत उत्तरस्यां च षट्चत्वारिंशतो भावादिति।

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१ :
व्यावहारिको येन गव्यूतादि प्रमाणं चिन्त्यते, अव्यावहारिकस्तु लघुः दीर्घो वा भवत्युक्तप्रमाणात्, दण्डो हि चतुःकर उक्तः, करश्चतुर्विंशत्यंगुलः एवं चतुर्विंशतौ चतुर्गुणितायां षण्णवतिः स्यादेवेति।

३. समवायांगवृत्ति, पत्र ६१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७
सत्ताणउइइमो समवाओ : सत्तानवेवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं सत्ताणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।	मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् सप्तनवतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।	१. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गोस्तूप आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तानवे हजार योजन का है।
२. एवं चउद्दिसिंपि।	एवं चतुर्दिक्षु अपि।	२. मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का, मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त का, मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सत्तानवे-सत्तानवे हजार योजन का है।
३. अट्ठण्हं कम्मपगडीणं सत्ताणउइं उत्तरपगडीओ पण्णत्ताओ।	अष्टानां कर्मप्रकृतीनां सप्तनवतिः उत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः।	३. आठों कर्म-प्रकृतियों की उत्तर-प्रकृतियां सत्तानवे हैं।
४. हरिसेणे णं राया चाउरंत-चक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइं वाससयाइं अगारमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइए।	हरिषेणः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती देशोनानि सप्तनवतिं वर्षशतानि अगारमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।	४. चातुरन्त चक्रवर्ती राजा हरिषेण कुछ कम सत्तानवे सौ वर्षों तक अगारवास में रह कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८
अट्ठाणउइइमो समवाओ : अठानवेवां समवाय

मूल

१. नंदणवणस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ पंडयवणस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

२. मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं अट्ठाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

३. एवं चउदिसिंपि।

४. दाहिणभरहद्धस्स णं धणुपट्ठे अट्ठाणउइं जोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं पण्णत्ते।

संस्कृत छाया

नन्दनवनस्य उपरितनात् चरमान्तात् पण्डकवनस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् अष्टनवतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

मन्दरस्य पर्वतस्य पाश्चात्यात् चरमान्तात् गोस्तूपस्य आवासपर्वतस्य पौरस्त्यं चरमान्तं, एतत् अष्टनवतिं योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

एवं चतुर्दिक्षु अपि।

दक्षिणभरतार्द्धस्य धनुःपृष्ठं अष्टनवतिं योजनशतानि किञ्चिदूनानि आयामेन प्रज्ञप्तम्।

हिन्दी अनुवाद

१. नंदनवन के उपरितन चरमान्त से पण्डकवन के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अंतर अठानवे हजार योजन का है।

२. मन्दर पर्वत के पश्चिमी चरमान्त से गोस्तूप आवास-पर्वत के पूर्वी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठानवे हजार योजन का है।

३. मन्दर पर्वत के उत्तरी चरमान्त से दकावभास आवास-पर्वत के दक्षिणी चरमान्त का, मन्दर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से शंख आवास-पर्वत के पश्चिमी चरमान्त का और मन्दर पर्वत के दक्षिणी चरमान्त से दकसीम आवास-पर्वत के उत्तरी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर अठानवे-अठानवे हजार याजन का है।

४. दक्षिण भरत का धनुःपृष्ठ कुछ न्यून अठानवे सौ योजन लम्बा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमीणे एगूणपंचासतिममंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ।

उत्तरस्यां काष्ठायां सूर्यः प्रथमं षण्मासं आयान् एकोनपञ्चाशत्तममण्डलगतः अष्टनवतिं एकषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य दिवसक्षेत्रस्य निवर्ध्य, रजनीक्षेत्रस्य अभिनिवर्ध्य सूर्यः चारं चरति।

५. प्रथम छह मासी तक उत्तर दिशा में गति करता हुआ सूर्य उनचासवें मंडल में दिवस-क्षेत्र को $\frac{९८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण न्यून और रात्रि-क्षेत्र को इसी प्रमाण में अधिक करता हुआ गति करता है।

६. दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमीणे एगूणपण्णासइममंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं सूरिए चारं चरइ।

दक्षिणस्यां काष्ठायां सूर्यः द्वितीयं षण्मासं आयान् एकोनपञ्चाशत्तम-मण्डलगतः अष्टनवतिं एकषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य रजनीक्षेत्रस्य निवर्ध्य, दिवसक्षेत्रस्य अभिनिवर्ध्य सूर्यः चारं चरति।

६. दूसरी छह मासी तक दक्षिण दिशा में गति करता हुआ सूर्य उनचासवें मंडल में रात्री-क्षेत्र को $\frac{९८}{६१}$ मुहूर्त्त प्रमाण न्यून और दिवस-क्षेत्र को इसी प्रमाण में अधिक करता हुआ गति करता।

७. रेवईपढमजेट्ठपज्जवसाणाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताणं अट्ठाणउइं ताराओ तारग्गेणं पण्णत्ताओ।

रेवतीप्रथमज्येष्ठपर्यवसानानां एकोनविंशत्याः नक्षत्राणां अष्टनवतिः ताराः ताराग्रेण प्रज्ञप्ताः।

७. रेवती नक्षत्र से ज्येष्ठा नक्षत्र तक के उन्नीस नक्षत्रों के, तारा प्रमाण से, अठानवे तारा[1] हैं।

टिप्पण

१. अठानवे तारा (अट्ठाणउइं ताराओ)

वृत्तिकार ने नक्षत्रों के ताराओं की संख्या का निर्देश किया है। उनके अनुसार सत्तानवे की संख्या प्राप्त होती है। उन्होंने सत्तानवे की संख्या को ग्रन्थान्तर का अभिमत माना है। उनके अनुसार किसी एक नक्षत्र का एक तारक अधिक होना चाहिए।[1] सूर्यप्रज्ञप्ति (१०/६२) के कुछ आदर्शों में अनुराधा के पांच तारों वाला पाठ मिलता है। उसकी वृत्ति (पत्र १३१) में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (७/१३१) की दो गाथाएं उद्धृत हैं। उसके अनुसार अनुराधा के चार तारा ही हैं। किन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति के कुछ आदर्शों में मिलने वाले पांच तारों के उल्लेख के अनुसार अठानवें तारों की संख्या घटित हो जाती है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ९२, ९३ :
सर्वतारामीलने यथोक्तं ताराग्रमेकोनं ग्रन्थान्तराभिप्रायेण भवति, अधिकृतग्रन्थाभिप्रायेण त्वेषामेकतरस्य एकताराधिकत्वं सम्भाव्यते ततो यथोक्ता तत्संख्या भवतीति।

नक्षत्र	तारा	समवाय	स्थानांग
रेवती	३२	३२	०
अश्विनी	३	३	३/५५६
भरती	३	३	३/५५६
कृतिका	६	६	६/१२६
रोहिणी	५	५	५/२३७
मृगशिर	३	३	३/५५६
आर्द्रा	१	१	१/२५१
पुनर्वसु	५	५	५/२३७
पुष्य	३	३	३/५५६
अश्लेषा	६	६	६/१२७
मघा	७	७	७/१४५
पूर्वफल्गुनी	२	२	२/४४५
उत्तरफल्गुनी	२	२	२/४४६
हस्त	५	५	५/२३७
चित्रा	१	१	१/२५२
स्वाति	१	१	१/२५३
विशाखा	५	५	५/२३७
अनुराधा	४	४	४/६५४
ज्येष्ठा	३	३	२/५५६
	९७	९७	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९९

णवणउइइमो समवाओ : निन्यानवेवां समवाय

मूल

१. मंदरे णं पव्वए णवणउइं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ते।

२. नंदणवणस्स णं पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

३. नंदणवणस्स णं दक्खिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्ले चरिमंते, एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

४. पढमे सूरियमंडले णवणउइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

५. दोच्चे सूरियमंडले णवणउइं जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

६. तइए सूरियमंडले णवणउइं जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

७. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अंजणस्स कंडस्स हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ वाणमंतर-भोमेज्ज-विहाराणं उवरिल्ले चरिमंते, एस णं णवणउइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

संस्कृत छाया

मन्दरः पर्वतः नवनवतिं योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तः।

नन्दनवनस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् नवनवतिं योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

नन्दनवनस्य दाक्षिणात्यात् चरमान्तात् उत्तरीयं चरमान्तं, एतत् नवनवतिं योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

प्रथमं सूर्यमण्डलं नवनवतिं योजन-सहस्राणि सातिरेकाणि आयाम-विष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।

द्वितीयं सूर्यमण्डलं नवनवतिं योजनसहस्राणि साधिकानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।

तृतीयं सूर्यमण्डलं नवनवतिं योजनसहस्राणि साधिकानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तम्।

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अञ्जनस्य काण्डस्य अधस्तनात् चरमान्तात् वानव्यन्तर-भौमेयविहाराणां उपरितनं चरमान्तं, एतत् नवनवतिं योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

हिन्दी अनुवाद

१. मन्दर पर्वत निन्यानवे हजार योजन ऊंचा है।

२. नन्दन वन के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर निन्यानवे सौ योजन का है।

३. नन्दन वन के दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर निन्यानवे सौ योजन का है।

४. प्रथम सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई निन्यानवे हजार योजन से कुछ अधिक है।[1]

५. दूसरे सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई निन्यानवे हजार योजन से कुछ अधिक है।[2]

६. तीसरे सूर्य-मण्डल की लम्बाई-चौड़ाई निन्यानवे हजार योजन से कुछ अधिक है।[3]

७. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अंजन कांड के नीचे के चरमान्त से वानमंतरों के भौमेय विहारों के उपरितन चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर निन्यानवे सौ योजन का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. प्रथम सूर्य-मंडल की ··कुछ अधिक है (पढमे सूरियमंडले ··साधिकानि ···)

कुछ अधिक का अर्थ है—६४० योजन अधिक।[1]

२. दूसरे सूर्य-मण्डल की···कुछ अधिक है (दोच्चे सूरियमंडले···साधिकानि···)

कुछ अधिक का अर्थ है—६४५ $\frac{३५}{६१}$ योजन अधिक।[2]

३. तीसरे सूर्यमण्डल को···कुछ अधिक है (तइए सूरियमंडले···साधिकानि···)

कुछ अधिक का अर्थ है—६५१ $\frac{९}{६१}$ योजन अधिक।[3]

जम्बूद्वीप एक लाख योजन का है। उसके चारों ओर एक सौ अस्सी योजन प्रमाण तक सूर्य का मंडल-क्षेत्र है। जम्बूदीप के आयाम-विष्कंभ से (१८०X२) ३६० योजन कम करने पर (१०००००-३६०) ९९६४० योजन का प्रथम सूर्य-मंडल होता है। मंडलों के बीच का अन्तर दो-दो योजन का है और सूर्य विमान का विष्कंभ $\frac{४८}{६१}$ योजन का है। इनका दुगुना $\left(२\frac{४८}{६१}X२\right)$ ५ $\frac{३५}{६१}$ होता है। दूसरे सूर्य-मंडल की लम्बाई-चौड़ाइ $\left(९९६४०+५\frac{३५}{६१}\right)$ ९९६४५ $\frac{३५}{६१}$ योजन की है। इसी प्रकार तीसरे सूर्य-मंडल की लम्बाई-चौड़ाई $\left(९९६४५\frac{३५}{६१}+५\frac{३५}{६१}\right)$ ९९६५१ $\frac{९}{६१}$ योजन की है।

इसी प्रकार प्रत्येक मंडल में ५ $\frac{३५}{६१}$ योजन अधिक होता जाता है।[4]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ९३।

२. वही, पत्र ९३।

३. वही, पत्र ९३।

४. वही, पत्र ९३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००
सततमो समवाओ : सौवां समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं राइंदियसतेणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया आणाए आराहिया यावि भवइ।	दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा एकेन रात्रिन्दिवशतेन अर्द्धषष्ठैः भिक्षाशतैः यथासूत्रं यथाकल्पं यथामार्गं यथातथ्यं सम्यक् कायेन स्पृष्टा पालिता शोधिता तीरिता कीर्तिता आज्ञया आराधिता चापि भवति।	१. दशदशमिका भिक्षु-प्रतिमा सौ दिन-रात की अवधि में ५५० भिक्षा-दत्तियों से सूत्र, कल्प, मार्ग और तथ्य के अनुरूप, काया से सम्यक् स्पृष्ट, पालित, शोधित, पारित, कीर्तित और आज्ञा से आराधित होती है।
२. सयभिसयानक्खत्ते एक्कसयतारे पण्णत्ते।	शतभिशग्नक्षत्रं एकशततार प्रज्ञप्तम्।	२. शतभिषक् नक्षत्र के सौ तारे हैं।
३. सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	सुविधिः पुष्पदन्तः अर्हन् एकं धनुःशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	३. अर्हत् सुविधि पुष्पदन्त सौ धनुष्य ऊंचे थे।
४. पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	पार्श्वः अर्हन् पुरुषादानीयः एकं वर्षशतं सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	४. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व सौ वर्षों की पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
५. थेरे णं अज्जसुहम्मे एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।	स्थविरः आर्यसुधर्मा एकं वर्षशतं सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।	५. स्थविर आर्य सुधर्मा सौ वर्षों की पूर्ण आयु का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।
६. सव्वेवि णं दीहवेयड्ढपव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि दीर्घवैताढ्यपर्वताः एकैकं गव्यूतिशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।	६. सभी दीर्घवैताढ्य पर्वत सौ-सौ गाउ (कोस) ऊंचे हैं।
७. सव्वेवि णं चुल्लहिमवंतसिहरी-वासहरपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि क्षुल्लहिमवत्-शिखरिवर्षधर-पर्वताः एकैकं योजनशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, एकैकं गव्यूतिशतं उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।	७. सभी क्षुल्लहिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत सौ-सौ योजन ऊंचे और सौ-सौ गाउ जमीन में गहरे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. सव्वेवि णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं, एगमेगं जोयणसयं मूले विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि काञ्चनकपर्वताः एकैकं योजनशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, एकैकं गव्यूतिशतं उद्वेधेन, एकैकं योजनशतं मूले विष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

८. सभी कांचनक पर्वत सौ-सौ योजन ऊंचे, सौ-सौ गाउ गहरे और सौ-सौ योजन मूल में चोड़े हैं।

टिप्पण

१. सौ वर्षों की पूर्ण आयु का (वाससयं सव्वाउयं)

स्थविर आर्य सुधर्मा भगवान् महावीर के पांचवें गणधर थे।

गृहस्थावस्था— ५० वर्ष
छद्मस्थावस्था— ४२ वर्ष
केवली अवस्था— ८ वर्ष

कुल योग—१०० वर्ष

पइण्णग समवाओ : प्रकीर्णक समवाय

मूल	संस्कृत छाया	हिन्दी अनुवाद
१. चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	चन्द्रप्रभः अर्हन् द्व्यर्द्धं धनुःशतं ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	१. अर्हत् चन्द्रप्रभ डेढ़ सौ धनुष्य ऊंचे थे।
२. आरणे कप्पे दिवड्ढं विमाणावाससयं पण्णत्तं।	आरणे कल्पे द्व्यर्द्धं विमानावासशतं प्रज्ञप्तम्।	२. आरण कल्प में डेढ़ सौ विमानावास हैं।
३. एवं अच्चुएवि।	एवं अच्युतेऽपि।	३. अच्युत कल्प में डेढ़ सौ विमानावास हैं।
४. सुपासे णं अरहा दो धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	सुपार्श्वः अर्हन् द्वे धनुःशते ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	४. अर्हत् सुपार्श्व दो सौ धनुष्य ऊंचे थे।
५. सव्वेवि णं महाहिमवंतरुप्पी-वासहरपव्वया दो दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दो दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।	सर्वेऽपि महाहिमवद्-रुक्मिवर्षधरपर्वताः द्वे द्वे योजनशते ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, द्वे द्वे गव्यूतिशते उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।	५. सभी महाहिमवंत और रुक्मी वर्षधर पर्वत दो सौ दो सौ योजन ऊंचे और दो सौ-दो सौ गाउ गहरे हैं।
६. जंबुद्दीवे णं दीवे दो कंचणपव्वयसया पण्णत्ता।	जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वे काञ्चनपर्वतशते प्रज्ञप्ते।	६. जम्बूद्वीप द्वीप में दो सौ कंचन पर्वत हैं।
७. पउमप्पभे णं अरहा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	पद्मप्रभः अर्हन् अर्द्धतृतीयानि धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	७. अर्हत् पद्मप्रभ ढाई सौ धनुष्य ऊंचे थे।
८. असुरकुमाराणं देवाणं पासायवडेंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।	असुरकुमाराणां देवानां प्रासादावतंसका अर्द्धतृतीयानि योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।	८. असुरकुमार देवों के प्रासादावतंसक ढाई सौ योजन ऊंचे हैं।
९. सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।	सुमतिः अर्हन् त्रीणि धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।	९. अर्हत् सुमति तीन सौ धनुष्य ऊंचे थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. अरिट्ठनेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमार (वास ?) मज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता (अगाराओ अणगारिअं ?) पव्वइए।

अरिष्टनेमिः अर्हन् त्रीणि वर्षशतानि कुमार (वास ?) मध्युष्य मुण्डो भूत्वा (अगारात् अनगारितां ?) प्रव्रजितः।

१०. अर्हत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्षों तक कुमार अवस्था में रह कर, मुंड होकर (अगार अवस्था से अनगार अवस्था में ?) प्रवजित हुए।

११. वेमाणियाणं देवाणं विमाणपागारा तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

वैमानिकानां देवानां विमानप्राकाराः त्रीणि त्रीणि योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ताः।

११. वैमानिक देवों के विमानों के प्राकार तीन सौ-तीन सौ योजन ऊंचे हैं।

१२. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिण्णि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य त्रीणि शतानि चतुर्दशपूर्विणां आसन्।

१२. श्रमण भगवान् महावीर के तीन सौ मुनि चौदहपूर्वी थे।

१३. पंचधणुसइयस्स णं अंतिम-सारीरियस्स सिद्धिगयस्स सातिरेगाणि तिण्णि धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा पण्णत्ता।

पञ्चधनुःशतिकस्य अन्तिमशारीरिकस्य सिद्धिगतस्य सातिरेकाणि त्रीणि धनुःशतानि जीवप्रदेशावगाहना प्रज्ञप्ता।

१३. पांच सौ धनुष्य की अवगाहना वाले चरमशरीरी जीवों के सिद्ध होने पर उनके जीव प्रदेशों की अवगाहना तीन सौ धनुष्य से कुछ अधिक[1] होती है।

१४. पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसयाइं चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः पुरुषादानीयस्य अर्द्धचतुर्थशतानि चतुर्दशपूर्विणां सम्पद् आसीत्।

१४. पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व के साढे तीन सौ चौदहपूर्वी मुनियों की सम्पदा थी।

१५. अभिनंदणे णं अरहा अद्धुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अभिनन्दनः अर्हन् अर्द्धचतुर्थानि धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

१५. अर्हत् अभिनन्दन साढ़े तीन सौ धनुष्य ऊंचे थे।

१६. संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सम्भवः अर्हन् चत्वारि धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

१६. अर्हत् संभव चार सौ धनुष्य ऊंचे थे।

१७. सव्वेवि णं णिसढ-नीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि-चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि निषध-नीलवन्तः वर्षधरपर्वताः चत्वारि-चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, चत्वारि-चत्वारि गव्यूतिशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

१७. सभी निषध और नीलवान् वर्षधर पर्वत चार सौ चार सौ योजन ऊंचे तथा चार सौ चार सौ गाउ गहरे हैं।

१८. सव्वेवि णं वक्खारपव्वया णिसढ-नीलवंतवासहरपव्वयंतेणं चत्तारि-चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, चत्तारि-चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि वक्षस्कारपर्वताः निषध-नीलवद्वर्षधरपर्वतान्तेन चत्वारि-चत्वारि योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, चत्वारि-चत्वारि गव्यूतिशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

१८. सभी वक्षस्कार पर्वत निषध और नीलवान् वर्षधर पर्वतों के पास चार सौ चार सौ योजन ऊंचे तथा चार सौ चार सौ गाउ गहरे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. आणय-पाणएसु—दोसु कप्पेसु चत्तारि विमाणसया पण्णत्ता।

आनत-प्राणतयोः—द्वयोः कल्पयोः चत्वारि विमानशतानि प्रज्ञप्तानि।

१९. आनत और प्राणत—इन दो कल्पों में चार सौ विमान हैं।

२०. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य चत्वारि शतानि वादिनां सदेवमनुजासुरे लोके वादे अपराजितानां उत्कृष्टा वादिसम्पद् आसीत्।

२०. श्रवण भगवान् महावीर के उत्कृष्ट वादी-सम्पदा चार सौ मुनियों की थी। वे देव, मनुष्य और असुरलोक में होने वाले किसी भी वाद में अपराजित थे।

२१. अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अजितः अर्हन् अर्द्धपञ्चमानि धनुःशतानि उर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

२१. अर्हत् अजित साढ़े चार सौ धनुष्य ऊंचे थे।

२२. सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

सगरः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती अर्द्ध-पञ्चमानि धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

२२. चातुरंत चक्रवर्ती राजा सगर साढ़ चार सौ धनुष्य ऊंचे थे।

२३. सव्वेवि णं वक्खारपव्वया सीया-सीतोयाओ महानईओ मंदरं वा पव्वयं पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच-पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि वक्षस्कारपर्वताः शीता-शीतोदे महानद्यौ मन्दरं वा पर्वतं पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, पञ्च-पञ्च गव्यूतिशतानि उद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

२३. सभी वक्षस्कार पर्लत शीता और शीतोदा महानदियों और मंदर पर्वत के समीप पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे तथा पांच सौ पांच सौ गाउ गहरे हैं।

२४. सव्वेवि णं वासहरकूडा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच-पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वाण्यपि वर्षधरकूटानि पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले पञ्च-पञ्च योजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तानि।

२४. सभी वर्षधर पर्वतों के कूट पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे तथा मूल में पांच सौ पांच सौ योजन चौड़े हैं।

२५. उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

ऋषभः अर्हन् कौशलिकः पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

२५. कौशलिक अर्हत् ऋषभ पांच सौ धनुष्य ऊंचे थे।

२६. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती पञ्च धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत।

२६. चातुरंत चक्रवर्ती राजा भरत पांच सौ धनुष्य ऊंचे थे।

२७. सोमणस - गंधमादण - विज्जुप्पभ-मालवंता णं वक्खारपव्वया णं मंदरपव्वयंतेणं पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, पंच-पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं पण्णत्ता।

सौमनस-गन्धमादन-विद्युत्प्रभमाल्यवतां वक्षस्कारपर्वतानां मन्दरपर्वतान्तेन पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्च-त्वेन, पञ्च-पञ्च गव्यूतिशतानि ऊद्वेधेन प्रज्ञप्ताः।

२७. सौमनस, गंधमादन, विद्युत्प्रभ और माल्यवत् वक्षस्कार पर्वत मंदर पर्वत के पास पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे तथा पांच सौ पांच सौ गाउ गहरे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. सव्वेवि णं वक्खारपव्वयकूडा हरि-हरिस्सहकूडवज्जा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच-पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वाण्यपि वक्षस्कारपर्वतकूटानि हरि-हरिस्सहकूटवर्जानि पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले पञ्च-पञ्च योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तानि।

२८. हरि और हरिस्सह कूटों के अतिरिक्त वक्षस्कार पर्वतों के सभी कूट पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे तथा मूल में पांच सौ पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं।

२९. सव्वेवि णं नंदणकूडा बलकूडवज्जा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले पंच-पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वाण्यपि नन्दनकूटानि बलकूटवर्जानि पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले पञ्च-पञ्च योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तानि।

२९. बलकूट के अतिरिक्त नन्दनवन के सभी कूट पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे तथा मूल में पांच सौ पांच सौ योजन लम्बे-चौड़े हैं।

३०. सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा पंच-पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सौधर्मेशानयोः कल्पयोः विमानानि पञ्च-पञ्च योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

३०. सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान पांच सौ पांच सौ योजन ऊंचे हैं।

३१. सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु विमाणा छ-छ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सनत्कुमार-माहेन्द्रयोः कल्पयोः विमानानि षट्-षट् योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

३१. सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पों में विमान छह सौ छह सौ योजन ऊंचे हैं।

३२. चुल्लहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले, एस णं छ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

क्षुल्लहिमवत्कूटस्य उपरितनात् चरमान्तात् क्षुल्लहिमवतः वर्षधर-पर्वतस्य समं धरणीतलं, एतत् षट् योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्

३२. क्षुल्लहिमवत्कूट के उपरितन चरमान्त से क्षुल्लहिमवत् वर्षधर पर्वत के समभूतल का व्यवधानात्मक अन्तर छह सौ योजन का है।

३३. एवं सिहरीकूडस्सवि।

एवं शिखरिकूटस्यापि।

३३. शिखरीकूट के उपरितन चरमान्त से शिखरी वर्षधर पर्वत के समभूतल का व्यवधानात्मक अन्तर छह सौ योजन का है।

३४. पासस्स णं अरहओ छ सया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजिआणं उक्कोसिया वाइ-संपया होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः षट्शतानि वादिनां सदेवमनुजासुरे लोके वादे अपराजितानां उत्कृष्टा वादिसम्पद् आसीत्।

३४. अर्हत् पार्श्व के उत्कृष्ट वादीसम्पदा छह सौ मुनियों की थी। वे देव, मनुष्य और असुरलोक में होने वाले किसी भी वाद में अपराजित थे।

३५. अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

अभिचन्द्रः कुलकरः षट् धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

३५. कुलकर अभिचन्द्र छह सौ धनुष्य ऊंचे[2] थे।

३६. वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिस-सएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

वासुपूज्यः अर्हन् षड्भिः पुरुषशतैः सार्द्धं मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।

३६. अर्हत् वासुपूज्य छह सौ पुरुषों के साथ मुंड होकर अगारवास से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. बंभ-लंतएसु कप्पेसु विमाणा सत्त-सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

ब्रह्म-लान्तकयोः कल्पयोः विमानानि सप्त-सप्त योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

३७. ब्रह्म और लान्तक कल्पों में विमान सात सौ सात सौ योजन ऊंचे हैं।

३८. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सप्त जिनशतानि आसन्।

३८. श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ केवली थे।

३९. समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सप्त वैक्रियशतानि आसन्।

३९. श्रमण भगवान् महावीर के सात सौ मुनि वैक्रियलब्धिसंपन्न थे।

४०. अरिट्ठनेमी णं अरहा सत्त वाससयाइं देसूणाइं केवलपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

अरिष्टनेमिः अर्हन् सप्त वर्षशतानि देशोनानि केवलपर्यायं प्राप्य सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।

४०. अर्हत् अरिष्टनेमि कुछ न्यून[1] सात सौ वर्षों तक केवल-पर्याय का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

४१. महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरिमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले, एस णं सत्त जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

महाहिमवत्कूटस्य उपरितनात् चरमान्तात् महाहिमवतः वर्षधरपर्वतस्य समं धरणीतलं, एतत् सप्तयोजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

४१. महाहिमवत् कूट के उपरितन चरमान्त से महाहिमवत् वर्षधर पर्वत के सम-भूतल का व्यवधानात्मक अन्तर सात सौ योजन का है।

४२. एवं रुप्पिकूडस्सवि।

एवं रुक्मिकूटस्यापि।

४२. रुक्मीकूट के उपरितन चरमान्त से रुक्मी वर्षधर पर्वत के सम-भूतल का व्यवधानात्मक अन्तर सात सौ योजन का है।

४३. महासुक्क - सहस्सारेसु — दोसु कप्पेसु विमाणा अट्ठ-(अट्ठ ?) जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

महाशुक्र-सहस्रारयोः—द्वयोः कल्पयोः विमानानि अष्ट- (अष्ट ?) योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

४३. महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में विमान आठ सौ आठ सौ योजन ऊंचे हैं।

४४. इसीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतर - भोमेज्जविहारा पण्णत्ता।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः प्रथमे काण्डे अष्टसु योजनशतेषु वानमन्तरभौमेयविहाराः प्रज्ञप्ताः।

४४. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम कांड में आठ सौ योजन तक वानमंतर देवों के भौमेय विहार हैं।

४५. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणंआ गमेसिभद्दाणं उक्कोसिआ अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था।

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अष्टशतानि अनुत्तरोपपातिकानां देवानां गतिकल्याणानां स्थितिकल्याणानां आगमिष्यद्भद्राणां उत्कृष्टा अनुत्तरोपपातिकसम्पद् आसीत्।

४५. श्रमण भगवान् महावीर के अनुत्तरोपपातिक देवों में उत्पन्न होने वाले, कल्याणकारी गति वाले, कल्याणकारी स्थिति वाले, आगामी जन्म में मोक्ष प्राप्त करने वाले (आगमिष्यद् भद्र) आठ सौ मुनियों की उत्कृष्ट अनुत्तरोपपातिक संपदा थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठहिं जोयणसएहिं सूरिए चारं चरति।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरणीयात् भूमिभागात् अष्टभिः योजनशतैः सूर्यः चारं चरति।

४६. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से आठ सौ योजन पर सूर्य गति करता है।

४७. अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठ सयाइं वाईणं सदेवमणुयासुरम्मि लोगम्मि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था।

अर्हतः अरिष्टनेमेः अष्टशतानि वादिनां सदेवमनुजासुरे लोके वादे अपराजितानां उत्कृष्टा वादिसम्पद् आसीत्।

४७. अर्हत् अरिष्टनेमि के उत्कृष्ट वादी-संपदा आठ सौ मुनियों की थी। वे देव, मनुष्य और असुरलोक में होने वाले किसी भी वाद में अपराजित थे।

४८ आणय - पाणय - आरणच्चुएसु कप्पेसु विमाणा नव-नव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

आनत-प्राणत-आरणाच्युतेषु कल्पेषु विमानानि नव-नव योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

४८. आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में विमान नौ सौ नौ सौ योजन ऊंचे हैं।

४९. निसहकूडस्स णं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ णिसढस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले, एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

निषधकूटस्य उपरितनात् शिखरतलात् निषधस्य वर्षधरपर्वतस्य समं धरणीतलं, एतत् नव योजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

४९. निषधकूट के उपरितन चरमान्त से निषध वर्षधर पर्वत के सम-भूतल का व्यवधानात्मक अन्तर नौ सौ योजन का है।

५०. एवं नीलवंतकूडस्सवि।

एवं नीलवत्कूटस्यापि।

५०. नीलवत्कूट के उपरितन चरमान्त से नीलवत् वर्षधर पर्वत के सम-भूतल का व्यवधानात्मक अन्तर नौ सौ योजन का है।

५१. विमलवाहणे णं कुलगरे णं नव धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था।

विमलवाहनः कुलकरः नव धनुःशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन आसीत्।

५१. कुलकर विमलवाहन नौ सौ धनुष्य ऊंचे थे।

५२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नवहिं जोयणसएहिं सव्वुपरिमे तारारूवे चारं चरइ।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् नवसु योजनशतेषु सर्वोपरितनं तारारूपं चारं चरति।

५२ इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसमरमणीय भूमिभाग से नौ सौ योजन पर सबसे ऊपर के तारागण गति करते हैं।

५३. निसढस्स णं वासधरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए, एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

निषधस्य वर्षधरपर्वतस्य उपरितनात् शिखरतलात् अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः प्रथमस्य काण्डस्य बहुमध्य-देशभागः, एतत् नवयोजनशतानि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

५३. निषध वर्षधर पर्वत के उपरितन शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम काण्ड के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर नौ सौ योजन का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. एवं नीलवंतस्सवि।

एवं नीलवतोऽपि।

५४. नीलवान् वर्षधर पर्वत के उपरितन शिखरतल से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम काण्ड के बहुमध्यदेशभाग का व्यवधानात्मक अन्तर नौ सौ योजन का है।

५५. सव्वेवि णं गेवेज्जविमाणा दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

सर्वाण्यपि ग्रैवेयविमानानि दश-दश योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

५५. सभी ग्रैवेयक विमान हजार-हजार योजन ऊंचे हैं।

५६. सव्वेवि णं जमगपव्वया दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस-दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, मूले दस-दस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि यमकपर्वताः दश-दश योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, दश-दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, मूले दश-दश योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

५६. सभी यमक पर्वत[४] हजार-हजार योजन ऊंचे, हजार-हजार गाउ गहरे और मूल में हजार-हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं।

५७. एवं चित्त-विचित्तकूडा वि भाणियव्वा।

एवं चित्रविचित्रकूटान्यपि भणितव्यानि।

५७. चित्रकूट और विचित्रकूट पर्वत[५] हजार-हजार योजन ऊंचे, हजार-हजार गाउ गहरे और मूल में हजार-हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं।

५८. सव्वेवि णं वट्टवेयड्ढपव्वया दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, दस-दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं, सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया, मूले दस-दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वेऽपि वृत्तवैताढ्यपर्वताः दश-दश योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, दश-दश गव्यूतिशतानि उद्वेधेन, सर्वत्र समाः पल्यकसंस्थानसंस्थिताः, मूले दश-दश योजनशतानि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्ताः।

५८. सभी वृत्तवैताढ्यपर्वत हजार-हजार योजन ऊंचे, हजार-हजार गाउ गहरे, सर्वत्र सम तथा पल्य-संस्थान[६] से संस्थित और मूल में हजार-हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं।

५९. सव्वेवि णं हरिहरिस्सहकूडा वक्खारकूडवज्जा दस-दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता।

सर्वाण्यपि हरि-हरिस्सहकूटानि वक्षस्कारकूटवर्जानि दश-दश योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, मूले दशयोजनशतानि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तानि।

५९. वक्षस्कारकूट के अतिरिक्त सभी हरिकूट और हरिस्सहकूट हजार-हजार योजन ऊंचे और मूल में हजार-हजार योजन चौड़े हैं।

६०. एवं बलकूडावि नंदणकूडवज्जा।

एवं बलकूटान्यपि नन्दनकूटवर्जानि।

६०. नन्दनकूट के अतिरिक्त सभी बलकूट हजार-हजार योजन ऊंचे और मूल में हजार-हजार योजन चौड़े हैं।

६१. अरहा वि अरिट्ठनेमी दस वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे मुत्ते अंतगडे परिणिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे।

अर्हन् अपि अरिष्टनेमिः दशवर्षशतानि सर्वायुष्कं पालयित्वा सिद्धः बुद्धः मुक्तः अन्तकृतः परिनिर्वृतः सर्वदुःखप्रहीणः।

६१. अर्हत् अरिष्टनेमि हजार वर्षों की पूर्ण आयु[७] का पालन कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

६२. पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः दशशतानि जिनानां आसन्।

६२. अर्हत् पार्श्व के हजार जिन (केवली) थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६३. पासस्स णं अरहओ दस अंतेवासिसयाइं कालगयाइं वीइक्कंताइं समुज्जायाइं छिण्णजाइजरामरणबंधणाइं सिद्धाइं बुद्धाइं मुत्ताइं अंतगडाइं परिणिव्वुयाइं सव्वदुक्खप्पहीणाइं।

पार्श्वस्य अर्हतः दश अन्तेवासिशतानि कालगतानि व्यतिक्रान्तानि समुद्यातानि छिन्नजातिजरामरणबंधनानि सिद्धानि बुद्धानि मुक्तानि अन्तकृतानि परिनिर्वृतानि सर्वदुःखप्रहीणानि।

६३. अर्हत् पार्श्व के हजार अन्तेवासी कालगत हुए, संसार का पार पा गए, ऊर्ध्वगामी हुए, जन्म, जरा और मरण के बंधन को छिन्न कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अन्तकृत और परिनिर्वृत हुए तथा सर्व दुःखों से रहित हुए।

६४. पउमद्दह-पुंडरीयद्दहा य दस-दस जोयणसयाइं आयामेणं पण्णत्ता।

पद्मद्रह-पुण्डरीकद्रहौ च दश-दश योजनशतानि आयामेन प्रज्ञप्तौ।

६४. पद्मद्रह और पुण्डरीकद्रह हजार-हजार योजन लम्बे हैं।

६५. अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता।

अनुत्तरोपपातिकानां देवानां विमानानि एकादश योजनशतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्तानि।

६५. अनुत्तरोपपातिक देवों के विमान ग्यारह सौ योजन ऊंचे हैं।

६६. पासस्स णं अरहओ इक्कारससयाइं वेउव्वियाणं होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः एकादश शतानि वैक्रियकाणां आसन्।

६६. अर्हत् पार्श्व के वैक्रियलब्धिसम्पन्न मुनि ग्यारह सौ थे।

६७. महापउम-महापुंडरीयदहाणं दो-दो जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।

महापद्म-महापुण्डरीकद्रहौ द्वे-द्वे योजनसहस्राणि आयामेन प्रज्ञप्तौ।

६७. महापद्मद्रह और महापुण्डरीकद्रह दो-दो हजार योजन लम्बे हैं।

६८. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ लोहियक्खस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं तिण्णि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः वज्रकाण्डस्य उपरितनात् चरमान्तात् लोहिताक्षस्य काण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् त्रीणि योजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

६८. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के वज्रकांड के उपरितन चरमान्त से लोहिताक्षकांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर तीन हजार योजन[८] का है।

६९. तिगिच्छ-केसरिदहा णं चत्तारि-चत्तारि जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।

तिगिच्छ-केसरिद्रहौ चत्वारि-चत्वारि योजनसहस्राणि आयामेन प्रज्ञप्तौ।

६९. तिगिच्छ[९]-द्रह और केसरीद्रह चार-चार हजार योजन लम्बे हैं।

७०. धरणितले मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए रुयगनाभीओ चउदिसिं पंच-पंच जोयणसहस्साइं अबाहाए मंदरपव्वए पण्णत्ते।

धरणीतले मन्दरस्य पर्वतस्य बहुमध्यदेशभागे रुचकनाभितः चतुर्दिक्षु पञ्च-पञ्च योजनसहस्राणि अबाधया मन्दरपर्वतः प्रज्ञप्तः।

७०. धरणीतल (सम-भूतल) में मन्दर पर्वत के बहुमध्यदेशभाग में नाभिरूप रुचक प्रदेशों से चारों दिशाओं में मन्दर पर्वत का व्यवधानात्मक अन्तर पांच-पांच हजार योजन[१०] का है।

७१. सहस्सारे णं कप्पे छ विमाणावाससहस्सा पण्णत्ता।

सहस्रारे कल्पे षट् विमानावाससहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

७१. सहस्रार कल्प में छह हजार विमान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरिमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरिमंते, एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः रत्नस्य काण्डस्य उपरितनात् चरमान्तात् पुलकस्य काण्डस्य अधस्तनं चरमान्तं, एतत् सप्तयोजनसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

७२. इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रत्नकांड के उपरितन चरमान्त से पुलककांड के नीचे के चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सात हजार योजन का है।

७३. हरिवास-रम्मया णं वासा अट्ठ-(अट्ठ ?) जोयणसहस्साइं साइरेगाइं वित्थरेणं पण्णत्ता।

हरिवर्ष-रम्यकौ वर्षे अष्ट (अष्ट ?) योजनसहस्राणि सातिरेकाणि विस्तरेण प्रज्ञप्तौ।

७३. हरिवर्ष और रम्यकवर्ष का विस्तार साधिक आठ-आठ हजार योजन का है।

७४. दाहिणड्ढभरहस्स णं जीवा पाईणपडीणायया दुहओ समुद्दं पुट्ठा नव जोयणसहस्साइं आयामेणं पण्णत्ता।

दक्षिणार्द्धभरतस्य जीवा प्राचीन-प्रतीचीनायता द्विधातः समुद्रं स्पृष्टा नव योजनसहस्राणि आयामेन प्रज्ञप्ता।

७४. दक्षिणार्ध भरत की जीवा पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर लम्बी और दोनों ओर से समुद्र का स्पर्श करती हुई नौ हजार योजन लम्बी[11] है।

७५. मंदरे णं पव्वए धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं पण्णत्ते।

मन्दरः पर्वतः धरणीतले दश योजनसहस्राणि विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

७५. मन्दर पर्वत धरणीतल पर दस हजार योजन चौड़ा है।

७६. जंबूदीवेणं दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपः द्वीपः एकं योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

७६. जम्बूद्वीप द्वीप एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है।

७७. लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं पण्णत्ते।

लवणः समुद्रः द्वे योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

७७. लवण समुद्र का चक्रवाल-विष्कंभ (गोलाई) दो लाख योजन का है।

७८. पासस्स णं अरहओ तिण्णि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया साविया-संपया होत्था।

पार्श्वस्य अर्हतः तिस्रः शतसाहस्र्यः सप्तविंशतिश्च सहस्राणि उत्कृष्टा श्राविका-सम्पद् आसीत्।

७८. अर्हत् पार्श्व के उत्कृष्ट श्राविका-सम्पदा तीन लाख सत्ताईस हजार श्राविकाओं की थी।

७९. धायइसंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवाल-विक्खंभेणं पण्णत्ते।

धातकीषण्डः द्वीपः चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः।

७९. धातकीषंड द्वीप का चक्रवालविष्कभ चार लाख योजन का है।

८०. लवणस्स णं समुद्दस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, एस णं पंच जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

लवणस्य समुद्रस्य पौरस्त्यात् चरमान्तात् पाश्चात्यं चरमान्तं, एतत् पञ्च योजनशतसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

८०. लवण समुद्र के पूर्वी चरमान्त से पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर पांच लाख योजन का है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१. भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वसयसहस्साइं रायमज्झावसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए।

भरतः राजा चातुरन्तचक्रवर्ती षट् पूर्वशतसहस्राणि राज्यमध्युष्य मुण्डो भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजितः।

८१. चातुरन्त चक्रवर्ती राजा भरत छह लाख पूर्वों तक राज्य कर, मुंड होकर, अगार अवस्था से अनगार अवस्था में प्रव्रजित हुए थे।

८२. जंबूदीवस्स णं दीवस्स पुरत्थिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइसंडचक्कवालस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते, (एस णं ?) सत्त जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य पौरस्त्यात् वेदिकान्तात् धातकीषण्डचक्रवालस्य पाश्चात्यं चरमान्तं, (एतत् ?) सप्त योजनशतसहस्राणि अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

८२. जम्बूद्वीप द्वीप की पूर्वी वेदिका के चरमान्त से धातकीषंड के चक्रवाल के पश्चिमी चरमान्त का व्यवधानात्मक अन्तर सात लाख योजन का है।

८३. माहिंदे णं कप्पे अट्ठ विमाणावाससयसहस्साइं पण्णत्ताइं।

माहेन्द्रे कल्पे अष्ट विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

८३. माहेन्द्र कल्प में आठ लाख विमान हैं।

८४. अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणिसहस्साइं होत्था।

अजितस्य अर्हतः सातिरेकाणि नव अवधिज्ञानिसहस्राणि आसन्।

८४. अर्हत् अजित के कुछ अधिक नौ हजार[१२] अवधिज्ञानी थे।

८५. पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पंचमाए पुढवीए नरएसु नेरइत्ताए उववण्णे।

पुरुषसिंहः वासुदेवः दश वर्षशतसहस्राणि सर्वायुष्कं पालयित्वा पञ्चम्यां पृथिव्यां नरकेषु नैरयिकत्वेन उपपन्नः।

८५. वासुदेव पुरुषसिंह[१३] (पांचवें वासुदेव) दस लाख वर्ष के पूर्ण आयु का पालन कर, पांचवीं पृथ्वी के नरकों में नैरयिक के रूप में उत्पन्न हुए।

८६. समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठे विमाणे देवत्ताए उववण्णे।

श्रमणः भगवान् महावीरः तीर्थंकरभवग्रहणात् षष्ठे पोट्टिलभवग्रहणे एकां वर्षकोटिं श्रामण्यपर्यायं प्राप्य सहस्रारे कल्पे सर्वार्थे विमाने देवत्वेन उपपन्नः।

८६. श्रमण भगवान् महावीर तीर्थंकर भवग्रहण (जन्म) से पूर्व छठे पोट्टिल भवग्रहण[१४] में एक करोड़ वर्ष तक श्रामण्यपर्याय का पालन कर सहस्रार देवलोक में सर्वार्थ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुए।

८७. उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी अबाहाए अंतरे पण्णत्ते।

ऋषभश्रियः भगवतः चरमस्य च महावीरवर्द्धमानस्य एकां सागरोपमकोटिकोटिं अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम्।

८७. भगवान् श्री ऋषभ से चरम तीर्थङ्कर महावीर वर्द्धमान का व्यवधानात्मक अन्तर एक कोडाकोड सागरोपम का है।

दुवालसंग-पदं

द्वादशाङ्गपदम्

द्वादशांग-पद

८८. दुवालसंगे गणिपिडगे पण्णत्ते, तं जहा—आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विआहपण्णत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुए दिट्ठिवाए।

द्वादशाङ्गगणिपिटकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—आचारः सूत्रकृतं स्थानं समवायः व्याख्याप्रज्ञप्तिः ज्ञात-धर्मकथाः उपासकदशाः अन्तकृतदशाः अनुत्तरोपपातिकदशाः प्रश्नव्याकरणानि विपाकश्रुतं दृष्टिवादः।

८८. गणिपिटक के बारह अंग हैं,[१५] जैसे—

१. आचार
२. सूत्रकृत
३. स्थान
४. समवाय
५. व्याख्याप्रज्ञप्ति
६. ज्ञात-धर्मकथा
७. उपासकदशा
८. अन्तकृतदशा
९. अनुत्तरोपपातिकदशा
१०. प्रश्नव्याकरण
११. विपाकश्रुत
१२. दृष्टिवाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८९. से किं तं आयारे ?

आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयार-गोयर-विणय-वेणइय-ट्ठाण-गमण-चंकमण-पमाण- जोगजुंजण-भासा-समिति- गुत्ती - सेज्जोवहि-भत्तपाण - उग्गमउप्पायणएसणा-विसोहि - सुद्धासुद्धग्गहण - वय-णियमतवोवहाण - सुप्पसत्थ-माहिज्जइ ।

से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणायारे दंसणायारे चरित्तायारे तवायारे वीरियायारे ।

आयारस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ ।

से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे दो सुयक्खंधा पणवीसं अज्झयणा पंचासीइं उद्देसणकाला पंचासीइं समुद्देसणकाला अट्ठारस पयसहस्साइं पदग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति सेत्तं आयारे ।

अथ कोऽयमाचारः ?

आचारे श्रमणानां निर्ग्रन्थानां आचार-गोचर -विनय -वैनयिक -स्थान -गमन-चंक्रमण - प्रमाण - योगयोजन - भाषा-समिति - गुप्ति - शय्योपधि -भक्तपान-उद्‌गमोत्पादनैषणाविशोधि - शुद्धाशुद्ध-ग्रहण-व्रत - नियम - तप - उपधान-सुप्रशस्तमाख्यायते ।

स समासतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ज्ञानाचारः दर्शनाचारः चरित्राचारः तप आचारः वीर्याचारः ।

आचारस्य परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः ।

स अङ्गार्थतया प्रथममङ्गम् द्वौ श्रुतस्कन्धौ पञ्चविंशतिः अध्ययनानि पञ्चाशीतिः उद्देशनकालाः पञ्चाशीतिः समुद्देशनकालाः अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यायाः परीताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते । सोऽयमाचारः ।

८९. आचार क्या है ?

आचार में श्रमण-निर्ग्रन्थों के सुप्रशस्त आचार, गोचर, विनय, वैनयिक, स्थान, गमन, चंक्रमण, प्रमाण, योग-योजन, भाषा, समिति, गुप्ति, शय्या, उपधि, भक्त-पान, उद्‌गम-विशुद्धि, उत्पादन-विशुद्धि, एषणा-विशुद्धि, शुद्धाशुद्धग्रहण का विवेक, व्रत, नियम, तप-उपाधान का निरूपण किया गया है ।

संक्षेप में आचार पांच प्रकार का है,[16] जैसे—१. ज्ञान आचार २. दर्शन आचार ३. चरित्र आचार ४. तपः आचार ५. वीर्य आचार ।

आचार की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा (वेष्टक) संख्येय हैं, श्लोक (अनुष्टुप् आदि वृत्त) संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं ।

वह अङ्ग की दृष्टि से पहला अंग है । इसके दो श्रुतस्कंध, पचीस अध्ययन, पचासी उद्देशन-काल, पचासी समुद्देशन-काल, पद परिमाण से अठारह हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम (अर्थ-परिच्छेद) और अनन्त पर्यव हैं । इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।[17]

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—आचारमय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है । इस प्रकार आचार में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है[17] । यह है आचार ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. से किं तं सूयगडे ?

सूयगडे णं ससमया सूइज्जंति परसमया सूइज्जंति ससमयपरसमया सूइज्जंति जीवा सूइज्जंति अजीवा सूइज्जंति जीवाजीवा सूइज्जंति लोगे सूइज्जति अलोगे सूइज्जति लोगालोगे सूइज्जति।

सूयगडे णं जीवाजीव-पुण्ण-पावासव - संवर - निज्जर - बंध-मोक्खावसाणा पयत्था सूइज्जंति, समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं कुसमयमोह - मोहमइमोहियाणं संदेहजाय- सहजबुद्धि - परिणाम-संसइयाणं पावकर-मइलमइ-गुण-विसोहणत्थं आसीतस्स किरियावादिसतस्स चउरासीए अकिरियवाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं, बत्तीसाए वेणइयवाईणं—तिण्हं तेसट्ठाणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जति।

णाणादिट्ठंतवयण - णिस्सारं-सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थरा-णुगम-परमसब्भाव-गुण - विसिट्ठा मोक्खपहोयारगा उदारा अण्णाणतमंधकारदुग्गेसु दीवभूता सोवाणा चेव सिद्धिसुगइ घरुत्तमस्स णिक्खोभ-निप्पकंपा सुत्तत्था।

सूयगडस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ।

अथ किं तत् सूत्रकृतम् ?

सूत्रकृते स्वसमया: सूच्यन्ते परसमया: सूच्यन्ते स्वसमयपरसमया: सूच्यन्ते जीवा: सूच्यन्ते अजीवा: सूच्यन्ते जीवाजीवा: सूच्यन्ते लोक: सूच्यते अलोक: सूच्यते लोकालोक: सूच्यते।

सूत्रकृते जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवर-निर्जराबन्धमोक्षावसाना: पदार्था: सूच्यन्ते, श्रमणानां अचिरकाल-प्रव्रजितानां कुसमयमोह-मोह-मतिमोहितानां सन्देहजात-सहजबुद्धि-परिणाम-संशयितानां पापकर-मलिन-मतिगुण-विशोधनार्थं आशीतस्य क्रियावादिशतस्य चतुरशीत्या: अक्रियावादिनां, सप्तषष्ट्या: अज्ञानिकवादिनां, द्वात्रिंशतो वैनयिकवादिनां, त्रयाणां त्रिषष्टिकानां अन्यदृष्टिकशतानां व्यूहं कृत्वा स्वसमये स्थाप्यते।

नानादृष्टान्तवचन-निस्सारं सुष्ठु दर्शयन्तौ, विविधविस्तारानुगमपरम-सद्भाव-गुण-विशिष्टौ मोक्षपथाव-तारकौ उदारौ अज्ञानतमोऽन्धकार-दुर्गेषु दीपभूतौ सोपाने चैव सिद्धि-सुगतिगृहोत्तमस्य निःक्षोभ-निष्प्रकम्पौ सूत्रार्थौ।

सूत्रकृतस्य परीता: वाचना: संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येया:, प्रतिपत्तय: संख्येया: वेष्टका: संख्येया: श्लोका: संख्येया: निर्युक्तय:।

९०. सूत्रकृत क्या है ?

सूत्रकृत में स्व-समय की सूचना, पर-समय की सूचना तथा स्व-समय-पर-समय—दोनों की सूचना दी गई है। जीवों की सूचना, अजीवों की सूचना तथा जीव-अजीव–दोनों की सूचना दी गई है। लोक की सूचना, अलोक की सूचना तथा लोक-अलोक–दोनों की सूचना दी गई है।

इसमें जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष पर्यन्त पदार्थों की सूचना दी गई है।

इसमें कुतीर्थिकों के अयथार्थ बोध से उत्पन्न मोह-व्यूह से मूढ़ मति वाले, संदेहजात और सहजबुद्धि के परिणाम से संदिग्ध मन वाले नव प्रव्रजित श्रमणों की पापकारी मलिन बुद्धि के गुण का विशोधन करने के लिए एक सौ अस्सी क्रियावादियों, चौरासी अक्रियावादियों, सड़सठ अज्ञानवादियों तथा बत्तीस वैनयिकवादियों—इस प्रकार तीन सौ तिरसठ अन्य दृष्टियों का व्यूह (प्रति-क्षेप) कर स्व-समय की स्थापना की गई[११] है।

इसके सूत्र और अर्थ कुतीर्थिकों द्वारा उपन्यस्त दृष्टान्त-वचन की निस्सारता का सम्यक् प्रदर्शन करते हैं।

ये विविध विस्तरानुगम और परम-सद्भाव—इन दोनों गुणों से विशिष्ट हैं। ये मोक्षपथ के अवतारक, उदार, अज्ञानरूपी तमस् अन्धकार से दुर्गम तत्त्व-मार्ग के लिए दीपभूत हैं।

ये सिद्धिगति रूप उत्तम प्रासाद के लिए सोपानतुल्य हैं तथा निःक्षोभ और निष्प्रकंप हैं।

सूत्रकृत की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, और निर्युक्तियां संख्येय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से णं अंगट्ठयाए दोच्चे अंगे दो सुयक्खंधा तेवीसं अज्झयणा तेत्तीसं उद्देसणकाला तेत्तीसं समुद्देसणकाला छत्तीसं पदसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

तत् अङ्गार्थतया द्वितीयमङ्गम् द्वौ श्रुतस्कन्धौ त्रयोविंशतिः अध्ययनानि त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः त्रयस्त्रिंशत् समुद्देशनकालाः षट्त्रिंशत् पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ता पर्यायाः परीताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

यह अंग की दृष्टि से दूसरा अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध, तेईस अध्ययन[10], तेतीस उद्देशन-काल[11] तेतीस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से छत्तीस हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं। इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं बिण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति । सेत्तं सूयगडे ।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते । तदेतत् सूत्रकृतम् ।

इसका सम्यक् अध्यय करने वाला 'एवमात्मा'—सूत्रकृतमय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार सूत्रकृत में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है सूत्रकृत।

९१. से किं तं ठाणे ?

अथ किं तत् स्थानम् ?

९१. स्थान क्या है ?

ठाणे णं ससमया ठाविज्जंति परसमया ठाविज्जंति ससमय-परसमया ठाविज्जंति जीवा ठाविज्जंति अजीवा ठाविज्जंति जीवाजीवा ठाविज्जंति लोगे ठाविज्जति अलोगे ठाविज्जति लोगालोगे ठाविज्जति ।

स्थाने स्वसमयाः स्थाप्यन्ते परसमयाः स्थाप्यन्ते स्वसमयपरसमयाः स्थाप्यन्ते जीवाः स्थाप्यन्ते अजीवाः स्थाप्यन्ते जीवाजीवाः स्थाप्यन्ते लोकः स्थाप्यते अलोकः स्थाप्यते लोकालोकः स्थाप्यते ।

स्थान में स्व-समय की स्थापना, पर-समय की स्थापना तथा स्व-समय पर-समय—दोनों की स्थापना की गई है। जीवों की स्थापना, अजीवों की स्थापना तथा जीव-अजीव—दोनों की स्थापना की गई है। लोक की स्थापना, अलोक की स्थापना तथा लोक-अलोक—दोनों की स्थापना की गई है।

ठाणे णं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव पयत्थाणं—

स्थाने द्रव्य - गुण - क्षेत्र - काल-पर्यवाः पदार्थानाम्—

इसमें पदार्थों के द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल और पर्यव की स्थापना की गई है।

संगहणी गाहा

संग्रहणी गाथा

१. सेला सलिला य समुद्द-
सूरभवणविमाण आगर णदीओ ।
णिहओ पुरिसज्जाया,
सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥

शैलाः सलिलाश्च समुद्र-
सूरभवनविमानआकरनद्यः ।
निधयः पुरुषजाताः,
स्वराश्च गोत्राणि च ज्योतिःसंचाराः ॥

इसमें पर्वत, सलिला (महानदी), समुद्र, सूर्य, भवन, विमान, आकर, नदी (छोटी नदी), निधि, पुरुषों के प्रकार, स्वर, गोत्र, ज्योतिष्चक्र का संचलन—इन सबका प्रतिपादन किया गया है।

एक्कविहवत्तव्वयं दुविहवत्तव्वयं जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइणं च परूवणया आघविज्जति।

एकविधवक्तव्यकं द्विविधवक्तव्यकं यावत् दशविधवक्तव्यकं जीवानां पुद्गलानां च लोकस्थायिनां च प्ररूपणा आख्यायते।

इसमें एक विध वक्तव्यता (पहले स्थान में), द्विविध वक्तव्यता (दूसरे स्थान में) यावत् दशविध वक्तव्यता (दसवें स्थान में) है। इसमें जीव, पुद्गल और लोकस्थायी (धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों) की प्ररूपणा की गई है।

ठाणस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

स्थानस्य परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

स्थान की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा एक्कवीसं उद्देसणकाला एक्कवीसं समुद्देसण-काला बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

तत् अङ्गार्थतया तृतीयमङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि एकविंशतिः उद्देशनकालाः एकविंशतिः समुद्देशनकालाः द्विसप्ततिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से तीसरा अंग है। इसके एक श्रुतस्कंध, दस अध्ययन, इक्कीस उद्देशन-काल[११], इक्कीस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से बहत्तर हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं। इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञा-पन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं ठाणे।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेतत् स्थानम्।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा,—स्थानमय, 'एवं ज्ञाता, और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार स्थान में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है स्थान।

९२. से किं तं समवाए ?

समवाए णं ससमया सूइज्जंति परसमया सूइज्जंति ससमय-परसमया सूइज्जंति जीवा सूइज्जंति अजीवा सूइज्जंति जीवाजीवा सूइज्जंति लोगे सूइज्जति अलोगे सूइज्जति लोगालोगे सूइज्जति।

अथ कोऽयं समवायः ?

समवाये स्वसमयाः सूच्यन्ते परसमयाः सूच्यन्ते स्वसमय-परसमयाः सूच्यन्ते जीवाः सूच्यन्ते अजीवाः सूच्यन्ते जीवाजीवाः सूच्यन्ते लोकः सूच्यते अलोकः सूच्यते लोकालोकः सूच्यते।

९२. समवाय क्या है ?

समवाय में स्वसमय की सूचना, पर-समय की सूचना तथा स्वसमय और परसमय—दोनों की सूचना दी गई है। जीवों की सूचना, अजीवों की सूचना तथा जीव-अजीव—दोनों की सूचना दी गई है। लोक की सूचना, अलोक की सूचना तथा लोक-अलोक—दोनों की सूचना दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवाए णं एकादियाणं एगत्थाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढोय, दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ, ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समायारे आहिज्जति, तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरे वि य बहुविहा विसेसा नरग-तिरिय-मणुय-सुरगणाणं आहारुस्सास-लेस- आवाससंख - आययप्पमाण उववाय - चयण - ओगाहणोहि-वेयण - विहाण - उवओग - जोग-इंदिय-कसाय, विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेह-परिरय-प्पमाणं विधिविसेसा य मंदरादीणं महोधराण कुलगर-तित्थगर-गणहराणं समत्तभरहा-हिवाण चक्कोणं चेव चक्कहर-हलहराण य वासाण य निग्गमा य समाए।

समवाये एकादिकानां एकार्थानां एकोत्तरिकापरिवृद्धिश्च, द्वादशाङ्गस्य च गणिपिटकस्य पल्लवाग्रं समनुगीयते, स्थानकशतस्य द्वादशविधविस्तरस्य श्रुतज्ञानस्य जगज्जीवहितस्य भगवतः समासेन समाचारः आख्यायते, तत्र च नानाविधप्रकाराः जीवाजीवाश्च वर्णिताः विस्तरेण अपरेऽपि च बहुविधाः विशेषाः नरक-तिर्यङ्-मनुज-सुरगणानां आहारोच्छ्वास-लेश्या-आवाससंख्या - आयत-प्रमाण-उपपात-च्यवन-अवगाहना-अवधि-वेदन-विधान-उपयोग-योग-इन्द्रिय-कषायाः, विविधा च जीवयोनिः विष्कम्भोत्सेध-परिरय-प्रमाणं विधिविशेषाश्च मन्दरादीनां महीधराणां कुलकर-तीर्थकर-गणधराणां समस्तभरताधिपानां चक्रिणां चैव चक्रधर-हलधराणां च वर्षाणां च निर्गमाश्च समायाः।

इसमें कुछ पदार्थों की एक, दो, तीन, चार आदि के क्रम से एकोत्तरिका[१] परिवृद्धि का प्रतिपादन किया गया है। इसमें द्वादशांग गणिपिटक का पल्लव-परिमाण (या पर्यव-परिमाण) बतलाया गया है।

इसमें एक से सौ स्थानों तक तथा जग-जीवों के लिए हितकर बारह प्रकार के विस्तार वाले भगवान् श्रुतज्ञान का संक्षेप में समाचार वर्णित किया गया है।

इसमें नाना प्रकार के जीवों और अजीवों का विस्तार से वर्णन है। इनके अतिरिक्त इसमें और भी बहुत प्रकार के विशेष, जैसे—नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगण के आहार, श्वासोच्छ्वास, लेश्या, आवासों की संख्या, उनकी लम्बाई-चौड़ाई आदि का प्रमाण, उपपात, च्यवन, अवगाहना, अवधिज्ञान, वेदना, भेद, उपयोग, योग, इन्द्रिय और कषाय का वर्णन है। इसमें विवध प्रकार की जीव-योनियों का, मन्दर आदि पर्वतों के विष्कंभ (विस्तार), उत्सेध (ऊंचाई) और परिधि का प्रमाण तथा पर्वतों के भेदों का वर्णन है।

इसमें कुलकर, तीर्थङ्कर, गणधर, समग्र भरत के अधिपति चक्रवर्ती, चक्रधर (वासुदेव) और हलधर (बलदेव) का वर्णन है। इसमें भरत आदि क्षेत्रों का निर्गम (प्रत्येक क्षेत्र की पहले की अपेक्षा से अधिकता) बतलाया गया है।

एए अण्णे य एवमादित्थ वित्थरेणं अत्था समासिज्जंति।

एते अन्ये च एवमादयः अत्र विस्तरेण अर्थाः समाश्रियन्ते।

इसमें इनका तथा इसी प्रकार के दूसरे पदार्थों का भी विस्तार से वर्णन हुआ है।

समवायस्सणं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

समवायस्य परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

समवाय की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से णं अंगट्ठयाए चउत्थे अंगे एगे अज्झयणे एगे सुयक्खंधे एगे उद्देसणकाले एगे समुद्देसणकाले एगे चोयाले पदसयसहस्से पदग्गेणं, संखेज्जाणि अक्खराणि अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

सः अङ्गार्थतया चतुर्थमङ्गं एकं अध्ययनं एकः श्रुतस्कन्धः एकः उद्देशनकालः एकः समुद्देशनकालः एकचत्वारिंशत् पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से चौथा अंग है। इसमें एक अध्ययन, एक श्रुतस्कंध, एक उद्देशन-काल, एक समुद्देशन-काल, पदप्रमाण से एक लाख चौवालीस हजार पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं समवाए।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। सोऽसौ समवायः।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—समवायमय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' बन जाता है। इस प्रकार समवाय में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है समवाय।

९३. से किं तं वियाहे?

वियाहे णं ससमया वियाहिज्जंति परसमया वियाहिज्जंति ससमयपरसमया वियाहिज्जंति जीवा वियाहिज्जंति अजीवा वियाहिज्जंति जीवाजीवा वियाहिज्जंति लोगे वियाहिज्जइ अलोगे वियाहिज्जइ लोगालोगे वियाहिज्जइ।

अथ केयं व्याख्या?

व्याख्यायां स्वसमयाः व्याख्यायन्ते परसमयाः व्याख्यायन्ते स्वसमयपरसमयाः व्याख्यायन्ते जीवाः व्याख्यायन्ते अजीवाः व्याख्यायन्ते जीवाजीवाः व्याख्यायन्ते लोकः व्याख्यायते अलोकः व्याख्यायते लोकालोकः व्याख्यायते।

९३. व्याख्या (व्याख्याप्रज्ञप्ति) क्या है?

व्याख्या में स्वसमय की व्याख्या, पर-समय की व्याख्या तथा स्वसमय-परसमय—दोनों की व्याख्या की गई है। जीवों की व्याख्या, अजीवों की व्याख्या तथा जीव-अजीव—दोनों की व्याख्या की गई है। लोक की व्याख्या, अलोक की व्याख्या तथा लोक-अलोक—दोनों की व्याख्या की गई है।

वियाहे णं नाणाविह-सुर-नरिंद-रायरिसि - विविहसंसइय-पुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्व-गुण-खेत्त-काल-पज्जव-पदेस - परिणाम - जहत्थि-भाव-अणुगम-निक्खेव-णय-प्पमाण-सुनिउणोवक्कम - विविहप्पगार-

व्याख्यया नानाविध-सुर-नरेन्द्र-राजऋषि - विविधसंशयित - पृष्टानां जिनेन विस्तरेण भाषितानां द्रव्य-गुण-क्षेत्र - काल - पर्यव - प्रदेश- परिणाम-यथास्तिभाव - अनुगम - निक्षेप - नय-प्रमाण - सुनिपुणोपक्रम - विविधप्रकार-

इसमें विविध प्रकार के संशय वाले नाना प्रकार के देव, नरेन्द्र और राजर्षि द्वारा पूछे गए छत्तीस हजार प्रश्नों तथा भगवान् महावीर द्वारा किए गए विस्तृत व्याकरणों के निदर्शन द्वारा, शिष्य-हित के लिए, बहुविध श्रुत और अर्थ का व्याख्यान किया गया है। वे व्याकरण द्रव्य, गुण, क्षेत्र, काल, पर्यव, प्रदेश, परिणाम, यथा-अस्तिभाव, अनुगम, निक्षेप, नय, प्रमाण, सुनिपुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पागड-पयंसियाणं लोगालोग-पगासियाणं संसारसमुद्द-रुंद-उत्तरण-समत्थाणं सुरपति-संपूजियाणं भविय-जणपय-हियायाभिनंदियाणं तमरय-विद्धंसणाणं सुदिट्ठ-दीवभूय-ईहा-मतिबुद्धि-वद्धणाणं छत्तीससहस्स-मणूणयाणं वागरणाणं दंसणा सुयत्थ-बहुविहप्पगारा सीसहिय-त्थाय गुणहत्था।

प्रकट - प्रदर्शितानां - लोकालोक-प्रकाशितानां संसारसमुद्र-रुन्द (विस्तीर्ण)-उत्तरण-समर्थानां सुरपति-संपूजितानां भव्य-जनप्रजाहृदया-भिनन्दितानां तमोरजोविध्वंसनानां सुदृष्ट-दीपभूत-ईहा-मति-बुद्धि-वर्द्धनानां षट्त्रिंशत्सहस्रान्यूनकानां व्याकरणानां दर्शनाः श्रुतार्थबहुविधप्रकाराः शिष्यहितार्थश्च गुणहस्ताः।

उपक्रम आदि विविध प्रकार से स्पष्ट-रूप से प्रदर्शित हैं। उन व्याकरणों में लोक और अलोक पर प्रकाश डाला गया है। वे इन्द्रों द्वारा पूजित (श्लाघित हैं)। वे भव्य प्रजा-जन के हृदय को आनन्द देने वाले हैं! वे तम और रज का ध्वंस करने वाले हैं। वे सुदृष्ट होने के कारण दीप के समान प्रकाशी तथा ईहा, मति और बुद्धि के संवर्धक हैं। वे अर्थ-बोधरूप गुण की प्राप्ति कराने के लिए सिद्धहस्त हैं।

वियाहस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

व्याख्यायाः परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

व्याख्या की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्ठयाए पंचमे अंगे एगे सुयक्खंधे एगे साइरेगे अज्झयणसते दस उद्देसगसहस्साइं दस समुद्देसगसहस्साइं छत्तीसं वागरणसहस्साइं चउरासीई पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जाइं अक्खराइं अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

सा अङ्गार्थतया पञ्चमं अङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः एकसातिरेकं अध्ययनशतं दश उद्देशकसहस्राणि दश समुद्देशक-सहस्राणि षट्त्रिंशद् व्याकरणसहस्राणि चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ता पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से पांचवां अंग है। इसके एक श्रुतस्कंध, कुछ अधिक सौ अध्ययन (शतक), दस हजार उद्देशक, दस हजार समुद्देशक, छत्तीस हजार व्याकरण, पद-प्रमाण से चौरासी हजार पद[२६], संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं। इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञा-पन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं वियाहे।

स एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। सेयं व्याख्या।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—व्याख्यामय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार व्याख्या में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है व्याख्या।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. से किं तं नायाधम्मकहाओ ?

नाया-धम्मकहासु णं नायाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्डिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाती पुणबोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

अथ कास्ता ज्ञात-धर्मकथा: ?

ज्ञात-धर्मकथासु ज्ञातानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डानि राजान: अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्या: धर्मकथा: ऐहलौकिक-पारलौकिका: ऋद्धिविशेषा: भोगपरित्यागा: प्रव्रज्या: श्रुतपरिग्रहा: तपउपधानानि पर्याया: संलेखना: भक्तप्रत्याख्यानानि प्रायोपगमनानि देवलोकगमनानि सुकुलप्रत्याजाति: पुनर्बोधिलाभ: अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

६४. ज्ञात-धर्मकथा क्या है ?

ज्ञात-धर्मकथा में ज्ञातों (दृष्टान्तभूत व्यक्तियों) के नगर, उद्यान, चैत्य, वनषंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, लौकिक और पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-ग्रहण, तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय का काल, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान और प्रायोपगमन अनशन, देवलोकगमन, सुकुल में पुनरागमन, पुनः बोधिलाभ, और अन्तक्रिया का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

नाया-धम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरण - जिणसामि-सासणवरे संजमपइण्ण-पालण-धिइ-मइ-ववसाय-दुल्लभाणं, तव-नियम-तवोवहाण-रण - दुद्धरभर-भग्गा-णिसहा - णिसट्ठाणं, घोरपरीसह - पराजिया -ऽसह-पारद्ध - रुद्ध - सिद्धालयमग्ग-निग्गयाणं, विसयसुह - तुच्छ-आसावसदोसमुच्छियाणं, विराहिय-चरित्त - नाण - दंसण-जइगुण-विविहप्पगार - निस्सार-सुण्णयाणं संसार-अपार-दुक्ख दुग्गइ-भव-विविहपरंपरा पवंचा।

ज्ञात-धर्मकथासु प्रव्रजितानां विनयकरण - जिनस्वामि - शासनवरे संयमप्रतिज्ञा - पालन - धृति - मति-व्यवसाय-दुर्लभानां तपोनियम-तपउपधान- रण- दुर्धरभरभग्न-नि:सह-नि:सृष्टानां घोरपरीषह-पराजिताऽसह-प्रारब्ध-रुद्ध - सिद्धालयमार्ग-निर्गतानां, विषयसुख - तुच्छ - आशावशदोष-मूर्च्छितानां विराधित-चारित्र-ज्ञान-दर्शन-यतिगुण - विविध-प्रकार-नि:सार-शून्यकानां संसार-अपार-दु:ख-दुर्गति-भव-विविध-परम्परा-प्रपञ्चा:।

इसमें कर्म को दूर करने वाले जिनेश्वर देव के उत्तम शासन में प्रव्रजित होने पर भी जो संयम की प्रतिज्ञा के पालन में दुर्लभ धृति, मति और व्यवसाय वाले हैं, जो तप, नियम, तप उपधान रूपी संग्राम में दुर्धर भार से भग्न, निरन्तर असक्त और मुक्ताङ्ग (जुआ डाल देने वाले) हैं, जो घोर परीषहों से पराजित, सदनुष्ठान के प्रारम्भ में असमर्थ, पथ-रुद्ध होने के कारण मोक्ष-मार्ग से निर्गत हैं, जो विषय-सुखों की तुच्छ आशा के वशवर्ती होकर दोषों में मूर्च्छित हैं, जो चारित्र, ज्ञान और दर्शन के विराधक तथा विविध प्रकार के यति-गुणों में निस्सार होने के कारण उनसे शून्य हैं, उन व्यक्तियों के संसार में होने वाले अपार दुःख, दुर्गति तथा जन्म की विविध परम्परा के प्रपञ्च का आख्यान किया गया है।

धीराण य जिय-परिसह-कसाय-सेण्ण - धिइ - धणिय - संजम-उच्छाहनिच्छियाणं आराहिय-नाण-दंसण-चरित्त-जोग-निस्सल्ल-सुद्ध - सिद्धालयमग्ग - मभिमुहाणं

धीराणां च जित-परीषह-कषाय-सैन्य-धृति-धनिक-संयम - उत्साहनिश्चितानां आराधित - ज्ञान-दर्शन - चारित्र-योग-नि:शल्य-शुद्ध-सिद्धालयमार्गाभिमुखानां

इसमें धीर पुरुषों का जिन्होंने परीषह और कषायरूपी सेना को जीत लिया है, जो धृति के धनी हैं, जिनका संयम में निश्चित उत्साह है, जिन्होंने ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा योग की आराधना की है, जो निःशल्य और शुद्ध सिद्धालय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरभवण - विमाण - सुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि ततो य कालक्कम-च्चुयाणं जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया।

सुरभवन-विमान-सौख्यानि अनुपमानि भुक्त्वा चिरं च भोगभोगान् तान् दिव्यान् महार्हान् ततश्च कालक्रमच्युतानां, यथा च पुनर्लब्ध-सिद्धिमार्गाणां अन्तक्रिया।

के मार्ग के अभिमुख हैं, जो अनुपम देव-भवन के वैमानिक सुखों को प्राप्त करते हैं, जो चिरकाल तक दिव्य और महामहनीय भोगों को भोग कर तथा कालक्रम से वहां से च्युत होकर, जिस प्रकार वे पुनः सिद्धिमार्ग को प्राप्त कर अंतक्रिया करते हैं—उनका आख्यान किया गया है।

चलियाण य सदेव-माणुस्स-धीरकरण-कारणाणि बोधण-अणुसासणाणि गुण-दोस-दरिसणाणि।

चलितानां च सदेव-मानुष धीरकरण-कारणानि बोधन-अनुशासनानि गुण-दोष-दर्शनानि।

इसमें संयम-मार्ग से विचलित मुनियों में धैर्य उत्पन्न करने वाले, बोध और अनुशासन भरने वाले तथा गुण और दोष का संदर्शन देने वाले देव तथा मनुष्य सम्बन्धी दृष्टान्तों का निरूपण है।

दिट्ठंते पच्चए य सोऊण लोगमुणिणो जह य ठिया सासणम्मि जर-मरण-नासणकरे।

दृष्टान्तान् प्रत्ययाँश्च श्रुत्वा लोकमुनयः यथा च स्थिताः शासने जरा-मरण-नाशनकरे।

आराहिय - संजमा य सुरलोगपडिनियत्ता ओवेंति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं।

आराधित-संयमाश्च सुरलोक-प्रतिनिवृत्ताः उपयान्ति यथा शाश्वतं शिवं सर्वदुःखमोक्षम्।

इसमें दृष्टान्तों और प्रत्ययों (बोधि के हेतुभूत वाक्यों) को सुन कर लौकिक मुनि (शुक्र परिव्राजक आदि) जिस प्रकार से जरा-मरण का नाश करने वाले जिनशासन में स्थित हुए, संयम की आराधना कर देवलोक में उत्पन्न हुए, पुनः वहां से मनुष्य जन्म प्राप्त कर जिस प्रकार शाश्वत, शिव और सब दुःखों से मुक्ति देने वाले निर्वाण को प्राप्त करते हैं—उसका आख्यान किया गया है।

एए अण्णे य एवमादित्थ वित्थरेण य।

एते अन्ये च एवमादयः अत्र विस्तरेण च।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य विषय इसमें विस्तार से निरूपित हैं।

नाया-धम्मकहासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

ज्ञात-धर्मकथासु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

ज्ञात-धर्मकथा की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्टयाए छट्ठे अंगे दो सुअक्खंधा एगूणतीसं अज्झयणा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—चरिता य कप्पिया य।

ताः अङ्गार्थतया षष्टमङ्गं द्वौ श्रुतस्कन्धौ एकोनत्रिंशद् अध्ययनानि, तानि समासतः द्विविधानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—चरितानि च कल्पितानि च।

यह अंग की दृष्टि से छठा अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध और उनतीस अध्ययन[२५] हैं। संक्षेप में वे दो प्रकार के हैं—चरित (घटित) और कल्पित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दस धम्मकहाणं वग्गा। तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच-पंच अक्खाइयासयाइं। एगमेगाए अक्खाइयाए पंच-पंच उवक्खाइयासयाइं। एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच-पंच अक्खाइय-उवक्खाइयसयाइं — एवामेव सपुव्वावरेणं अद्धुट्ठाओ अक्खाइयकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ। एगूणतीसं उद्देसणकाला एगूणतीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

दश धर्मकथानां वर्गाः। तत्र एकैकस्यां धर्मकथायां पञ्च-पञ्च आख्यायिकाशतानि। एकैकस्यां आख्यायिकायां पञ्च-पञ्च उपाख्यायिकाशतानि। एकैकस्यां उपाख्यायिकायां पञ्च-पञ्च आख्यायिका - उपाख्यायिकाशतानि— एवमेव सपूर्वापरेण अर्द्धचतुर्थ्यः आख्यायिकाकोट्यः भवन्तीति आख्याताः। एकोनत्रिंशत् उद्देशनकालाः एकोनत्रिंशत् समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

धर्मकथा के दस वर्ग[२६] हैं। प्रत्येक धर्मकथा में पांच-पांच सौ आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक आख्यायिका में पांच-पांच सौ उप-आख्यायिकाएं है। प्रत्येक उप-आख्यायिका में पांच-पांच सौ आख्यायिक-उपाख्यायिकाएं हैं। इस प्रकार कुल मिला कर इसमें साढ़े तीन करोड आख्यायिकाएं हैं—ऐसा कहा है[२७]। इसमें उनतीस उद्देशन-काल, उनतीस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय पदसहस्र (पांच लाख छिहत्तर हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं णाया-धम्मकहाओ।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेताः ज्ञात-धर्मकथाः।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—ज्ञात-धर्मकथामय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार ज्ञात-धर्मकथा में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है ज्ञात-धर्मकथा।

९५. से किं तं उवासगदसाओ?

अथ कास्ता उपासकदशाः?

९५. उपासकदशा क्या है?

उवासगदसासु णं उवासयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा, उवासयाणं च सीलव्वय-वेरमण-गुण-पच्चक्खाण-पोसहोववास - पडिवज्जणयाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ

उपासकदशासु उपासकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डानि राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः, उपासकानां च शीलव्रत-विरमण-गुण-प्रत्याख्यान - पौषधोपवासप्रतिपादनानि श्रुतपरिग्रहाः तपउपधानानि प्रतिमाः उपसर्गाः संलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि

उपासकदशा में उपासकों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक और पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, उनके शीलव्रत (अणुव्रत), विरमण (राग आदि की विरति), गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास का स्वीकरण, श्रुत-ग्रहण, तप-उपधान, प्रतिमा[२८], उपसर्ग, संलेखना, भक्त-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाई पुण बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

प्रायोपगमनानि देवलोकगमनानि सुकुलप्रत्याजातिः पुनर्बोधिलाभः अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते।

प्रत्याख्यान और प्रायोपगमन अनशन, देवलोकगमन, सुकुल में पुनरागमन, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रिया का आख्यान किया गया है।

उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थर-धम्म-सवणाणि बोहिलाभ-अभिगम-सम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुण - उत्तरगुणाइयारा ठिइविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहण - पालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य, तवा य विचित्ता, सीलव्वय-वेरमण - गुण - पच्चक्खाण-पोसहोववासा, अपच्छिममार-णंतियऽायसंलेहणा - झोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता, बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेयइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवरविमाण-वरपोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भोत्तूण उत्तमाइं, तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं, तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं।

उपासकदशासु उपासकानां ऋद्धि-विशेषाः परिषद् विस्तरधर्मश्रवणानि बोधिलाभ-अभिगम - सम्यक्त्वविशुद्धता स्थिरत्वं मूलगुण-उत्तरगुणातिचाराः स्थितिविशेषाश्च बहुविशेषाः प्रतिमाभिग्रह्-ग्रहण-पालनानि उपसर्गा-ध्यासनानि निरुपसर्गाश्च, तपांसि च विचित्राणि शीलव्रत-विरमण-गुण-प्रत्याख्यान - पौषधोपवासाः, अपश्चिममारणान्तिकात्मसंलेखना — जोषणाभिः आत्मानं यथा च भावयित्वा, बहूनि भक्तानि अनशनतया च छेदयित्वा, उपपन्नाः कल्पवरविमानोत्तमेषु यथा अनुभवन्ति सुरवरविमानवरपुण्डरीकेषु सौख्यानि अनुपमानि क्रमेण भुक्त्वा उत्तमानि, ततः आयुःक्षयेण च्युताः सन्तः यथा जिनमते बोधिं लब्ध्वा च संयमोत्तमं, तमोरजओघविप्रमुक्ताः उपयान्ति यथा अक्षयं सर्वदुःखमोक्षम्।

इसमें उपासकों के ऋद्धि-विशेष, परिषद्[१], विस्तार से धर्म-श्रवण, बोधि-लाभ, अभिगम, सम्यक्त्व-विशुद्धि, स्थैर्य, मूलगुणों और उत्तरगुणों के अतिचार, स्थिति-विशेष (उपासक-पर्याय का कालमान), अनेक प्रकार की प्रतिमाओं और अभिग्रहों का ग्रहण और पालन, उपसर्गों का सहन, निरुपसर्गता, विचित्र तप, शीलव्रत, विरमण, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, पौषधो-पवास, अपश्चिम-मारणान्तिक आत्म-संलेखना के आसेवन से आत्मा को जिस प्रकार भावित करते हैं तथा अनेक भक्तों (भोजन समयों) का अनशन के रूप में छेदन कर उत्तम कल्प देवलोक के विमानों में उत्पन्न होकर जिस प्रकार वरपुंडरीक तुल्य सुरवर विमानो में अनुपम सुखों का अनुभव करते हैं तथा उन उत्तम सुखों को क्रमशः भोग कर, आयु क्षीण होने पर वहां से च्युत होकर जिस प्रकार जिनमत में बोधि और उत्तम संयम को प्राप्त करते हैं तथा तम और रज के प्रवाह से विप्रमुक्त होकर जिस प्रकार अक्षय और सब दुःखों से मुक्ति देने वाले निर्वाण को प्राप्त करते हैं—उसका आख्यान किया गया है।

एते अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य।

एते अन्ये च एवमादयोऽर्थाः विस्तरेण च।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य विषय इसमें विस्तार से निरूपित हैं।

उवासगदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

उपासकदशासु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

उपासकदशा की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जाइं अक्खराइं अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

ताः अङ्गार्थतया सप्तममङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि दश उद्देशनकालाः दश समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

यह अंग की दृष्टि से सातवां अंग है। इसके एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, दस उद्देशन-काल, दस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद (ग्यारह लाख बावन हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं। इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं उवासगदसाओ।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेता उपासकदशाः।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—उपासकदशामय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार उपासकदशा में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है उपासकदशा।

९६. से किं तं अंतगडदसाओ ?

अथ कास्ताः अन्तकृतदशाः ?

९६. अन्तकृतदशा क्या है ?

अंतगडदसासु णं अंतगडाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ बहुविहाओ, खमा अज्जवं मद्दवं च, सोअं च सच्चसहियं, सत्तरसविहो य संजमो, उत्तमं च बंभं, आकिंचणया तवो चियाओ समिइगुत्तीओ चेव, तह अप्पमायजोगो, सज्झायज्झाणाण य उत्तमाणं दोण्हंपि लक्खणाइं।

अन्तकृतदशासु अन्तकृतानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डानि राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः श्रुतपरिग्रहाः तप-उपधानानि प्रतिमाः बहुविधाः, क्षमा आर्जवं च, शौचं च सत्यसहितं, सप्तदशविधश्च संयमः, उत्तमं च ब्रह्म, आकिञ्चन्यं तपस्त्यागः समितिगुप्तयश्चैव, तथा अप्रमादयोगः, स्वाध्यायध्यानयोश्च उत्तमयोर्द्वयोरपि लक्षणानि।

अन्तकृतदशा में अन्तकृत (तद्भव मोक्षगामी) जीवों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनषंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक और पार-लौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-ग्रहण, तप-उपधान, अनेक प्रकार की प्रतिमाएं, क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच, सत्य, सतरह प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तप, त्याग (दान), समिति, गुप्ति, अप्रमादयोग तथा उत्तम स्वाध्याय और ध्यान—इन दोनों के लक्षण आख्यात हैं।

पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं चउव्विह-कम्मक्खयम्मि जह केवलस्स

प्राप्तानां च संयममुत्तमं जितपरीषहाणां चतुर्विधकर्मक्षये यथा केवलस्य लाभः,

इसमें उत्तम संयम को प्राप्त करने तथा परीषहों को जीतने पर, चार कर्मों (घातीकर्मों) के क्षय होने से जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लंभो, परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं, पाओवगओ य जो जहिं, जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता अंतगडो मुणिवरो तमरयोघविप्पमुक्को, मोक्खसुहमणुत्तरं च पत्ता ।

पर्यायो यावाँश्च यथा पालितो मुनिभिः, प्रायोपगतश्च यो यत्र, यावन्ति भक्तानि छेदयित्वा अन्तकृतो मुनिवरः तमोरज-ओघ-विप्रमुक्तः मोक्षसुखमनुत्तरं च प्राप्ताः ।

प्रकार केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, जिस प्रकार मुनियों ने जितना पर्याय पाला, जिन्होंने प्रयोपगमन अनशन किया तथा जितने भक्तों (भोजन समयों) को छेद कर, तम और रज के प्रवाह से मुक्त होकर अन्तकृत हुए तथा अनुत्तर मोक्ष-सुख को प्राप्त हुए—इन सबका आख्यान किया गया है ।

एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेई ।

एते अन्ये च एवमादयोऽर्थाः विस्तरेण प्ररूप्यन्ते ।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य विषय इसमें विस्तार से निरूपित हैं ।

अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ ।

अन्तकृतदशासु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः ।

अन्तकृतदशा की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं ।

से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा सत्त वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

ताः अङ्गार्थतया अष्टममङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि सप्त वर्गाः दश उद्देशनकालाः दश समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीताः त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

यह अंग की दृष्टि से आठवां अंग है । इसके एक श्रुतस्कंध, दस अध्ययन, सात वर्ग, दस उद्देशन-काल, दस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद (तेईस लाख चार हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं ।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिनप्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जंति, पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति । सेत्तं अंतगडदसाओ ।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते । तदेता अन्तकृतदशाः ।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—अन्तकृतदशामय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है । इस प्रकार अन्तकृतदशा में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । यह है अन्तकृतदशा ।

९७. से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ?

अथ कास्ताः अनुत्तरोपपातिकदशाः ?

९७. अनुत्तरोपपातिकदशा क्या है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववत्ति सुकुलपच्चायाती पुणबोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

अनुत्तरोपपातिकदशासु अनुत्तरोपपातिकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनखण्डानि राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः श्रुतपरिग्रहाः तप-उपधानानि पर्यायाः संलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि प्रायोपगमनानि अनुत्तरोपपत्तिः सुकुलप्रत्याजातिः पुनर्बोधिलाभः अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते।

अनुत्तरोपपातिकदशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न व्यक्तियों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनषंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक और पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुत-ग्रहण, तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान और प्रायोप-गमन अनशन, अनुत्तर विमान में उत्पत्ति, सुकुल में पुनरागमन, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रिया का आख्यान किया गया है।

अणुत्तरोववातियदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परममंगल्ल-जगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिणसीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं थिरजसाणं परिसहसेण्ण-रिउ-बल-पमद्दणाणं तव-दित्त-चरित्त-णाण-सम्मत्तसार - विविहप्पगार-वित्थर-पसत्थगुण - संजुयाण अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वण्णओ, उत्तमवरतव-विसिट्ठणाण-जोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा य रिद्धिविसेसा देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं, जह य उवासंति जिणवरं, जह य परिकहेंति धम्मं लोगगुरू अमरनरसुरगणाणं, सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्म-विसयविरत्ता नरा जह अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहुविहप्पगारं, जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहिय-नाण - दंसण - चरित्त-जोगा

अनुत्तरोपपातिकदशासु तीर्थंकरसमवसरणानि परममाङ्गल्यजगद्धितानि जिनातिशेषाश्च बहुविशेषाः जिनशिष्याणां चैव श्रमणगणप्रवर-गन्धहस्तिनां स्थिरयशसां परीषहसैन्य-रिपु-बल-प्रमर्दनानां तपोदिप्त-चारित्र-ज्ञान - सम्यक्त्वसार - विविधप्रकार-विस्तर-प्रशस्तगुण-संयुतानां अनगार-महर्षीणां अनगारगुणानां वर्णकः, उत्तमवरतपो विशिष्टज्ञान-योगयुक्तानां यथा च जगद्धितं भगवतः यादृशाश्च ऋद्धिविशेषाः देवासुरमानुषानां परिषदां प्रादुर्भावाश्च जिनसमीपे, यथा च उपासते जिनवरं यथा च परिकथयति धर्मं लोकगुरुः अमरनरसुरगणानां श्रुत्वा च तस्य भाषितं अवशेषकर्म-विषयविरक्ताः नराः यथा अभ्युपयन्ति धर्ममुदारं संयमं तपश्चापि बहुविधप्रकारं, यथा बहूनि वर्षाणि अनुचर्य आराधित-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-योगाः जिनवचनानुगत-

इसमें परम मंगल और जगत् के लिए हितकर तीर्थङ्कर के समवसरण, उनके बहुविशिष्ट अतिशय तथा श्रमणगण में श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान, स्थिर यश वाले, परीषह सैन्य रूपी रिपु-बल का मर्दन करने वाले, तपोदिप्त चारित्र, ज्ञान और सम्यक्त्व से सफल, विविध प्रकार के विस्तार वाले प्रशस्त गुणों से संयुक्त, जो अनगार महर्षि हैं, जो उत्तम, श्रेष्ठ तप वाले तथा विशिष्ट ज्ञान-योग से युक्त हैं, उन जिन-शिष्यों के मुनि-गुणों का वर्णन किया गया है। इसमें जैसे भगवान् महावीर का शासन जगत् के लिए हितकर है, देव-असुर और मनुष्य पर्षदों के जिस प्रकार के ऋद्धि-विशेष तथा जिनेश्वर देव के समीप प्रादुर्भाव होता है, जिस प्रकार वे जिनेश्वर की उपासना करते हैं, जिस प्रकार लोकगुरु (महावीर) देव, नर और असुरों के गणों में धर्म-देशना देते हैं, जिस प्रकार भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्म सुन कर अवशेष (क्षीण-प्राय) कर्म वाले, विषयों से विरक्त मनुष्य अनेक प्रकार के संयम और तपरूपी उदार धर्म को स्वीकार करते हैं, जिस प्रकार वे अनेक वर्षों तक तप और संयम का पालन कर ज्ञान, दर्शन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिणवयणमणुगय - महियभासिया जिणवराण हियएणमणुणेत्ता, जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेयइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमं झाणजोगजुत्ता उववण्णा मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं, तत्तो य चुया कमेणं काहिंति संजया जह य अंतकिरियं।

महित-भाषिताः जिनवरान् हृदयेन अनुनीय, ये च यत्र यावन्ति भक्तानि छेदयित्वा, लब्ध्वा च समाधिमुत्तमं ध्यानयोगयुक्ताः उपपन्नाः मुनिवरोत्तमाः यथा अनुत्तरेषु प्राप्नुवन्ति यथा अनुत्तरं तत्र विषयसौख्यं, ततश्च च्युताः क्रमेण करिष्यन्ति संयताः यथा च अन्तक्रियाम्।

चारित्र और योग की आराधना करते हैं, आचार आदि से अनुगत और पूजित जिनवचन का निरूपण कर जिनेश्वर को हृदय में प्राप्त कर जो जहां जितने भक्तों का छेदन कर, उत्तम समाधि को पाकर, ध्यान-योग से युक्त जिस प्रकार उत्तम मुनिवर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार वहां अनुत्तर विषय सुखों को पाते हैं, वहां से च्युत होकर, क्रम से संयमी बन कर जिस प्रकार अन्त-क्रिया करते हैं—उनका आख्यान किया गया है।

एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण।

एते अन्ये च एवमादयः अर्थाः विस्तरेण।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य विषय इसमें विस्तार से निरूपित हैं।

अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

अनुत्तरोपपातिकदशासु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

अनुत्तरोपपातिक दशा की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा तिण्णि वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जाणि अक्खराणि अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

ताः अङ्गार्थतया नवममङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः दश अध्ययनानि त्रयो वर्गाः दश उद्देशनकालाः दश समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से नौवां अंग है। इसके एक श्रुतस्कंध, दस अध्ययन, तीन वर्ग, दस उद्देशन-काल[10], दस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद (छियालीस लाख आठ हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'— अनुत्तरोपपातिकदशामय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार अनुत्तरोपपातिक-दशा में चरण-करण-प्ररूपणा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति । सेत्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ।

प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते । तदेता अनुत्तरोपपातिकदशाः ।

आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । यह है अनुत्तरोपपातिक दशा ।

९८. से किं तं पण्हावागरणाणि ?

अथ कानि तानि प्रश्नव्याकरणानि ?

९८. प्रश्नव्याकरण क्या है ?

पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धि दिव्वा संवाया आघविज्जंति ।

प्रश्नव्याकरणेषु अष्टोत्तरं प्रश्नशतं अष्टोत्तरं अप्रश्नशतं अष्टोत्तरं प्रश्नाप्रश्नशतं विद्यातिशयाः, नागसुपर्णैः सार्धं दिव्याः संवादाः आख्यायन्ते ।

प्रश्नव्याकरण में एक सौ आठ प्रश्न[३१], एक सौ आठ अप्रश्न[३२], एक सौ आठ प्रश्न-अप्रश्न[३३], विद्या के अतिशय[३४] तथा नाग और सुपर्ण देवों के साथ हुए दिव्य संवादों का आख्यान किया गया है ।

पण्हावागरणदसासु णं ससमय-परसमय - पण्णवय - पत्तेयबुद्ध-विविहत्थ - भासा - भासियाणं अतिसय-गुण-उवसम- णाणप्पगार-आयरिय-भासियाणं वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थर-भासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठ-बाहु-असि-मणि - खोम-आतिच्चमातियाणं विविहमहा-पसिणविज्जा - मणपसिणविज्जा-देवयपओगपहाण- गुणप्पगासियाणं सब्भूयविगुणप्पभाव - नरगणमइ-विम्हयकारीणं अतिसयमतीत-कालसमए दमतित्थकरुत्तमस्स ठितिकरण-कारणाणं दुरहिगम-दुरवगाहस्स सव्वसव्वण्णुसम्मयस्स बुहजणविबोहकरस्स पच्चक्खय-पच्चय-करणं पण्हाणं विविहगुण-महत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति ।

प्रश्नव्याकरणदशासु स्वसमयपरसमय-प्रज्ञापक - प्रत्येकबुद्ध - विविधार्थभाषा-भाषितानां अतिशय-गुण-उपशम-ज्ञानप्रकार - आचार्य - भाषितानां विस्तरेण वीरमहर्षिभिः विविधविस्तर-भाषितानां च जगद्धितानां आदर्शाङ्गुष्ठबाहु - असि - मणिक्षौमा-दित्यादिकानां विविधमहाप्रश्नविद्या-मनःप्रश्नविद्या-दैवतप्रयोगप्रधानगुण-प्रकाशिकानां सद्भूतद्विगुणप्रभावनर-गणमति - विस्मयकारिणां अतिशयातीतकालसमये दमतीर्थकरोत्तमस्य स्थितिकरणकारणानां दुरधिगमदुरवगाहस्य सर्वसर्वज्ञसम्मतस्य बुधजनविबोधकरस्य प्रत्यक्षकप्रत्यय-कराणां प्रश्नानां विविधगुणमहार्थाः जिनवरप्रणीताः आख्यायन्ते ।

इसमें स्व-समय और पर-समय के प्रज्ञापक प्रत्येक बुद्धों द्वारा विविध अर्थवाली भाषा में भाषित, नाना प्रकार के अतिशय, गुण और उपशम वाले आचार्यों द्वारा विस्तार से कथित तथा वीर महर्षियों द्वारा विविध विस्तार से कथित, जगत् के लिए हितकर, आदर्श, अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, वस्त्र और आदित्य आदि से सम्बन्धित विविध प्रकार की महाप्रश्न-विद्याओं[३५] और मनःप्रश्न-विद्याओं[३६] के अधिष्ठायक देवों के प्रयोग-प्राधान्य से गुणों को प्रकाशित करने वाली, सद्भूत द्विगुण प्रभाव से मनुष्य गण की बुद्धि को विस्मत करने वाली, सुदूर अतीत काल में उपशम प्रधान उत्तम तीर्थंकर के स्थितिकरण (स्थापना) में कारण-भूत, दुर्बोध, दुरवगाह तथा अबुधजन को प्रबोध देने वाले, सर्व सर्वज्ञों द्वारा सम्मत प्रवचन—तत्त्व का प्रत्यक्ष प्रत्यय कराने वाली प्रश्न-विद्याओं के, जिनवर-प्रणीत विविध गुण वाले महान् अर्थों का आख्यान किया गया है ।

पण्हावागरणसु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ ।

प्रश्नव्याकरणेषु परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः ।

प्रश्नव्याकरण की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे एगे सुयक्खंधे (पणयालीसं अज्झयणा?) पणयालीसं उद्देसणकाला पणयालीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

तानि अङ्गार्थतया दशममङ्गम् एकः श्रुतस्कन्धः (पञ्चचत्वारिंशद् अध्ययनाः ?) पञ्चचत्वारिंशद् उद्देशनकालाः पञ्चचत्वारिंशद् समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से दसवां अंग है। इसके एक श्रुतस्कन्ध (पैंतालीस अध्ययन[37] ?), पैंतालीस उद्देशन-काल, पैंतालीस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद (बानवे लाख सोलह हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं पण्हावागरणाइं।

अथ एवमात्मा एवं ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेतानि प्रश्न-व्याकरणानि।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—प्रश्नव्याकरणमय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' बन जाता है। इस प्रकार प्रश्नव्याकरण में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है प्रश्नव्याकरण[38]।

९९. से किं तं विवागसुए?

अथ किं तत् विपाकश्रुतम्?

९९. विपाकश्रुत क्या है?

विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जति।

विपाकश्रुते सुकृतदुष्कृतानां कर्मणां फलविपाकः आख्यायते।

विपाकश्रुत में सुकृत और दुष्कृत कर्मों के फल-विपाक का आख्यान किया गया है।

से समासओ दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—दुहविवागे चेव, सुहविवागे चेव। तत्थ णं दह दुहविवागाणि दह सुहविवागाणि।

स समासतः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—दुःखविपाकश्चैव सुखविपाकश्चैव। तत्र दश दुःखविपाकाः दश सुखविपाकाः।

वह संक्षेप में दो प्रकार का है—दुःखविपाक और सुख विपाक। उनमें दस दुःखविपाक हैं और दस सुखविपाक।

से किं तं दुहविवागाणि?

अथ के ते दुःखविपाकाः?

दुःखविपाक क्या है?

दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ नगरगमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ य आघविज्जंति। सेत्तं दुहविवागाणि।

दुःखविपाकेषु दुःखविपाकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डानि राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः नगरगमणानि संसारप्रबन्धः दुःखपरम्परा च आख्यायते। तदेते दुःखविपाकाः।

दुःखविपाक में दुःखविपाक वाले जीवों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनषंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, नगर-गमन, संसार का प्रबन्ध और दुःख परम्पराओं का आख्यान किया गया है। वह दुःखविपाक है।

से किं तं सुहविवागाणि?

अथ के ते सुखविपाकाः?

सुखविपाक क्या है?

सुहविवागेसु सुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणसंडाइं रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइय-परलोइया इड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाती पुण बोहिलाभो अंतकिरियाओ य आघविज्जंति।

सुखविपाकेषु सुखविपाकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनषण्डानि राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्याः धर्मकथाः ऐहलौकिक-पारलौकिकाः ऋद्धिविशेषाः भोगपरित्यागाः प्रव्रज्याः श्रुतपरिग्रहाः तपउपधानानि पर्यायाः संलेखनाः भक्तप्रत्याख्यानानि प्रायोपगमनानि देवलोकगमनानि सुकुलप्रत्याजातिः पुनर्बोधिलाभः अन्तक्रियाश्च आख्यायन्ते।

सुखविपाक में सुखविपाक वाले जीवों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनषंड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऐहलौकिक और पारलौकिक ऋद्धि-विशेष, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतग्रहण, तप-उपधान, दीक्षा-पर्याय, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान और प्रायोपगमन अनशन, देवलोक-गमन, सुकुल में पुनरागमन, पुनः बोधिलाभ और अन्तक्रिया का आख्यान किया गया है।

दुहविवागेसु णं पाणाइवाय-अलियवयण - चोरिक्ककरण-परदारमेहुणससंगयाए महतिव्व-कसाय-इंदियप्पमाय - पावप्पओय-असुहज्झवसाण-संचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभाग-फलविवागा णिरयगति-तिरिक्खजोणि-बहुविह-वसणसय - परंपरापबद्धाणं, मणुयत्तेवि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा।

दुःखविपाकेषु प्राणातिपात-अलीकवचन-चौर्यकरण - परदारमैथुनससङ्गतया महत्तीव्रकषाय-इन्द्रियप्रमाद-पापप्रयोग-अशुभाध्यवसानसञ्चितानां कर्मणां पापकानां पापअनुभाग-फलविपाकाः निरयगति-तिर्यग्योनि - बहुविध-व्यसन-शतपरम्पराप्रबद्धानां मनुजत्वेऽपि आगतानां यथा पापकर्मशेषेण पापका भवन्ति फलविपाकाः।

दुःखविपाक में प्राणातिपात, मृषावाद, चौर्यकरण, परदार-मैथुन, परिग्रह के द्वारा महातीव्र कषाय, इन्द्रिय, प्रमाद, पाप-प्रयोग और अशुभ अध्यवसाय के द्वारा संचित पापकर्मों के अशुभ अनुभाग वाले फलविपाक का आख्यान किया गया है। नरकगति और तिर्यञ्च योनि में बहुविध व्यसनशत (सैकड़ों कष्टों) की परम्परा से बद्ध जीवों के मनुष्य जन्म में आ जाने पर भी जिस प्रकार अवशिष्ट कर्मों के फलविपाक अशुभ होते हैं—उनका आख्यान किया गया है।

वहवसणविणास - नासकण्णोट्ठं-गुट्ठकरचरणनहच्छेयणजिब्भछेयण-अंजण-कडग्गिदाहण - गयचलण-मलणफालणउल्लंबण - सूललया-लउडलट्ठिभंजण - तउसीसगतत्त-तेल्लकलकलअभिसिंचणकुंभिपाग - कंपण - थिरबंधण-वेहवज्झकत्तण-पतिभयकर - करपलीवणादि-दारुणाणि दुक्खाणि

वधवृषणविनाश-नाश- कर्णौष्ठाङ्गुष्ठ-करचरणनखच्छेदन - जिह्वाछेदन-अञ्जन-कटाग्निदाहन-गज- चरणमर्दन-स्फाटन-उल्लम्बन-शूल-लता-लकुटयष्टि भञ्जन-त्रपु-सीसक-तप्त - तैलकलकल-अभिसिञ्चन - कुम्भीपाक - कम्पन-स्थिरबन्धन-वेध-वर्द्धकर्त्तन-प्रतिभयकर-करप्रदीपनादिदारुणानि दुःखानि

इसमें वध, वृषण-विनाश (नपुंसक-करण), नासिका, कान, होठ, अंगुष्ठ, हाथ, चरण और नखों का छेदन, जीभ का छेदन, लोहे की गर्म शलाका से आंखों का आंजना, कटाग्नि से जलाना, हाथी के पैरों से कुचलना, विदारण करना, ऊंचे लटकाना, शूल, लता, लकड़ी और लाठी से शरीर का भंग करना, उबलते हुए त्रपु, शीसे और गरम तेल से सींचना, कुंभी में पकाना, ठंडे प्रयोगों से शरीर को प्रकंपित करना, निबिड़ रूप से बांधना, वेधना (शस्त्र से भेदन करना), चमड़ी उधेड़ना, हाथों में भय उत्पन्न करने वाली अग्नि जलाना—आदि अनुपम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणोवमाणि बहुविविहपरंपराणुबद्धा ण मुच्चंति पावकम्मवल्लीए। अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धिइ-धणिय-बद्ध-कच्छेण सोहणं तस्स वावि होज्जा।

अनुपमानि बहुविधिपरम्परानुबद्धाः न मुच्यन्ते पापकर्मवल्ल्या। अवेदयित्वा नास्ति मोक्षः तपसा धृति-धणिय (अत्यर्थ)-बद्ध-कक्षेण शोधनं तस्य वापि भवेत्।

दारुण दुःखों का आख्यान किया गया है।

दुखों की बहुत विविध परंपरा से अनुबद्ध जीव पाप कर्मरूपी वल्ली से मुक्त नहीं होते। कर्मों का वेदन किये बिना उनसे छुटकारा नहीं होता अथवा प्रबल धृतिबल से कटिबद्ध तप के द्वारा उसका शोधन भी हो सकता है।

एत्तो य सुहविवागेसु सील-संजम-णियम-गुण-तवोवहाणेसु साहुसु सुविहिएसु अणुकंपाऽऽसयप्पओग-तिकाल-मइविसुद्ध-भत्तपाणाइं पयतमणसा हिय-सुह-नीसेस-तिव्वपरिणाम-निच्छियमई पयच्छिऊणं पओगसुद्धाइं जह य निव्वत्तेंति उ बोहिलाभं, जह य परित्तीकरेंति नर-निरय-तिरिय-सुरगतिगमण-विपुलपरियट्ट-अरति-भय-विसाय-सोक-मिच्छत्त-सेलसंकडं अण्णाणतमंधकार-चिक्खिल्ल-सुदुत्तारं जर-मरण-जोणि-संखुभियचक्कवालं सोलसकसाय-सावय-पयंड-चंडं अणाइयं अणवदग्गं संसारसागरमिणं, जह य निबंधंति आउगं सुरगणेसु, जह य अणुभवंति सुरगणविमाण-सोक्खाणि अणोवमाणि, ततो य कालंतरच्चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउ-वउ-वण्ण-रूव-जाति-कुल-जम्म-आरोग्ग-बुद्धि-मेहा-विसेसा मित्तजण-सयण-

इतश्च सुखविपाकेषु शील-संयम-नियम-गुण-तप उपधानेषु साधुषु सुविहितेषु अनुकम्पाऽऽशयप्रयोग-त्रिकाल-मतिविशुद्धभक्तपानानि प्रयतमनसा हित-सुख-निःश्रेयस-तीव्रपरिणाम-निश्चितमतयः प्रदाय प्रयोगशुद्धानि यथा च निवर्त्तयन्ति तु बोधिलाभं, यथा च परीतीकुर्वन्ति नर-निरय-तिर्यक्-सुरगति-गमन-विपुलपरिवर्त्त-अरतिभय-विषाद-शोक-मिथ्यात्व-शैलसङ्कटं अज्ञानतमोऽन्धकार-'चिक्खिल्ल' सुदुस्तरं जरा-मरण-योनि संक्षुब्ध-चक्रवालं षोडश कषाय-श्वापद-प्रकाण्ड-चण्डं अनादिकं अनवदग्रं संसारसागरमिमं, यथा च निबध्नन्ति आयुष्कं सुरगणेषु, यथा च अनुभवन्ति सुरगणविमानसौख्यानि अनुपमानि, ततश्च कालान्तरच्युतानां इहैव नरलोकमागतानां आयुर्वपु-वर्ण-रूप-जाति-कुल-जन्म-आरोग्य-बुद्धि-मेधा-

सुखविवाक में शील, संयम, नियम, गुण और तप-उपधान को धारण करने वाले सुविहित साधुओं को अत्यन्त आदर वाले, हितकारक, सुखकारक और कल्याणकारक तीव्र अध्यवसाय तथा निश्चित मति वाले व्यक्ति अनुकम्पा के आशय-प्रयोग से तथा दान देने की त्रैकालिक मति से विशुद्ध तथा प्रयोग-शुद्ध (दाता, दानव्यापार की अपेक्षा से शुद्ध) भक्त-पान दे कर जिस प्रकार बोधि को प्राप्त करते हैं, उसका आख्यान किया गया है।

इसमें नर, नारक, तिर्यञ्च और देव-गति में गमन करने के लिए विपुल आवर्त वाले, अरति, भय, विषाद, शोक और मिथ्यात्वरूपी पर्वतों से संकुल, अज्ञानरूपी अंधकार से परिपूर्ण, दुःख से पार किए जाने वाले कीचड़ से युक्त, जरा-मरण और जन्म से संक्षुब्ध चक्रवाल से युक्त, सोलह कषाय रूपी अत्यन्त रौद्र श्वापदों से युक्त अनादि-अनन्त संसार सागर को जिस प्रकार परिमित करते हैं—उसका आख्यान किया गया।

जिस प्रकार देवलोक में जाने के लिए वे आयुष्य का बंध करते हैं, जिस प्रकार देव-विमानों के अनुपम सुखों का अनुभव करते हैं, वहां से कालान्तर में च्युत हो इसी मनुष्य लोक में आकर विशिष्ट प्रकार के आयुष्य, शरीर, वर्ण, रूप, जाति, कुल, जन्म, आरोग्य, बुद्धि और मेधा को प्राप्त करते हैं तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धण-धण्ण - विभव - समिद्धिसार-समुदयविसेसा बहुविहकाम-भोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु।

विशेषाः मित्रजन-स्वजन-धन-धान्य-विभव - समृद्धिसार - समुदयविशेषाः बहुविधकामभोगोद्भवानां सौख्यानां सुखविपाकोत्तमेषु ।

विशिष्ट प्रकार के मित्रजन, स्वजन, धनधान्य, वैभव, समृद्धि और सार (सुगन्धी द्रव्य) के समुदय को प्राप्त करते हैं तथा बहुविध कामभोगों से उत्पन्न विशिष्ट प्रकार के सुखों को उत्तम शुभ विपाक वाले जीव प्राप्त करते हैं—उनका आख्यान किया गया है।

अणुवरयपरंपराणुबद्धा असुभाण सुभाण चेव कम्माण भासिआ बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था ।

अनुपरतपरम्परानुबद्धाः अशुभानां शुभानां चैव कर्मणां भाषिताः बहुविधाः विपाकाः विपाकश्रुते भगवता जिनवरेण संवेगकारणार्थाः ।

वैराग्य उत्पन्न करने के लिए भगवान् जिनेश्वर देव ने अविच्छिन्न परम्परा से अनुबद्ध अशुभ और शुभ कर्मों के अनेक प्रकार के विपाकों का वर्णन इस विपाकश्रुत में किया है।

अण्णेवि य एवमाइया, बहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जति ।

अन्येऽपि च एवमादिका बहुविधा विस्तरेण अर्थप्ररूपणा आख्यायते ।

ये तथा इसी प्रकार के अन्य विषय इसमें विस्तार से निरूपित हैं।

विवागसुअस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ ।

विपाकश्रुतस्य परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः ।

विपाकश्रुत की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्ठयाए एक्कारसमे अंगे वीसं अज्झयणा वीसं उद्देसणकाला वीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जाइं अक्खराइं अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

तत् अङ्गार्थतया एकादशमङ्गं विंशतिः अध्ययनानि विंशतिः उद्देशनकालाः विंशतिः समुद्देशनकालाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

यह अङ्ग की दृष्टि से ग्यारहवां अंग है। इसके बीस अध्ययन, बीस उद्देशन-काल, बीस समुद्देशन-काल, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद (एक करोड़ चौरासी लाख बत्तीस हजार), संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति

अथ एवमात्मा एव ज्ञाता एवं विज्ञाता एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला, 'एवमात्मा'—विपाकश्रुतमय 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं विवागसुए।

प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। तदेतद् विपाकश्रुतम्।

प्रकार विपाकश्रुत में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है विपाकश्रुत।

१००. से किं तं दिट्ठिवाए ?

अथ कोऽसौ दृष्टिवादः ?

१००. दृष्टिवाद[३९] क्या है ?

दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जति। से समासओ पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगे चूलिया।

दृष्टिवादे सर्वभावप्ररूपणा आख्यायते। स समासतः पंचविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—परिकर्म सूत्राणि पूर्वगतं अनुयोगः चूलिका।

दृष्टिवाद में सर्व भावों की प्ररूपणा की गई है। संक्षेप में वह पांच प्रकार का है—१. परिकर्म[४०], २. सूत्र, ३. पूर्वगत[४१], ४. अनुयोग, ५. चूलिका[४२]।

१०१. से किं तं परिकम्मे ?

अथ किं तत् परिकर्म ?

१०१. परिकर्म क्या है ?

परिकम्मे सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

परिकर्म सप्तविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

परिकर्म सात प्रकार का है—

सिद्धसेणियापरिकम्मे
मणुस्ससेणियापरिकम्मे
पुट्ठसेणियापरिकम्मे
ओगाहणसेणियापरिकम्मे
उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे
विप्पजहणसेणियापरिकम्मे
चुयाचुयसेणियापरिकम्मे।

सिद्धश्रेणिकापरिकर्म
मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म
स्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म
अवगाहनश्रेणिकापरिकर्म
उपसम्पादनश्रेणिकापरिकर्म
विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म
च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म।

१. सिद्धश्रेणिका परिकर्म
२. मनुष्यश्रेणिका परिकर्म
३. स्पृष्टश्रेणिका परिकर्म
४. अवगाहनश्रेणिका परिकर्म
५. उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म
६. विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म
७. च्युताच्युश्रेणिका परिकर्म

१०२. से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ?

अथ किं तत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म ?

१०२. सिद्धश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

सिद्धसेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

सिद्धश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है—

माउयापयाणि, एगट्ठियपयाणि, अट्ठपयाणि, पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, सिद्धावत्तं।

मातृकापदानि, एकार्थिकपदानि, अर्थपदानि, पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, सिद्धावर्त्तम्।

१. मातृकापद
२. एकार्थिकपद
३. अर्थपद
४. पाठ
५. आकाशपद
६. केतुभूत
७. राशिबद्ध
८. एकगुण
९. द्विगुण
१०. त्रिगुण
११. केतुभूतप्रतिग्रह
१२. संसारप्रतिग्रह
१३. नन्द्यावर्त
१४. सिद्धावर्त।

सेत्तं सिद्धसेणियापरिकम्मे।

तदेतत् सिद्धश्रेणिकापरिकर्म।

यह सिद्धश्रेणिका परिकर्म है।

१०३. से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ?

अथ किं तत् मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म ?

१०३. मनुष्यश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते तं जहा—

मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

मनुष्यश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माउयापयाणि, एगट्ठियपयाणि, अट्ठपयाणि, पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, मणुस्सावत्तं।

मातृकापदानि, एकार्थिकपदानि, अर्थपदानि, पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, मनुष्यावर्त्तम्।

१. मातृकापद
२. एकार्थिकपद
३. अर्थपद
४. पाठ
५. आकाशपद
६. केतुभूत
७. राशिबद्ध
८. एकगुण
९. द्विगुण
१०. त्रिगुण
११. केतुभूतप्रतिग्रह
१२. संसारप्रतिग्रह
१३. नन्द्यावर्त
१४. मनुष्यावर्त।

सेत्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे।

तदेतत् मनुष्यश्रेणिकापरिकर्म।

यह मनुष्यश्रेणिका परिकर्म है।

१०४. से किं तं पुट्ठसेणियापरिकम्मे ?

अथ किं तत् स्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म ?

१०४. स्पृष्टश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

पुट्ठसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

स्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

स्पृष्टश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—

पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, पुट्ठावत्तं।

पाठः आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, स्पृष्टावर्तम्।

१. पाठ
२. आकाशपद
३. केतुभूत
४. राशिबद्ध
५. एकगुण
६. द्विगुण।
७. त्रिगुण
८. केतुभूतप्रतिग्रह
९. संसारप्रतिग्रह
१०. नंद्यावर्त
११. स्पृष्टावर्त।

सेत्तं पुट्ठसेणिया परिकम्मे।

तदेतत् स्पृष्टश्रेणिकापरिकर्म।

यह स्पृष्टश्रेणिका परिकर्म है।

१०५. से किं तं ओगाहणसेणियापरिकम्मे ?

अथ किं तत् अवगाहनश्रेणिकापरिकर्म ?

१०५ अवगाहनश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

ओगाहणसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

अवगाहनश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

अवगाहनश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—

पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो नंदावत्तं, ओगाहणावत्तं।

पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, अवगाहनावर्तम्।

१. पाठ
२. आकाशपद
३. केतुभूत
४. राशिबद्ध
५. एकगुण
६. द्विगुण।
७. त्रिगुण
८. केतुभूतप्रतिग्रह
९. संसारप्रतिग्रह
१०. नंद्यावर्त
११. अवगाहनावर्त।

सेत्तं ओगाहणसेणियापरिकम्मे।

तदेतत् अवगाहनश्रेणिकापरिकर्म।

यह अवगाहनश्रेणिका परिकर्म है।

१०६. से किं तं उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे ?

अथ किं तत् उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म ?

१०६. उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

उवसंपज्जणसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, उवसंपज्जणावत्तं।

पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, उपसंपादनावर्तम्।

१. पाठ
२. आकाशपद
३. केतुभूत
४. राशिबद्ध
५. एकगुण
६. द्विगुण।
७. त्रिगुण
८. केतुभूतप्रतिग्रह
९. संसारप्रतिग्रह
१०. नंद्यावर्त
११. उपसंपादनावर्त्त।

सेत्तं उवसंपज्जणसेणिया परिकम्मे।

तदेतत् उपसंपादनश्रेणिकापरिकर्म।

यह उपसंपादनश्रेणिका परिकर्म है।

१०७. से किं तं विप्पजहणसेणिया-परिकम्मे ?

अथ किं तत् विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म ?

१०७. विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

विप्पजहणसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते तं जहा—

विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—

पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो, नंदावत्तं, विप्पजहणावत्तं।

पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतपतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, विप्रहाणावर्तम्।

१. पाठ
२. आकाशपद
३. केतुभूत
४. राशिबद्ध
५. एकगुण
६. द्विगुण।
७. त्रिगुण
८. केतुभूतप्रतिग्रह
९. संसारप्रतिग्रह
१०. नंद्यावर्त
११. विप्रहाणावर्त।

सेत्तं विप्पजहणसेणियापरिकम्मे।

तदेतत् विप्रहाणश्रेणिकापरिकर्म।

यह विप्रहाणश्रेणिका परिकर्म है।

१०८. से किं तं चुयाचुयसेणिया-परिकम्मे ?

अथ किं तत् च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म?

१०८. च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म क्या है ?

चुयाचुयसेणियापरिकम्मे एक्कारसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म एकादशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—

च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है—

पाढो, आगासपयाणि, केउभूयं, रासिबद्धं, एगगुणं, दुगुणं, तिगुणं, केउभूयपडिग्गहो, संसारपडिग्गहो नंदावत्तं, चुयाचुयावत्तं।

पाठः, आकाशपदानि, केतुभूतं, राशिबद्धं, एकगुणं, द्विगुणं, त्रिगुणं, केतुभूतप्रतिग्रहः, संसारप्रतिग्रहः, नन्द्यावर्त्तं, च्युताच्युतावर्तम्।

१. पाठ
२. आकाशपद
३. केतुभूत
४. राशिबद्ध
५. एकगुण
६. द्विगुण।
७. त्रिगुण
८. केतुभूतप्रतिग्रह
९. संसारप्रतिग्रह
१०. नंद्यावर्त
११. च्युताच्युतावर्त।

सेत्तं चुयाचुयसेणियापरिकम्मे।

तदेतत् च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म।

यह च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म है।

१०९. इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं छ ससमइयाणि सत्त आजीवियाणि, छ चउक्कणइयाणि सत्त तेरासियाणि।

इत्येतानि सप्त परिकर्माणि षट् स्वसामयिकानि सप्त आजीविकानि षट् चतुष्कनयिकानि सप्त त्रैराशिकानि।

१०९. ये सात परिकर्म हैं। इनमें प्रथम छह स्व-समय के प्रज्ञापक हैं और सातवां (च्युताच्युतश्रेणिका परिकर्म) आजीवक मत का प्रज्ञापक है। तथा छह परिकर्म चार नय वाले हैं और एक (सातवां)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीति भवंतीति-मक्खायाइं । सेत्तं परिकम्मे ।

एवमेव सपूर्वापरेण सप्तपरिकर्माणि त्र्यशीतिः भवन्तीत्याख्यातानि । तदेतत् परिकर्म ।

त्रैराशिक—तीन नय वाला है। इस प्रकार कुल मिलाकर इन सात परिकर्मों के तिरासी भेद होते हैं। यह परिकर्म है।

११०. से किं तं सुत्ताइं ?

अथ कानि तानि सूत्राणि ?

११०. सूत्र क्या है ?

सुत्ताइं अट्ठासीतिभवंतीति-मक्खायाइं तं जहा—

सूत्राणि अष्टाशीतिः भवन्तीत्याख्यातानि, तद्यथा—

सूत्र अट्ठासी हैं, ऐसा कहा गया है, जैसे—

उज्जुगं, परिणयापरिणयं, बहुभंगियं, विजयचरियं, अणंतरं, परंपरं, सामाणं, संजूहं, भिण्णं, आहच्चायं, सोवत्थियं घंटं, नंदावत्तं, बहुलं, पुट्ठापुट्ठं, वियावत्तं, एवंभूयं, दुआवत्तं, वत्तमाणुप्पयं, समभिरूढं, सव्वओभद्दं, पण्णासं, दुपडिग्गहं ।

ऋजुकं, परिणतापरिणतं, बहुभंगिकं, विजयचरितं, अनन्तरं, परम्परं, सत्, संयूथं, भिन्नं, यथात्यागः, सौवस्तिकं घण्टं, नन्द्यावर्त्तं, बहुलं, पृष्टापृष्टं, व्यावर्त्तं, एवंभूतं, द्व्यावर्त्तं, वर्तमानपदं, समभिरूढं, सर्वतोभद्रं, पन्न्यासं, द्विप्रतिग्रहम् ।

१. ऋजुक	१२. नंद्यावर्त
२. परिणतापरिणत	१३. बहुल
३. बहुभंगिक	१४. पृष्टापृष्ट
४. विजयचरित	१५. व्यावर्त
५. अनंतर	१६. एवंभूत
६. परंपर	१७. द्विकावर्त
७. सत्	१८. वर्तमानपद
८. संयूथ	१९. समभिरूढ़
९. भिन्न	२०. सर्वतोभद्र
१०. यथात्याग	२१. पन्न्यास
११. सौवस्तिक घंट	२२. द्विप्रतिग्रह।

१११. इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णछेयनइयाणि ससमय-सुत्तपरिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि छिन्नच्छेदनयिकानि स्वसमयसूत्र-परिपाट्या ।

१११. ये बाईस सूत्र स्व-समय की परिपाटी (जैनागम पद्धति) के अनुसार छिन्नछेद-नयिक होते हैं।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिण्णछेयनइयाणि आजीविय-सुत्तपरिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकानि आजीविक-सूत्रपरिपाट्या ।

ये बाईस सूत्र आजीवक परिपाटी के अनुसार अच्छिन्नछेद-नयिक होते हैं।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं तिकनइयाणि तेरासियसुत्त-परिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि त्रिकनयिकानि त्रैराशिकसूत्रपरि-पाट्या ।

ये बाईस सूत्र त्रैराशिक परिपाटी के अनुसार त्रिक-नयिक होते हैं।

इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कनइयाणि ससमयसुत्त-परिवाडीए ।

इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि चतुष्कनयिकानि स्वसमयसूत्रपरि-पाट्या ।

ये बाईस सूत्र स्व-समय परिपाटी के अनुसार चतुष्क-नयिक होते हैं।

एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीति सुत्ताइं भवंतीतिमक्खायाणि । सेत्तं सुत्ताइं ।

एवमेव सपूर्वापरेण अष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्तीति आख्यातानि । तानि एतानि सूत्राणि ।

इस प्रकार कुल मिलाकर अट्ठासी सूत्र होते हैं। यह सूत्र है।

११२. से किं तं पुव्वगए ?

अथ किं तत् पूर्वगतम् ?

११२. पूर्वगत क्या है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्वगए चउद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—	पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—	पूर्वगत चौदह प्रकार का है—
उप्पायपुव्वं, अग्गेणीयं, वीरियं, अत्थिणत्थिप्पवायं, नाणप्पवायं, सच्चप्पवायं, आयप्पवायं, कम्मप्पवायं, पच्चक्खाणं, विज्जाणुप्पवायं, अवंझं, पाणाउं, किरियाविसालं, लोगबिंदुसारं।	उत्पादपूर्वं, अग्रेणीयं, वीर्यं, अस्तिनास्तिप्रवादं, ज्ञानप्रवादं सत्यप्रवादं, आत्मप्रवादं, कर्मप्रवादं, प्रत्याख्यानं, विद्यानुप्रवादं, अवन्ध्यं, प्राणायुः, क्रियाविशालं, लोकबिन्दुसारम्।	१. उत्पादपूर्व ८. कर्मप्रवाद २. अग्रेणीय ९. प्रत्याख्यान ३. वीर्य १०. विद्यानुप्रवाद ४. अस्ति-नास्तिप्रवाद ११. अवंध्य ५. ज्ञानप्रवाद १२. प्राणायु ६. सत्यप्रवाद १३. क्रियाविशाल ७. आत्मप्रवाद १४. लोकबिन्दुसार।
११३. उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू, चत्तारि चूलियावत्थू पण्णत्ता।	उत्पादपूर्वस्य दश वस्तूनि, चत्वारि चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११३. उत्पाद पूर्व के दस वस्तु[43] और चार चूलिका-वस्तु[44] हैं।
११४. अग्गेणियस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू, बारस चूलियावत्थू पण्णत्ता।	अग्रेणीयस्य पूर्वस्य चतुर्दश वस्तूनि, द्वादश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११४. अग्रेणीय पूर्व के चौदह वस्तु और बारह चूलिका-वस्तु हैं।
११५. वीरियस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू, अट्ठ चूलियावत्थू पण्णत्ता।	वीर्यपूर्वस्य अष्ट वस्तूनि, अष्ट चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११५. वीर्य पूर्व के आठ वस्तु और आठ चूलिका-वस्तु हैं।
११६. अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थ, दस चूलियावत्थू पण्णत्ता।	अस्तिनास्तिप्रवादस्य पूर्वस्य अष्टादश वस्तूनि, दश चूलिकावस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११६. अस्ति-नास्तिप्रवाद पूर्व के अट्ठारह वस्तु और दस चूलिका-वस्तु हैं।
११७. नाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता।	ज्ञानप्रवादस्य पूर्वस्य द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११७. ज्ञानप्रवाद पूर्व के बारह वस्तु हैं।
११८. सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू पण्णत्ता।	सत्यप्रवादस्य पूर्वस्य द्वे वस्तूनी प्रज्ञप्ते।	११८. सत्यप्रवाद पूर्व के दो वस्तु हैं।
११९. आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू पण्णत्ता।	आत्मप्रवादस्य पूर्वस्य षोडश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	११९. आत्मप्रवाद पूर्व के सोलह वस्तु हैं।
१२०. कम्मप्पवायस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता।	कर्मप्रवादस्य पूर्वस्य त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	१२०. कर्मप्रवाद पूर्व के तीस वस्तु हैं।
१२१. पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू पण्णत्ता।	प्रत्याख्यानस्य पूर्वस्य विंशतिः वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	१२१. प्रत्याख्यान पूर्व के बीस वस्तु हैं।
१२२. विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पनरस वत्थू पण्णत्ता।	विद्यानुप्रवादस्य पूर्वस्य पञ्चदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	१२२. विद्यानुप्रवाद पूर्व के पन्द्रह वस्तु हैं।
१२३. अवंझस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू पण्णत्ता।	अवन्ध्यस्य पूर्वस्य द्वादश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	१२३. अवंध्य पूर्व के बारह वस्तु हैं।
१२४. पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू पण्णत्ता।	प्राणायुषः पूर्वस्य त्रयोदश वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।	१२४. प्राणायु पूर्व के तेरह वस्तु हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२५. किरियाविसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू पण्णत्ता।

क्रियाविशालस्य पूर्वस्य त्रिंशद् वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

१२५. क्रियाविशाल पूर्व के तीस वस्तु हैं।

१२६. लोयबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणुवीसं वत्थू पण्णत्ता।

लोकबिन्दुसारस्य पूर्वस्य पञ्चविंशतिः वस्तूनि प्रज्ञप्तानि।

१२६. लोकबिन्दुसार पूर्व के पच्चीस वस्तु हैं।

१. दस चोद्दस अट्ठट्ठारसेव
बारस दुवे य वत्थूणि।
सोलस तीसा वीसा,
पण्णरस अणुप्पवायंमि॥

दशचतुर्दश अष्टाष्टादशैव,
द्वादश द्वे च वस्तूनि।
षोडश त्रिंशद् विंशतिः,
पञ्चदशानुप्रवादे॥

२. बारस एक्कारसमे,
बारसमे तेरसेव वत्थूणि।
तीसा पुण तेरसमे,
चोदसमे पण्णवीसाओ॥

द्वादश एकादशे,
द्वादशे त्रयोदशैव वस्तूनि।
त्रिंशत् पुनस्त्रयोदशे,
चतुर्दशे पञ्चविंशतिः॥

३. चत्तारि दुवालस अट्ठ,
चेव दस चेव चूलवत्थूणि।
आतिल्लाण चउण्हं,
सेसाणं चूलिया णत्थि॥

चत्वारि द्वादश अष्ट,
चैव दश चैव चूलवस्तूनि।
आदिकानां चतुर्णां,
शेषाणां चूलिका नास्ति॥

इन तीन गाथाओं में चौदह पूर्वों के वस्तुओं और चूलिका-वस्तुओं का वही प्रतिपादन है जो उक्त गद्यभाग में किया गया है।

सेत्तं पुव्वगए।

तदेतत् पूर्वगतम्।

यह पूर्वगत है।

१२७. से किं तं अणुओगे?

अथ कोऽसौ अनुयोगः?

१२७. अनुयोग[४५] क्या है?

अणुओगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य।

अनुयोगः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—मूलप्रथमानुयोगश्च कण्डिकानुयोगश्च।

अनुयोग दो प्रकार का है—
मूलप्रथमानुयोग[४६]।
कंडिकानुयोग[४७]।

१२८. से किं तं मूलपढमाणुओगे?

अथ कोऽसौ मूलप्रथमानुयोगः?

१२८. मूलप्रथमानुयोग क्या है?

मूलपढमाणुओगे-एत्थ णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा, देवलोगगमणाणि, आउं, चवणाणि, जम्मणाणि य अभिसेया, रायवरसिरीओ, सीयाओ, पव्वज्जाओ, तवा य भत्ता, केवलणाणुप्पाता, तित्थपवत्तणाणि य, संघयणं, संठाणं, उच्चत्तं, आउयं, वण्णविभातो, सीसा, गणा, गणहरा य, अज्जा, पवत्तिणीओ, संघस्स चउव्विहस्स जं वावि परिमाणं, जिण-मणपज्जव-ओहिनाणी, समत्तसुयनाणिणो य, वाई,

मूलप्रथमानुयोगे—अत्र अर्हतां भगवतां पूर्वभवाः, देवलोकगमनानि, आयुः, च्यवनानि, जन्मानि च अभिषेकाः, राजवरश्रियः, शिविकाः, प्रव्रज्याः, तपांसि च भक्तानि, केवलज्ञानोत्पादाः, तीर्थप्रवर्त्तनानि च, संहननं, संस्थानं, उच्चत्वं, आयुष्कं, वर्णविभागः, शिष्याः, गणाः, गणधराश्च, आर्याः, प्रवर्त्तिन्यः, संघस्य चतुर्विधस्य यद् वापि परिमाणं, जिन-मनःपर्यव-अवधिज्ञानिनः, सम्यक्त्वश्रुतज्ञानिनश्च, वादिनः,

इसमें अरहंत भगवान् के पूर्वभव, देवलोकगमन, आयुष्य, च्यवन, जन्म, अभिषेक, राज्य की श्रेष्ठ श्री, शिविका, प्रव्रज्या, तप और भक्त, केवलज्ञानोत्पत्ति, तीर्थ-प्रवर्तन, संहनन, संस्थान, ऊंचाई, आयुष्य, वर्ण-विभाग, शिष्य, गण, गणधर, साध्वी, प्रवर्तिनी, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन (केवली), मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, सम्यक्त्व, श्रुतज्ञानी, वादी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुत्तरगई य जत्तिया, जत्तिया सिद्धा, पातोवगता य जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेयइत्ता अंतगडा मुणिवरुत्तमा तम-रओघ-विप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता।

अनुत्तरगतिश्च यावन्तः, यावन्तः सिद्धाः, प्रायोपगताश्च ये यत्र यावन्ति भक्तानि छेदयित्वा अन्तकृताः मुनिवरोत्तमाः तमो-रज-ओघ-विप्रमुक्ताः सिद्धिपथमनुत्तरं च प्राप्ताः।

जितने अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं, जितने सिद्ध हुए हैं, जिन्होंने प्रायोपगमन अनशन किया है तथा जितने भक्तों का छेदन कर जो उत्तम मुनिवर अन्तकृत हुए हैं, तम और रज से विप्रमुक्त होकर अनुत्तर सिद्धि-पथ को प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन है।

एए अण्णे य एवमादी भावा मूलपढमाणुओगे कहिया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। सेत्तं मूलपढमाणुओगे।

एते अन्ये च एवमादिभावाः मूलप्रथमानुयोगे कथिता आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते। सोऽसौ मूलप्रथमानुयोगः।

तथा इस प्रकार के अन्य भावों का कथन, आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन हुआ है। यह मूलप्रथमानुयोग है।

१२९. से किं तं गंडियाणुओगे ?

अथ कोऽसौ कण्डिकानुयोगः ?

१२९. कण्डिकानुयोग क्या है ?

गंडियाणुओगे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
कुलगरगंडियाओ, तित्थगरगंडियाओ, गणधरगंडियाओ, चक्कवट्टिगंडियाओ, दसारगंडियाओ, बलदेवगंडियाओ, वासुदेवगंडियाओ, हरिवंसगंडियाओ, भद्दबाहुगंडियाओ, तवोकम्मगंडियाओ, चित्तंतरगंडियाओ, उस्सप्पिणीगंडियाओ, ओसप्पिणीगंडियाओ, अमर-नर-तिरिय-निरय-गइ-गमण-विविह-परियट्टणाणुओगे, एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति। सेत्तं गंडियाणुओगे।

कण्डिकानुयोगः अनेकविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—
कुलकरकण्डिकाः, तीर्थंकरकण्डिकाः, गणधरकण्डिकाः, चक्रवर्त्तिकण्डिकाः, दशारकण्डिकाः, बलदेवकण्डिकाः, वासुदेवकण्डिकाः, हरिवंशकण्डिकाः, भद्रबाहुकण्डिकाः, तपःकर्मकण्डिकाः, चित्रान्तरकण्डिकाः, उत्सर्पिणीकण्डिकाः, अवसर्पिणीकण्डिकाः, अमर-नर-तिर्यग्-निरयगति-गमन-विविध-परिवर्तनानुयोगः, एवमादिकाः कण्डिकाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते। सोऽसौ कण्डिकानुयोगः।

कण्डिकानुयोग अनेक प्रकार का है, जैसे—
कुलकरकंडिका, तीर्थंकरकंडिका, गणधरकंडिका, चक्रवर्तीकंडिका, दशारकंडिका, बलदेवकंडिका, वासुदेवकंडिका, हरिवंशकंडिका, भद्रबाहुकंडिका, तपःकर्मकंडिका, चित्रांतरकंडिका[४८], उत्सर्पिणीकंडिका, अवसर्पिणीकंडिका, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक गति में गमन तथा विविध परिवर्तन का अनुयोग इत्यादि कंडिकाओं का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह कंडिकानुयोग है।[४९]

१३०. से किं तं चूलियाओ ?

अथ कास्ताः चूलिकाः ?

१३०. चूलिका क्या है ?

चूलियाओ—आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं। सेत्तं चूलियाओ।

चूलिकाः—आदिमानां चतुर्णां पूर्वाणां चूलिकाः, शेषाणि पूर्वाणि अचूलिकानि। तदेताः चूलिकाः।

प्रथम चार पूर्वों में चूलिकाएं हैं, शेष पूर्वों में चूलिकाएं नहीं हैं। यह चूलिका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३१. दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जाओ संगहणीओ।

दृष्टिवादस्य परीताः वाचनाः संख्येयानि अनुयोगद्वाराणि संख्येयाः प्रतिपत्तयः संख्येयाः वेष्टकाः संख्येयाः श्लोकाः संख्येयाः निर्युक्तयः संख्येयाः संग्रहण्यः।

१३१. दृष्टिवाद की वाचनाएं परिमित हैं, अनुयोगद्वार संख्येय हैं, प्रतिपत्तियां संख्येय हैं, वेढा संख्येय हैं, श्लोक संख्येय हैं, निर्युक्तियां संख्येय हैं और संग्रहणियां संख्येय हैं।

से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे एगे सुयखंधे चोद्दस पुव्वाइं संखेज्जा वत्थू संखेज्जा चूलवत्थू संखेज्जा पाहुडा संखेज्जा पाहुडपाहुडा संखेज्जाओ पाहुडियाओ संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति।

स अङ्गार्थतया द्वादशमङ्गं एकः श्रुतस्कन्धः चतुर्दश पूर्वाणि संख्येयानि वस्तूनि संख्येयानि चूलावस्तूनि संख्येयानि प्राभृतानि संख्येयानि प्राभृतप्राभृतानि संख्येयाः प्राभृतिकाः संख्येयाः प्राभृतप्राभृतिकाः संख्येयानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेण, संख्येयानि अक्षराणि अनन्ताः गमाः अनन्ताः पर्यवाः परीतास्त्रसाः अनन्ताः स्थावराः शाश्वताः कृताः निबद्धाः निकाचिताः जिनप्रज्ञप्ताः भावाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते।

यह अंग की दृष्टि से बारहवां अंग है। इसके एक श्रुतस्कन्ध, चौदह पूर्व, संख्येय वस्तु (दो सौ पच्चीस वस्तु), संख्येय चूलिका-वस्तु (चौंतीस चूलिका-वस्तु) संख्येय प्राभृत, संख्येय प्राभृत-प्राभृत, संख्येय प्राभृतिका, संख्येय प्राभृत-प्राभृतिका, पद-प्रमाण से संख्येय लाख पद, संख्येय अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्यव हैं।

इसमें परिमित त्रस जीवों, अनन्त स्थावर जीवों तथा शाश्वत, कृत, निबद्ध और निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भावों का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है।

से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरण-करण-परूवणया आघविज्जति पण्णविज्जति परूविज्जति दंसिज्जति निदंसिज्जति उवदंसिज्जति। सेत्तं दिट्ठिवाए। सेत्तं दुवालसंगे गणिपिडगे।

अथ एवमात्मा 'एवं ज्ञाता' 'एवं विज्ञाता' एवं चरण-करण-प्ररूपणा आख्यायते प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यते दर्श्यते निदर्श्यते उपदर्श्यते। सोऽसौ दृष्टिवादः। तदेतत् द्वादशाङ्गं गणिपिटकम्।

इसका सम्यक् अध्ययन करने वाला 'एवमात्मा'—दृष्टिवादमय, 'एवं ज्ञाता' और 'एवं विज्ञाता' हो जाता है। इस प्रकार दृष्टिवाद में चरण-करण-प्ररूपणा का आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है। यह है दृष्टिवाद। यह है द्वादशांग गणिपिटक।

१३२. इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीते काले अणंता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अतीते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं अनुपर्यवर्तिषत।

१३२. अतीत काल में अनन्त जीवों ने इस द्वादशांग गणिपिटिक की आज्ञा का पालन न करने के कारण विराधना कर चातुरंत संसार के कांतार में पर्यटन किया था।

इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्ने काले परीताः जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं अनुपरिवर्तन्ते।

वर्तमान काल में परिमित जीव इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा का पालन न करने के कारण विराधना कर चातुरंत संसार के कांतार में पर्यटन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अनागते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया विराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं अनुपरिवर्तिष्यन्ते।

भविष्य काल में अनन्त जीव इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा का पालन न करने के कारण विराधना कर चातुरंत संसार के कांतार में पर्यटन करेंगे।

इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीते काले अणंता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं विइवइंसु।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अतीते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया आराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यत्यव्राजिषुः।

अतीत काल में अनन्त जीवों ने इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा का पालन करने के कारण आराधना कर चातुरंत संसार के कांतार को पार किया था।

इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं विइवयंति।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं प्रत्युत्पन्ने काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया आराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजन्ति।

वर्तमान काल में परिमित जीव इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा का पालन करने के कारण आराधना कर चातुरंत संसार के कांतार को पार करते हैं।

इच्चेतं दुवालसंगं गणिपिडगं अणागए काले अणंता जीवा आणाए आराहेत्ता चाउरंतं संसारकंतारं विइवइस्संति।

इत्येतद् द्वादशाङ्गं गणिपिटकं अनागते काले अनन्ताः जीवाः आज्ञया आराध्य चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजिष्यन्ति।

भविष्य काल में अनन्त जीव इस द्वादशांग गणिपिटक की आज्ञा का पालन करने के कारण आराधना कर चातुरंत संसार के कांतार को पार करेंगे।

१३३. **दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयाइ णासी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सति य। धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे।**

द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिद् नासीत्, न कदाचिद् नास्ति, न कदाचिद् न भविष्यति। अभूत् च, भवति च, भविष्यति च। ध्रुवं निचितं शाश्वतं अक्षयं अव्ययं अवस्थितं नित्यम्।

१३३. यह द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं हैं, कभी नहीं होगा—ऐसा भी नहीं है। वह था, है और रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

से जहाणामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्संति। भुविं च, भवति य, भविस्संति य। धुवा णितिया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा।

तद् यथानामकं पञ्चास्तिकायाः न कदाचिद् न आसन्, न कदाचिद् न सन्ति, न कदाचिद् न भविष्यन्ति। अभूवंश्च, भवन्ति च, भविष्यन्ति च। ध्रुवाः निचिताः शाश्वताः अक्षयाः अव्ययाः अवस्थिताः नित्याः।

जैसे पांच अस्तिकाय कभी नहीं थे—ऐसा नहीं है, कभी नहीं हैं—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होंगे—ऐसा भी नहीं है। वे थे, हैं और होंगे। वे ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य हैं।

एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसी, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सइ। भुविं च, भवति य, भविस्सइ य।

एवमेव द्वादशाङ्गं गणिपिटकं न कदाचिद् न आसीत्, न कदाचिद् नास्ति, न कदाचिद् न भविष्यति। अभूत् च, भवति च, भविष्यति च।

इसी प्रकार द्वादशांग गणिपिटक कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा भी नहीं है। वह था, है और होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे ।

ध्रुवं निचितं शाश्वतं अक्षयं अव्ययं अवस्थितं नित्यम् ।

वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

१३४. एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा अणंता अभावा अणंता हेऊ अणंता अहेऊ अणंता कारणा अणंता अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंता असिद्धा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति ।

अत्र द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावाः अनन्ता अभावाः अनन्ताः हेतवः अनन्ताः अहेतवः अनन्तानि कारणानि अनन्तानि अकारणानि अनन्ताः जीवाः अनन्ताः अजीवाः अनन्ताः भवसिद्धिकाः अनन्ताः अभवसिद्धिकाः अनन्ताः सिद्धाः अनन्ताः असिद्धाः आख्यायन्ते प्रज्ञाप्यन्ते प्ररूप्यन्ते दर्श्यन्ते निदर्श्यन्ते उपदर्श्यन्ते ।

१३४. इस द्वादशांग गणिपिटक में अनन्त भाव, अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध, अनन्त असिद्ध–इनका आख्यान, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है ।

रासि-पदं

राशि-पदम्

राशि-पद

१३५. दुवे रासी पण्णत्ता, तं जहा—जीवरासी अजीवरासी य ।

द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ, तद्यथा—जीवराशिः अजीवराशिश्च ।

१३५. राशि दो हैं, जैसे—जीव राशि और अजीव राशि ।

१३६. अजीवरासी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—रूविअजीवरासी अरूविअजीवरासी य ।

अजीवराशिः द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—रूप्यजीवराशिः अरूप्यजीवराशिश्च ।

१३६. अजीव राशि दो प्रकार की है, जैसे—रूपीअजीवराशि और अरूपीअजीवराशि ।

१३७. से किं तं अरूविअजीवरासी ?

अथ कोऽसौ अरूप्यजीवराशिः ?

१३७. अरूपी अजीवराशि क्या है ?

अरूविअजीवरासी दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. धम्मत्थिकाए,
२. धम्मत्थिकायस्स देसे,
३. धम्मत्थिकायस्स पदेसा,
४. अधम्मत्थिकाए,
५. अधम्मत्थिकायस्स देसे,
६. अधम्मत्थिकायस्स पदेसा,
७. आगासत्थिकाए,
८. आगासत्थिकायस्स देसे,
९. आगासत्थिकायस्स पदेसा,
१०. अद्धासमए ।

अरूप्यजीवराशिः दशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—

धर्मास्तिकायः,
धर्मास्तिकायस्य देशः,
धर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः,
अधर्मास्तिकायः,
अधर्मास्तिकायस्य देशः,
अधर्मास्तिकायस्य प्रदेशाः,
आकाशास्तिकायः,
आकाशास्तिकायस्य देशः,
आकाशास्तिकायस्य प्रदेशाः,
अध्वा समयः ।

अरूपी अजीवराशि दस प्रकार की है, जैसे—

१. धर्मास्तिकाय,
२. धर्मास्तिकाय-देश,
३. धर्मास्तिकाय-प्रदेश,
४. अधर्मास्तिकाय,
५. अधर्मास्तिकाय-देश,
६. अधर्मास्तिकाय-प्रदेश,
७. आकाशास्तिकाय,
८. आकाशास्तिकाय-देश,
९. आकाशास्तिकाय-प्रदेश,
१०. अध्वा समय ।

१३८. जाव—

यावत्—

१३८. यावत्[10]—

१३९. से किं तं अणुत्तरोववाइआ ? अणुत्तरोववाइआ पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा—विजय-वेजयंत-

अथ के ते अनुत्तरोपपातिकाः ? अनुत्तरोपपातिकाः पञ्चविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—विजय - वैजयन्त - जयन्त-

१३९. अनुत्तरोपपातिक देवों के कितने प्रकार हैं ? अनुत्तरोपपातिक देवों के पांच प्रकार हैं, जैसे—विजय, वैजयन्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयंत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धिया। सेत्तं अणुत्तरोववाइआ। सेत्तं पंचिंदियसंसारसमावण्ण-जीवरासी।

अपराजित-सर्वार्थसिद्धिकाः। तदेते अनुत्तरोपपातिकाः। सोऽसौ पञ्चेन्द्रियसंसारसमापन्नजीवराशिः।

जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धिक। ये अनुत्तरोपपातिक देव हैं। यह पंचेन्द्रिय-संसार-समापन्न-जीवराशि है।

पज्जत्तापज्जत्त-पदं

पर्याप्त-अपर्याप्त-पदम्

पर्याप्त-अपर्याप्त-पद

१४०. दुविहा णेरइया पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्ता य अपज्जत्ता य। एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियत्ति।

द्विविधाः नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्ताश्च अपर्याप्ताश्च। एवं दण्डकः भणितव्यः यावत् वैमानिक इति।

१४०. नैरयिक दो प्रकार के हैं, जैसे—पर्याप्त और अपर्याप्त। इसी प्रकार शेष वैमानिक तक के दंडकों के लिए यही वक्तव्यता है।[51]

आवास-पदं

अवास-पदम्

आवास-पद

१४१. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए केवइयं ओगाहेत्ता केवइया णिरया पण्णत्ता ?

अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां कियत् अवगाह्य कियन्तो निरयाः प्रज्ञप्ताः।

१४१. इस रत्नप्रभा पृथ्वी में कितने नरकावास हैं और कितने क्षेत्र का अवगाहन करने पर वे प्राप्त होते हैं ?

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसय-सहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं तीसं णिरयावाससयसहस्सा भवंतीति मक्खायं। ते णं णरया अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्प-संठाण-संठिया णिच्चंधयार-तमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा मेद-वसा-पूय-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणु-लेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणि-वण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णिरया असुभाओ णरएसु वेयणाओ।

गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायां उपरि एकं योजनसहस्रं अवगाह्य अधश्चैकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा मध्ये अष्टसप्ततौ योजनशतसहस्रे, अत्र रत्नप्रभायाः पृथिव्याः नैरयिकाणां त्रिंशद् निरयावासशतसहस्राणि भवन्तीति व्याख्यातम्। ते नरका अन्तर्वृत्ताः बहिश्चतुरस्राः अधःक्षुरप्र-संस्थान संस्थिताः नित्यान्धकारतमसाः व्यपगतग्रह - चन्द्र - सूर - नक्षत्र-ज्यौतिषपथाः मेद-वसा-पूय-रुधिर-मांस-चिक्खिल्ल-लिप्तानुलेपनतलाः अशुचयः विस्राः परमदुरभिगन्धाः कापोतअग्नि-वर्णाभाः कर्कशस्पर्शाः दुरधिसह्याः अशुभाः निरयाः अशुभाः नरकेषु वेदनाः।

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का बाहल्य एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है। उसमें ऊपर से एक हजार योजन का अवगाहन कर तथा नीचे से एक हजार योजन का वर्जन कर, मध्य के एक लाख अठत्तर हजार योजन प्रमाण रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिकों के तीस लाख नरकावास हैं, ऐसा मैंने कहा है। वे नरकावास अन्तर् में वृत्त, बाहिर में चतुष्कोण और नीचे खुरपे की आकृति वाले हैं। वे निरन्तर अन्धकार से तमोमय, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और ज्योतिष् की प्रभा से शून्य, मेद-चर्बी-रस्सी, लोही और मांस के कीचड़ से पंकिल तल वाले, अशुचि, अपक्वगंध से युक्त, उत्कृष्ट दुर्गन्ध वाले, कापोत (कृष्ण) अग्निवर्ण की आभा वाले, कर्कशस्पर्श से युक्त और असह्य वेदना वाले हैं। वे नरकावास अशुभ हैं और उनमें अशुभ वेदनाएं हैं।

१४२. एवं सत्तवि भाणियव्वाओ जं जासु जुज्जइ—

एवं सप्तापि भणितव्याः, यत् यासु युज्यते—

१४२. इसी प्रकार सातों नरकों के विषय में जहां जो घटित हो वैसा कहना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगहणी गाहा

१. आसीयं बत्तीसं,
अट्ठावीसं तहेव वीसं च।
अट्ठारस सोलसगं,
अट्ठुत्तरमेव बाहल्लं॥

संग्रहणी गाथा

आशीतं द्वात्रिंशद्,
अष्टाविंशतिः तथैव विंशतिश्च।
अष्टादश षोडशकं,
अष्टोत्तरमेव बाहल्यम्॥

१. नरकवासों का बाहल्य (मोटाई)—पहली पृथ्वी का एक लाख अस्सी हजार योजन, दूसरी पृथ्वी का एक लाख बत्तीस हजार योजन, तीसरी पृथ्वी का एक लाख अट्ठाईस हजार योजन, चौथी पृथ्वी का एक लाख बीस हजार योजन, पांचवीं पृथ्वी का एक लाख अठारह हजार योजन, छट्ठी पृथ्वी का एक लाख सोलह हजार योजन और सातवीं पृथ्वी का एक लाख आठ हजार योजन।

२. तीसा य पण्णवीसा,
पण्णरस दसेव सयसहस्साइं।
तिण्णेगं पंचूणं,
पंचेव अणुत्तरा नरगा॥
(दोच्चाए णं पुढवीए, तच्चाए णं पुढवीए, चउत्थीए पुढवीए, पंचमीए पुढवीए, छट्ठीए पुढवीए, सत्तमीए पुढवीए—गाहाहिं भाणियव्वा।)

त्रिंशद् च पञ्चविंशतिः,
पञ्चदश दशैव शतसहस्राणि।
त्रीण्येकं पञ्चोनं,
पञ्चैव अनुत्तरा नरकाः॥
(द्वितीयायां पृथिव्यां, तृतीयायां पृथिव्यां, चतुर्थ्यां पृथिव्यां, पञ्चम्यां पृथिव्यां, षष्ठ्यां पृथिव्यां, सप्तम्यां पृथिव्यां—गाथाभिः भणितव्याः।)

२. नरकावासों की संख्या—
पहली पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी पृथ्वी में पच्चीस लाख, तीसरी पृथ्वी में पन्द्रह लाख, चौथी पृथ्वी में दस लाख, पांचवीं पृथ्वी में तीन लाख, छट्ठी पृथ्वी में निन्यानवे हजार नौ सौ पंचानवे और सातवीं पृथ्वी में पांच अनुत्तर नरकावास।

१४३. सत्तमाए णं पुढवीए केवइयं ओगाहेत्ता केवइया णिरया पण्णत्ता?

सप्तम्यां पृथिव्यां कियत् अवगाह्य कियन्तो निरयाः प्रज्ञप्ताः?

१४३. सातवीं पृथ्वी में कितने नरकावास हैं और कितने क्षेत्र का अवगाहन करने पर प्राप्त होते हैं?

गोयमा! सत्तमाए पुढवीए अट्ठुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जेत्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु, एत्थ णं सत्तमाए पुढवीए नेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तं जहा—काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पइट्ठाणे नामं पंचमए। ते णं नरया वट्टे य तंसा य अहे खुरप्प-संठाण-संठिया णिच्चंधयारतमसा ववगयगहचंद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा मेद-वसा-

गौतम! सप्तम्यां पृथिव्यां अष्टोत्तर-योजनशतसहस्रबाहल्यायां उपरि अर्द्धत्रिपञ्चाशत् योजनसहस्राणि अवगाह्य अधोऽपि अर्द्धत्रिपञ्चाशत् योजनसहस्राणि वर्जयित्वा मध्ये त्रिषु योजनसहस्रेषु, अत्र सप्तम्यां पृथिव्यां नैरयिकाणां पञ्च अनुत्तराः महामहान्तः महानिरयाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कालः महाकालः रौरवं महारौरवं अप्रतिष्ठानं नाम पञ्चमकम्। ते नरकाः वृत्ताश्च त्र्यस्राश्च अधःक्षुरप्र-संस्थान-संस्थिताः नित्यान्धकारतमसाः व्यपगतग्रह-चंद्र-सूर-नक्षत्र-ज्यौतिषपथाः मेद-वसा-पूय-

गौतम! सातवीं पृथ्वी का बाहल्य एक लाख आठ हजार योजन प्रमाण है। उसमें ऊपर से साढ़े बावन हजार योजन अवगाहित कर तथा नीचे से साढ़े बावन हजार योजन वर्जित कर तथा मध्य के तीन हजार योजन में सातवीं पृथ्वी के नैरयिकों के अनुत्तर तथा अत्यन्त विशाल पांच महानरकावास हैं, जैसे—काल, महाकाल, रौरव, महारौरव और अप्रतिष्ठान। उनमें रौरव नरकावास वृत्त और शेष चार त्रिकोण हैं। वे नीचे खुरपे की आकृति वाले हैं। वे निरन्तर अन्धकार से तमोमय, ग्रह-चन्द्र-सूर्य-नक्षत्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूय-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणु-लेवणतला असुई वीसा परमदुब्भि-गंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभाओ नरएसु वेयणाओ।

रुधिर-मांस - चिक्खिल्ल-लिप्तानुलेपन-तलाः अशुचयः विस्राः परमदुरभिगन्धाः कापोतअग्निवर्णाभाः कर्कशस्पर्शाः दुरधिसह्याः अशुभाः नरकाः अशुभाः नरकेषु वेदनाः।

ज्योतिष् की प्रभा से शून्य, मेद-चर्बी, रस्सी-लोही-मांस के कीचड़ से पंकिल तल वाले, अशुचि, अपक्वगंध से युक्त, उत्कृष्ट दुर्गन्ध वाले, कापोत (कृष्ण) अग्निवर्ण की आभा वाले, कर्कशस्पर्श से युक्त और असह्य वेदना वाले हैं। वे नरकावास अशुभ हैं और उनमें अशुभ वेदनाएं हैं।

१४४. **केवइया णं भंते! असुरकुमारा-वासा पण्णत्ता?**

कियन्तः भदन्त! असुरकुमारावासाः प्रज्ञप्ताः?

१४४. भंते! असुरकुमारों के आवास कितने हैं?

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसय-सहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता। ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पोक्खर-कण्णिया-संठाण - संठिया उक्कि-ण्णंतर-विपुल-गंभीर-खात-फलिया अट्टालय-चरिय-दारगोउर-कवाड-तोरण-पडिदुवार - देसभागा जंत-मुसल-मुसुंढि-सतग्घि- परिवारिया अउज्झा अडयाल - कोट्ठय-रइया अडयाल - कय - वणमाला लाउल्लोइय - महिया गोसीस-सरसरत्तचंदण- दद्दर - दिण्णपंचं-गुलितला कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत - धूव - मघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामा सुगंधि-वरगंध-गंधिया गंधवट्टिभूया अच्छा सण्हा

गौतम! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां अशीत्युत्तरयोजनशतसहस्रबाहल्यायां उपरि एकं योजनसहस्रं अवगाह्य अधः चैकं योजनसहस्रं वर्जयित्वा मध्ये अष्टसप्ततौ योजनशतसहस्रे, अत्र रत्नप्रभायां पृथिव्यां चतुःषष्टिः असुरकुमारावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि। तानि भवनानि बहिर्वृत्तानि अन्तश्चतुरस्राणि अधःपुष्करकर्णिका-संस्थान-संस्थितानि उत्कीर्णान्तर-विपुल-गंभीर-खात-परिखाणि अट्टालक-चरिक - द्वारगोपुर - कपाट- तोरण-प्रतिद्वार-देशभागानि यन्त्र-मुशल-मुसुण्ढि - शतघ्नी - परिवारितानि अयोध्यानि अष्टचत्वारिंशद्-कोष्ठक-रचितानि अष्टचत्वारिंशत्कृत-वनमालानि 'लाउल्लोइय' (उपलेपन संमार्जन) महितानि गोशीर्ष-सरसरक्त-चन्दन - दर्दर - दत्तपञ्चागुलितलानि कालागुरु - प्रवर - कुन्दुरुष्क - तुरुष्क-दह्यमान-धूप - मघमघायमान-गन्धोद्धुराभिरामाणि सुगन्धि-वरगन्ध-गन्धिकानि गन्धवर्तिभूतानि अच्छानि

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का बाहल्य एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है। उसमें ऊपर से एक हजार योजन का अवगाहन कर तथा नीचे से एक हजार योजन का वर्जन कर मध्य के एक लाख अठत्तर हजार योजन रत्नप्रभा पृथ्वी में असुरकुमारों के चौसठ लाख आवास हैं। वे भवन बाहर से वृत्त, भीतर से चतुष्कोण, नीचे से पुष्करकर्णिका की आकृति वाले हैं। वे भूमि को खोद कर बनाई हुई विपुल और गम्भीर खाई और परिखा से युक्त हैं। उनके देश-भाग में अट्टालक, चरिका, गोपुर-द्वार, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार हैं। वे यंत्र, मुशल, मुसुंढी और शतघ्नी से परि-पाटित हैं। वे दूसरों के द्वारा अयोध्य (अपराजित) हैं। वे अड़तालीस कोठों से रचित हैं। वे अड़तालीस प्रकार की वनमालाओं (पत्तों की मालाओं) से युक्त हैं। उनका भूमिभाग गोबर से लिपा हुआ और भीतें खड़िया से पुती हुई हैं। उन भीतों पर गोशीर्ष और सरस-रक्तचन्दन के पांच अंगुलीयुक्त हस्ततल के सघन छापे लगे हुए हैं। वे कालागुरु, प्रवर कुन्दुरुष्क (धूप विशेष) तथा तुरुष्क (दशांग आदि धूप विशेष) के जलने से निकले हुए धुंए के महकते गन्ध से उत्कट रमणीय हैं। वे सुगन्धी चूर्णों से सुगन्धित गन्धगुटिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

श्लक्ष्णानि लष्टानि घृष्टानि मृष्टानि नीरजांसि निर्मलानि वितिमिराणि विशुद्धानि सप्रभाणि समरोचीनि सोद्योतानि प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि।

जैसे लग रहे हैं। वे स्वच्छ, चिकने, घुटे हुए, घिसे हुए, प्रमार्जित, नीरज, निर्मल, अन्धकार रहित, विशुद्ध, प्रभायुक्त, किरणों से युक्त, उद्योत वाले, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (कमनीय) और प्रतिरूप—प्रत्येक द्रष्टा के लिए स्मरणीय हैं।

१४५. एवं जस्स जं कमती तं तस्स, जं जं गाहाहिं भणियं तह चेव वण्णओ—

एवं यस्य यत् क्रमते तत्तस्य, यत् यत् गाथाभिः भणितं तथा चैव वर्णकः—

१४५. इसी प्रकार सभी भवनपति आवासों के लिए जहां जो घटित हो, उनका संक्षेप गाथाओं में है और उनका वर्णन असुरकुमारावास की भांति है।

संगहणी गाहा

संग्रहणी गाथा

१. चउसट्ठी असुराणं,
चउरासीइं च होइ नागाणं।
बावत्तरिं सुवन्नाण,
वायुकुमाराण छण्णउति॥

चतुःषष्ठिः असुराणां,
चतुरशीतिश्च भवति नागानाम्॥
द्विसप्ततिः सुपर्णानां,
वायुकुमाराणां षण्णवतिः॥

१. असुरकुमारों के चौसठ लाख, नागकुमारों के चौरासी लाख, सुपर्णकुमारों के बहत्तर लाख और वायुकुमार के छानवे लाख आवास हैं।

२. दीवदिसाउदहीणं,
विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं।
छण्हंपि जुवलयाणं,
छावत्तरिमो सयसहस्सा॥

दीपदिशाउदधीनां,
विद्युत्कुमारेन्द्रस्तनितअग्नीनाम्।
षण्णामपि युगलकानां,
षट्सप्ततिः शतसहस्राणि॥

२. दीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार—इन छहों युगलों (दक्षिण और उत्तर दिशावासी भवनपति देवों) के छिहत्तर-छिहत्तर लाख आवास हैं।

१४६. केवइया णं भंते! पुढवीकाइयावासा पण्णत्ता?

कियन्तः भदन्त! पृथ्वीकायिकावासाः प्रज्ञप्ताः?

१४६. भंते! पृथ्वीकाय के आवास कितने हैं?

गोयमा! असंखेज्जा पुढवीकाइयावासा पण्णत्ता।

गौतम! असंख्येयाः पृथ्वीकायिकावासाः प्रज्ञप्ताः।

गौतम! पृथ्वीकाय के आवास असंख्य हैं।

१४७. एवं जाव मणुस्सत्ति।

एवं यावत् मनुष्य इति।

१४७. इसी प्रकार शेष चार स्थावरकाय, विकलेन्द्रिय, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य के आवास असंख्य-असंख्य हैं।

१४८. केवइया णं भंते! वाणमंतरावासा पण्णत्ता?

कियन्तः भदन्त! वानमन्तरावासाः प्रज्ञप्ताः?

१४८. भंते! वानमंतर देवों के आवास कितने हैं?

गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं

गौतम! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः रत्नमयस्य काण्डस्य योजनसहस्रबाहल्यस्य उपरि एकं योजनशतं अवगाह्य अधः चैकं

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी का रत्नमय काण्ड एक हजार योजन मोटा है। उसके ऊपर से एक सौ योजन का अवगाहन कर तथा नीचे से सौ योजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

योजनशतं वर्जयित्वा मध्ये अष्टसु योजनशतेषु, अत्र वानमन्तराणां देवानां तिर्यग् असंख्येयानि भौमेयनगरावास-शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि।

वर्जित कर मध्य के शेष आठ सौ योजन में वानमंतर देवों के असंख्य लाख तिरछे भौमेय नगरावास हैं।

ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, एवं जहा भवणवासीणं तहेव नेयव्वा, नवरं—पडागमालाउला सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तानि भौमेयानि नगराणि बहिर्वृत्तानि अन्तश्चतुरस्राणि, एवं यथा भवनवासिनां तथैव नेतव्यानि, नवरं—पताकामालाकुलानि सुरम्याणि प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि।

वे भौमेय नगर बाहर से वृत्त, भीतर से चतुष्कोण और नीचे पुष्कर-कर्णिका की आकृति वाले हैं। वे भूमि को खोद कर (सूत्र १४४ की भांति) सुगन्धित गन्धगुटिका जैसे लग रहे हैं। वे पताका की माला से आकुल, सुरम्य, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

१४६. केवइया णं भंते! जोइसियाणं विमाणावासा पण्णत्ता?

कियन्तः भदन्त! ज्योतिष्काणां विमानावासाः प्रज्ञप्ताः?

१४६. भन्ते! ज्यौतिष देवों के विमानावास कितने हैं?

गोयमा! इमोसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तनउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता, एत्थ णं दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियं जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसियविमाणावासा पण्णत्ता। ते णं जोइसियविमाणावासा अब्भुग्गयमूसियपहसिया विविहमणिरयण-भत्तिचित्ता वाउद्धुय-विजय-वेजयंती - पडाग - छत्तातिछत्त-कलिया, तुंगा गगणतलमणुलिहंत-सिहरा जालंतररयण-पंजरुम्मिलितव्व मणि-कणग-थूभियागा विगसित-सयपत्त-पुंडरीय-तिलय - रयणड्ढचंद-चित्ता अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्ज-बालुगा-पत्थडा सुहफासा

गौतम! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागाद् सप्तनवतिं योजनशतानि ऊर्ध्वं उत्पत्य, अत्र दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये तिर्यग् ज्योतिर्विषये ज्योतिष्काणां देवानां असंख्येयाः ज्योतिष्कविमानावासाः प्रज्ञप्ताः। ते ज्योतिष्कविमानावासाः अभ्युद्गतोत्सृतप्रभासिताः विविध-मणिरत्न-भक्तिचित्राः, वातोद्धूत-विजय-वैजयन्ती-पताका- छत्रातिच्छत्र-कलिताः तुङ्गाः, गगनतलानुलिहन्-शिखराः जालान्तररत्नपञ्जरोन्मीलिता इव मणि-कनक-स्तूपिकाकाः विकसित-शतपत्र-पुण्डरीक - तिलक-रत्नार्द्धचन्द्र-चित्राः अन्तर् बहिश्च श्लक्ष्णाः तपनीयवालुका-प्रस्तटाः सुखस्पर्शाः

गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमिभाग से सात सौ नब्बे योजन ऊपर जाने पर वहां एक सौ दस योजन के बाहल्य में तिरछे ज्यौतिषिक क्षेत्र में ज्यौतिष देवों के असंख्य ज्यौतिषिक विमानावास हैं।

वे चारों दिशाओं में प्रसृत प्रबल प्रभा से शुक्ल, विविध प्रकार के मणि और रत्नों की भक्तियों (धाराओं) से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले, वात-प्रकम्पित विजय-वैजयन्ती पताका तथा छत्रातिछत्रों से युक्त और अत्यन्त ऊंचे हैं। उनके शिखर गगनतल को छू रहे हैं। उनकी खिड़कियों के अन्तराल में, पिंजरे से निकाल कर रखी हुई वस्तु की भांति, अनावृत रत्न रखे हुए हैं। उनके मणि और स्वर्ण की स्तूपिकाएं हैं। उनके द्वार विकसित शतपत्र और पुंडरीक कमलों से, उनकी भित्तियां तिलक से और द्वार के अग्र-प्रदेश रत्नमय अर्द्धचन्द्रों से चित्रित हैं। वे भीतर और बाहर से कोमल, स्वर्णमय बालुकाओं के प्रस्तट वाले, सुख-स्पर्श वाले, सुन्दर रूप वाले, मन को प्रसन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

सश्रोकरूपाः प्रासादीयाः दर्शनीयाः अभिरूपाः प्रतिरूपाः ।

करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं ।

१५०. केवइया णं भंते! वेमाणियावासा पण्णत्ता ?

कियन्तः भदन्त ! वैमानिकावासा प्रज्ञप्ताः ?

१५०. भंते ! वैमानिक देवों के आवास कितने हैं ?

गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गहगण - नक्खत्त - तारारूवाणं वीइवइत्ता बहूणि जोयणाणि बहूणि जोयणसयाणि बहूणि जोयणसहस्साणि बहूणि जोयणसयसहस्साणि बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता, एत्थ णं वेमाणियाणं देवाणं सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-सुक्क-सहस्सार-आणय - पाणय - आरणच्चुएसु गेवेज्जमणुत्तरेसु य चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खाया।

गौतम ! अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागाद् ऊर्ध्वं चन्द्रमः-सूर्य-ग्रहगण-नक्षत्र- तारारूपाणि व्यतिव्रज्य बहूनि योजनानि बहूनि योजनशतानि बहूनि योजनसहस्राणि बहूनि योजनशतसहस्राणि बहूनि योजनकोटीः बहूनि योजनकोटिकोटीः असंख्येयाः योजनकोटिकोटीः ऊर्ध्वं दूरं व्यतिव्रज्य, अत्र वैमानिकानां देवानां सौधर्मेशान-सनत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म - लान्तक - शुक्र-सहस्रार- आनत-प्राणत-आरण-अच्युतेषु ग्रैवेयानुत्तरेषु च चतुरशीतिः विमानावासशतसहस्राणि सप्तनवतिः सहस्राणि त्रयोविंशतिः च विमानानि भवन्तीत्याख्यातानि ।

गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूमिभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, और तारारूपों (ताराओं) का उल्लंघन कर अनेक योजन, अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक कोटि योजन, अनेक कोटा-कोटि योजन ऊपर दूर जाने पर वैमानिक देवों के सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक के तथा नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमानों के ८४९७०२३ विमान हैं ।

ते णं विमाणा अच्चिमालिप्पभा भासरासिवण्णाभा अरया नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

तानि विमानानि अर्चिर्मालिप्रभाणि भासराशिवर्णाभानि अरजांसि नीरजांसि निर्मलानि वितिमिराणि विशुद्धानि सर्वरत्नमयानि अच्छानि श्लक्ष्णानि लष्टानि घृष्टानि मृष्टानि निष्पङ्कानि निष्कङ्कटच्छायानि सप्रभाणि समरीचीनि सोद्योतानि प्रासादीयानि दर्शनीयानि अभिरूपाणि प्रतिरूपाणि ।

वे सूर्य जैसी प्रभा वाले, प्रकाशपुंज[११] के वर्ण जैसी आभा वाले, अरज, नीरज, निर्मल, अन्धकार रहित, विशुद्ध, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने, घुटे हुये, घिसे हुए, प्रमार्जित, निष्पङ्क, निरावरण दीप्ति वाले, प्रभायुक्त, किरणों से युक्त, उद्योत वाले, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं ।

१५१. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता ?

सौधर्मे भदन्त ! कल्पे कियन्तः विमानावासाः प्रज्ञप्ताः ?

१५१. भंते ! सौधर्म देवलोक में कितने विमानावास हैं ?

गोयमा ! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता।

गौतम ! द्वात्रिंशद् विमानावासशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि ।

गौतम ! इसमें बत्तीस लाख विमानावास हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५२. एवं ईसाणाइसु—अट्ठावीसं बारस अट्ठ चत्तारि—एयाइं सयसहस्साइं, पण्णासं चत्तालीसं छ—एयाइं सहस्साइं, आणए पाणए चत्तारि, आरणच्चुए तिण्णि—एयाणि सयाणि। एवं गाहाहिं भाणियव्वं—

संगहणी गाहा

१. बत्तीसट्ठावीसा,
बारस अट्ठ चउरो सयसहस्सा।
पण्णा चत्तालीसा,
छच्चसहस्सा सहस्सारे॥

२. आणयपाणयकप्पे,
चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं,
चउसुवि एएसु कप्पेसु॥

३. एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु,
सत्तुत्तरं च मज्झिमए।
सयमेगं उवरिमए,
पंचेव अणुत्तरविमाणा॥

एवं ईशानादिषु—अष्टाविंशतिः द्वादश अष्ट चत्वारि—एतानि शतसहस्राणि पञ्चाशत् चत्वारिंशद् षट्—एतानि सहस्राणि, आनते प्राणते चत्वारि, आरणाच्युतयोः त्रीणि—एतानि शतानि। एवं गाथाभिः भणितव्यम्—

संग्रहणी गाथा

१. द्वात्रिंशत् अष्टविंशतिः,
द्वादश अष्ट चतुः शतसहस्रं।
पञ्चाशत् चत्वारिंशत्,
षट् च सहस्रं सहस्रारे॥

२. आनतप्राणतकल्पे,
चत्वारि शतानि आरणाच्युतयोः त्रीणि।
सप्त विमानशतानि,
चतुर्ष्वपि एतेषु कल्पेषु॥

३. एकादशोत्तरं अधस्तनेषु,
सप्तोत्तरं च मध्यमेषु।
शतमेकं उपरितनेषु,
पञ्चैव अनुत्तरविमानानि॥

१५२. इसी प्रकार—ईशान देवलोक में अट्ठाईस लाख, सनत्कुमार देवलोक में बारह लाख, माहेन्द्र देवलोक में आठ लाख, ब्रह्म देवलोक में चार लाख, लान्तक देवलोक में पचास हजार, शुक्र देवलोक में चालीस हजार, सहस्रार देवलोक में छह हजार, आनत और प्राणत देवलोकों में चार सौ, आरण और अच्युत देवलोकों में तीन सौ—विमानावास हैं।

१,२. कल्प विमानावासों की संख्या का पुनर्निदेश दो संग्रहणी गाथाओं में इस प्रकार है—

१. बत्तीस लाख	६. पचास हजार
२ अट्ठाईस लाख	७. चालीस हजार
३. बारह लाख	८. छह हजार
४. आठ लाख	९. १०. चार सौ
५. चार लाख	११. १२. तीन सौ।

इन चार (९-१२) देवलोकों में सात सौ विमानावास हैं।

३. नौ ग्रैवेयक देवलोकों के विमानावासों की संख्या इस प्रकार है—अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में—१११ विमानावास, मध्यम तीन ग्रैवेयकों में—१०७ विमानावास, उपरीतन तीन ग्रैवेयकों में—१०० विमानावास। अनुत्तर देवलोक के पांच विमानावास हैं।

ठिइ-पदं

१५३. नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

१५४. अपज्जत्तगाणं भंते! नेरइयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं।

स्थिति-पदम्

नैरयिकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?

गौतम! जघन्येन दशवर्षसहस्राणि उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता।

अपर्याप्तकानां भदन्त! नैरयिकाणां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?

गौतम! जघन्येन अन्तर्मुहूर्त्तं उत्कर्षेणापि अन्तर्मुहूर्त्तम्।

स्थिति-पद

१५३. भंते! नैरयिकों की स्थिति कितने काल की है?

गौतम! उनकी जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम की।

१५४. भंते! अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की है?

गौतम! उनकी स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५५. पज्जत्तगाणं भंते ! नेरइयाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

पर्याप्तकानां भदन्त ! नैरयिकाणां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?

गौतम ! जघन्येन दशवर्षसहस्राणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि, उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि अन्तर्मुहूर्त्तोनानि ।

१५५. भंते ! पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति कितने काल की है ?

गौतम ! उनकी स्थिति जघन्यतः दस हजार वर्ष में अन्तर्मुहूर्त्त न्यून और उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम में अन्तर्मुहूर्त्त न्यून है।

१५६. इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए, एवं जाव विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियाणं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं बत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः, एवं यावत् विजय-वेजयन्त-जयन्त-अपराजितानां भदन्त ! देवानां कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?

गौतम ! जघन्येन द्वात्रिंशत् सागरोपमाणि उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि ।

१५६. रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों (नरकों) की यावत् भंते ! विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित देवों की स्थिति कितने काल की है ?

गौतम ! उनकी स्थिति जघन्यतः बत्तीस सागरोपम[१३] और उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम की है।

१५७. सव्वट्टे अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सर्वार्थे अजघन्यानुत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ।

१५७. सर्वार्थसिद्ध की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः तैंतीस सागरोपम की है।

सरीर-पदं

शरीर-पदम्

शरीर-पद

१५८. कति णं भंते ! सरीरा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंच सरीरा पण्णत्ता, तं जहा—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए।

कति भदन्त ! शरीराणि प्रज्ञप्तानि ?

गौतम ! पञ्च शरीराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—औदारिकं वैक्रियं आहारकं तैजसं कर्मकम् ।

१५८. भंते ! शरीर कितने हैं ?

गौतम ! शरीर पांच हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्मक (कार्मण)।

१५९. ओरालियसरीरे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियओरालियसरीरे जाव गब्भवक्कंतियमणुस्स-पंचिंदियओरालियसरीरे य।

औदारिकशरीरं भदन्त ! कतिविधं प्रज्ञप्तम् ?

गौतम ! पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—एकेन्द्रियऔदारिकशरीरं यावत् गर्भावक्रान्तिकमनुष्यपञ्चेन्द्रियऔदारिक - शरीरं च ।

१५९. भंते ! औदारिक शरीर कितने प्रकार का है ?

गौतम ! वह पांच प्रकार का है, जैसे—एकेन्द्रियऔदारिकशरीर यावत् गर्भावक्रान्तिक - मनुष्य - पञ्चेन्द्रिय-औदारिक-शरीर।

१६०. ओरालियसरीरस्स णं भंते ! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

औदारिकशरीरस्य भदन्त! कियन्महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?

गौतम ! जघन्येन अंगुलस्य असंख्येयभागं उत्कर्षेण सातिरेकं योजनसहस्रम् ।

१६०. भंते ! औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी है ?

गौतम ! जघन्यतः अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्टतः हजार योजन से कुछ अधिक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६१. एवं जहा ओगाहणासंठाणे ओरालियपमाणं तहा निरवसेसं। एवं जाव मणस्सेत्ति उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

एवं यथा अवगाहनासंस्थानं औदारिकप्रमाणं तथा निरवशेषम्। एवं यावत् मनुष्यस्येति उत्कर्षेण त्रीणि गव्यूतानि।

१६१. इस प्रकार जैसे 'अवगाहना संस्थान' नामक प्रज्ञापना के इक्कीसवें पद में प्रतिपादित है कि 'मनुष्य की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाउ की है' तक औदारिक का प्रमाण अविकलरूप से ज्ञातव्य है।

१६२. कइविहे णं भंते! वेउव्वियसरीरे पण्णत्ते?

कतिविधं भदन्त! वैक्रियशरीरं प्रज्ञप्तम्?

१६२. भंते! वैक्रियशरीर कितने प्रकार का है?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते—एगिंदियवेउव्वियसरीरे य पंचिंदियवेउव्वियसरीरे य।

गौतम! द्विविधं प्रज्ञप्तम्— एकेन्द्रियवैक्रियशरीरं च पञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीरं च।

गौतम! वह दो प्रकार का है— एकेन्द्रिय-वैक्रियशरीर और पञ्चेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर।

१६३. एवं जाव ईसाणकप्पपज्जंतं।

एवं यावदीशानकल्पपर्यन्तम्।

१६३. इस प्रकार प्रज्ञापना पद इक्कीस में वर्णित ईशान कल्प पर्यन्त वक्तव्य है।

सणंकुमारे आढत्तं जाव अणत्तरा भवधारणिज्जा तेसिं रयणी रयणी परिहायइ।

सनत्कुमारे आरब्धं यावत् अनुत्तरा भवधारणीया तेषां रत्निः रत्निः परिहीयते।

सनत्कुमार देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना छह हाथ की है। वहां से अनुत्तर विमान तक के देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना एक-एक रत्नि हीन होती है[५४]।

१६४. आहारयसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

अहारकशरीरं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?

१६४. भंते! आहारक शरीर कितने प्रकार का है?

गोयमा! एगाकारे पण्णत्ते।

गौतम! एकाकारं प्रज्ञप्तम्।

गौतम! वह एक आकार वाला है।

जइ एगाकारे पण्णत्ते, किं मणुस्सआहारयसरीरे? अमणुस्सआहारयसरीरे?

यदि एकाकारं प्रज्ञप्तं, किं मनुष्यआहारकशरीरम्? अमनुष्यआहारकशरीरम्?

भंते! यदि एक आकार वाला है तो क्या वह मनुष्य-आहारक-शरीर है या अमनुष्य-आहारक-शरीर?

गोयमा! मणुस्सआहारयसरीरे, णो अमणुस्सआहारगसरीरे।

गौतम! मनुष्यआहारकशरीरं, नो अमनुष्यआहारकशरीरम्।

गौतम! वह मनुष्य-आहारक-शरीर है, अमनुष्य-आहारक-शरीर नहीं है।

जइ मणुस्सआहारयसरीरे, किं गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारगसरीरे? संमुच्छिममणुस्सआहारगसरीरे?

यदि मनुष्यआहारकशरीरं, किं गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यआहारकशरीरम्? सम्मूर्च्छिममनुष्यआहारकशरीरम्?

भंते! यदि मनुष्य-आहारक-शरीर है तो क्या वह गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-आहारक-शरीर है या सम्मूर्च्छम-मनुष्य-आहारक-शरीर है?

गोयमा! गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे नो संमुच्छिममणस्सआहारयसरीरे।

गौतम! गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो सम्मूर्च्छिममनुष्यआहारकशरीरम्।

गौतम! वह गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-आहारकशरीर है, सम्मूर्च्छममनुष्य-आहारक शरीर नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइ गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारगसरीरे, किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे ?

यदि गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, किं कर्मभूमिकगर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? अकर्मभूमिकगर्भावक्रान्तिक-मनुष्यआहारकशरीरम्?

भंते ! यदि गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या अकर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर ?

गोयमा ! कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे, नो अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे।

गौतम ! कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिक–मनुष्यआहारकशरीरं, नो अकर्मभूमिकगर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ।

गौतम ! वह कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है, अकर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है।

जइ कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे, किं संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारय - सरीरे ? असंखेज्जवासाउयकम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे ?

यदि कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, किं संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

भंते ! यदि कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर ?

गोयमा ! संखेज्जवासाउयकम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे, नो असंखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे।

गौतम ! संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो असंख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

गौतम ! वह संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है, असंख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है।

जइ संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारय - सरीरे, किं पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे ? अपज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारय - सरीरे ?

यदि संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, किं पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क- कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

भंते ! यदि संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्य-आहारकशरीर है ?

गोयमा! पज्जत्तयसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे, नो अपज्जत्तयसंखेज्जवासाउय - कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्स आहारयसरीरे।

गौतम ! पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ।

गौतम ! वह पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिक - मनुष्यआहारक-शरीर है, अपर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जइ पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स आहारयसरीरे, किं सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स आहारयसरीरे ? मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारयसरीरे? सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्म - भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारयसरीरे ?

यदि पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, किं सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? मिथ्यादृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-आहारकशरीरम् ? सम्यग्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क- कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

भंते ! यदि पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिक- मनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्य आहारकशरीर है या सम्यक् मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारक शरीर है ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारय - सरीरे, नो मिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारय-सरीरे, नो सम्मामिच्छदिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय- कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे।

गौतम ! सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो मिथ्यादृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्य - आहारकशरीरं, नो सम्यग्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

गौतम ! वह सम्यक्दृष्टि पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य - आहारक-शरीर है, मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है तथा सम्यक्मिथ्यादृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारक-शरीर भी नहीं है।

जइ सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे, किं संजय- सम्मदिट्ठि - पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारय - सरीरे ? असंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे ? संजयासंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय- संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स आहारयसरीरे ?

यदि सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, किं संयत - सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येय - वर्षायुष्क - कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यआहारकशरीरम्? असंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-आहारकशरीरम् ? संयतासंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्ककर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्य-आहारकशरीरम्?

भंते ! यदि सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह संयत-सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या असंयत-सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येय-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यआहारकशरीर है या संयतासंयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है ?

गोयमा ! संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय-कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे, नो असंजय-सम्म-

गौतम ! संयत-सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो असंयत - सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-

गौतम ! वह संयत-सम्यक्दृष्टि पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है, असंयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येय-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्दिट्ठि-पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारयसरीरे, नो संजयासंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासा-उय-कम्मभूमग - गब्भवक्कंतिय - मणुस्स-आहारयसरीरे।

संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकआहारकशरीरं, नो संयतासंयत - सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ।

वर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यआहारकशरीर नहीं है तथा संयतासंयत - सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क कर्मभूमिज - गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर भी नहीं है।

जइ संजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारय-सरीरे, किं पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे ? अपमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासा-उय- कम्मभूमग - गब्भवक्कंतिय - मणुस्स-आहारयसरीरे ?

यदि संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं किं प्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? अप्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

भंते ! यदि संयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह प्रमत्तसंयत - सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है या अप्रमत्तसंयत-सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है ?

गोयमा ! पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे, नो अपमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय- संखेज्जवासा-उय - कम्मभूमग - गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे।

गौतम ! प्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क- कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं, नो अप्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ।

गौतम ! वह प्रमत्तसंयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है, अप्रमत्तसंयत - सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज - गर्भाव-क्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है।

जइ पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय-कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारयसरीरे, किं इड्ढिपत्त-पमत्तसंजय - सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग- गब्भ-वक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरे ? अणिड्ढिपत्त - पमत्तसंजय - सम्म-द्दिट्ठि-पज्जत्तय - संखेज्जवासाउय-कम्मभूमग-गब्भवक्कंतियमणुस्स - आहारयसरीरे ?

यदि प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरं किं ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक -संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ? अनृद्धिप्राप्त - प्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क- कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ?

भंते ! यदि प्रमत्तसंयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर है तो क्या वह ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहा-रकशरीर है या अऋद्धिप्राप्त-प्रमत्त-संयत-सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षा-युष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्य-आहारकशरीर है ?

गोयमा ! इड्ढिपत्त-पमत्तसंजय-सम्मद्दिट्ठि-पज्जत्तय- संखेज्जवासा-उय - कम्मभूमग - गब्भवक्कंतिय-मणुस्स-आहारयसरीरे, नो अणि-

गौतम ! ऋद्धिप्राप्त - प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिक - गर्भावक्रान्तिकमनुष्य-आहारकशरीरं, नो अनृद्धिप्राप्त-

गौतम ! वह ऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यक्दृष्टि - पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहा-रकशरीर है, अऋद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ड्डिपत्त - पमत्तसंजय - सम्मद्दिट्ठि - पज्जत्तय-संखेज्जवासाउय - कम्म-भूमग - गब्भवक्कंतियमणुस्स-आहारयसरीरे ।

प्रमत्तसंयत - सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येयवर्षायुष्क - कर्मभूमिक-गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीरम् ।

सम्यक्दृष्टि-पर्याप्तक - संख्येयवर्षायुष्क-कर्मभूमिज - गर्भावक्रान्तिकमनुष्यआहारकशरीर नहीं है ।

१६५. आहारयसरीरे णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते ?
गोयमा ! समचउरंससंठाणसंठिए पण्णत्ते ।

आहारकशरीरं भदन्त ! किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ?
गौतम ! समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितं प्रज्ञप्तम् ।

१६५. भंते ! आहारक-शरीर किस संस्थान से संस्थित है ?
गौतम ! वह सम-चतुष्कोण संस्थान से संस्थित है ।

१६६. आहारयसरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं देसूणा रयणी उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी ।

आहारकशरीरस्य कियन्महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?
गौतम ! जघन्येन देशोनो रत्निः उत्कर्षेण प्रतिपूर्णो रत्निः ।

१६६. भंते ! आहारक-शरीर की शरीरावगाहना कितनी बड़ी होती है ?
गौतम ! जघन्यतः कुछ न्यून एक रत्नि और उत्कृष्टतः परिपूर्ण रत्नि ।

१६७. तेयासरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते— एगिंदियतेयासरीरे य बेंदियतेयासरीरे य तेंदियतेयासरीरे य चउरिंदियतेयासरीरे य पंचेंदियतेयासरीरे य ।

तैजसशरीरं भदन्त! कतिविधं प्रज्ञप्तम्?
गौतम ! पञ्चविधं प्रज्ञप्तम्— एकेन्द्रियतैजसशरीरं च द्वीन्द्रियतैजसशरीरं च त्रीन्द्रियतैजसशरीरं च चतुरिन्द्रियतैजसशरीरं च पञ्चेन्द्रियतैजसशरीरं च ।

१६७. भंते । तैजस शरीर कितने प्रकार का है ?
गौतम ! वह पांच प्रकार का है, जैसे—१. एकेन्द्रिय तैजस शरीर २. द्वीन्द्रिय तैजस शरीर ३. त्रीन्द्रिय तैजस शरीर ४. चतुरिन्द्रिय तैजस शरीर ५. पञ्चेन्द्रिय तैजस शरीर ।

१६८. एवं जाव—

एवं यावत्—

१६८. इसी प्रकार प्रज्ञापना पद इक्कीस यहां वक्तव्य है ।

१६९. गेवेज्जस्स णं भंते ! देवस्स मारणंतियसमुग्घातेणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?

ग्रैवेयस्य भदन्त ! देवस्य मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहतस्य तैजसशरीरस्य कियन्महती शरीरावगाहना प्रज्ञप्ता ?

१६९. भंते ! ग्रैवेयक देव के मारणान्तिक समुद्घात से समवहत तैजस शरीर की शरीरावगाहना कितनी बड़ी होती है ?

गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ती विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अहे जाव विज्जाहरसेढीओ, उक्कोसेणं अहे जाव अहोलोइया गामा, तिरियं जाव मणुस्सखेत्तं, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं ।

गौतम ! शरीरप्रमाणमात्री विष्कम्भबाहल्याभ्यां, आयामेन जघन्येन अधो यावत् विद्याधरश्रेणीं, उत्कर्षेण अधो यावत् अधोलौकिकग्रामान्, तिर्यक् यावत् मनुष्यक्षेत्रं उर्ध्वं यावत् स्वकानि विमानानि ।

गौतम ! वह चौड़ाई और मोटाई में शरीर प्रमाणमात्र, लंबाई में नीचे जघन्यतः विद्याधर की श्रेणी तक और उत्कृष्टतः अधोलौकिक गावों तक, तिरछे में मनुष्य क्षेत्र तक और अपने-अपने विमान की पताका तक होती है ।

१७०. एवं अणुत्तरोववाइया वि ।

एवं अनुत्तरोपपातिका अपि ।

१७०. इसी प्रकार अनुत्तरोपपातिक देवों के विषय में भी जानना चाहिए ।

१७१. एवं कम्मयसरीरं पि भाणियव्वं ।

एवं कर्मशरीरमपि भणितव्यम् ।

१७१. कार्मण शरीर की वक्तव्यता तैजस शरीर के समान ही है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओहि-पदं	अवधि-पदम्	अवधि-पद
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा	
१. भेदे विसय संठाणे, अब्भंतर बाहिरे य देसोही । ओहिस्स वड्डि-हाणी, पडिवाती चेव अपडिवाती ॥	१. भेदो विषयः संस्थानं, आभ्यन्तरबाह्यौ च देशावधिः । अवधेः वृद्धि-हानी, प्रतिपातिश्चैव अप्रतिपातिः ॥	भेद, विषय, संस्थान, आभ्यन्तर, बाह्य, देश, सर्व, वृद्धि, हानि, प्रतिपाती और अप्रतिपाती—ये अवधिज्ञान के द्वार हैं[११] ।
१७२. कइविहे णं भंते ! ओही पण्णत्ते?	कतिविधः भदन्त ! अवधिः प्रज्ञप्तः ?	१७२. भंते ! अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ?
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते— भवपच्चइए य खओवसमिए य । एवं सव्वं ओहिपदं भाणियव्वं ।	गौतम ! द्विविधः प्रज्ञप्तः— भवप्रत्ययिकश्च क्षायोपशमिकश्च । एवं सर्वं अवधिपदं भणितव्यम् ।	गौतम ! वह दो प्रकार का है—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक । यहां सम्पूर्ण अवधि पद (प्रज्ञापना पद ३३) वक्तव्य है ।
वेयणा-पदं	वेदना-पदम्	वेदना-पद
संगहणी गाहा	संग्रहणी गाथा	
१. सीता य दव्व सारीर, साय तह वेयणा भवे दुक्खा । अब्भुवगमुवक्कमिया, णिदाए चेव अणिदाए ॥	१. शीता च द्रव्यशारीरी, साता तथा वेदना भवेद्दुःखा । आभ्युपगमिक्यौपक्रमिक्यौ, निदया चैव अनिदया ॥	शीत वेदना, उष्ण वेदना, शीतोष्ण वेदना, द्रव्य वेदना, क्षेत्र वेदना, काल वेदना, भाव वेदना, शारीरिकी वेदना, मानसिकी वेदना, शारीर-मानसिकी वेदना, सात वेदना, असात वेदना, सात-असात वेदना, सुख वेदना, दुःख वेदना और सुख-दुःख वेदना, आभ्युपगमिकी वेदना, औपक्रमिकी वेदना, निदा वेदना और अनिदा वेदना—ये वेदना के द्वार हैं ।
१७३. नेरइया णं भंते ! किं सीतवेयणं वेदंति ? उसिणवेयणं वेदंति ? सीतोसिणवेयणं वेदंति ?	नैरयिकाः भदन्त ! किं शीतवेदनां वेदयन्ति, उष्णवेदनां वेदयन्ति ? शीतोष्णवेदनां वेदयन्ति ?	१७३. भंते ! नैरयिक क्या शीत वेदना का वेदन करते हैं अथवा उष्ण वेदना का वेदन करते हैं अथवा शीतोष्ण वेदना का वेदन करते हैं ?
गोयमा ! नेरइया सीतं वि वेदणं वेदेंति, उसिणं पि वेदणं वेदेंति, णो सीतोसिणं वेदणं वेदेंति । एवं चेव वेयणापदं भाणियव्वं ।	गौतम ! नैरयिकाः शीतामपि वेदनां वेदयन्ति, उष्णमपि वेदनां वेदयन्ति, नो शीतोष्णां वेदनां वेदयन्ति । एवं चैव वेदनापदं भणितव्यम् ।	गौतम ! नैरयिक शीत वेदना का भी वेदन करते हैं, उष्ण वेदना का भी वेदन करते हैं किन्तु शीतोष्ण वेदना का वेदन नहीं करते । यहां सम्पूर्ण वेदना पद (प्रज्ञापना पद ३५) वक्तव्य है ।
लेसा-पदं	लेश्या-पदम्	लेश्या-पद
१७४. कइ णं भंते ! लेसाओ पण्णत्ताओ ?	कति भदन्त ! लेश्याः प्रज्ञप्ताः ?	१७४. भंते ! लेश्याएं कितनी हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! छ लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—किण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा। एवं लेसापयं भाणियव्वं।

गौतम ! षट् लेश्या: प्रज्ञप्ता:, तद्यथा—कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या तेज:लेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या। एवं लेश्यापदं भणितव्यम्।

गौतम ! लेश्याएं छह हैं, जैसे—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तैजसलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल-लेश्या। यहां लेश्या पद (प्रज्ञापना पद १७/२-६) वक्तव्य है।

आहार-पदं

आहार-पदम्

आहार-पद

संगहणी गाहा

संग्रहणी गाथा

१. अणंतरा य आहारे,
आहाराभोगणाऽवि य।
पोग्गला नेव जाणंति,
अज्झवसाणा य सम्मत्ते॥

१. अनन्तराश्च आहारे
आहाराभोगतापि च।
पुद्गलान्नैव जानन्ति
अध्यवसानानि च सम्यक्त्वम्॥

अनन्तर आहार, आभोग आहार, अनाभोग आहार, पुद्गलों को नहीं जानना, अध्यवसान और सम्यक्त्व—ये आहार के द्वार हैं।

१७५. नेरइया णं भंते ! अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा-विकुव्वणया ?

नैरयिका: भदन्त ! अनन्तराहारा: तत: निर्वर्त्तनं तत: पर्यादानं तत: परिणामनं तत: परिचारणं तत: पश्चाद् विकरणम् ?

१७५. भंते ! क्या नैरयिक अनन्तर आहार (उपपात क्षेत्र-प्राप्ति के उसी क्षण आहार) करते हैं ? तदन्तर निर्वर्तन (शरीर-रचना), पर्यादान (अंग-प्रत्यंगों से ग्रहण), परिणमन, परिचा-रण (शब्द आदि विषयों का उपभोग) और विक्रिया (नानारूपकरण) करते हैं ?

हंता गोयमा ! नेरइया णं अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया ततो परियाइयणया तओ परि-णामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विकुव्वणया। एवं आहार-पदं भाणियव्वं।

हन्त गौतम ! नैरयिका अनन्तराहारा: तत: निर्वर्त्तनं तत: पर्यादानं तत: परिणामनं तत: परिचारणं तत: पश्चाद् विकरणम्। एवं आहारपदं भणितव्यम्।

गौतम ! हां, नैरयिक अनन्तर आहार, तदनन्तर निर्वर्तन, पर्यादान, परिणमन, परिचारण और विक्रिया करते हैं। यहां आहार पद[16] वक्तव्य है।

आउगबंध-पदं

आयुष्कबन्ध-पदम्

आयुष्यबंध-पद

१७६. कइविहे णं भंते ! आउगबंधे पण्णत्ते ?

कतिविध: भदन्त ! आयुष्कबन्ध: प्रज्ञप्त: ?

१७६. भंते ! आयुष्य-बंध कितने प्रकार का है ?

गोयमा ! छव्विहे आउगबंधे पण्णत्ते, तं जहा—जाइनाम-निधत्ताउके गतिनामनिधत्ताउके ठिइनामनिधत्ताउके पएसनाम-निधत्ताउके अणुभागनामनिधत्ता-उके ओगाहणानामनिधत्ताउके।

गौतम ! षड्विध: आयुष्कबन्ध: प्रज्ञप्त:, तद्यथा—जातिनामनिधत्तायुष्क: गति-नामनिधत्तायुष्क: स्थितिनामनिधत्ता-युष्क: प्रदेशनामनिधत्तायुष्क: अनुभाग-नामनिधत्तायुष्क: अवगाहनानामनिधत्ता-युष्क:।

गौतम ! आयुष्य-बंध छह प्रकार का है,[17] जैसे—१. जातिनामनिषिक्त आयु २. गतिनामनिषिक्त आयु ३. स्थिति-नामनिषिक्त आयु ४. प्रदेशनामनिषिक्त आयु ५. अनुभागनामनिषिक्त आयु ६ अवगाहनानामनिषिक्त आयु।

१७७. नेरइयाणं भंते ! कइविहे आउग-बंधे पण्णत्ते ?

नैरयिकाणां भदन्त ! कतिविध: आयुष्कबन्ध: प्रज्ञप्त: ?

१७७. भंते ! नैरयिकों के कितने प्रकार का आयुष्य-बंध होता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—जातिनामनिधत्ताउके गइनामनिधत्ताउके ठिइनामनिधत्ताउके पएसनामनिधत्ताउके ओगाहणाणामनिधत्ताउके।

गौतम ! षड्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—जातिनामनिधत्तायुष्कः गतिनामनिधत्तायुष्कः स्थितिनामनिधत्तायुष्कः प्रदेशनामनिधत्तायुष्कः अनुभागनामनिधत्तायुष्कः अवगाहनानामनिधत्तायुष्कः।

गौतम ! वह छह प्रकार का है, जैसे—१ जातिनामनिषिक्त आयु २. गतिनामनिषिक्त आयु ३. स्थितिनामनिषिक्त आयु ४. प्रदेशनामनिषिक्त आयु ५. अनुभागनामनिषिक्त आयु ६. अवगाहनानामनिषिक्त आयु।

१७८. एवं जाव वेमाणियत्ति।

एवं यावत् वैमानिका इति।

१७८. इसी प्रकार शेष वैमानिक तक के दंडकों के लिए यही वक्तव्यता है।

उववाय-उव्वट्टणा-विरह-पदं

उपपात-उद्वर्तना-विरह-पदम्

उपपात-उद्वर्तना-विरह-पद

१७९. निरयगई णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारसमुहुत्ते।

निरयगतिः भदन्त ! कियन्तं कालं विरहिता उपपातेन प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जघन्येन एकं समयं, उत्कर्षेण द्वादशमुहूर्त्तान्।

१७९. भंते ! नरकगति में उपपात का विरहकाल कितना है ? गौतम ! जघन्यतः एक समय का और उत्कृष्टतः बारह मुहूर्त्त का है।

१८०. एवं तिरियगई मणुस्सगई देवगई।

एवं तिर्यग्गतिः मनुष्यगतिः देवगतिः।

१८०. इसी प्रकार तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति के उपपात का विरहकाल बारह-बारह मुहूर्त्त का है[18]।

१८१. सिद्धिगई णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता। गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासे।

सिद्धगतिः भदन्त ! कियन्तं कालं विरहिता सिद्धतया प्रज्ञप्ता ? गौतम ! जघन्येन एकं समयं, उत्कर्षेण षण्मासान्।

१८१. भंते ! सिद्धिगति में सिद्ध होने का विरहकाल कितना है ? गौतम ! जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः छह मास।

१८२. एवं सिद्धिवज्जा उव्वट्टणा।

एवं सिद्धिवर्जा उद्वर्तना।

१८२. इसी प्रकार सिद्धिगति[19] को वर्जकर चारों गतियों की उद्वर्तना का विरहकाल बारह-बारह मुहूर्त्त का है।

१८३. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

अस्यां भदन्त ! रत्नप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाः कियन्तं कालं विरहिताः उपपातेन प्रज्ञप्ताः ?

१८३. भंते ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिकों के उपपात का विरहकाल कितना है ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

गौतम ! जघन्येन एकं समयं, उत्कर्षेण चतुर्विंशतिः मुहूर्त्तान्।

गौतम ! जघन्यतः एक समय और उत्कृष्टतः चौबीस मुहूर्त्त।

एवं उववायदंडओ भाणियव्वो, उव्वट्टणादंडओ वि।

एवं उपपातदण्डको भणितव्यः, उद्वर्त्तनादण्डकोऽपि।

इसी प्रकार उपपात और उद्वर्तन के विषय में जानना चाहिए।

आगरिस-पदं

आकर्ष-पदम्

आकर्ष-पद

१८४. नेरइया णं भंते ! जातिनामनिहत्ताउगं कतिहि आगरिसेहि पगरेंति ?

नैरयिकाः भदन्त ! जातिनामनिषिक्तायुष्कं कतिभिराकर्षैः प्रकुर्वन्ति ?

१८४. भंते ! नैरयिक जातिनामनिषिक्त आयुष्य कितने आकर्षों[20] से बांधता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सिय एक्केण सिय दोहिं सिय तीहिं सिय चउहिं सिय पंचहिं सिय छहिं सिय सत्तहिं सिय अट्ठहिं, नो चेव णं नवहिं।

गौतम! स्यात् एकेन स्यात् द्वाभ्यां स्यात् त्रिभिः स्यात् चतुर्भिः स्यात् पञ्चभिः स्यात् षड्भिः स्यात् सप्तभिः स्यात् अष्टभिः, नो चैव नवभिः।

गौतम! नैरयिक जीव कभी एक आकर्ष से, कभी दो आकर्षों से, कभी तीन आकर्षों से, कभी चार आकर्षों से, कभी पांच आकर्षों से, कभी छह आकर्षों से, कभी सात आकर्षों से और कभी आठ आकर्षों से जातिनामनिषिक्त आयुष्य बांधता है, किन्तु नौ आकर्षों से कदापि नहीं बांधता।

१८५. एवं सेसाणि वि आउगाणि जाव वेमाणियत्ति।

एवं शेषाण्यपि आयुष्काणि यावत् वैमानिका इति।

१८५. इसी प्रकार आयुष्य के गतिनामनिषिक्त-आयु आदि शेष पांच प्रकार ज्ञातव्य हैं। शेष वैमानिक तक के दंडकों के लिए यही वक्तव्यता है।

संघयण-पदं

संहनन-पदम्

संहनन-पद

१८६. कइविहे णं भंते! संघयणे पण्णत्ते?
गोयमा! छव्विहे संघयणे पण्णत्ते, तं जहा—वइरोसभनाराय-संघयणे रिसभनारायसंघयणे नारायसंघयणे अद्धनारायसंघयणे खीलियासंघयणे छेवट्टसंघयणे।

कतिविधं भदन्त! संहननं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! षड्विधं संहननं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—वज्रर्षभनाराचसंहननं ऋषभ-नाराचसंहननं नाराचसंहननं अर्द्धनाराचसंहननं कीलिकासंहननं सेवार्त्तसंहननम्।

१८६. भंते! संहनन कितने प्रकार का है?
गौतम! संहनन छह प्रकार का है, जैसे—१. वज्रऋषभनाराच संहनन २. ऋषभनाराच संहनन ३. नाराच संहनन ४. अर्द्धनाराच संहनन ५. कीलिका संहनन ६. सेवार्त्त संहनन।

१८७. नेरइया णं भंते! किंसंघयणी?
गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी—णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू, जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया असुभा अमणुण्णा अमणामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।

नैरयिकाः भदन्त! किंसंहननाः?
गौतम! षण्णां संहननानां असंहननाः—नैवास्थीनि नैव शिराः नैव स्नायवः, ये पुद्गलाः अनिष्टाः अकान्ताः अप्रियाः अशुभाः अमनोज्ञाः अमनआपाः ते तेषां असंहननतया परिणमन्ति।

१८७. भंते! नैरयिक किस संहनन वाले होते हैं?
गौतम! नैरयिकों के इन छह संहननों में से एक भी नहीं होता। वे असंहननी हैं। उनके न अस्थि होता है, न शिरा और न स्नायु। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और मनः प्रतिकूल होते हैं वे उनके असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।

१८८. असुरकुमारा णं भंते! किंसंघयणी पण्णत्ता?
गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी—णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू, जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया सुभा मणुण्णा मणामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति।

असुरकुमाराः भदन्त! किंसंहननाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! षण्णां संहननानां असंहननाः—नैवास्थीनि नैव शिराः नैव स्नायवः, ये पुद्गलाः इष्टाः कान्ताः प्रियाः शुभाः मनोज्ञाः मनआपाः ते तेषां असंहननतया परिणमन्ति।

१८८. भंते! असुरकुमार किस संहनन वाले होते हैं?
गौतम! असुरकुमारों के इन छह संहननों में से एक भी नहीं होता। वे असंहननी हैं। उनके न अस्थि होता है, न शिरा और न स्नायु। जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ और मनोनुकूल होते हैं वे उनके असंहनन के रूप में परिणत होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८९. एवं जाव थणियकुमारत्ति।

एवं यावत् स्तनितकुमारा इति।

१८९. स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देव असंहननी होते हैं।

१९०. पुढवीकाइया णं भंते! किंसंघयणी पण्णत्ता?
गोयमा! छेवट्टसंघयणी पण्णत्ता।

पृथ्वीकायिकाः भदन्त! किंसंहननाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! सेवार्त्तसंहननाः प्रज्ञप्ताः।

१९०. भंते! पृथ्वीकायिक जीव किस संहनन वाले होते हैं?
गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के सेवार्त संहनन होता है।

१९१. एवं जाव संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियत्ति।

एवं यावत् सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका इति।

१९१. इसी प्रकार (यावत्) सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीवों के केवल सेवार्त संहनन होता है।

१९२. गब्भवक्कंतिया छव्विहसंघयणी।

गर्भविक्रान्तिकाः षड्विधसंहननाः।

१९२. गर्भविक्रान्तिक तिर्यञ्चों के छहों संहनन होते हैं।

१९३. समुच्छिममणुस्सा णं छेवट्टसंघयणी।

सम्मूर्च्छिममनुष्याः सेवार्त्तसंहननाः।

१९३. सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के सेवार्त्त संहनन होता है।

१९४. गब्भवक्कंतियमणुस्सा छव्विहसंघयणी पण्णत्ता।

गर्भविक्रान्तिकमनुष्याः षड्विधसंहननाः प्रज्ञप्ताः।

१९४. गर्भविक्रान्तिक मनुष्यों के छहों संहनन होते हैं।

१९५. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया य।

यथा असुरकुमाराः तथा वानमन्तराः ज्योतिष्काः वैमानिकाश्च।

१९५. वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की वक्तव्यता असुरकुमार देवों के समान है।

१९६. कइविहे णं भंते! संठाणे पण्णत्ते?
गोयमा! छव्विहे संठाणे पण्णत्ते, तं जहा—समचउरंसे णग्गोहपरिमंडले साती खुज्जे वामणे हुंडे।

कतिविधं भदन्त! संस्थानं प्रज्ञप्तम्?
गौतम! षड्विधं संस्थानं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा—समचतुरस्रं न्यग्रोधपरिमण्डलं सादि कुब्जं वामनं हुण्डम्।

१९६. भंते! संस्थान कितने प्रकार के हैं?
गौतम! संस्थान छह प्रकार के हैं, जैसे—१. समचतुरस्र २. न्यग्रोधपरिमण्डल ३. सादि ४. कुब्ज ५. वामन ६. हुण्ड।

१९७. णेरइया णं भंते! किंसंठाणा पण्णत्ता?
गोयमा! हुंडसंठाणा पण्णत्ता।

नैरयिकाः भदन्त! किंसंस्थानाः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! हुण्डसंस्थानाः प्रज्ञप्ताः।

१९७. भंते! नैरयिक किस संस्थान वाले होते हैं?
गौतम! वे हुण्ड संस्थान वाले होते हैं।

१९८. असुरकुमारा किंसंठाणसंठिया पण्णत्ता?
गोयमा! समचउरंससंठाणसंठिया पण्णत्ता जाव थणियत्ति।

असुरकुमाराः किंसंस्थान-संस्थिताः प्रज्ञप्ताः?
गौतम! समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिताः प्रज्ञप्ताः। यावत् स्तनिता इति।

१९८. भंते! असुरकुमार किस संस्थान वाले होते हैं?
गौतम! वे समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं। स्तनितकुमार तक के सभी भवनपति देव समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं।

१९९. पुढवी मसूरयसंठाणा पण्णत्ता।

पृथिवी मसूरकसंस्थाना प्रज्ञप्ता।

१९९. पृथ्वी के जीव मसूर-संस्थान वाले होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२००. आऊ थिवुयसंठाणा पण्णत्ता।

आपः स्तिबुकसंस्थानाः प्रज्ञप्ताः।

२००. पानी के जीव स्तिबुक (जल का बुलबुला) संस्थान वाले होते हैं।

२०१. तेऊ सूइकलावसंठाणा पण्णत्ता।

तेजः सूचिकलापसंस्थानं प्रज्ञप्तम्।

२०१. तेजस् के जीव सूचीकलाप के संस्थान वाले होते हैं।

२०२. वाऊ पडागसंठाणा पण्णत्ता।

वायुः पताकासंस्थानः प्रज्ञप्तः।

२०२. वायु के जीव पताका-संस्थान वाले होते हैं।

२०३. वणप्फई नाणासंठाणसंठिया पण्णत्ता।

वनस्पतिः नानासंस्थान-संस्थितः प्रज्ञप्तः।

२०३. वनस्पति के जीव नाना प्रकार के संस्थान वाले होते हैं।

२०४. बेइंदिय-तेइंदिय - चउरिंदिय - सम्मुच्छिमपंचेंदिय - तिरिक्खा हुंडसंठाणा पण्णत्ता।

द्वीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय-सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चः हुण्ड-संस्थानाः प्रज्ञप्ताः।

२०४. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सम्मूर्च्छिमपञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च हुण्ड संस्थान वाले होते हैं।

२०५. गब्भवक्कंतिया छव्विहसंठाणा पण्णत्ता।

गर्भावक्रान्तिकाः षड्विधसंस्थानाः प्रज्ञप्ताः।

२०५. गर्भावक्रान्तिक तिर्यञ्च छहों संस्थान वाले होते हैं।

२०६. सम्मुच्छिममणुस्सा हुंडसंठाण-संठिया पण्णत्ता।

सम्मूर्च्छिममनुष्याः हुण्डसंस्थान-संस्थिताः प्रज्ञप्ताः।

२०६. सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुण्ड संस्थान वाले होते हैं।

२०७. गब्भवक्कंतियाणं मणुस्साणं छव्विहा संठाणा पण्णत्ता।

गर्भावक्रान्तिकानां मनुष्याणां षड्विधानि संस्थानानि प्रज्ञप्तानि।

२०७. गर्भावक्रान्तिक मनुष्य छहों संस्थान वाले होते हैं।

२०८. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया।

यथा असुरकुमारास्तथा वानमन्तराः ज्योतिष्काः वैमानिकाः।

२०८. वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव असुरकुमार की भांति समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं।

वेय-पदं

वेद-पदम्

वेद-पद

२०९. कइविहे णं भंते! वेए पण्णत्ते? गोयमा! तिविहे वेए पण्णत्ते, तं जहा—इत्थीवेए पुरिसवेए नपुंसगवेए।

कतिविधः भदन्त! वेदः प्रज्ञप्तः? गौतम! त्रिविधः वेदः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—स्त्रीवेदः पुरुषवेदः नपुंसकवेदः।

२०९. भंते! वेद कितने प्रकार के हैं? गौतम! वेद तीन प्रकार के हैं, जैसे—स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

२१०. नेरइया णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया पण्णत्ता? गोयमा! णो इत्थिवेया णो पुंवेया, णपुंसगवेया पण्णत्ता।

नैरयिकाः भदन्त! किं स्त्रीवेदाः पुरुषवेदाः नपुंसकवेदा प्रज्ञप्ताः? गौतम! नो स्त्रीवेदाः नो पुरुषवेदाः, नपुंसकवेदाः प्रज्ञप्ताः।

२१०. भंते! क्या नैरयिक स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसकवेद होते हैं? गौतम! वे स्त्रीवेद नहीं होते, पुरुषवेद नहीं होते किन्तु नपुंसकवेद होते हैं।

२११. असुरकुमाराणं भंते! किं इत्थि-वेया पुरिसवेया नपुंसगवेया?

असुरकुमाराः भदन्त! किं स्त्रीवेदाः पुरुषवेदाः नपुंसकवेदाः?

२११. भंते! क्या असुरकुमार स्त्रीवेद, पुरुषवेद या नपुंसकवेद होते हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! इत्थिवेया पुरिसवेया, णो णपुंसगवेया जाव थणिय त्ति।

गौतम ! स्त्रीवेदाः पुरुषवेदाः, नो नपुंसकवेदाः यावत् स्तनिता इति ।

गौतम ! वे स्त्रीवेद होते हैं, पुरुषवेद होते हैं किन्तु नपुंसकवेद नहीं होते। स्तनित कुमार तक के सभी भवनपति देव स्त्रीवेद और पुरुषवेद होते हैं, नपुंसकवेद नहीं होते।

२१२. पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणप्फइ-बि-ति-चउरिंदिय-संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्ख-संमुच्छिममणुस्सा णपुंसगवेया।

पृथिवी-अप्-तेजो-वायु-वनस्पति-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय - सम्मूर्च्छिम-पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक् - सम्मूर्च्छिममनुष्याः नपुंसकवेदाः ।

२१२. पृथ्वी, अप्, तेजस्, वायु, वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, सम्मूर्च्छिम मनुष्य—ये सब नपुंसकवेद होते हैं।

२१३. गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचेंदियतिरिया य तिवेया।

गर्भावक्रान्तिकमनुष्याः पञ्चेन्द्रिय-तिर्यञ्चश्च त्रिवेदाः ।

२१३. गर्भावक्रान्तिक मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च त्रिवेद—तीनों वेदों से युक्त होते हैं।

२१४. जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसिया वेमाणियावि।

यथा असुरकुमाराः तथा वानमन्तराः ज्योतिष्काः वैमानिका अपि ।

२१४. वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव असुरकुमार की भांति स्त्रीवेद और पुरुषवेद होते हैं, नपुंसकवेद नहीं होते।

समवसरण-पदं

समवसरण-पदम्।

समवसरण-पद

२१५. ते णं काले णं ते णं समए णं कप्पस्स समोसरणं णेयव्वं जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये कल्पस्य समवसरणं नेतव्यम्, यावत् गणधराः सापत्याः निरपत्याः व्युच्छिन्नाः ।

२१५. उस काल में और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे। यहां कल्पसूत्र—पर्युषणाकल्प का 'समवसरण' प्रकरण ज्ञातव्य है। वर्तमान के साधु सुधर्मास्वामी की संतति हैं। शेष सब गणधरों की सन्ततियां विच्छिन्न हो गईं।

कुलगर-पदं

कुलकर-पदम्

कुलकर-पद

२१६. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—

१. मित्तदामे सुदामे य,
सुपासे य सयंपभे।
विमलघोसे सुघोसे य,
महाघोसे य सत्तमे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां अवसर्पिण्यां सप्त कुलकराः बभूवुः, तद्यथा—

मित्रदामः सुदामश्च,
सुपार्श्वश्च स्वयंप्रभः ।
विमलघोषः सुघोषश्च,
महाघोषश्च सप्तमः ॥

२१६. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए थे, जैसे—

१. मित्रदाम २. सुदाम ३. सुपार्श्व ४. स्वयंप्रभ ५. विमलघोष ६. सुघोष ७. महाघोष।

२१७. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए दस कुलगरा होत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अतीतायां उत्सर्पिण्यां दश कुलकराः बभूवुः, तद्यथा—

२१७. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी में दस कुलकर हुए थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. सयंजले सयाऊ य,
अजियसेणे अणंतसेणे य।
कक्कसेणे भीमसेणे,
महाभीमसेणे य सत्तमे ॥
दढरहे दसरहे सतरहे।

स्वयंजलः शतायुश्च,
अजितसेनः अनन्तसेनश्च।
कर्कसेनः भीमसेनः,
महाभीमसेनश्च सप्तमः ॥
दृढरथः दशरथः शतरथः।

१. स्वयंजल २. शतायु ३. अजितसेन ४. अनन्तसेन ५. कर्कसेन ६. भीमसेन ७. महाभीमसेन ८. दृढरथ ९. दशरथ १०. शतरथ[11]।

२१८. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां सप्त कुलकराः बभूवुः, तद्यथा—

२१८. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए थे, जैसे—

१. पढमेत्थ विमलवाहण,
चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे।
तत्तो य पसेणइए,
मरुदेवे चेव नाभी य॥

प्रथमोऽत्र विमलवाहनः,
चक्षुष्मान् यशस्वो चतुर्थोभिचंद्रः।
ततश्च प्रसेनजित्,
मरुदेवश्चैव नाभिश्च ॥

१. विमलवाहन
२. चक्षुष्मान्
३. यशस्वी
४. अभिचन्द्र
५. प्रसेनजित्
६. मरुदेव
७. नाभि।

२१९. एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराणं सत्त भारिआ होत्था, तं जहा—

एतेषां सप्तानां कुलकराणां सप्त भार्याः बभूवुः, तद्यथा—

२१९. इन सात कुलकरों के सात भार्यायें थीं, जैसे—

१. चंदजस चंदकंता,
सुरूव-पडिरूव चक्खुकंता य।
सिरिकंता मरुदेवी,
कुलगरपत्तीण णामाइं॥

चन्द्रयशाः चन्द्रकान्ता,
सुरूप-प्रतिरूपा चक्षुष्कान्ता च।
श्रीकान्ता मरुदेवी,
कुलकरपत्नीनां नामानि ॥

१. चन्द्रयशा
२. चन्द्रकान्ता
३. सुरूपा
४. प्रतिरूपा
५. चक्षुष्कान्ता
६. श्रीकान्ता
७. मरुदेवी।

तित्थगर-पदं

तीर्थंकर-पदम्

तीर्थंकर-पद

२२०. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं पियरो होत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराणां पितरः बभूवुः, तद्यथा—

२२०. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस पिता थे, जैसे—

१. णाभी य जियसत्तू य,
जियारी संवरे इ य।
मेहे धरे पइट्ठे य,
महसेणे य खत्तिए॥

२. सुग्गीवे दढरहे विण्हू,
वसुपुज्जे य खत्तिए।
कयवम्मा सीहसेणे य,
भाणू विस्ससेणे इ य॥

३. सूरे सुदंसणे कुंभे,
सुमित्तविजए समुद्दविजये य।
राया य आससेणे,
सिद्धत्थेच्चिय खत्तिए॥

नाभिश्च जितशत्रुश्च,
जितारिः संवर इति च।
मेघो धरः प्रतिष्ठश्च,
महासेनश्च क्षत्रियः॥

सुग्रीवः दृढरथः विष्णुः,
वासुपूज्यश्च क्षत्रियः।
कृतवर्मा सिंहसेनः,
भानुः विश्वसेन इति च॥

सूरः सुदर्शनः कुम्भः,
सुमित्रः विजयः समुद्रविजयश्च।
राजा च अश्वसेनः,
सिद्धार्थः एव क्षत्रियः॥

१. नाभि
२. जितशत्रु
३. जितारि
४. संवर
५. मेघ
६. धर
७. प्रतिष्ठ
८. महासेन क्षत्रिय
९. सुग्रीव
१०. दृढरथ
११. विष्णु
१२. वासुपूज्य क्षत्रिय
१३. कृतवर्मा
१४. सिंहसेन
१५. भानु
१६. विश्वसेन
१७. सूर
१८. सुदर्शन
१९. कुंभ
२०. सुमित्र
२१. विजय
२२. समुद्रविजय
२३. राजा अश्वसेन
२४. सिद्धार्थ क्षत्रिय।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. उदितोदितकुलवंसा,
विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया।
तित्थप्पवत्तयाणं,
एए पियरो जिणवराणं॥

उदितोदितकुलवंशाः,
विशुद्धवंशाः गुणैः उपेताः।
तीर्थप्रवर्त्तकानां,
एते पितरो जिनवराणाम्॥

तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों के पिता उदितोदित कुल-वंश वाले, विशुद्ध वंश वाले और गुणों से उपेत थे।

२२१. जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमोसे ओसप्पिणीए चउवीसं, तित्थगराणं मायरो होत्था, तं जहा—

१. मरुदेवा विजया सेणा,
सिद्धत्था मंगला सुसीमा य।
पुहवी लक्खण रामा,
नंदा विण्हू जया सामा॥

२. सुजसा सुव्वय अइरा,
सिरिया देवी पभावई।
पउमा वप्पा सिवा य,
वामा तिसला देवो य जिणमाया॥

जम्बूद्वीपे द्वोपे भारते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिस्तोर्थकराणां मातरो बभूवुः, तद्यथा—

मरुदेवा विजया सेना,
सिद्धार्था मंगला सुसीमा च।
पृथ्वो लक्ष्मणा रामा,
नन्दा विष्णुः जया श्यामा॥

सुयशा सुव्रता अचिरा,
श्रीः देवी च प्रभावतो।
पद्मा वप्रा शिवा च,
वामा त्रिशला देवी च जिनमाता॥

२२१. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्करों की चौबीस माताएं थीं, जैसे—

१. मरुदेवा	१३. श्यामा
२. विजया	१४. सुयशा
३. सेना	१५. सुव्रता
४. सिद्धार्था	१६. अचिरा
५. मंगला	१७. श्री
६. सुसीमा	१८. देवी
७. पृथ्वी	१९. प्रभावती
८. लक्ष्मणा	२०. पद्मा
९. रामा	२१. वप्रा
१०. नंदा	२२. शिवा
११. विष्णु	२३. वामा
१२. जया	२४. त्रिशला।

२२२. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तं जहा—
उसभे अजिते संभवे अभिणंदणे सुमती पउमप्पभे सुपासे चंदप्पहे सुविही सीतले सेज्जंसे वासुपुज्जे विमले अणंते धम्मे संती कुंथू अरे मल्ली मुणिसुव्वए णमी अरिट्ठणेमी पासे वद्धमाणे य।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिस्तीर्थकराः बभूवुः, तद्यथा—
ऋषभः अजितः सम्भवः अभिनन्दनः सुमतिः पद्मप्रभः सुपार्श्वः चन्द्रप्रभः सुविधिः शीतलः श्रेयांसः वासुपूज्यः विमलः अनन्तः धर्मः शान्तिः कुन्थुः अरः मल्ली मुनिसुव्रतः नमिः अरिष्टनेमिः पार्श्वः वर्द्धमानश्च।

२२२. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे, जैसे—

१. ऋषभ	१३. विमल
२. अजित	१४. अनन्त
३. संभव	१५. धर्म
४. अभिनन्दन	१६. शान्ति
५. सुमति	१७. कुन्थु
६. पद्मप्रभ	१८. अर
७. सुपार्श्व	१९. मल्ली
८. चन्द्रप्रभ	२०. मुनिसुव्रत
९. सुविधि	२१. नमि
१०. शीतल	२२. अरिष्टनेमि
११. श्रेयांस	२३. पार्श्व
१२. वासुपूज्य	२४. वर्द्धमान।

२२३. एएसि चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पुव्वभविया णामधेज्जा होत्था, तं जहा—

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः पूर्वभविकानि नामधेयानि बभूवुः, तद्यथा—

२२३. इन चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्वभव में चौबीस नाम थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. पढमेत्थ वइरणाभे,
विमले तह विमलवाहणे चेव।
तत्तो य धम्मसीहे,
सुमित्ते तह धम्ममित्ते य॥

२. सुंदरबाहू तह दीहबाहू,
जुगबाहू लट्ठबाहू य।
दिण्णे य इंददत्ते
सुंदर माहिंदरे चेव॥

३. सीहरहे मेहरहे,
रूप्पी य सुदंसणे य बोद्धव्वे।
तत्तो य नंदणे खलु,
सीहगिरी चेव वीसइमे॥

४. अदीणसत्त संखे,
सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे।
ओसप्पिणीए एए,
तित्थकराणं तु पुव्वभवा॥

१. प्रथमोऽत्र वज्रनाभः
विमलस्तथा विमलवाहनश्चैव।
ततश्च धर्मसिंहः,
सुमित्रस्तथा धर्ममित्रश्च॥

२. सुन्दरबाहुस्तथा दीर्घबाहुः,
युगबाहुः लष्टबाहुश्च।
दत्तश्च इन्द्रदत्तः,
सुन्दरः माहेन्द्रश्चैव॥

३. सिंहरथः मेघरथः,
रुक्मी च सुदर्शनश्च बोद्धव्यः।
ततश्च नन्दनः खलु,
सिंहगिरिश्चैव विंशतितमः॥

४. अदीनसत्त्वः शङ्खः,
सुदर्शनः नन्दनश्च बोद्धव्यः।
अवसर्पिण्यां एते,
तीर्थकराणां तु पूर्वभवाः॥

१. वज्रनाभ	१३. सुन्दर
२. विमल	१४. माहेन्द्र
३. विमलवाहन	१५. सिंहरथ
४. धर्मसिंह	१६. मेघरथ
५. सुमित्र	१७. रुक्मी
६. धर्ममित्र	१८. सुदर्शन
७. सुंदरबाहु	१९. नंदन
८. दीर्घबाहु	२०. सिंहगिरि
९. युगबाहु	२१. अदीनसत्त्व
१०. लष्टबाहु	२२. शंख
११. दत्त	२३. सुदर्शन
१२. इन्द्रदत्त	२४. नन्दन[62]।

२२४. एएसि णं चउवीसाए तित्थकराणं चउवीसं सीया होत्था, तं जहा—

१. सीया सुदंसणा सुप्पभा य,
सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य।
विजया य वेजयंती,
जयंती अपराजिया चेव॥

२. अरुणप्पभ चंदप्पभ,
सूरप्पह अग्गिसप्पभा चेव।
विमला य पंचवण्णा,
सागरदत्ता तह णागदत्ता य॥

३. अभयकर णिव्वुतिकरी,
मणोरमा तह मणोहरा चेव।
देवकुरु उत्तरकुरा,
विसाल चंदप्पभा सीया॥

४. एयातो सीयाओ सव्वेसिं,
चेव जिणवरिंदाणं।
सव्वजगवच्छलाणं,
सव्वोतुयसुभाए छायाए॥

५. पुव्विं उक्खित्ता,
माणुसेहिं साहट्ठरोमकूवेहिं।
पच्छा वहंति सीयं,
असुरिंदसुरिंदनागिंदा॥

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः शिबिकाः बभूवुः, तद्यथा—

१. शिबिका सुदर्शना सुप्रभा च,
सिद्धार्था सुप्रसिद्धा च।
विजया च वैजयन्ती,
जयन्ती अपराजिता चैव॥

२. अरुणप्रभा चन्द्रप्रभा,
सूरप्रभा अग्निसप्रभा चैव।
विमला च पञ्चवर्णा,
सागरदत्ता तथा नागदत्ता च॥

३. अभयकरी निर्वृतिकरी,
मनोरमा तथा मनोहरा चैव।
देवकुरुः उत्तरकुरुः,
विशाला चन्द्रप्रभा शिबिका॥

४. एताः शिबिकाः सर्वेषां,
चैव जिनवरेन्द्राणाम्।
सर्वजगत्वत्सलानां,
सर्वर्तुकशुभया छायया॥

५. पूर्वमुत्क्षिप्ताः,
मानुषैः संहृष्टरोमकूपैः।
पश्चाद् वहन्ति शिबिकां,
असुरेन्द्रसुरेन्द्रनागेन्द्राः॥

२२४. इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस शिबिकाएं थीं, जैसे—

१. सुदर्शना	१३. विमला
२. सुप्रभा	१४. पंचवर्णा
३. सिद्धार्था	१५. सागरदत्ता
४. सुप्रसिद्धा	१६. नागदत्ता
५. विजया	१७. अभयकरी
६. वैजयन्ती	१८. निर्वृतिकरी
७. जयन्ती	१९. मनोरमा
८. अपराजिता	२०. मनोहरा
९. अरुणप्रभा	२१. देवकुरु
१०. चन्द्रप्रभा	२२. उत्तरकुरु
११. सूरप्रभा	२३. विशाला
१२. अग्निप्रभा	२४. चन्द्रप्रभा[63]।

सर्वजीववत्सल सब जिनवरों को ये शिबिकाएं सब ऋतुओं में कल्याणकारी छाया से युक्त होती हैं।

शिबिका को सर्वप्रथम हर्ष से पुलकित रोम कूपवाले मनुष्य उठाते हैं और तत्पश्चात् असुरेन्द्र, सुरेन्द्र और नागेन्द्र वहन करते हैं। वे चल-चपल कुंडलों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. चलचवलकुंडलधरा,
सच्छंदविउव्वियाभरणधारी ।
सुरअसुरवंदियाणं,
वहंति सीयं जिणिदाणं ॥

६. चलचपलकुण्डलधराः,
स्वच्छन्दविकृताभरणधारिणः ।
सुरासुरवन्दितानां,
वहन्ति शिबिकां जिनेन्द्राणाम् ॥

को धारण किए हुए, अपनी इच्छा से विनिर्मित आभरणों को धारण किए हुए, सुर-असुरों से वंदित जिनवरों की शिबिका को वहन करते हैं।

७. पुरओ वहंति देवा,
नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थिमेण असुरा,
गरुला पुण उत्तरे पासे ॥

७. पुरतो वहन्ति देवाः,
नागाः पुनः दक्षिणे पार्श्वे ।
पश्चिमेन असुराः,
गरुडाः पुनः उत्तरे पार्श्वे ॥

पूर्व पार्श्व में देवता, दक्षिण पार्श्व में नागकुमार, पश्चिम पार्श्व में असुर-कुमार और उत्तर पार्श्व में गरुड़ देव उसे वहन करते हैं।

२२५. १. उसभो य विणीयाए,
बारवईए अरिट्ठवरणेमी ।
अवसेसा तित्थयरा,
निक्खंता जम्मभूमीसु ॥

१. ऋषभश्च विनीतायाः,
द्वारवत्या अरिष्टवरनेमिः ।
अवशेषाः तीर्थंकराः,
निष्क्रान्ता जन्मभूमिभ्यः ॥

२२५. भगवान् ऋषभ ने विनीता नगरी से, अरिष्टनेमि ने द्वारवती से और शेष तीर्थङ्करों ने अपनी-अपनी जन्मभूमि से निष्क्रमण किया था—प्रव्रज्या के लिए घर से निकले थे।

२२६. १. सव्वेवि एगदूसेण,
णिग्गया जिणवरा चउवीसं ।
ण य णाम अण्णलिंगे,
ण य गिहिलिंगे कुलिंगे व ॥

१. सर्वेऽपि एकदूष्येण,
निर्गता जिनवराः चतुर्विंशतिः ।
न च नाम अन्यलिङ्गे,
न च गृहिलिङ्गे कुलिङ्गे वा ॥

२२६. सभी चौबीस तीर्थङ्कर एक दूष्य से निर्गत हुए थे, अन्यलिंग, गृहिलिंग या कुलिंग से नहीं।

२२७. १. एक्को भगवं वीरो,
पासो मल्ली य तिहिं-तिहिं सएहिं ।
भयवंपि वासुपुज्जो,
छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ॥

१. एको भगवान् वीरः,
पार्श्वः मल्ली च त्रिभिः त्रिभिः शतैः
भगवानपि वासुपूज्यः,
षड्भिः पुरुषशतैः निष्क्रान्तः ॥

२. उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं,
च खत्तियाणं च ।
चउहिं सहस्सेहिं उसभो,
सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥

२. उग्राणां भोगानां राजन्यानां,
च क्षत्रियाणां च ।
चतुर्भिः सहस्रैः ऋषभः,
शेषास्तु सहस्रपरिवाराः ॥

२२७. भगवान् महावीर अकेले प्रव्रजित हुए थे। पार्श्वनाथ और मल्लीनाथ तीन सौ-तीन सौ पुरुषों के साथ और भगवान् वासुपूज्य छह सौ पुरुषों के साथ प्रव्रजित हुए थे। भगवान् ऋषभ चार हजार उग्र, भोग (भोज), राजन्य और क्षत्रियों के साथ प्रव्रजित हुए थे और शेष तीर्थङ्कर हजार-हजार व्यक्तियों के साथ प्रव्रजित हुए थे।

२२८. १. सुमइत्थ णिच्चभत्तेण,
णिग्गओ वासुपुज्जो जिणो चउत्थेणं ।
पासो मल्ली वि य,
अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥

१. सुमतिः अत्र नित्यभक्तेन,
निर्गतः वासुपूज्यः जिनः चतुर्थेन ।
पार्श्वः मल्ल्यपि च,
अष्टमेन शेषास्तु षष्ठेन ॥

२२८. भगवान् सुमति नित्यभक्त (उपवास रहित) प्रव्रजित हुए, वासुपूज्य चतुर्थ भक्त (एक उपवास), पार्श्व और मल्ली अष्टम भक्त (तीन उपवास) और शेष बीस तीर्थङ्कर छट्ठ भक्त (दो उपवास) कर प्रव्रजित हुए थे।

२२९. एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमभिक्खादया होत्था, तं जहा—

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थंकराणां चतुर्विंशतिः प्रथमभिक्षादातारो बभूवुः, तद्यथा—

२२९. इन चौबीस तीर्थङ्करों को प्रथम भिक्षा देने वाले ये चौबीस व्यक्ति थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. सेज्जंसे बंभदत्ते,
सुरिददत्ते य इंददत्ते य।
तत्तो य धम्मसीहे,
सुमित्ते तह धम्ममित्ते य॥
२. पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद,
सुणंदे जये य विजये य।
पउमे य सोमदेवे,
महिंददत्ते य सोमदत्ते य॥
३. अपराजिय वीससेणे,
वीसतिमे होइ उसभसेणे य।
दिण्णे वरदत्ते,
धन्ने बहुले य आणुपुव्वीए॥
४. एते विसुद्धलेसा,
जिणवरभत्तीए पंजलिउडा य।
तं कालं तं समयं,
पडिलाभेई जिणवरिंदे॥

१. श्रेयांसः ब्रह्मदत्तः,
सुरेन्द्रदत्तश्च इन्द्रदत्तश्च।
ततश्च धर्मसिंहः,
सुमित्रस्तथा धर्ममित्रश्च॥
२. पुष्यः पुनर्वसुः पुण्य (पूर्ण?) नन्दः,
सुनन्दः जयश्च विजयश्च।
पद्मश्च सोमदेवः,
महेन्द्रदत्तश्च सोमदत्तश्च॥
३. अपराजितः विश्वसेनः,
विंशतितमः भवति ऋषभसेनश्च।
दत्तः वरदत्तः,
धन्यः बहुलश्च आनुपूर्व्या॥
४. एते विशुद्धलेश्याः,
जिनवरभक्त्या प्राञ्जलिपुटाश्च।
तं कालं तं समयं,
प्रतिलाभन्ति जिनवरेन्द्रान्॥

१. श्रेयांस	१३. विजय
२. ब्रह्मदत्त	१४. पद्म
३. सुरेन्द्रदत्त	१५. सोमदेव
४. इन्द्रदत्त	१६. महेन्द्रदत्त
५. धर्मसिंह	१७. सोमदत्त
६. सुमित्र	१८. अपराजित्त
७. धर्ममित्र	१९. विश्वसेन
८. पुष्य	२०. ऋषभसेन
९. पुनर्वसु	२१. दत्त
१०. पुण्यनन्द	२२. वरदत्त
११. सुनन्द	२३. धन्य
१२. जय	२४. बहुल[६४]।

इन विशुद्ध लेश्या वाले व्यक्तियों ने जिनवर भक्ति से प्राञ्जलिपुट होकर, उस काल और उस समय में जिनवरों को प्रतिलाभित किया—भिक्षा दी।

२३०. १. संवच्छरेण भिक्खा,
लद्धा उसभेण लोगणाहेण।
सेसेहिं बीयदिवसे,
लद्धाओ पढमभिक्खाओ॥
२. उसभस्स पढमभिक्खा,
खोयरसो आसि लोगणाहस्स।
सेसाणं परमण्णं,
अमयरसरसोवमं आसि॥
३. सव्वेसिंपि जिणाणं,
जहियं लद्धाओ पढमभिक्खातो।
तहियं वसुधाराओ,
सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ॥

१. संवत्सरेण भिक्षा,
लब्धा ऋषभेण लोकनाथेन।
शेषैः द्वितीयदिवसे,
लब्धाः प्रथमभिक्षाः॥
२. ऋषभस्य प्रथमभिक्षा,
क्षोदरस आसीत् लोकनाथस्य।
शेषाणां परमान्नं,
अमृतरसरसोपमं आसीत्॥
३. सर्वेषामपि जिनानां,
यत्र लब्धाः प्रथमभिक्षाः।
तत्र वसुधाराः,
शरीरमात्र्यः वृष्टाः॥

२३०. लोकनाथ ऋषभ ने प्रथम भिक्षा एक वर्ष पश्चात् प्राप्त की थी। शेष सभी तीर्थङ्करों ने प्रथम भिक्षा दूसरे दिन प्राप्त की थी[६५]।

लोकनाथ ऋषभ को प्रथम भिक्षा में इक्षुरस मिला और शेष तीर्थङ्करों को अमृतरसतुल्य परमान्न (क्षीर) प्राप्त हुआ था।

सभी जिनवरों को जहां प्रथम भिक्षा प्राप्त हुई वहां शरीर-प्रमाण सुवर्ण की वृष्टि हुई थी[६६]।

२३१. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था, तं जहा—

१. णग्गोह - सत्तिवण्णे,
साले पियए पियंगु छत्ताहे।
सिरिसे य णागरुक्खे,
माली य पिलंखुरुक्खे य॥
२. तेंदुग पाडल जंबू,
आसोत्थे खलु तहेव दधिवण्णे।
णंदीरुक्खे तिलए य,
अंबयरुक्खे असोगे य॥

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः चैत्यवृक्षाः बभूवुः, तद्यथा—

१. न्यग्रोध - सप्तपर्णौ,
शालः प्रियकः प्रियङ्गुः छत्राहः।
शिरीषश्च नागरुक्षः,
माली च प्लक्षरुक्षश्च॥
२. तिन्दुक - पाटल - जम्बू,
अश्वत्थः खलु तथैव दधिपर्णः।
नन्दीरुक्षस्तिलकश्च,
आम्रकरुक्षः अशोकश्च॥

२३१. चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस चैत्यवृक्ष[६७] थे, जैसे[६८]—

१. न्यग्रोध	९. माली
२. सप्तपर्ण	१०. प्लक्ष
३. शाल	११. तिंदुक
४. प्रियाल	१२. पाटल
५. प्रियंगु	१३. जंबु
६. छत्राक	१४. अश्वत्थ
७. शिरीष	१५. दधिपर्ण
८. नागवृक्ष	१६. नंदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. चंपय वउले य तहा,
वेडसिरुक्खे धायईरुक्खे।
साले य वड्ढमाणस्स,
चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥

३. चम्पकबकुलौ च तथा,
वेतसीरुक्षो धातकीरुक्षः ।
शालश्च वर्द्धमानस्य,
चैत्यरुक्षा जिनवराणाम् ॥

१७. तिलक २१. बकुल
१८. आम्र २२. वेतस
१९. अशोक २३. धातकी
२०. चम्पक २४. शाल ।

४. बत्तीसइं धणूइं,
चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स।
णिच्चोउगो असोगो,
ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ॥

४. द्वात्रिंशद् धनूंषि,
चैत्यरुक्षश्च वर्द्धमानस्य ।
नित्यर्त्तुकः अशोकः,
अवच्छन्नः शालरुक्षेण ॥

भगवान् वर्द्धमान का अशोक चैत्यवृक्ष बत्तीस धनुष्य ऊंचा, नित्य-ऋतु (सब ऋतुओं में समानरूप से फलाफूला) और शालवृक्ष से अवच्छन्न था।

५. तिण्णे व गाउयाइं,
चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स।
सेसाणं पुण रुक्खा,
सरीरतो बारसगुणा उ ॥

५. त्रीण्येव गव्यूतानि,
चैत्यरुक्षः जिनस्य ऋषभस्य ।
शेषाणां पुनः रुक्षाः,
शरीरतो द्वादशगुणास्तु ॥

जिनवर ऋषभ का चैत्यवृक्ष तीन गाउ ऊंचा था। शेष तीर्थंङ्करों के चैत्यवृक्ष उनके शरीर से बारह गुना ऊंचे थे।

६. सच्छत्ता सपडागा,
सवेइया तोरणेहिं उववेया।
सुरअसुरगरुलमहिया,
चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥

६. सच्छत्राः सपताकाः,
सवेदिकाः तोरणैः उपेताः ।
सुरअसुरगरुडमहिताः,
चैत्यरुक्षा जिनवराणाम् ॥

जिनवरों के चैत्यवृक्ष छत्र, पताका, वेदिका और तोरण सहित तथा सुर, असुर और गरुड़ देवों द्वारा पूजित थे।

२३२. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसीसा होत्था, तं जहा—

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः प्रथमशिष्याः बभूवुः, तद्यथा—

१३२. चौबीस तीर्थङ्करों के प्रथम शिष्य चौबीस थे, जैसे—

१. पढमेत्थ उसभसेणे,
बीए पुण होइ सीहसेणे उ।
चारू य वज्जणाभे,
चमरे तह सुव्वते विदब्भे ॥

२. दिण्णे वाराहे पुण,
आणंदे गोथुभे सुहम्मे य।
मंदर जसे अरिट्ठे,
चक्काउह सयंभु कुंभे य ॥

३. भिसए य इंदे कुंभे,
वरदत्त दिण्ण इंदभूती य।
उदितोदितकुलवंसा,
विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया ॥
तित्थप्पवत्तयाणं,
पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥

१. प्रथमोऽत्र ऋषभसेनः,
द्वितीयः पुनः भवति सिंहसेनस्तु !
चारुश्च वज्रनाभः,
चमरस्तथा सुव्रतः विदर्भः ॥

२. दत्तः वाराहः पुनः,
आनन्दः गो(कौ)स्तुभः सुधर्मा च।
मन्दरः यशाः अरिष्टः,
चक्रायुधः स्वयम्भूः कुम्भश्च ॥

३. भिषक् च इन्द्रः कुम्भः,
वरदत्तो दत्तः इन्द्रभूतिश्च ।
उदितोदितकुलवंशाः,
विशुद्धवंशाः गुणैः उपेताः ॥
तीर्थप्रवर्त्तकानां,
प्रथमाः शिष्याः जिनवराणाम् ॥

१. ऋषभसेन १३. मन्दर
२. सिंहसेन १४. यश
३. चारु १५. अरिष्ट
४. वज्रनाभ १६. चक्रायुध
५. चमर १७. स्वयंभू
६. सुव्रत १८. कुंभ
७. विदर्भ १९. भिषक्
८. दत्त २०. इन्द्र
९. वाराह २१. कुम्भ
१०. आनन्द २२. वरदत्त
११. गो (कौ) स्तुभ २३. दत्त
१२. सुधर्मा २४. इन्द्रभूति ।

तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों के प्रथम शिष्य उदितोदित कुल और वंश वाले, विशुद्ध वंश वाले और गुणों से उपेत थे।

२३३. एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसिस्सिणीओ होत्था, तं जहा—

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः प्रथमशिष्या आसन्, तद्यथा—

२३३. चौबीस तीर्थङ्करों के प्रथम शिष्याएं चौबीस थीं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. बंभी फग्गू सम्मा,
अतिराणी कासवी रई सोमा।
सुमणा वारुणि सुलसा,
धारिणि धरणी य धरणिधरा ॥

२. पउमा सिवा सुइ अंजू,
भावियप्पा य रक्खिया।
बंधू पुप्फवती चेव,
अज्जा धणिला य आहिया ॥

३. जक्खिणी पुप्फचूला य,
चंदणऽज्जा य आहिया।
उदितोदितकुलवंसा,
विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया।
तित्थप्पवत्तयाणं,
पढमा सिस्सी जिणवराणं ॥

१. ब्राह्मी फल्गुः शर्मा,
अतिराज्ञी काश्यपी रतिः सोमा।
सुमना वारुणी सुलसा,
धारणी धरणी च धरणिधरा ॥

२. पद्मा शिवा शुचिः अञ्जूः,
भावितात्मा च रक्षिका।
बन्धूः पुष्पवती चैव,
आर्या धनिला च आख्याता ॥

३. यक्षिणी पुष्पचूला च,
चन्दनार्या च आख्याता।
उदितोदितकुलवंशाः,
विशुद्धवंशाः गुणैः उपेताः।
तीर्थप्रवर्त्तकानां,
प्रथमाः शिष्याः जिनवराणाम् ॥

१. ब्राह्मी	१३. धरणिधरा
२. फल्गु	१४. पद्मा
३. शर्मा	१५. शिवा
४. अतिराज्ञी	१६. शुचि
५. काश्यपी	१७. अंजू
६. रति	१८. भावितात्मा रक्षिका
७. सोमा	१९. बन्धू
८. सुमना	२०. पुष्पवती
९. वारुणी	२१. आर्या धनिला
१०. सुलसा	२२. यक्षिणी
११. धारणी	२३. पुष्पचूला
१२. धरणी	२४ आर्या चन्दना[७०]।

तीर्थ-प्रवर्तक जिनवरों की प्रथम शिष्याएं उदितोदित कुलवंशवाली, विशुद्ध वंश वाली और गुणों से उपेत थीं।

चक्कवट्टि-पदं

चक्रवर्ति-पदम्

चक्रवर्ती-पद

२३४. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टि-पियरो होत्था, तं जहा—

१. उसभे सुमित्तविजए,
समुद्दविजए य अस्ससेणे य।
विस्ससेणे य सूरे,
सुदंसणे कत्तवीरिए य ॥

२. पउमुत्तरे महाहरी,
विजए राया तहेव य।
बम्हे बारसमे वुत्ते,
पिउनामा चक्कवट्टीणं ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां द्वादश चक्रवर्तिपितरो बभूवुः, तद्यथा—

१. ऋषभः सुमित्रविजयः,
समुद्रविजयश्च अश्वसेनश्च।
विश्वसेनश्च सूरः,
सुदर्शनः कार्त्तवीर्यश्च ॥

२. पद्मोत्तरः महाहरिः,
विजयः राजा तथैव च।
ब्रह्मा द्वादशः उक्तः,
पितृनामानि चक्रवर्तिनाम् ॥

२३४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्तियों के बारह पिता थे, जैसे—

१. ऋषभ	७. सुदर्शन
२. सुमित्रविजय	८. कार्त्तवीर्य
३. समुद्रविजय	९. पद्मोत्तर
४. अश्वसेन	१०. महाहरि
५. विश्वसेन	११. विजयराजा
६. सूर	१२. ब्रह्मा।[७१]

२३५. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमाए ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टि-मायरो होत्था, तं जहा—

१. सुमंगला जसवती,
भद्दा सहदेवी अइर सिरि देवी।
तारा जाला मेरा,
वप्पा चुलणी अपच्छिमा ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां द्वादश चक्रवर्तिमातरो बभूवुः, तद्यथा—

१. सुमंगला यशस्वती,
भद्रा सहदेवी अचिरा श्रीः देवी।
तारा ज्वाला मेरा,
वप्रा चुलनी अपश्चिमा ॥

१३५. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्तियों की बारह माताएं थीं, जैसे—

१. सुमंगला	७. देवी
२. यशस्वती	८. तारा
३. भद्रा	९. ज्वाला
४. सहदेवी	१०. मेरा
५. अचिरा	११. वप्रा
६. श्री	१२. चुलनी।

२३६. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमाए ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टी होत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां द्वादश चक्रवर्तिनो बभूवुः, तद्यथा—

२३६. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में बारह चक्रवर्ती हुए थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. भरहो सगरो मघवं,
सणंकुमारो य रायसद्दूलो।
संती कुंथू य अरो,
हवइ सुभूमो य कोरव्वो॥
२. नवमो य महापउमो,
हरिसेणो चेव रायसद्दूलो।
जयनामो य नरवई,
बारसमो बंभदत्तो य॥

१. भरतः सगरो मघवा,
सनत्कुमारश्च राजशार्दूलः।
शान्तिः कुन्थुश्च अरः,
भवति सुभूमश्च कौरव्यः॥
२. नवमश्च महापद्मः,
हरिषेणश्चैव राजशार्दूलः।
जयनामा च नरपतिः,
द्वादशः ब्रह्मदत्तश्च॥

१. भरत	७. अर
२. सगर	८. कुरुवंशज सुभूम
३. मघवा	९. महापद्म
४. राजशार्दूल सनत्कुमार	१०. राजशार्दूल हरिषेण
५. शान्ति	११. नरपति जय
६. कुन्थु	१२. ब्रह्मदत्त।[७२]

२३७. एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस इत्थिरयणा होत्था, तं जहा—
१. पढमा होइ सुभद्दा,
भद्दा सुणंदा जया य विजया य।
कण्हसिरि सूरसिरि,
पउमसिरि वसुंधरा देवी॥
लच्छिमई कुरुमई,
इत्थिरयणाण नामाइं॥

एतेषां द्वादशानां चक्रवर्त्तिनां द्वादश स्त्रीरत्नानि बभूवुः, तद्यथा—
१. प्रथमा भवति सुभद्रा,
भद्रा सुनन्दा जया च विजया च।
कृष्णश्रीः सूरश्रीः,
पद्मश्रीः वसुन्धरा देवी॥
लक्ष्मीमती कुरुमती,
स्त्रीरत्नानां नामानि॥

२३७. इन बारह चक्रवर्तियों के बारह स्त्री-रत्न थे, जैसे—

१. सुभद्रा	७. सूर्यश्री
२. भद्रा	८. पद्मश्री
३. सुनन्दा	९. वसुन्धरा
४. जया	१०. देवी
५. विजया	११. लक्ष्मीमती
६. कृष्णश्री	१२. कुरुमती।

बलदेव-वासुदेव-पदं

बलदेव-वासुदेव-पदम्

बलदेव-वासुदेव-पद

२३८. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेवपितरो होत्था, तं जहा—
१. पयावती य बंभे,
रोद्दे सोमे सिवेति य।
महसिहे अग्गिसिहे,
दसरहे नवमे य वसुदेवे॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां नव बलदेव-वासुदेवपितरो बभूवुः, तद्यथा—
१. प्रजापतिश्च ब्रह्मा,
रुद्रः सोमः शिव इति च।
महासिंहः अग्निसिंहश्च,
दशरथो नवमश्च वसुदेवः॥

२३८. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के नौ पिता थे, जैसे—

१. प्रजापति	६. महासिंह
२. ब्रह्मा	७. अग्निसिंह
३. रुद्र	८. दशरथ
४. सोम	९. वसुदेव।[७३]
५. शिव	

२३९. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव वासुदेव-मायरो होत्था, तं जहा—
१. मियावई उमा चेव,
पुहवी सीया य अम्मया।
लच्छिमती सेसवती,
केकई देवई इय॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां नव वासुदेवमातरो बभूवुः, तद्यथा—
१. मृगावती उमा चैव,
पृथ्वी सीता च अम्बका।
लक्ष्मीमती शेषवती,
कैकयी देवकी इति॥

२३९. जम्द्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में नौ वासुदेवों की नौ माताएं थीं, जैसे—

१. मृगावती	६. लक्ष्मीमती
२. उमा	७. शेषवती
३. पृथ्वी	८. कैकयी
४. सीता	९. देवकी।
५. अम्बका	

२४०. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए णव बलदेव मायरो होत्था, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां नव बलदेवमातरो बभूवुः, तद्यथा—

२४०. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में नौ बलदेवों की नौ माताएं थीं, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. भद्दा तह सुभद्दा य,
सुप्पभा य सुदंसणा।
विजया य वेजयंती,
जयंती अपराइया॥
णवमिया रोहिणी,
बलदेवाण मायरो॥

१. भद्रा तथा सुभद्रा च,
सुप्रभा च सुदर्शना।
विजया च वैजयन्ती,
जयन्ती अपराजिता॥
नवमिका रोहिणी,
बलदेवानां मातरः॥

१. भद्रा
२. सुभद्रा
३. सुप्रभा
४. सुदर्शना
५. विजया
६. वैजयन्ती
७. जयन्ती
८. अपराजिता
९. रोहिणी।

२४१. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे इमाए ओसप्पिणीए नव दसार-मंडला होत्था, तं जहा—उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी छायंसी कंता सोमा सुभगा पियदंसणा सुरूवा सुहसीला सुहाभिगमा सव्वजण-णयण-कंता ओहबला अतिबला महाबला अणिहता अपराइया सत्तुमद्दणा रिपुसहस्स-माण-महणा साणुक्कोसा अमच्छरा अचवला अचंडा मिय-मंजुल-पलाव-हसिया गंभीर-मधुर-पडिपुण्ण-सच्चवयणा अब्भुवगय-वच्छला सरण्णा लक्खणवंजण-गुणोववेया माणुम्माण - पमाणपडिपुण्ण - सुजात-सव्वंग-सुंदरंगा ससिसोमागार-कंत-पिय-दंसणा अमसणा पयंडदंडप्पयार-गंभीर-दरिसणिज्जा तालद्ध-ओव्विद्ध-गरुल-केऊ महाधणु-विकड्ढगा महासत्तसागरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा जुद्ध-कित्ति-पुरिसा विउलकुल-समुब्भवा महारयण-विहाडगा अद्धभरह-सामी सोमा रायकुल-वंस-तिलया अजिया अजियरहा हल-मुसल-कणग-पाणी संख-चक्क-गय-सत्ति-नंदगधरा पवरुज्जल-सुक्कंत-विमल-गोथुभ-तिरीडधारी कुंडल-उज्जोइयाणणा पुंडरीय-णयणा एकावलि-कंठलइयवच्छा सिरि-वच्छ-सुलंछणा वरजसा सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइत-पलंबसोभंत-

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां नव दशारमण्डलानि बभूवुः, तद्यथा—उत्तमपुरुषाः मध्यमपुरुषाः प्रधानपुरुषाः ओजस्विनः तेजस्विनः वर्चस्विनः यशस्विनः छायावन्तः कान्ताः सोमाः सुभगाः प्रियदर्शनाः सुरूपाः सुखशीलाः सुखाभिगमाः सर्वजननयनकान्ताः ओघबलाः अतिबलाः महाबलाः अनिहताः अपराजिताः शत्रुमर्दनाः रिपुसहस्रमान-मथनाः सानुक्रोशाः अमत्सराः अचपलाः अचण्डाः मित-मञ्जुल-प्रलाप-हसिताः गम्भीर - मधुर - प्रतिपूर्ण- सत्यवचनाः अभ्युपगत-वत्सलाः शरण्याः लक्षण-व्यञ्जन-गुणोपेताः मानोन्मान-प्रमाण-प्रतिपूर्ण - सुजात - सर्वाङ्गसुन्दराङ्गाः शशिसौम्याकार - कान्त - प्रिय-दर्शनाः अमर्षणाः प्रकाण्डदण्डप्रकार-गम्भीरदर्शनीयाः तालध्वजोद्विद्ध-गरुड-केतवः महाधनुर्विकर्षकाः महासत्त्व-सागराः दुर्द्धराः धनुर्धराः धीरपुरुषाः युद्ध-कीर्त्तिपुरुषाः विपुल-कुलसमुद्भवाः महारत्न-विघटकाः अर्द्धभरतस्वामिनः सोमाः राजकुलवंशतिलकाः अजिताः अजितरथाः हल-मुशल-कणक-पाणयः शङ्ख - चक्र - गदा - शक्ति- नन्दकधराः प्रवरोज्ज्वलशुक्लान्त - विमल-कौस्तुभ-किरीटधारिणः कुण्डल-उद्योतिताननाः पुण्डरीकनयनाः एकावली-कण्ठ-लगित-वक्षसः श्रीवत्स-सुलाञ्छनाः वरयशसः सर्वर्त्तुक-सुरभि-कुसुम - सुरचित-प्रलम्ब-शोभमान-कान्त-विकसच्चित्र-वरमाला-रचितवक्षसः अष्टशत-विभक्त-लक्षण-प्रशस्त - सुन्दर - विरचिताङ्गाङ्गाः

२४१. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में नौ दशारमंडल (वासुदेव और बलदेव का समुदाय) हुए थे, जैसे—उत्तम पुरुष, मध्यम[७४] पुरुष, प्रधान[७५] पुरुष, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, शोभायुक्त, कान्त, सोम, सुभग, प्रियदर्शन, सुरूप, सुख-शील, सुखाभिगम (सर्वजनगम्य), सभी जनों के चक्षुष्प्रिय, ओघ (अव्यवच्छिन्न) बल वाले, अति बल वाले, महाबल वाले, अनिहत (निरुपक्रम आयुष्य वाले), अपराजित, शत्रु का मर्दन करने वाले, हजारों शत्रुओं के मान को मथने वाले, दयालु, अमत्सर (गुणग्राही), अचपल, अचंड (मृदु), मित-मंजुल बोलने वाले, शरणागत के लिए वत्सल, शरण्य, लक्षण-व्यञ्जन और गुणों से उपेत, मान-उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले, चन्द्रमा की भांति सौम्याकार, कान्त और प्रियदर्शन वाले, कर्मठ, प्रकांड दंडनीति वाले, गंभीर भाव में दर्शनीय, तालध्वज वाले (बलदेव) तथा उच्छ्रितगरुडध्वज वाले (वासुदेव), बड़े-बड़े धनुष्यों को चढ़ाने वाले, महान् सत्व के सागर, दुर्धर, धनुर्धर, धीर पुरुष और युद्ध में यश प्राप्त करने वाले, विपुलकुल में उत्पन्न, महारत्न (वज्र) को अंगुष्ठ-तर्जनी से चूर्ण करने वाले, अर्ध भरत के स्वामी, सोम, राजकुलवंश के तिलक, अजित, अजेय रथ वाले, हल-मूशल (बलदेव के अस्त्र) तथा कणक (बाण)-शंख-चक्र-गदा, शक्ति और नंदक (वासुदेव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंत-विकसंत-चित्त-वरमालरइय - वच्छा अट्ठसय-विभत्त-लक्खण-पसत्थ-सुंदर-विरइयंगमंगा मत्त-गयवरिंद-ललिय - विक्कम- विल-सियगई सारय-नवथणियमधुर-गंभीर - कोंच-निग्घोस- दुंदुभिसरा कडिसुत्तगनीलपीय- कोसेयवाससा पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसभा मरुयवसभकप्पा अब्भहियं राय-तेय-लच्छीए दिप्प-माणा नीलग-पीतग-वसणा दुवे दुवे रामकेसवा भायरो होत्था, तं जहा—

मत्तगजवरेन्द्र- ललित-विक्रम-विलसित-गतयः शारद-नवस्तनितमधुरगम्भीर-कौञ्चनिर्घोष-दुन्दुभिस्वराः कटीसूत्रक-नील-पीत-कौशेयवाससः प्रवरदीप्त-तेजसः नरसिंहाः नरपतयः नरेन्द्राः नरवृषभाः मरुकवृषभकल्पाः अभ्यधिकं राज-तेजो-लक्ष्म्या दीप्यमानाः नीलक-पीतक-वसनाः द्वौ द्वौ रामकेशवौ भ्रातरौ बभूवतुः, तद्यथा—

के अस्त्र) को धारण करने वाले, प्रवर-उज्ज्वल-शुक्लांत और निर्मल कौस्तुभ मणि को मुकुट में धारण करने वाले, कुंडलों से उद्योतित मुख वाले तथा कमल की भांति विकसित नयन वाले थे। उनके गले में पहना हुआ एकावली हार वक्ष तक लटक रहा था। उनके वक्ष पर श्रीवत्स का चिन्ह था। वे यशस्वी थे। उनके वक्षस्थल पर सब ऋतुओं के सुरभि-कुसुमों से सुरचित, प्रलम्ब, शोभायमान, कमनीय, विकस्वर, विचित्र वर्ण वाली उत्तम माला थी। उनके अंगोपाङ्ग पृथक्-पृथक् एक सौ आठ लक्षणों से प्रशस्त और सुन्दर थे। उनकी गति मत्त गजवरेन्द्र के ललित विक्रम-(संचरण) विलास जैसी थी। उनका स्वर शरद ऋतु के नवगर्जारव, क्रौंचपक्षी के निर्घोष तथा दुंदुभिनाद जैसा मधुर-गंभीर था। वे कटिसूत्र तथा नील और पीत कौशेय वस्त्रों से प्रवर-दीप्त तेज वाले, नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र, नरवृषभ, मरुदेश के वृषभ तुल्य[76], अभ्यधिक राज्यतेज की लक्ष्मी से देदीप्यमान, नील और पीत वस्त्र वाले दो-दो राम और केशव भाई थे, जैसे—

संगहणी गाहा

१. तिविट्ठू य दुविट्ठू य,
सयंभू पुरिसुत्तमे।
पुरिससीहे तह पुरिसपुंडरीए,
दत्ते नारायणे कण्हे॥

२. अयले विजए भद्दे,
सुप्पभे य सुदंसणे।
आणंदे णंदणे पउमे,
रामे यावि अपच्छिमे॥

संग्रहणी गाथा

१. त्रिपृष्ठश्च द्विपृष्ठश्च,
स्वयम्भूः पुरुषोत्तमः।
पुरुषसिंहस्तथा पुरुषपुण्डरीकः,
दत्तः नारायणः कृष्णः॥

२. अचलो विजयो भद्रः,
सुप्रभश्च सुदर्शनः।
आनन्दः नन्दनः पद्मो,
रामश्चापि अपश्चिमः॥

त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुंडरीक, दत्त, नारायण और कृष्ण—ये नौ वासुदेव थे।

अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नंदन, पद्म और राम—ये नौ बलदेव थे।[77]

२४२. एतेसि णं णवण्हं बलदेव-वासु-देवाणं पुव्वभविया नव नव नाम-धेज्जा होत्था, तं जहा—

एतेषां नवानां बलदेववासुदेवानां पूर्वभविकानि नव नव नामधेयानि बभूवुः, तद्यथा—

२४२. इन नौ बलदेवों और नौ वासुदेवों के पूर्वभव के नौ-नौ नाम थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. विस्सभूई पव्वयए,
धणदत्त समुद्दत्त सेवाले।
पियमित्त ललियमित्ते,
पुणव्वसू गंगदत्ते य ॥

१. विश्वभूतिः पर्वतकः,
धनदत्तः समुद्रदत्तः शैवालः।
प्रियमित्रः ललितमित्रः,
पुनर्वसुः गङ्गदत्तश्च ॥

१. विश्वभूति
२. पर्वतक
३. धनदत्त
४. समुद्रदत्त
५. शैवाल
६. प्रियमित्र
७. ललितमित्र
८. पुनर्वसु
९. गंगदत्त।

२. एयाइं नामाइं,
पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं।
एत्तो बलदेवाणं,
जहक्कमं कित्तइस्सामि ॥

२. एतानि नामानि,
पूर्वभवे आसन् वासुदेवानाम्।
अतो बलदेवानां,
यथाक्रमं कीर्त्तयिष्यामि ॥

ये वासुदेवों के पूर्वभव के नाम थे। बलदेवों के नाम यथाक्रम कहूंगा—

३. विसनंदी सुबंधू य,
सागरदत्ते असोगललिए य।
वाराह धम्मसेणे,
अपराइय रायललिए य ॥

३. विषनन्दी सुबन्धुश्च,
सागरदत्तः अशोकः ललितश्च।
वाराहः धर्मसेनः,
अपराजितः राजललितश्च ॥

१. विषनंदी
२. सुबन्धु
३. सागरदत्त
४. अशोक
५. ललित
६. वाराह
७. धर्मसेन
८. अपराजित
९. राजललित।

२४३. एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभविया नव धम्मायरिया होत्था, तं जहा—

एतेषां नवानां वासुदेवानां पूर्वभविकाः नव धर्माचार्याः बभूवुः, तद्यथा—

२४३. इन नौ वासुदेवों के पूर्वभविक नौ धर्माचार्य थे, जैसे—

१. संभूत सुभद्दे सुदंसणे,
य सेयंसे कण्ह गंगदत्ते य।
सागरसमुद्दनामे,
दुमसेणे य णवमए ॥

१. सम्भूतः सुभद्रः सुदर्शनः,
च श्रेयांसः कृष्णः गंगदत्तश्च।
सागरसमुद्रनामानौ,
द्रुमसेनश्च नवमकः ॥

१. संभूत
२. सुभद्र
३. सुदर्शन
४. श्रेयान्स
५. कृष्ण
६. गंगदत्त
७. सागर
८. समुद्र
९. द्रुमसेन।

२. एते धम्मायरिया,
कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं।
पुव्वभवे आसिण्हं,
जत्थ निदाणाइं कासीय ॥

२. एते धर्माचार्याः,
कीर्त्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम्।
पूर्वभवे आसन्,
यत्र निदानान्यकार्षुः ॥

कीर्त्तिपुरुष वासुदेवों के ये नौ धर्माचार्य थे।
इन नौ वासुदेवों ने पूर्वभव में निदान किए थे।

२४४. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव निदाणभूमिओ होत्था, तं जहा—

एतेषां नवानां वासुदेवानां पूर्वभवे नव निदानभूम्यः बभूवुः, तद्यथा—

२४४. इन नौ वासुदेवों के पूर्वभव में नौ निदान[७८]-भूमियां थीं, जैसे—

१. महुरा य कणगवत्थू,
सावत्थी पोयणं च रायगिहं।
कायंदी कोसंबी,
मिहिलपुरी हत्थिणपुरं च ॥

१. मथुरा च कनकवस्तु,
श्रावस्ती पोतनं च राजगृहम्।
काकन्दी कौशाम्बी,
मिथिलापुरी हास्तिनपुरं च ॥

१. मथुरा
२. कनकवस्तु
३. श्रावस्ती
४. पोतनपुर
५. राजगृह
६. काकन्दी
७. कौशांबी
८. मिथिलापुरी
९. हास्तिनपुर।

२४५. एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव नियाणकारणा होत्था, तं जहा—

एतेषां नवानां वासुदेवानां नव निदानकारणानि बभूवुः, तद्यथा—

२४५. इन नौ वासुदेवों के निदान करने के नौ कारण थे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. गावी जुवे य संगामे,
इत्थी पराइयो रंगे।
भज्जाणुराग गोट्ठी,
परड्ढी माउया इय॥

१. गौः द्यूतञ्च संग्रामः,
स्त्री पराजितो रङ्गे।
भार्यानुरागः गोष्ठी,
परर्द्धिः मातृका इति॥

१. गाय के द्वारा गिरना २. संग्राम में पराजय ३. द्यूत में पराजय[७९] ४. स्त्री का हरण ५. रण में पराजय ६. भार्या का हरण ७. गोष्ठी (राजसभा) में अपमान की अनुभूति ८. पर-ऋद्धि का प्रसंग ९. माता का अपमान[८०]।

२४६. एएसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव पडिसत्तू होत्था, तं जहा—

१. अस्सग्गीवे तारए,
मेरए महुकेढवे निसुंभे य।
बलि पहराए (रणे?) तह,
रावणे य नवमे जरासंधे॥

२. एए खलु पडिसत्तू,
कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं।
सव्वे वि चक्कजोही,
सव्वे वि हया सचक्केहिं॥

एतेषां नवानां वासुदेवानां नव प्रतिशत्रवो बभूवुः, तद्यथा—

१. अश्वग्रीवः तारकः,
मेरको मधुकैटभः निशुम्भश्च।
बलिः प्रभराजः (प्रहरणः?) तथा,
रावणश्च नवमो जरासन्धः॥

२. एते खलु प्रतिशत्रवः,
कीर्त्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम्।
सर्वेपि चक्रयोधिनः,
सर्वेपि हताः स्वचक्रैः॥

२४६. इन नौ वासुदेवों के नौ प्रतिशत्रु थे, जैसे—

१. अश्वग्रीव	६. बलि
२. तारक	७. प्रभराज[८१]
३. मेरक	८. रावण
४. मधुकैटभ	९. जरासंध[८२]।
५. निशुंभ	

ये कीर्त्तिपुरुष वासुदेवों के प्रतिशत्रु थे। ये सब चक्र-योधी थे और ये सब अपने ही चक्र से वासुदेव द्वारा मारे गए।

२४७. १. एक्को य सत्तमाए,
पंच य छट्ठीए पंचमा एक्को।
एक्को य चउत्थीए,
कण्हो पुण तच्चपुढवीए॥

२. अणिदाणकडा रामा,
सव्वेवि य केसवा नियाणकडा।
उड्ढंगामी रामा,
केसव सव्वे अहोगामी॥

३. अट्ठंतकडा रामा,
एगो पुण बंभलोयकप्पंमि।
एक्का से गब्भवसही,
सिज्झिस्सइ आगमेस्साणं॥

१. एकश्च सप्तम्यां,
पञ्च च षष्ठ्यां पंचम्यां एकः।
एकश्च चतुर्थ्यां,
कृष्णः पुनस्तृतीयपृथिव्याम्॥

२. अनिदानकृता रामाः,
सर्वेपि च केशवा निदानकृताः।
ऊर्ध्वगामिनो रामाः,
केशवाः सर्वेऽधोगामिनः॥

३. अष्टान्तकृता रामा,
एकः पुनः ब्रह्मलोककल्पे।
एका तस्य गर्भवसतिः,
सेत्स्यति आगमिष्यताम् (मध्ये)॥

२४७. काल धर्म को प्राप्त होकर एक वासुदेव सातवीं पृथ्वी में, पांच छट्ठी पृथ्वी में, एक पांचवी पृथ्वी में, एक चौथी पृथ्वी में और कृष्ण तीसरी पृथ्वी में गए।

सभी राम (बलदेव) निदान किए बिना होते हैं और वे सभी ऊर्ध्वगामी होते हैं। सभी केशव (वासुदेव) निदान-पूर्वक होते हैं और वे सभी अधोगामी होते हैं।

आठ राम (बलदेव) अंतकृत (मोक्ष-गामी) हुए और एक (बलभद्र) ब्रह्मलोक कल्प में उत्पन्न हुआ। वह आगामी काल में एक गर्भवास कर सिद्ध होगा।

एरवय-तित्थगर-पदं

ऐरवत-तीर्थंकर-पदम्

ऐरवत-तीर्थंकर-पद

२४८. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तं जहा—

१. चंदाणणं सुचंदं च,
अग्गिसेणं च नंदिसेणं च।
इसिदिण्णं वयहारिं,
वंदिमो सामचंदं च॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे ऐरवते वर्षे अस्यां अवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिः तीर्थंकराः बभूवुः, तद्यथा—

१. चन्द्राननं सुचन्द्रं च,
अग्निषेणं च नन्दिषेणं च।
ऋषिदत्तं व्रतधारिणं,
वन्दामहे श्यामचन्द्रं च॥

२४८. जम्बूद्वीप द्वीप के ऐरवत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थंकर हुए थे, जैसे—

१. चन्द्रानन	५. ऋषिदत्त
२. सुचन्द्र	६. व्रतधारी
३. अग्निषेण	७. श्यामचन्द्र
४. नंदिषेण	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. वंदामि जुत्तिसेणं,
अजियसेणं तहेव सिवसेणं ।
बुद्धं च देवसम्मं,
सययं निक्खित्तसत्थं च ॥

३. असंजलं जिणवसहं,
वंदे य अणंतयं अमियणाणि ।
उवसंतं च धुयरयं,
वंदे खलु गुत्तिसेणं च ॥

४. अतिपासं च सुपासं,
देवसरवंदियं च मरुदेवं ।
णिव्वाणगयं च धरं,
खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥

५. जियरागमग्गिसेणं,
वंदे खीणरयमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसियपेज्जदोसं च,
वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥

२. वन्दे युक्तिषेणं,
अजितसेनं तथैव शिवसेनम् ।
बुद्धं च देवशर्माणं,
सततं निक्षिप्तशस्त्रं च ॥

३. असंज्वलं जिनवृषभं,
वन्दे च अनन्तकं अमितज्ञानिनम् ।
उपशान्तं च धुतरजसं,
वन्दे खलु गुप्तिषेणं च ॥

४. अतिपार्श्वं च सुपार्श्वं,
देवेश्वरवन्दितं च मरुदेवम् ।
निर्वाणगतं च धरं,
क्षीणदुःखं श्यामकोष्ठं च ॥

५. जितरागं अग्निषेणं,
वन्दे क्षीणरजसं अग्निपुत्रं च ।
व्यवकृष्ट प्रेयो दोषं च,
वारिषेणं गतं सिद्धिम् ॥

८. युक्तिषेण
९. अजितसेन
१०. शिवसेन
११. देवशर्मा
१२. निक्षिप्तशस्त्र
१३. असंज्वल
१४. अनन्तक
१५. उपशान्त
१६. गुप्तिषेण
१७. अतिपार्श्व
१८. सुपार्श्व
१९. मरुदेव
२०. धर
२१. श्यामकोष्ठ
२२. अग्निषेण
२३. अग्निपुत्र
२४. वारिषेण[८१] ।

भावि-कुलगर-पदं

भावि-कुलकर-पदम्

भावी-कुलकर-पद

२४९. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा भविस्संति, तं जहा—

१. मित्तवाहणे सुभूमे य,
सुप्पभे य सयंपभे ।
दत्ते सुहुमे सुबंधू य,
आगमेस्साण होक्खति ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां सप्त कुलकराः भविष्यन्ति, तद्यथा—

१. मित्रवाहनः सुभूमश्च,
सुप्रभश्च स्वयंप्रभः ।
दत्तः सूक्ष्मः सुबन्धुश्च,
आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यन्ति ॥

२४९. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में सात कुलकर होंगे, जैसे—

१. मित्रवाहन
२. सुभूम
३. सुप्रभ
४. स्वयंप्रभ
५. दत्त
६. सूक्ष्म
७. सुबंधु ।[८४]

२५०. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे आगमिस्साए ओसप्पिणीए दस कुलगरा भविस्संति, तं जहा—

१. विमलवाहणे सीमंकरे,
सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे ।
दढधणू दसधणू,
सयधणू पडिसूई संमूइत्ति ॥

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे आगमिष्यन्त्यां अवसर्पिण्यां दश कुलकराः भविष्यन्ति, तद्यथा—

१. विमलवाहनः सीमंकरः,
सीमंधरः क्षेमंकरः क्षेमंधरः ।
दृढधनुः दशधनुः,
शतधनुः प्रतिश्रुतिः सन्मतिः ॥

२५०. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी अवसर्पिणी में दस कुलकर होंगे, जैसे—

१. विमलवाहन
२. सीमंकर
३. सीमंधर
४. क्षेमंकर
५. क्षेमंधर
६. दृढधनु
७. दशधनु
८. शतधनु
९. प्रतिश्रुति
१०. सन्मति ।[८५]

भावि-तित्थगर-पदं

भावि-तिर्थकर-पदम्

भावी-तीर्थंकर-पद

२५१. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा भविस्संति, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां चतुर्विंशतिस्तीर्थंकराः भविष्यन्ति, तद्यथा—

२५१. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. महापउमे सूरदेवे,
सुपासे य सयंपभे ।
सव्वाणुभूई अरहा,
देवउत्ते य होक्खति ।।

२. उदए पेढालपुत्ते य,
पोट्टिले सतए ति य ।
मुणिसुव्वए य अरहा,
सव्वभावविदू जिणे ।।

३. अममे णिक्कसाए य,
निप्पुलाए य निम्ममे ।
चित्तउत्ते समाही य,
आगमिस्साए होक्खइ ।।

४. संवरे अणियट्टी य,
विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा,
अणंतविजए ति य ।।

५. एए वुत्ता चउवीसं,
भरहे वासम्मि केवली ।
आगमेस्साण होक्खंति,
धम्मतित्थस्स देसगा ।।

१. महापद्मः सूरदेवः,
सुपार्श्वश्च स्वयंप्रभः ।
सर्वानुभूतिः अर्हन्,
देवपुत्रश्च भविष्यति ।।

२. उदकः पेढालपुत्रश्च,
पोट्टिलः शतक इति च ।
मुनिसुव्रतश्च अर्हन्,
सर्वभावविद् जिनः ।।

३. अममः निष्कषायश्च,
निष्पुलाकश्च निर्ममः ।
चित्रगुप्तः समाधिश्च,
आगमिष्यन्त्यां भविष्यति ।।

४. संवरः अनिवर्तिश्च,
विजयः विमल इति च ।
देवोपपातः अर्हन्,
अनन्तविजय इति च ।।

५. एते उक्ताश्चतुर्विंशतिः,
भरते वर्षे केवलिनः ।
आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यन्ति,
धर्मतीर्थस्य देशकाः ।।

१. महापद्म	१३ अमम
२. सूरदेव	१४ निष्कषाय
३. सुपार्श्व	१५. निष्पुलाक
४. स्वयंप्रभ	१६. निर्मम
५. सर्वानुभूति	१७ चित्रगुप्त
६. देवपुत्र	१८. समाधि
७. उदक	१९. संवर
८. पेढालपुत्र	२०. अनिवर्ति
९. पोट्टिल	२१. विजय
१०. शतक	२२. विमल
११. मुनिसुव्रत	२३. देवोपपात
१२. सर्वभावविद्	२४. अनन्तविजय ।[८६]

ये चौबीस तीर्थङ्कर आगामी काल में भरतक्षेत्र में धर्मतीर्थ के उपदेशक होंगे ।

२५२. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं पुव्वभविया चउवीसं नामधेज्जा भविस्संति, तं जहा—

१. सेणिय सुपास उदए,
पोट्टिल अणगारे तह दढाऊ य ।
कत्तिय संखे य तहा,
नंद सुनंदे सतए य बोद्धव्वा ।।

२. देवई च्चेव सच्चइ,
तह वासुदेव बलदेवे ।
रोहिणि सुलसा चेव,
तत्तो खलु रेवई चेव ।।

३. तत्तो हवइ मिगाली,
बोद्धव्वे खलु तहा भयाली य ।
दीवायणे य कण्हे,
तत्तो खलु नारए चेव ।।

४. अंबडे दारुमडे य,
साईबुद्धे य होइ बोद्धव्वे ।
उस्सप्पिणी आगमेस्साए,
तित्थगराणं तु पुव्वभवा ।।

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां पूर्वभविकानि चतुर्विंशतिः नामधेयानि भविष्यन्ति, तद्यथा—

१. श्रेणिकः सुपार्श्वः उदकः,
पोट्टिलः अनगारस्तथा दृढायुश्च ।
कार्त्तिकः शङ्खश्च तथा,
नन्दः सुनन्दः शतकश्च बोद्धव्याः ।।

२. देवकी चैव सत्यकी,
तथा वासुदेवः बलदेवः ।
रोहिणी सुलसा चैव,
ततः खलु रेवती चैव ।।

३. ततो भवति मृगालिः,
बोद्धव्यः खलु तथा भयालिश्च ।
द्वीपायनश्च कृष्णः,
ततः खलु नारदश्चैव ।।

४. अम्मडः दारुमडश्च,
स्वातिबुद्धश्च भवति बोद्धव्यः ।
उत्सर्पिण्यां आगमिष्यन्त्यां,
तीर्थकराणां तु पूर्वभवाः ।।

१५२. इन चौबीस तीर्थङ्करों के पूर्वभविक नाम चौबीस थे, जैसे—

१. श्रेणिक	१३. वासुदेव
२. सुपार्श्व	१४. बलदेव
३. उदक	१५. रोहिणी
४. पोट्टिल अनगार	१६. सुलसा
५. दृढायु	१७. रेवती
६. कार्तिक	१८. मृगाली
७. शंख	१९. भयाली
८. नंद	२०. कृष्णद्वीपायन
९. सुनंद	२१. नारद
१०. शतक	२२. अम्मड़
११. देवकी	२३. दारुमड
१२. सत्यकी	२४. स्वातिबुद्ध ।[८७]

आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले तीर्थङ्करों के ये पूर्वभविक नाम हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५३. एतेसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पियरो भविस्संति, चउवीसं मायरो भविस्संति, चउवीसं पढमसीसा भविस्संति, चउवीसं पढमसिस्सिणीओ भविस्संति, चउवीसं पढमभिक्खादा भविस्संति, चउवीसं चेइयरुक्खा भविस्संति।

एतेषां चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणां चतुर्विंशतिः पितरो भविष्यन्ति, चतुर्विंशतिः मातरो भविष्यन्ति, चतुर्विंशतिः प्रथमशिष्याः भविष्यन्ति, चतुर्विंशतिः प्रथमशिष्याः भविष्यन्ति, चतुर्विंशतिः प्रथमभिक्षादाः भविष्यन्ति, चतुर्विंशतिः चैत्यवृक्षाः भविष्यन्ति ।

२५३. इन चौबीस तीर्थङ्करों के चौबीस पिता, चौबीस माताएं, चौबीस प्रथम-शिष्य, चौबीस प्रथम-शिष्याएं, चौबीस प्रथम-भिक्षादायक और चौबीस चैत्यवृक्ष होंगे।

भावि-चक्कवट्टि-पदं

भावि-चक्रवर्त्ति-पदम्

भावी-चक्रवर्ती-पद

२५४. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टी भविस्संति, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां द्वादश चक्रवर्त्तिनो भविष्यन्ति, तद्यथा—

२५४. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे, जैसे—

संगहणी गाहा

१. भरहे य दीहदंते,
गूढदंते य सुद्धदंते य।
सिरिउत्ते सिरिभूई,
सिरिसोमे य सत्तमे ॥
२. पउमे य महापउमे,
विमलवाहणे विपुलवाहणे चेव।
रिट्ठे बारसमे वुत्ते,
आगमेसा भरहाहिवा ॥

संग्रहणी गाथा

१. भरतश्च दीर्घदन्तः,
गूढदन्तश्च शुद्धदन्तश्च ।
श्रीपुत्रः श्रीभूतिः ।।
श्रीसोमश्च सप्तमः ॥
२. पद्मश्च महापद्मः,
विमलवाहनः विपुलवाहनश्चैव ।
रिष्टः द्वादशः उक्तः,
आगमिष्यन्तो भरताधिपाः ॥

१. भरत	७. श्रीसोम
२. दीर्घदन्त	८. पद्म
३. गूढदन्त	९. महापद्म
४. शुद्धदन्त	१०. विमलवाहन
५. श्रीपुत्र	११. विपुलवाहन
६. श्रीभूति	१२. रिष्ट।''

२५५. एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति।

एतेषां द्वादशानां चक्रवर्तिनां द्वादश पितरो भविष्यन्ति, द्वादश मातरो भविष्यन्ति द्वादश स्त्रीरत्नानि भविष्यन्ति ।

२५५. इन बारह चक्रवर्तियों के बारह पिता, बारह माताएं और बारह स्त्री-रत्न होंगे।

भावि-बलदेव-वासुदेव-पदं

भावि-बलदेव-वासुदेव-पदम्

भावी-बलदेव-वासुदेव-पद

२५६. जंबुद्दीवे णं दीवे भरहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए नव बलदेव-वासुदेवपियरो भविस्संति, नववासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति, नव दसारमंडला भविस्संति, तं जहा—

उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी एवं सो चेव वण्णओ भाणियव्वो जाव नीलग-पीतग-वसणा दुवे-दुवे रामकेसवा भायरो भविस्संति, तं जहा—

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां नव बलदेव-वासुदेवपितरो भविष्यन्ति, नव वासुदेवमातरो भविष्यन्ति, नव बलदेवमातरो भविष्यन्ति, नव दशारमण्डलानि भविष्यन्ति, तद्यथा—

उत्तमपुरुषाः मध्यमपुरुषाः प्रधानपुरुषाः ओजस्विनः तेजस्विनः एवं स चैव वर्णकः भणितव्यः यावत् नीलक-पीतक-वसनाः द्वौ द्वौ राम-केशवौ भ्रातरौ भविष्यतः, तद्यथा—

२५६. जम्बूद्वीप द्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में नौ बलदेव-वासुदेवों के नौ पिता, नौ वासुदेवों की नौ माताएं, नौ बलदेवों की नौ माताएं और नौ दशारमण्डल होंगे, जैसे—

उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष, प्रधानपुरुष, ओजस्वी, तेजस्वी ''यावत् नील-पीत वस्त्र वाले दो-दो राम और केशव भाई होंगे, जैसे—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगहणी गाहा

१. नंदे य नंदमित्ते,
दीहबाहू तहा महाबाहू ।
अइबले महाबले,
बलभद्दे य सत्तमे ।।

२. दुविट्ठू य तिविट्ठू य,
आगमेसाण वण्हिणो ।
जयंते विजय भद्दे,
सुप्पभे य सुदंसणे ।
आणंदे नंदणे पउमे,
संकरिसणे य अपच्छिमे ।।

संग्रहणी गाथा

१. नन्दश्च नन्दमित्रः,
दीर्घबाहुस्तथा महाबाहुः ।
अतिबलः महाबलः,
बलभद्रश्च सप्तमः ।।

२. द्विपृष्ठश्च त्रिपृष्ठश्च,
आगमिष्यतां (मध्ये) वृष्णयः ।
जयन्तः विजयः भद्रः,
सुप्रभश्च सुदर्शनः ।
आनन्दः नन्दनः पद्मः,
संकर्षणश्च अपश्चिमः ।।

नंद, नंदमित्र, दीर्घबाहु, महाबाहु, अतिबल, महाबल, बलभद्र, द्विपृष्ठ और त्रिपृष्ठ—ये नौ वासुदेव होंगे ।

जयंत, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म और संकर्षण—ये नौ बलदेव होंगे ।[८९]

२५७. एएसि णं नवण्हं बलदेव-वासुदेवाणं पुव्वभविया णव नामधेज्जा भविस्संति, नव धम्मायरिया भविस्संति, नव नियाणभूमीओ भविस्संति, नव नियाणकारणा भविस्संति, नव पडिसत्तू भविस्संति, तं जहा—

१. तिलए य लोहजंघे,
वरइजंघे य केसरी पहराए ।
अपराइए य भीमे,
महाभीमे य सुग्गीवे ।।

२. एए खलु पडिसत्तू,
कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं ।
सव्वेवि चक्कजोहीं,
हम्मिहिंति सचक्केहिं ।।

एतेषां नव बलदेव-वासुदेवानां पूर्वभविकानि नव नामधेयानि भविष्यन्ति, नव धर्माचार्याः भविष्यन्ति, नव निदानभूम्यः भविष्यन्ति, नव निदानकारणानि भविष्यन्ति, नव प्रतिशत्रवः भविष्यन्ति, तद्यथा—

१. तिलकश्च लोहजङ्घः,
वज्रजङ्घश्च केसरी प्रभराजः ।
अपराजितश्च भीमः,
महाभीमश्च सुग्रीवः ।।

२. एते खलु प्रतिशत्रवः,
कीर्तिपुरुषाणां वासुदेवानाम् ।
सर्वेऽपि चक्रयोधिनः,
वधिष्यन्ते स्वचक्रैः ।।

२५७. इन नौ बलदेव-वासुदेवों के नौ-नौ पूर्वभविक नाम, नौ धर्माचार्य, नौ निदानभूमियां, नौ निदान-कारण और नौ प्रतिशत्रु होंगे, जैसे—

१. तिलक ६. अपराजित
२. लोहजंघ ७. भीम
३. वज्रजंघ ८. महाभीम
४. केसरी ९. सुग्रीव ।
५. प्रभराज

ये कीर्तिपुरुष वासुदेवों के प्रतिशत्रु होंगे । ये सब चक्र-योधी होंगे और ये सब अपने ही चक्र से वासुदेव द्वारा मारे जायेंगे ।

एरवय-भावि-तित्थगर-पदं

ऐरवत-भावि-तीर्थंकर-पदम्

ऐरवत-भावी-तीर्थंकर-पद

२५८. जंबुद्दीवे णं दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीसं तित्थकरा भविस्संति, तं जहा—

१. सुमंगले य सिद्धत्थे,
णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा,
आगमिस्साण होक्खइ ।।

जम्बूद्वीपे द्वीपे ऐरवते वर्षे आगमिष्यन्त्यां उत्सर्पिण्यां चतुर्विंशतिः तीर्थंकरा भविष्यन्ति, तद्यथा—

१. सुमङ्गलश्च सिद्धार्थः,
निर्वाणश्च महायशाः ।
धर्मध्वजश्च अर्हन्,
आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यति ।।

२५८. जम्बूद्वीप द्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे, जैसे—

१. सुमंगल
२. सिद्धार्थ
३. निर्वाण
४. महायश
५. धर्मध्वज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली। सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।।	२. श्रीचन्द्रः पुष्पकेतुः, महाचन्द्रश्च केवली। श्रुतसागरश्च अर्हन्, आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यति ।।	६. श्रीचन्द्र ७. पुष्पकेतु ८. महाचन्द्र ९. श्रुतसागर
३. सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली। सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।।	३. सिद्धार्थः पुण्यघोषश्च, महाघोषश्च केवली। सत्यसेनश्च अर्हन्, आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यति ।।	१०. पुण्यघोष ११. महाघोष १२. सत्यसेन १३. शूरसेन
४. सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली। सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ।।	४. शूरसेनश्च अर्हन्, महासेनश्च केवली। सर्वानन्दश्च अर्हन्, देवपुत्रश्च भविष्यति ।।	१४. महासेन १५. सर्वानन्द १६. देवपुत्र १७. सुपार्श्व
५. सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले। अरहा अणंतविजए ।। आगमिस्साण होक्खइ ।।	५. सुपार्श्वः सुव्रतः अर्हन्, अर्हन् च सुकौशलः। अर्हन् अनन्तविजयः, आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यति ।	१८. सुव्रत १९. सुकौशल २०. अनन्तविजय २१. विमल
६. विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले। देवाणंदे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।।	६. विमलः उत्तरः अर्हन्, अर्हन् च महाबलः। देवानन्दश्च अर्हन्, आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यति ।।	२२. उत्तर २३. महाबल २४. देवानन्द।
७. एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली। आगमिस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा।	७. एते उक्ताश्चतुर्विंशतिः, ऐरवते केवलिनः। आगमिष्यतां (मध्ये) भविष्यन्ति, धर्मतीर्थस्य देशकाः ।।	ये चौबीस तीर्थङ्कर आगामी उत्सर्पिणी में ऐरवत क्षेत्र में धर्म-तीर्थ के उपदेशक होंगे।[10]

एरवय-भावि-चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-पदं

ऐरवत-भावि-चक्रवर्ति-बलदेव-वासुदेव-पदम्

ऐरवत-भावी-चक्रवर्ती-बलदेव-वासुदेव-पद

२५९. बारस चक्कवट्टी भविस्संति, बारस चक्कवट्टिपियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति।

नव बलदेव-वासुदेवपियरो भविस्संति, णव वासुदेवमायरो भविस्संति, णव बलदेवमायरो भविस्संति, णव दसारमंडला भविस्संति, उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा जाव दुवे दुवे रामकेसवा भायरो भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, नव पुव्वभवणामधेज्जा, णव

द्वादश चक्रवर्तिनो भविष्यन्ति, द्वादश चक्रवर्तिपितरा भविष्यन्ति, द्वादश मातरो भविष्यन्ति, द्वादश स्त्रीरत्नानि भविष्यन्ति।

नव बलदेव-वासुदेव-पितरो भविष्यन्ति, नव वासुदेवमातरो भविष्यन्ति, नव बलदेवमातरो भविष्यन्ति, नव दशारमण्डलानि भविष्यन्ति। उत्तमपुरुषाः मध्यमपुरुषाः प्रधानपुरुषाः यावत् द्वौ द्वौ राम-केशवौ भ्रातरौ भविष्यतः। नव प्रतिशत्रवो भविष्यन्ति, नव पूर्वभव-नामधेयानि, नव धर्माचार्याः, नव निदानभूम्यः, नव निदानकारणानि,

२५९. बारह चक्रवर्ती, उनके बारह पिता, बारह माताएं और बारह स्त्रीरत्न होंगे।

नौ बलदेव-वासुदेवों के नौ पिता, नौ वासुदेवों की नौ माताएं, नौ बलदेवों की नौ माताएं और नौ दशारमण्डल होंगे। उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष, प्रधानपुरुष यावत् दो-दो राम और केशव भाई होंगे। उनके नौ प्रतिशत्रु, पूर्वभव के नौ नाम, नौ धर्माचार्य, नौ निदान-भूमियां और नौ निदान-कारण होंगे। एक बलदेव का देवलोक से पुनरागमन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मायरिया, णव णियाणभूमीओ, णव णियाणकारणा, आयाए, एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा।

आयात, ऐरवते आगमिष्यन्त्यां भणितव्याः।

और फिर मोक्षगमन होगा। ये सब आगामी काल में ऐरवत क्षेत्र में होंगे।

२६०. एवं दोसुवि आगमिस्साए भाणियव्वा।

एवं द्वयो रपि आगमिष्यन्त्यां भणितव्याः।

२६०. इसी प्रकार आगामीकाल में दोनों क्षेत्रों (भरत और ऐरवत) में यह सब प्रतिपाद्य है।

निक्खेव-पदं

निक्षेप-पदम्

निक्षेप-पद

२६१. इच्चेयं एवमाहिज्जति, तं जहा—कुलगरवंसेति य, एवं तित्थगरवंसेति य, चक्कवट्टिवंसेति य दसारवंसेति य, गणधरवंसेति य, इसिवंसेति य, जतिवंसेति य, मुणिवंसेति य, सुतेति वा, सुतंगेति वा, सुयसमासेति वा, सुयखंधेति वा, समाएति वा संखेति वा। समत्तमंगमक्खायं अज्झयणं
—त्ति बेमि।

इत्येतत् एवमाह्रीयते, तद्यथा—कुलकरवंशः इति च, एवं तीर्थकरवंशः इति च, चक्रवर्तिवंशः इति च, दशारवंश इति च, गणधरवंशः इति च, ऋषिवंशः इति च, यतिवंशः इति च, मुनिवंशः इति च, श्रुतं इति वा, श्रुतांग इति वा, श्रुतसमासः इति वा, श्रुतस्कन्धः इति वा, समवायः इति वा, संख्या इति वा। समस्तमङ्गमाख्यातं अध्ययनम्।
—इति ब्रवीमि।

२६१. इस प्रकार उक्त अर्थाधिकारों के कारण प्रस्तुत सूत्र के निम्न नाम फलित होते हैं, जैसे—कुलकरवंश, तीर्थङ्करवंश, चक्रवर्तीवंश, दशारवंश, गणधरवंश, ऋषिवंश, यतिवंश, मुनिवंश, श्रुत, श्रुतांग, श्रुतसमास, श्रुतस्कन्ध, समवाय और संख्या।
प्रस्तुत अंग समस्त तथा अध्ययनरूप में आख्यात है।[११]
—ऐसा मैं कहता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिप्पण

१. तीन सौ धनुष्य से कुछ अधिक (सातिरेगाणि तिण्णि धणुसयाणि) सू० १३ :

जब चरमशरीरी व्यक्ति शैलेशीकरण करता है तब शरीर के शून्य स्थान को पूरित कर वह अपने शरीर की अवगाहना का १/३ भाग संकुचित करता है। उसके जीव-प्रदेश तब सघन हो जाते हैं। वह शरीर की अवगाहना के २/३ भाग से सिद्ध गति को प्राप्त होता है। प्रस्तुत सूत्र में सातिरेक तीन सौ धनुष्य का अर्थ है—३३३. १/३ धनुष्य। यह सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है।[1]

२. छह सौ धनुष्य ऊंचे (छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं) सू० ३५ :

इस अवसर्पिणी में सात कुलकर हुए थे। उनमें अभिचन्द्र चौथे कुलकर थे। वृत्तिकार ने उनकी ऊंचाई ६५० धनुष्य मानी है।[2] इससे यह संभावना की जा सकती है कि वृत्तिकार ने 'सातिरेगाणि छ धणुसयाइं' पाठ की व्याख्या की है।

३. कुछ न्यून (देसूणाइं) सू० ४० :

अरिष्टनेमि का छद्मस्थकाल चउपन दिन का था। प्रस्तुत सूत्र का 'देसूणाइं' शब्द इसी का द्योतक है।[3]

४. सभी यमक पर्वत (सव्वेवि णं जमगपव्वया) सू० ५६ :

उत्तरकुरु के नीलवर्षधर पर्वत के उत्तरीय भाग में शीता महानदी के दोनों तटों पर 'यमक' नाम के दो पर्वत हैं। उत्तरकुरु पांच हैं। उन पांचों में दस 'यमक' पर्वत हैं।[4]

५. चित्रकूट और विचित्रकूट (चित्त-विचित्तकूडा) सू० ५७ :

देवकुरु में एक चित्रकूट और एक विचित्रकूट पर्वत है। पांच देवकुरुओं में पांच चित्रकूट और पांच विचित्रकूट पर्वत हैं।[5]

६. पल्य-संस्थान (पल्लगसंठाण) सू ५८ :

इसकी आकृति अनाज भरने के बड़े कोठे के समान है।

७. हजार वर्षों की पूर्ण आयु (दस वाससयाइं सव्वाउयं) सू० ६१ :

अर्हत् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्षों तक कुमार अवस्था में रहे और सात सौ वर्षों तक अनगार अवस्था में रहे थे।[6]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ६४ :
चरमशरीरस्य सिद्धिगतस्य सातिरेकाणि त्रीणि शतानि धनुषां जीवप्रदेशावगाहना प्रज्ञप्ता, यतोऽसौ शैलेशीकरणसमये शरीररन्ध्रपूरणेन देहत्रिभागं विमुच्य घनप्रदेशो भूत्वा देहत्रिभागद्वयावगाहन: सिद्धिमुपगच्छति, सातिरेकत्वं चैवं।
तिन्नि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागे य होइ बोद्धव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया।।

२. वही, पत्र ६६ :
अभिचन्द्र: कुलकरोऽस्यामवसर्पिण्यां सप्तानां कुलकराणां चतुर्थ:, तस्योच्छ्रय: षट् धनु: शतानि पञ्चाशदधिकानि।

३. वही, पत्र ६६ :
'देसूणाइं' ति चतु: पञ्चाशतो दिनानामूनानि, तत्प्रमाणत्वात् छद्मस्थकालस्येति,

४. वही, पत्र ६८ :
उत्तरकुरुषु नीलवद्वर्षधरस्य उत्तरत: शीताया महानद्या उभयो: कूलयोर्द्वौ यमकाभिधानौ पर्वतौ स्त: ते च पञ्चस्वप्युत्तरकुरुषु द्वयोर्द्वयोर्भावाद्दश।

५. वही, पत्र ६८ :
पञ्चसु देवकुरुषु यमकवत्तत्सद्भावात् पञ्च चित्रकूटा: पञ्च विचित्रकूटा: इति।

६. वही वृत्ति, पत्र ६८ :
'अरहंते' त्यादि, कुमारत्वे त्रीणि वर्षशतान्यनगारत्वे सप्तेत्येवं दश शतानि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. तीन हजार योजन (तिण्णि जोयणसहस्साइं) सू० ६८ :

रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम काण्ड का नाम है—खरकाण्ड। उसके सोलह विभाग हैं। उनमें से प्रथम चार विभाग ये हैं—रत्नकाण्ड, वज्रकाण्ड, वैडूर्यकाण्ड और लोहिताक्षकाण्ड। इन चारों में हजार-हजार योजन का अन्तर है। इस प्रकार दूसरे विभाग वज्रकाण्ड से चौथे विभाग लोहिताक्ष का अन्तर तीन हजार योजन रह जाता है।[1]

९. तिगिच्छ (तिगिच्छ) सू० ६९ :

तिगिच्छ द्रह निषध वर्षधरपर्वत पर है। वह धृति देवी का निवास स्थान है। केसरीद्रह नील वर्षधरपर्वत पर है। वह कीर्त्ति देवी का निवास स्थान है।[2]

१०. पांच-पांच हजार योजन (पंच-पंच जोयणसहस्साइं) सू० ७० :

तिर्यग् लोक के मध्य में आठ रुचक प्रदेश हैं। यही दिशाओं और अनुदिशाओं का उद्‌भव स्थान है। इसके चारों दिशाओं में मन्दर पर्वत का व्यवधानात्मक अन्तर पांच-पांच हजार योजन का है, क्योंकि इसका विष्कंभ दस हजार योजन का है।[3]

११. हजार योजन लम्बी (जोयणसहस्साइं आयामेणं) सू० ७४ :

प्रस्तुत सूत्र में दक्षिणार्ध भरत की जीवा नौ हजार योजन लंबी बताई है। वृत्तिकार ने स्थानान्तर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वह जीवा नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन बारह कला की है। यह स्थानान्तर अन्वेषणीय है।[4]

१२. कुछ अधिक नौ हजार अवधिज्ञानी (साइरेगाइं नव ओहिनाणिसहस्साइं) सू० ८४ :

वृत्तिकार ने 'साइरेगाणि' से चार सौ का ग्रहण किया है। वस्तुतः प्रस्तुत पाठ 'सहस्र' समवाय के अन्तर्गत आना चाहिए था, पर यहां 'लक्ष' समवाय के अन्तर्गत उल्लिखित हुआ है। वृत्तिकार ने इसकी आलोचना करते हुए तीन विकल्प प्रस्तुत किए हैं—१. लक्ष शब्द से सहस्र शब्द का साधर्म्य है २. सूत्र की गति विचित्र होती है ३. लिपिकर्त्ता के प्रमाद के कारण।[5]

१३. सूत्र ८५ :

प्रस्तुत प्रसंग में पुरुषसिंह वासुदेव का पांचवें नरकगमन का उल्लेख है। स्थानांग में छठी नरक का उल्लेख है।[6] दोनों अंगों में यह अन्तर क्यों है, इसका समाधान प्राप्त नहीं है।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ९८ :
रत्नप्रभापृथिव्याः प्रथमस्य षोडशविभागस्य खरकाण्डाभिधानकाण्डस्य प्रथमं रत्नकाण्डं ,वज्रकाण्डं नाम काण्डं द्वितीयं, वडूर्यकाण्डं तृतीयं, लोहिताक्षकाण्डं चतुर्थं, तानि च प्रत्येकं साहस्रिकमिति त्रयाणां यथोक्तमन्तरं भवतीति।

२. वही, पत्र ९८ :
तिगिच्छिकेसरिह्रदौ निषधनीलवद्वर्षधरोपरिस्थितौ धृतिकीर्त्तिदेवीनिवासाविति।

३. वही, पत्र ९८, ९९ :
'अट्ठपएसो रुयगो तिरियं लोगस्स मज्झयारंमि।
एसप्पभवो दिसाणं एसेव भवे अणुदिसाणं॥
रुचक एव नाभिचक्रस्य तुम्बमिवेति रुचकनाभिः, ततश्चतसृष्वपि दिक्षु पञ्च पञ्च सहस्राणि मेरुस्तस्य दशसहस्रविष्कम्भत्वादिति।

४. वही, पत्र ९९ :
नव सहस्राण्यायामत इहोक्ता, स्थानान्तरे तु तद्विशेषोऽयं 'नव सहस्राणि सप्त शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि द्वादश च कला'।

५. वही, पत्र ९९ :
सातिरेकाणि नवावधिज्ञानी सहस्राणि, अतिरेकश्चत्वारि शतानि, इदं च सहस्रस्थानकमपि लक्षस्थानकाधिकारे यदधीतं तत् सहस्रशब्दसाधर्म्याद्विचित्रत्वाद्वा सूत्रगतेर्लेखकदोषाद्वेति।

६. ठाणं १०/७८ :
पुरिससीहे णं वासुदेवे············छट्ठीए तयाए पुढवीए णेरइयत्ताए उववण्णे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. छठे पोट्टिल भवग्रहण (छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे) सू० ८६ :

भगवान् महावीर के छह भवों की संगति वृत्तिकार ने इस प्रकार प्रस्तुत की है—

१. पोट्टिल नाम का राजपुत्र।
२. देवभव।
३. अग्रछत्रा नगरी में नन्दन नाम का राजपुत्र।
४. दशवें देवलोक में देवरूप में उत्पन्न।
५. ब्राह्मण कुण्डग्राम में देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में अवतरण।
६. त्रिशला महारानी के गर्भ से उत्पन्न।

इन छह भवों को ग्रहण किए बिना प्रस्तुत सूत्र का कथन संगत नहीं होता। इसलिए यह यथार्थ ही कहा है कि तीर्थंकर भवग्रहण से पूर्व छठे भव में।[1]

१५. गणिपिटक के बारह अंग हैं (दुवालसंगे गणिपिडगे) सू० ८८-१३४ :

तुलना के लिए देखें—नंदी, सूत्र ८१-१२६।

१६. आचार पांच प्रकार का है (से समासओ पंचविहे) सू० ८९ :

आचार के पांच प्रकार हैं—

१. ज्ञान आचार—श्रुतज्ञान के अध्ययन का व्यवहार।
२. दर्शन आचार—सम्यक्त्वी का व्यवहार या दृष्टिकोण।
३. चारित्र आचार—साधुओं का समिति-गुप्तिरूप व्यवहार।
४. तपःआचार—बारह प्रकार के तप का अनुष्ठान।
५. वीर्य आचार—ज्ञान आदि के अर्जन में शक्ति का अगोपन।[2]

१७. सू० ८९ :

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त कुछ शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—

१. वाचना—सूत्र और अर्थ देना।
२. अनुयोगद्वार—उपक्रम, अध्ययन।
३. प्रतिपत्ति—मतान्तर।
४. वेढा—वेष्टक नाम का छन्द अथवा एकार्थक शब्दों का संकलन।
५. निर्युक्ति—सूत्र के प्रतिपाद्य को स्पष्ट करने वाली युक्ति।

प्रस्तुत प्रसंग में आचारांग सूत्र के दो श्रुतस्कंध और पद परिमाण अठारह हजार बताया है। अठारहवें समवाय में भी चूलिकासहित आचारांग का पद परिमाण अठारह हजार बताया है। किन्तु वृत्तिकार ने वहां स्पष्ट करते हुए लिखा है—आचारांग के प्रथम श्रुतस्कंध के नौ अध्ययन हैं और वह नव ब्रह्मचर्य के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे श्रुतस्कन्ध में पांच

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ९९।
'समणे' त्यादि, यतो भगवान् पोट्टिलाभिधानराजपुत्रो बभूव, तत्रवर्षकोटिं प्रव्रज्यां पालितवानित्येको भवः, ततो देवोऽभूदितिद्वितीयः ततो नन्दनाभिधानो राजसूनुः छत्राग्रनगर्यां जज्ञे इति तृतीयः, तत्रवर्षलक्षणं सर्वदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा दशम देवलोके पुष्पोन्तरवरविजयपुण्डरीकाभिधाने विमाने देवोऽभवदिति चतुर्थस्ततो ब्राह्मण कुण्डग्रामे ऋषभदत्तब्राह्मणस्य भार्याया देवानन्दाभिधानायाः कुक्षावुत्पन्न इति पञ्चमस्ततः त्र्यशीतितमे दिवसे क्षत्रिय-कुण्डग्रामे नगरे सिद्धार्थमहाराजस्य त्रिशलाभिधानभार्यायाः कुक्षाविन्द्रवचनकारिणा हरिनैगमेषिनाम्ना देवेन संहृतस्तीर्थंकरतया च जात इति षष्ठः, उक्तभवग्रहणं हि विना नान्यद्भवग्रहणं षष्टं श्रूयते भगवत इत्येतदेव षष्ठ भवग्रहणतया व्याख्यातं, यस्माच्च भवग्रहणादिदं षष्ठं तदप्येतस्मात् षष्ठमेवेति सुष्ठूच्यते तीर्थंकर भवग्रहणात्षष्ठे पोट्टिलभवग्रहणे।

२. वही, पत्र १०० :
ज्ञानाचारः—श्रुतज्ञानविषयः कालाध्ययनविनयाध्ययनादिरूपो व्यवहारोऽष्टधा, 'दर्शनाचारः' सम्यक्त्ववतां व्यवहारो निःशङ्कितादिरूपोऽष्टधा, 'चारित्राचारः' चारित्रिणां समित्यादिपालनात्मको व्यवहारः द्वादशविधतपोविशेषानुष्ठितिः, 'वीर्याचारो' ज्ञानादिप्रयोजनेषु वीर्यस्यागोपनम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चूलिकाएं हैं। अठारह हजार का पद परिमाण प्रथम श्रुतस्कंध का है, दूसरे का नहीं। कहा भी है—नवबंभचेरमइओ अट्ठारस पयसहस्सीओ वेओ······। सूत्र के उल्लेख विचित्र होते हैं। उनका अभिप्राय गुरु से ही जाना जा सकता है।[1]

प्रस्तुत समवाय में उक्तपद-परिमाण की संगति के विषय में वृत्तिकार कहते हैं कि दो श्रुतस्कन्धों का जो उल्लेख है, वह पूरे आचारांग सूत्र प्रमाण है और जो अठारह हजार पद-परिमाण कहा गया है वह केवल प्रथम श्रुतस्कंध का ही परिमाण है। सूत्र-रचना विचित्र होती है। उसका तात्पर्य गुरु से ही जाना जा सकता है।[2]

१८. एवमात्मा (एवं आया···) सू० ८९ :

वृत्तिकार का कथन है कि यह पाठ अन्य आदर्शों में कहीं नहीं मिला। नन्दीसूत्र में यह पाठ व्याख्यात है, अतः यहां भी उसका ग्रहण किया गया है। इसका अर्थ है—आचारमय बन जाना।[3]

एवं णाया

आचारांग को पढ़कर उसका पूरा ज्ञान कर लेता है।

एवं विण्णाया

विज्ञाता का अर्थ है—विशिष्ट ज्ञाता अथवा मतान्तरों को जानने वाला।[4]

चरण-करण

चरण का अर्थ है—महाव्रत, श्रमणधर्म, संयम आदि। करण का अर्थ है—पिण्डविशुद्धि, समिति आदि।[5]

१९. सूत्र ९० :

देखें—सूत्रकृतांग १२/१ का टिप्पण।

२०. तेईस अध्ययन (तेवीसं अज्झयणा) सू० ९० :

सूत्रकृतांग के दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में सोलह अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्कंध में सात अध्ययन हैं।

२१. तेतीस उद्देशन काल (तेत्तीसं उद्देसणकाला) सू० ९० :

प्रथम श्रुतस्कंध के सोलह अध्ययनों में पहले अध्ययन के चार, दूसरे के तीन, तीसरे के चार, चौथे के दो, पांचवें के दो और शेष ग्यारह अध्ययनों के एक-एक उद्देशक हैं। दूसरे श्रुतस्कंध के सात अध्ययनों के सात उद्देशक हैं। इस प्रकार सूत्रकृतांग के २६+७ तेतीस उद्देशनकाल हैं।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र ३४ :
प्रथमाङ्गस्य सचूलिकाकस्य—चूडासमन्वितस्य, तस्यपिण्डैषणाद्याः पञ्च चूलाः द्वितीयश्रुतस्कन्धात्मिकाः स च नवब्रह्मचर्याभिधानाध्ययनात्मक प्रथमश्रुत-स्कन्धरूपः, तस्यैव चेदं पदप्रमाणं न चूलानां, यदाह—
"नवबंभचेरमइओ अट्ठारस पयसहस्सीओ वेओ।
हवइ य सपंचचूलो बहुबहुतरओ पयग्गेणं ॥१॥"
त्ति, यच्च सचूलिकाकस्येति विशेषणं तत्तस्य चूलिका सत्ताप्रतिपादनार्थं, न तु पद-प्रमाणाभिधानार्थं, यतोऽवाचि नन्दीटीकाकृता—अट्ठारसपयसहस्साणि पुण पढमसुयखंधस्स नवबंभचेरमइयस्स पमाणं, बिचित्तत्थाणि य सुत्ताणि गुरूवएसओ तेसिं अत्थो जाणियव्वो'।

२. वही, पत्र १०१ :
यत द्वौ श्रुतस्कन्धावित्यादि तदाचारस्य प्रमाणं भणितं, यत्पुनरष्टादश पद सहस्राणि तन्नवब्रह्मचर्याध्ययनात्मकस्य प्रथम श्रुतस्कन्धस्य प्रमाणं, विचित्रार्थ-बद्धानि च सूत्राणि, गुरूपदेशतस्तेषामर्थोऽवसेय इति।

३. वही, पत्र १०१ :
इदं च सूत्रं पुस्तकेषु न दृष्टं नन्द्यां तु दृश्यते इतीह व्याख्यातमिति एवं क्रियासारमेव ज्ञानमितिख्यापनार्थम्।

४ वही, पत्र १०१ :
इदमधीत्य एवं ज्ञाता भवति यथैवेहोक्तमिति, 'एवं विन्नाय' त्ति, विविधो विशिष्टो वा ज्ञाता विज्ञाता एवं विज्ञाता भवति, तन्त्रान्तरीयज्ञाता भवति।

५. वही पत्र १०२ :
चरणं—व्रतश्रमणधर्म्मसंयमाद्यनेकविधं, करणं—पिण्डविशुद्धिसमित्याद्यनेकविधम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. दस अध्ययन… (दस अज्झयणा…) सू० ९१ :

स्थानांग सूत्र के दस स्थान हैं। दूसरे, तीसरे और चौथे स्थान के चार-चार उद्देशक, पांचवें स्थान के तीन उद्देशक और शेष छह स्थानों के एक-एक उद्देशक है। इस प्रकार सारे ४+४+४+३+६ इक्कीस उद्देशन काल हैं।[1]

२३. एकोत्तरिका… (एगुत्तरिय…) सू० ९२ :

वृत्तिकार का कथन है कि सौ की संख्या तक एक-एक के परिमाण से वृद्धि होती गई है। यह एकोत्तरिका परिवृद्धि है। आगे वह क्रम नहीं है।[2]

२४. चौरासी हजार पद (चउरासीई पयसहस्साइं) सू० ९३ :

प्रस्तुत सूत्र के चौरासी हजार पद माने हैं। सामान्यतः यह मान्यता है कि प्रथम अंग आचारांग से द्वितीय अंग का पद प्रमाण द्विगुणित होता है। इसी प्रकार भगवती का पद प्रमाण समवायांग से दुगुना दो लाख अस्सी हजार होना चाहिए। किन्तु वह यहां इष्ट नहीं है।[3]

२५. उनतीस अध्ययन (एगूणतीसं अज्झयणा) सू० ९४ :

ज्ञाताधर्मकथा अंग के दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में घटित घटनाओं के उन्नीस उदाहरण प्रस्तुत हैं और दूसरे श्रुतस्कंध में दस धार्मिक कथाएं हैं। इसी के आधार पर ज्ञाता और धर्मकथा—इन दो पदों से यह नाम व्युत्पन्न हुआ है। प्रस्तुत प्रसंग में प्रथम श्रुतस्कंध के उन्नीस अध्ययन ही विवक्षित हैं।[4]

२६. वर्ग (वग्गा) सू० ९४ :

वर्ग का अर्थ है—समूह। ये दस हैं। यहां यह शब्द अध्ययन के अर्थ में प्रयुक्त है।[5]

२७. सू० ९४ :

ज्ञाताधर्मकथा आगम के दो श्रुतस्कंध हैं। पहले श्रुतस्कंध के उन्नीस अध्ययन हैं। प्रथम दस अध्ययनों में आख्यायिका की संभावना नहीं है। शेष नौ अध्ययनों में आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक अध्ययन की ५४०-५४० आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक आख्यायिका की ५००-५०० उप-आख्यायिकाएं हैं और प्रत्येक उप-आख्यायिका की ५००-५०० आख्यायिका-उप-आख्यायिकाएं हैं। उनका कुल योग ९x५४०x५००x५००=१२१५०००००० । दूसरे श्रुतस्कंध के दस वर्ग (अध्ययन) हैं। प्रत्येक वर्ग में ५००-५०० आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक आख्यायिका की ५००-५०० उप-आख्यायिकाएं हैं। प्रत्येक उप-आख्यायिका की ५००-५०० आख्यायिका-उप-आख्यायिकाएं हैं। उनका कुल योग है—१०x५००x५००x५००=१२५०००००००। वृत्तिकार ने प्रस्तुत प्रसंग में प्रतिपादित साढे तीन करोड़ आख्यायिकाओं की संख्या की संगति करते हुए लिखा है कि पुनरुक्त कथनों का शोधन कर देने पर यह संख्या प्राप्त होती है।[6]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १०४–१०५ :
एकविंशतिरुद्देशनकालाः कथं? द्वितीयतृतीयचतुर्थेष्वध्ययनेषु चत्वारश्चत्वार उद्देशकाः पञ्चमे त्रय इत्येते पञ्चदश, शेषास्तु षट, षण्णामध्ययनानां षडुद्देशनकालत्वादिति।

२. वही, पत्र १०५ :
तत्र शतं यावदेकोत्तरिका परतोऽनेकोत्तरिकेति।

३. वही, पत्र १०७–१०८ :
चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेणेति समवायापेक्षया द्विगूणताया इहानाश्रयणदन्यथा तद्द्विगुणत्वे द्वे लक्षे अष्टाशीतिः सहस्राणि च भवन्तीति।

४. वही, पत्र ११० :
'नायाधम्मकहासु णं' मित्यादि कण्ठ्यमानिगमनात्, नवरं 'एकूणवीसमज्झयण' त्ति प्रथमश्रुतस्कन्धे एकोनविंशतिर्द्वितीये च दशेति, तथा 'दस धम्मकहाणं वग्गा'।

५. वही, पत्र ११० :
वर्ग इति समूहः ततश्चार्थाधिकारसमूहात्मकान्यध्ययनान्येव दश वर्गा द्रष्टव्याः।

६. वही, पत्र ११०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. प्रतिमा (पडिमा) सू० ६५ :

वृत्तिकार ने प्रतिमा के दो अर्थ किए हैं—

१. श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं।

२. कायोत्सर्ग।[1]

२९. परिषद् (परिसा) सू० ६५ :

परिषद् का अर्थ है—परिवार विशेष। परिषद् दो प्रकार की होती है—बाह्य और आभ्यंतर। बाह्य परिषद् में दास, दासी मित्र आदि होते हैं और आभ्यंतर परिषद् में माता, पिता, पुत्र, पुत्री आदि होते हैं।[2]

३०. दस उद्देशन काल (दस उद्देसणकाला) सूत्र ९७ :

नंदी सूत्र में अनुत्तरोपपातिकदशा के तीन वर्ग और तीन उद्देश्य-काल बतलाए हैं। वर्ग एक साथ पूरा का पूरा उद्दिष्ट होता है, अतः तीन ही उद्देशन-काल होते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में यहां उद्देशन-कालों की संख्या दस बतलाई है। वृत्तिकार के अनुसार इसका अभिप्राय ज्ञात नहीं है।[3]

३१. प्रश्न (पसिण) सूत्र ९८ :

यहां अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न आदि मंत्रविद्याओं की संज्ञा 'प्रश्न' है।[4] विद्यानुवाद में अंगुष्ठ आदि विद्याओं को अल्प-विद्या माना है। इनकी संख्या सात सौ है।[5] व्यक्ति के अंगूठे को देखकर उसके शुभाशुभ का निर्देश करना अंगुष्ठ विद्या है। यह देवता-अधिष्ठित ही होती है।

३२. अप्रश्न (अपसिण) सूत्र ९८ :

मंत्र की विधि से जाप करने पर कुछ विद्याएं सिद्ध हो जाती हैं। वे बिना प्रश्न किए ही व्यक्ति को शुभ-अशुभ का निर्देश कर देती हैं। इन्हें अप्रश्न कहा जाता है।[6]

३३. प्रश्न-अप्रश्न (पसिणापसिण) सूत्र ९८ :

जो विद्या अंगुष्ठ आदि के सद्भाव या अभाव में शुभ-अशुभ का कथन करती है, वह प्रश्न-अप्रश्न विद्या कहलाती है।[7] निशीथ भाष्य तथा चूर्णि में यह उल्लेख है कि स्वप्नविद्या का ही अपर नाम प्रश्नाप्रश्न है।

इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि विद्या से अभिमंत्रित घंटिका कानों के पास बजाई जाती है, तब देवता शुभाशुभ का कथन करते हैं। इसे 'इंखिनी' विद्या भी कहा जाता है।

देवता अतीत या वर्तमान में प्राप्त लाभ तथा भविष्य में प्राप्तव्य लाभ और अलाभ का निर्देश भी करता है। वह

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १११ :
'पडिमाश्रो' त्ति एकादश उपासकप्रतिमाः कायोत्सर्गं वा।

२. वही, पत्र १११ :
परिषदः—परिवारविशेषा यथा मातापितृपुत्रादिका अभ्यन्तरपरिसत्, दासी दासमित्रादिका बाह्यपरिषदिति।

३. वही, पत्र ११४।
वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते इत्यतस्त्रय एवोद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति।

४. वही, पत्र ११५ :
तत्राङ्गुष्ठबाहुप्रश्नादिका मन्त्रविद्याः प्रश्नाः।

५. राजवार्तिक १/२० :
तत्राङ्गुष्ठसेनादीनामल्पविद्यानां सप्तशतानि।

६. समवायांगवृत्ति, पत्र ११५ :
या पुनर्विद्या मन्त्रविधिना जप्यमाना अपृष्टा एव शुभाशुभं कथयन्ति एताः अप्रश्नाः।

७. वही, पत्र ११५ :
तथाङ्गुष्ठादिप्रश्नभावं तदभावं च प्रतीत्य या विद्याः शुभाशुभं कथयन्ति ताः प्रश्नाप्रश्नाः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता की मृत्यु कब हुई या होगी उसका भी निर्देश करता है।[1]

३४. विद्या के अतिशय (विज्जाइसया) सूत्र ६८ :

स्तम्भन विद्या, स्तोभविद्या, वशीकरण, विद्वेषीकरण, उच्चाटन आदि विद्याओं को 'विद्यातिशय' माना है।[2]

३५. महाप्रश्नविद्याओं (महापसिणविज्जा) सूत्र ६८ :

वाणी के द्वारा पूछने पर ही जो उत्तर देती हैं वे महाप्रश्न विद्याएं कहलाती हैं। इनके अधिष्ठाता देवता होते हैं।[3]

३६. मनःप्रश्नविद्याओं (मणपसिणविज्जा) सूत्र ६८ :

मन में उठे हुए प्रश्नों का उत्तर देने वाली विद्याएं। इनके अधिष्ठाता देवता होते हैं।[4]

३७. पैंतालीस अध्ययन (पणयालीसं अज्झयणा) सूत्र ६८ :

प्रस्तुत प्रसंग में अध्ययनों का निर्देश किसी भी आदर्श में प्राप्त नहीं है, किन्तु उद्देशन-काल से पूर्व अध्ययन का निर्देश अवश्य ही होना चाहिए। नंदी (६०) म इसके अध्ययनों की संख्या पैंतालीस बतलाई है, अतः यहां भी उसकी संभावना की गई है। वृत्तिकार ने इसके दस अध्ययन माने हैं और उसके आधार पर दस उद्देशन-काल होने चाहिए, ऐसी मान्यता व्यक्त की है। पैंतालीस उद्देशन-कालों की मान्यता को उन्होंने वाचनान्तर माना है।[5]

३८. सूत्र ६८ :

प्रस्तुत आगम के विषय-वस्तु के बारे में विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। स्थानांग में इसके दस अध्ययन बतलाए गए हैं—उपमा, संख्या, ऋषि-भाषित, आचार्य-भाषित, महावीर-भाषित, क्षौमक प्रश्न, कोमल प्रश्न, आदर्श प्रश्न, अंगुष्ठ प्रश्न और बाहुप्रश्न।[6] इनमें वर्णित विषय का संकेत अध्ययन के नामों से मिलता है।

---

१. निशीथभाष्य, गाथा ४२९०, ४२९१ :

पसिणापसिणं सुविणे, विज्जासिद्धं तु साहति परस्स ।
अहवा आइंखिणिया, घंटियसिट्ठं परिकहेति ॥
लाभालाभसुहदुहं, अणुभूय इमं तुमे सुहिंहि वा ।
जीवित्ता एवइयं, कालं सुहिणो मया तुज्झं ॥

सुविणयविज्जाकहियं कधितस्स पसिणापसिणं भवति ।
अहवा—विज्जाभिमंतिया घंटिया कण्णमूले चालिज्जति, तत्थ देवता कधिति, कहेंतस्स पसिणापसिणं भवति, स एव इंखिणी भण्णति ।
पुच्छगं भणति—अतीतकाले वट्टमाणे वा इमो ते लाभो लद्धो, अणागते वा इमं भविस्सति । एवं अलाभं पि निद्दिस्सति, एवं सुहदुक्खे वि संवादेति ।
अहवा भन्नति—सुहीहिं ते इमं लद्धमणुभूतं वा ।
अहवा भणाति—मातापितादिते सुहिणो एवतियं कालं जीविया अमुगे काले एव मता ।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र ११५ :
विद्यातिशयाः स्तम्भस्तोभवशीकरणविद्वेषीकरणोच्चाटनादयः ।

३. वही, पत्र ११५ :
विविधमहाप्रश्नविद्याश्च—वाचैव प्रश्ने सत्युत्तरदायिन्यः ।

४. वही, पत्र ११५ :
मनःप्रश्नविद्याश्च—मनः प्रश्नितार्थोत्तरदायिन्यस्तासां दैवतानितदधिष्ठातृदेवतास्तेषाम्।

५. वही, पत्र ११६ :
'पणयालीस' मित्यादि यद्यपीहाध्ययनानां दशत्वाद्दशैवोद्देशनकाला भवन्ति तथापि वाचनान्तरापेक्षया पञ्चचत्वारिंशदिति सम्भाव्यते इति 'पणयालीस' मित्याद्यविरुद्धमिति ।

६. ठाणं १०/११६ :
पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—उवमा, संखा, इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं, महावीरभासियाइं, खोमगपसिणाइं, कोमलपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवायांग और नंदी के अनुसार प्रस्तुत आगम में नाना प्रकार के प्रश्नों, विद्याओं और दिव्य-संवादों का वर्णन है।[1] नंदी में इसके पैंतालीस अध्ययनों का उल्लेख है। स्थानांग से उसकी कोई संगति नहीं है। समवायांग में इसके अध्ययनों का उल्लेख नहीं है, किन्तु उसके 'पण्हावागरणदसासु' इस आलापक (पैराग्राफ) के वर्णन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समवायांग में प्रस्तुत आगम के दस अध्ययनों की परम्परा स्वीकृत है। उक्त आलापक में बतलाया गया है कि प्रश्न-व्याकरणदसा में प्रत्येकबुद्धभाषित, आचार्यभाषित, वीरमहर्षिभाषित, आदर्शप्रश्न, अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न, असिप्रश्न, मणिप्रश्न क्षौमप्रश्न, आदित्यप्रश्न आदि-आदि प्रश्न वर्णित हैं। इन नामों की स्थानांग में निर्दिष्ट दस अध्ययनों के नामों के साथ तुलना की जा सकती है। यद्यपि उद्देशन-काल पैंतालीस बतलाए गए हैं फिर भी अध्ययनों की संख्या का स्पष्ट निर्णय नहीं किया जा सकता। गंभीर विषय वाले अध्ययन की शिक्षा अनेक दिनों तक दी जा सकती है।

तत्त्वार्थवार्तिक के अनुसार प्रस्तुत आगम में अनेक आक्षेप और निक्षेप के द्वारा हेतु और नय से आश्रित प्रश्नों का उत्तर दिया गया है, लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया गया है।[2]

जयधवला के अनुसार प्रस्तुत आगम आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेदनी—इन चारों कथाओं तथा प्रश्न के आधार पर नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन और मरण का वर्णन करता है।[3]

उक्त ग्रन्थों में प्रस्तुत आगम का जो विषय वर्णित है वह आज उपलब्ध नहीं है। आज जो उपलब्ध है उसमें पांच आश्रवों (हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह) तथा पांच संवरों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) का वर्णन है। नंदी में उसका कोई उल्लेख नहीं है। समवायांग में आचार्यभाषित आदि अध्ययनों का उल्लेख है तथा जयधवला में आक्षेपणी आदि चारों कथाओं का उल्लेख है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत आगम का उपलब्ध विषय भी प्रश्नों के साथ रहा हो, बाद में प्रश्न आदि विद्याओं की विस्मृति हो जाने पर वह भाग प्रस्तुत आगम के रूप में बचा हो। यह अनुमान भी किया जा सकता है कि प्रस्तुत आगम के प्राचीन स्वरूप के विच्छिन्न हो जाने पर किसी आचार्य के द्वारा नए रूप में रचना की गई हो। नंदी में प्रस्तुत आगम की जिस वाचना का विवरण है, उसमें आश्रवों और संवरों का वर्णन नहीं है, किन्तु नंदीचूर्णि में उनका उल्लेख मिलता है।[4] यह संभव है कि चूर्णिकार ने उपलब्ध आकार के आधार पर उनका उल्लेख किया है।

निशीथ भाष्य के चूर्णिकार विभिन्न विद्याओं की चर्चा करते हुए एक महत्त्वपूर्ण सूचना देते हैं कि प्राचीन काल में प्रश्नव्याकरण सूत्र में (प्रश्नाप्रश्न आदि) ये विद्याएं थीं।[5] इस सूचना से यह निश्चित कहा जा सकता है कि चूर्णिकार के काल में जो प्रश्नव्याकरण था, उसमें इन विद्याओं का उल्लेख नहीं था।

३९. दृष्टिवाद (दिट्ठिवाए) सूत्र १०० :

संस्कृत में इसके दो रूप बनते हैं—दृष्टिवाद और दृष्टिपात। जिस शास्त्र में सभी दृष्टियों (दर्शनों) का विमर्श किया जाता है, वह दृष्टिवाद कहलाता है। जिस शास्त्र में सभी दृष्टियों (नयों) से वस्तुसत्य का विचार किया जाता है, वह दृष्टि-पात कहलाता है। दृष्टिवाद प्रायः व्यवच्छिन्न है। नंदी तथा प्रस्तुत सूत्र में समागत द्वादशांगी के प्रकरण में उसका कुछ विवरण प्राप्त होता है।

४०. परिकर्म (परिकम्मं) सूत्र १०० :

परिकर्म का अर्थ है—संस्कारित करना। यह एक प्रकार की प्राथमिक विधि है जिससे सूत्र-ग्रहण करने वाले साधक

---

१. (क) समवाओ, पइण्णगसमवाओ सूत्र ९८ :
पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तर पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं विज्जाइसया, नागसुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।
(ख) नंदी, सूत्र ९०।

२. तत्त्वार्थवार्तिक १/२० पृ० ७३, ७४ :
आक्षेपविक्षेपैर्हेतुनयाश्रितानां प्रश्नानां व्याकरणं प्रश्नव्याकरणम्। तस्मिल्लौकिकवैदिकानामर्थानां निर्णयः।

३. कसायपाहुड, भाग १, पृ० १३१, १३२ :
पण्हवायरणं णाम अंगं अक्खेवणी-विक्खेवणी-संवेयणी-णिव्वेयणीणामाओ चउव्विहं कहाओ पण्हादो णट्ठ-मुट्ठि-चिंता-लाहालाह-सुखदुक्ख-जीवियमरणाणि च वण्णेदि।

४. नंदी सूत्र, चूर्णि सहित पृ० ६६।

५. निशीथ भाष्य गाथा ४२८९, चूर्णि :
पसिणा एते पण्हवाकरणेसु पुव्वं आसी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सूत्र-ग्रहण की योग्यता संपादित की जाती है। यह दृष्टिवाद को ग्रहण करने तथा उसे समझने की प्रणाली है।

जिस प्रकार गणित शास्त्र के अभ्यास के लिए संकलन, व्यवकलन, गुणन, भाग आदि सोलह परिकर्मों का ज्ञान अपेक्षित होता है, उसी प्रकार दृष्टिवाद में प्रवेश करने से पूर्व परिकर्म का प्राथमिक ज्ञान अपेक्षित होता है। विवक्षित परिकर्म के सूत्रार्थ को जान लेने पर ही अध्येता शेष सूत्ररूप दृष्टिवाद श्रुत को ग्रहण करने में योग्य हो सकता है, अन्यथा नहीं।

४१. पूर्वगत (पुव्वगयं) सूत्र १०० :

इसके सम्बन्ध में दो मत मिलते हैं। एक मत तो यह है कि तीर्थङ्कर तीर्थ-प्रवर्तन के समय गणधरों के समक्ष पूर्व की वाचना कहते हैं। ये पूर्व समस्त सूत्रों के आधारभूत होते हैं तथा पहले कहे जाने के कारण 'पूर्व' कहलाते हैं।

गणधर जब सूत्र की रचना करते हैं तब आचार आदि के क्रम से उनकी रचना और स्थापना होती है। इसका तात्पर्य यह है कि अर्थागम की दृष्टि से सर्व प्रथम 'पूर्वगत' का प्रतिपादन किया जाता है और सूत्रागम की दृष्टि से आचार आदि के क्रम से अंगों की रचना और स्थापना की जाती है।

दूसरा मत यह है कि तीर्थङ्करों ने सर्वप्रथम पूर्वगत को व्याकृत किया और गणधरों ने भी सर्वप्रथम पूर्वगत की ही रचना की और बाद में आचार आदि की रचना हुई। यह मत अक्षर-रचना की दृष्टि से है, स्थापना की दृष्टि से नहीं। कई यह शंका उपस्थित करते हैं कि आचार की दृष्टि से निर्युक्ति में 'सव्वेसिं आयारो पढमो'—ऐसा उल्लेख हुआ है, इससे यह स्पष्ट होता है कि आचार की रचना पहले हुई थी। इसका समाधान यह है कि यह कथन आगमों की स्थापना के आधार पर हुआ है, न कि रचना के आधार पर।[२] नंदीचूर्णि में भी इसी आशय का उल्लेख है।[३]

४२. सूत्र १०० :

दृष्टिवाद के पांचों विभागों के क्रम के विषय में तीन मत प्राप्त होते हैं—

१. परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका।
२. परिकर्म, सूत्र, अनुयोग, पूर्वगत और चूलिका।
३. पूर्वगत, परिकर्म, सूत्र, अनुयोग और चूलिका।

तत्त्वार्थराजवार्तिक १/२०, अभिधान चिन्तामणि २/१६० तथा लोकप्रकाश ३/७६३ में दूसरे क्रम से इन पांच विभागों का निर्देशन हुआ है।

जो ऐसा मानते हैं कि गणधरों ने सर्वप्रथम पूर्वों की रचना की, उनके अनुसार तीसरे क्रम से रचना-व्यवस्था होती है।

तत्त्वार्थ राजवार्तिक १/२० में अनुयोग के स्थान पर प्रथमानुयोग और अभिधानचिन्तामणि २/१६० तथा लोकप्रकाश ३/७६३ में पूर्वानुयोग का प्रयोग हुआ है।

४३. वस्तु (वत्थू) सूत्र ११३ :

अध्ययन (परिच्छेद) की भांति जो नियत अर्थ के अधिकार से प्रतिबद्ध होता है, उसे वस्तु कहते हैं।[४]

४४. चूलिकावस्तु (चूलियावत्थू) सूत्र ११३ :

चूला का अर्थ है चोटी। उक्त या अनुक्त अर्थ का संग्रह करने वाली ग्रंथ-पद्धति को चूला कहा गया है।[५]

---

१. नंदीसुत्तम् (चूर्णि सहित), पृष्ठ ७२ :
परिकम्मे त्ति जोग्गकरणं जहा गणितस्स सोलस परिकम्मा, तग्गहितसुतत्थो सेसगणितस्स जोग्गो भवति। एवं गहितपरिकम्मसुतत्थो सेससुत्तादिदिट्ठिवाद-सुत्तस्स जोग्गो भवति।

२. समवायांगवृत्ति, पत्र १२१।

३. नंदीसुत्तम् (चूर्णि सहित), पृष्ठ ७५।

४-५. समवायांगवृत्ति, पत्र १२२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. अनुयोग (अणुओगे) सूत्र १२७ :

अनुयोग का अर्थ है—अनुरूप अथवा अनुकूल योग। इसका तात्पर्य यह है कि सूत्र का अपने अभिधेय के अनुरूप संबंध करना।[1]

४६. मूलप्रथमानुयोग (मूलपढमाणुओगे) सूत्र १२७ :

तीर्थङ्करों के सर्वप्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जिस भव में हुई थी, उस भव के विषय वाले अनुयोग को 'मूलप्रथमानुयोग' कहा गया है।[2]

४७. कंडिकानुयोग (गंडियाणुओगे) सूत्र १२७ :

कंडिका का अर्थ है—समान वक्तव्यता के अर्थाधिकार का अनुसरण करने वाली वाक्य-पद्धति। उसका अनुयोग अर्थात् अर्थ प्रकट करने की विधि।[3]

४८ चित्रांतरकंडिका (चित्तंतरगंडियाओ) सूत्र १२९ :

इसमें भगवान् ऋषभ तथा अजित के अन्तराल काल में उनके वंशज राजा अनुत्तरविमानों में उत्पन्न हुए तथा मोक्ष में गए, उनका प्रतिपादन है।

४९. सूत्र १२९ :

ईसा की सातवीं शताब्दी के आस-पास रची हुई, 'पञ्चकल्पचूर्णि' में कहा गया है कि कालकाचार्य ने कंडिकायें रची थीं।[4]

५०. सूत्र १३८ :

देखें प्रज्ञापना, पद १।

५१. सूत्र १४० :

यहां यावत् शब्द से असुरकुमार, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, मनुष्य, वानव्यन्तर तथा ज्योतिष्क—गृहीत हैं।[5]

५२. प्रकाशपुंज (भासरासि) सूत्र १५० :

वृत्तिकार ने भासराशि का अर्थ सूर्य किया है,[6] किन्तु इसका शब्दार्थ है प्रकाशराशि। प्रकाशराशि सूर्य, चन्द्र या अन्य कोई भी प्रकाशात्मक वस्तु हो सकती है। भासराशि (भस्मराशि) एक ग्रह का नाम है तथा राख की ढेर का नाम भी भस्मराशि है। यहां भासराशि का अर्थ प्रकाशपुंज अधिक उपयुक्त लगता है, क्योंकि 'अर्चिमाली जैसी प्रभावाला' यह विशेषण इसके पहले आ चुका है।

५३. बत्तीस सागरोपम (बत्तीसं सागरोवमाइं) सूत्र १५६ :

समवाय ३१/९ में इन देवों की जघन्य स्थिति इकतीस सागरोपम की बतलाई है और यहा इनकी स्थिति बत्तीस सागरोपम ही प्रतिपादित है। प्रज्ञापना (४/२९४) तथा उत्तराध्ययन (३६/२४३) में इनकी स्थिति इकतीस सागरोपम

१-३. समवायांगवृत्ति, पत्र १२२।
४. सुवर्णभूमि में कालकाचार्य, पृष्ठ १।
५. देखें—ठाणं १/१४१-१६४।
६. समवायांगवृत्ति, पत्र १२९ :
भासानां प्रकाशानां राशि:—भासराशि:—आदित्यः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लिखित है। प्रस्तुत सूत्र में किसी दूसरे मत या वाचना का उल्लेख संकलित है।[1]

५४. एक-एक रत्नि हीन होती है (रयणी रयणी परिहायइ) सूत्र १६३ :

भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म और ईशान में सात हाथ, सनत्कुमार और माहेन्द्र में छह हाथ, ब्रह्म और लान्तक कल्प में पांच हाथ, महाशुक्र और सहस्रार में चार हाथ, आनत और प्राणत में तीन हाथ, ग्रैवेयक में दो हाथ और अनुत्तर में एक हाथ। यह देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना है।[2]

५५. सूत्र १७२ (१) :

अवधिज्ञान के ग्यारह द्वार हैं—

१. भेद—अवधिज्ञान के दो भेद होते हैं—
भवप्रत्ययिक—तद्-तद् भव में निश्चित रूप से होने वाला अवधिज्ञान। देव और नारकों का।
क्षायोपशमिक—आत्म-पवित्रता से लब्ध। मनुष्य और तिर्यञ्चों का।

२. विषय—अवधिज्ञान का विषय चार प्रकार का है—
द्रव्यतः—जघन्यतः—तैजस और भाषा के अन्तरालवर्ती पुद्गल।
उत्कृष्टतः—सभी रूपी द्रव्य।
क्षेत्रतः—जघन्यतः—अंगुल का असंख्यातवां भाग।
उत्कृष्टतः—लोक प्रमाण असंख्येय खंड।
कालतः—जघन्यतः—आवलिका का असंख्यातवां भाग।
उत्कृष्टतः—असंख्य अतीत और अनागत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी।
भावतः—जघन्यतः—प्रत्येक द्रव्य के चार पर्याय—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श।
उत्कृष्टतः—प्रत्येक द्रव्य के असंख्य पर्यायों या सर्वद्रव्यों की अपेक्षा से अनन्त पर्यायों के वर्ण आदि।

३. संस्थान—अवधिज्ञान का आकार इस प्रकार है—
नारकों का छोटी नौका अथवा जल में प्रवाहित काष्ठ समूह के आकारवाला, भवनपति देवों का पल्य के आकारवाला, व्यन्तरदेवों का पटह के आकारवाला, ज्योतिष्क देवों का झल्लरी के आकारवाला, कल्पोपपन्न देवों के मृदङ्ग के आकारवाला, ग्रैवेयक देवों का पुष्पावली से रचित शिखरवाली छाब के आकारवाला, अनुत्तर देवों का कुमारी के चोली के आकारवाला अर्थात् लोकनाली के आकारवाला तथा तिर्यञ्च और मनुष्यों का विविध आकारवाला।

४. आभ्यन्तर—नियत अवधि—नारक, देव तथा तीर्थङ्करों का।

५. बाह्य—अनियत अवधि—शेष सभी प्राणियों का।

६. देश—अवधिज्ञान के द्वारा प्रकाश्य वस्तुओं के एक देश (अंश) को जानने वाला।

७. सर्व—अवधिज्ञान के द्वारा प्रकाश्य वस्तुओं के सर्व देश—सभी अंशों को जानने वाला।

८. वृद्धि, ९. हानि—तिर्यञ्च और मनुष्यों का अवधिज्ञान वर्द्धमान या हीयमान होता है। शेष जीवों का अवधिज्ञान अवस्थित होता है।

१०. प्रतिपाती।

११. अप्रतिपाती।[3]

५६. आहार पद (आहार पदं) सूत्र १७५ :

प्रज्ञापना के अठावीसवें पद का नाम 'आहार पद' है। किन्तु यहां वह विवक्षित नहीं है। प्रस्तुत विषय उसमें उल्लिखित

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १३० :
इह च विजयादिषु जघन्यतो द्वात्रिंशत्सागरोपमाण्युक्तानि, गन्धहस्त्यादिष्वपि तथैव दृश्यते, प्रज्ञापनायां त्वेकत्रिंशदुक्तेति मतान्तरमिदम्।

२. वही, पत्र १३२, १३३ :

३. (क) नंदी, हारिभद्रीयावृत्ति, पृष्ठ ३०, ३१।
(ख) समवायांगवृत्ति, पत्र १३४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। यह विषय चौतीसवें पद से प्राप्त है। उसका नाम 'परिचारणा पद' है। उसका आहार वर्णन वाला भाग इसमें गृहीत है। 'आहार पद' के द्वारा प्रस्तुत पद का आहार वर्णनात्मक भाग विवक्षित है।[1]

५७. आयुष्यबंध छह प्रकार का है (छव्विहे आउगबंधे) सूत्र १७६ :

एक साथ जितने कर्म-पुद्गल जिस रूप में भोगे जाते हैं, उस रूप-रचना का नाम निषेक है।

निधत्त का अर्थ है कर्म का निषेक के रूप में बंध होना। जिस समय आयु का बंध होता है, तब वह जाति आदि छहों के साथ निधित्त-निषिक्त होता है। अमुक आयु का बंध करने वाला जीव उसके साथ-साथ एकेन्द्रिय आदि पांच जातियों में से किसी एक जाति का, नरक आदि चार गतियों में से एक गति का, अमुक समय की स्थिति—काल मर्यादा का, अवगाहना—औदारिक या वैक्रिय शरीर में से किसी एक शरीर का तथा आयुष्य के प्रदेशों—परमाणु संचयों का और उसके अनुभाग—विपाक-शक्ति का भी बंध करता है।

५८. सूत्र १८० :

रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में विरहकाल क्रमशः इस प्रकार है—चौईस मुहूर्त्त, सात अहोरात्र, पन्द्रह अहोरात्र, एक मास, दो मास, चार मास और छह मास। सामान्यगति की अपेक्षा से यहां बारह मुहूर्त्त बतलाया गया है। तिर्यञ्च और मनुष्य गति का विरह-काल जो बारह मुहूर्त्त का बताया है वह गर्भावक्रान्ति की अपेक्षा से है। देवगति का कथन सामान्य गति की अपेक्षा से है।[2]

५९. सिद्धगति··· (सिद्धिवज्जा) सूत्र १८२ :

सिद्धों की उद्वर्तना नहीं होती। वे अपुनरावृत्त होते हैं।[3]

६०. सू० १८४ :

आकर्ष का अर्थ है—कर्म-पुद्गलों का ग्रहण। आयुष्य बंध का अध्यवसाय तीव्र होता है तो एक ही आकर्ष से जातिनामनिधिक्त आयुष्य का बंध हो जाता है। अध्यवसाय मंद होता है तो दो आकर्ष होते हैं। वह मन्दतर होता है तो तीन आकर्ष और मन्दतम होता है तो चार आकर्ष हो जाते हैं। इस प्रकार अध्यवसाय के तारतम्य के आधार पर आठ आकर्ष तक हो जाते हैं।[4]

६१. सू० २१७ :

स्थानांग में तीसरे कुलकर का नाम अनन्तसेन और चौथे का नाम अजितसेन है।[5] स्थानांग की मुद्रितप्रति में चौथे कुलकर का नाम 'अमितसेन' मिलता है तथा हस्तलिखित आदर्शों में 'अतितसेन' और 'अजितसेन' मिलता है। स्थानांग की मुद्रित प्रति में पांचवें कुलकर का नाम 'तर्कसेन' प्राप्त है। समवायांग की मुद्रित प्रति में इसके स्थान पर 'कार्यसेन' तथा हस्तलिखित आदर्श में 'कर्कसेन' मिलता है।[6]

६२. सू० २२३ :

देखें—हरिवंशपुराण, ६०/१५१-१५५।

६३. सू० २२४ :

देखें—हरिवंशपुराण, ६०/२२१-२२५।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १३५ :
प्रज्ञापनायाश्चतुस्त्रिंशत्तमं परिचारणापदाख्यं पदमिह भणितव्यमिति, इदं चात्राहारविचारप्रधानतया आहारपदमुक्तमिति।

२,३ समवायांगवृत्ति, पत्र १३७ :

४. समवायांगवृत्ति, पत्र १३७।

५. ठाणं १०/१४१।

६. देखें—अंगसुत्ताणि भाग १, पृष्ठ ९४२, पाद टिप्पण नं० ३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. सू० २२६ :

देखें—हरिवंशपुराण, ६०/२४५-२४६।

६५. सू० २३० (१,२) :

श्वेताम्बर[1] तथा दिगम्बर[2]—दोनों परंपराओं में तीर्थंकरों के दीक्षाकालीन तप का उल्लेख समान है—

वासुपूज्य— उपवास—
मल्ली और पार्श्व— तेला (तीन उपवास)
शेष बीस तीर्थंकर— बेला (दो उपवास)
तीर्थंकर सुमति के दीक्षाकाल में कोई तप नहीं था।

तीर्थंकरों के प्रथम भिक्षा (दीक्षाकालीन तप की पारणा) के विषय में श्वेताम्बर और दिगम्ब रपरंपरा में भिन्न-भिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। समवायांग में संकलित संग्रह गाथाओं के अनुसार प्रथम भिक्षा का क्रम इस प्रकार है—[3]

ऋषभ—प्रथम भिक्षा एक वर्ष बाद।
शेष तीर्थंकर—प्रथम भिक्षा दूसरे दिन।
दिगम्बर साहित्य के अनुसार[4]—
ऋषभ—प्रथम भिक्षा एक वर्ष बाद।
शेष तीर्थंकर—प्रथम भिक्षा तीसरे दिन।

श्वेताम्बर साहित्य में प्राप्त प्रथम भिक्षा के उल्लेख से यह प्रमाणित होता है कि बेले और तेले की तपस्या में दीक्षित होने वाले तीर्थंकर तपस्या के अन्तिम दिन दीक्षित होते हैं और दूसरे दिन उनको प्रथम भिक्षा प्राप्त हो जाती है—तपस्या का पारणा हो जाता है।

उत्तरपुराण से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। वहां ऐसे अनेक उल्लेख हैं कि तीर्थंकर दीक्षित होने के दूसरे ही दिन भिक्षा के लिए जाते हैं और उन्हें प्रथम भिक्षा प्राप्त होती है।

किन्तु हरिवंश पुराण में जो तीसरे दिन की बात आई है, उसका आशय ज्ञात नहीं होता। यदि हम यह मानें कि तीर्थंकरों ने दीक्षित होते समय उपवास, बेले या तेले की तपस्या स्वीकार की तो भी तीसरे दिन भिक्षा-प्राप्ति की बात संगत नहीं बैठती और यदि हम यह मानें कि वे तीर्थंकर उन-उन तपस्याओं में दीक्षित हुए तो भी उक्त तथ्य की संगति नहीं होती। क्योंकि सभी का पारणा दूसरे दिन नहीं होता—किसी का दूसरे दिन, किसी का तीसरे दिन और किसी का चौथे दिन होता। लिपि या मुद्रण के प्रमाद से द्वितीय दिन के स्थान में तृतीय दिन हो गया हो, ऐसी संभावना की जा सकती है।

इस प्रकार विमर्श करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि तीर्थंकर उपवास, बेले या तेले के दिन दीक्षित होते हैं और दूसरे दिन प्रथम भिक्षा प्राप्त करते हैं।

---

१. (क) समवायांग, प्रकीर्णक समवाय, २२८।
(ख) आवश्यक निर्युक्ति, गाथा २२८, अवचूर्णि प्रथम भाग, पृष्ठ २०३ :
सुमईत्थ निच्चभत्तेण, निग्गओ वासुपुज्ज जिणो चउत्थेणं।
पासो मल्लीवि अ अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं॥

२. हरिवंशपुराण ६०/२१६, २१७ :
निष्क्रांति: सुमतेर्भुक्त्वा, मल्ले: साष्टमभक्तका।
तथा पार्श्वजिनस्यापि, जयाजस्य चतुर्थका॥
षष्ठभक्तभृतां दीक्षा, शेषाणां तीर्थदर्शिनाम्।

३. समवायांग, प्रकीर्णक समवाय, २३०।

४. हरिवंशपुराण ६०/२१७ :
वर्षेण पारणाद्यस्य, जिनेन्द्रस्य प्रकीर्तिता।
तृतीयदिवसेऽन्येषां पारणा प्रथमा मता॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. सू० २३० (३) :

प्रस्तुत सूत्र में शरीर-प्रमाण सुवर्णवृष्टि का उल्लेख है। किन्तु उसकी संख्या उल्लिखित नहीं है। आवश्यक निर्युक्ति[1] और हरिवंश पुराण[2] में उल्लेख है कि तीर्थंकरों ने जहां प्रथम भिक्षा प्राप्त की थी वहां उत्कृष्टतः साढे बारह करोड़ तथा जघन्यतः साढे बारह लाख स्वर्णमुद्राओं की वर्षा हुई थी।

६७. चैत्य-वृक्ष (चेइयरुक्खा) सूत्र २३१ :

देखें—उत्तराध्ययन ९/९ का टिप्पण।

६८. सू० २३१ :

प्रस्तुत सूत्र में चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस चैत्य-वृक्ष बताए गए हैं। उनकी पहचान इस प्रकार है—

१. न्यग्रोध—बरगद, शमी—विजयादशमी को पूजा जाने वाला वृक्ष विशेष।
२. सप्तपर्ण—छतिवन वृक्ष।
३. शाल—साखू वृक्ष।
४. प्रियाल—पियाल, चिरौंजी का वृक्ष।
५. प्रियंगु—मालकंगुनी।
६. छत्राक—कुकुरमुत्ता, जल-बबूला।
७. शिरीष—शीशम जैसा अति मृदु पुष्प वाला वृक्ष।
८. नागवृक्ष—नागलता, नागकेसर। इसके स्थान पर 'नागरुक' शब्द का भी प्रयोग होता है। उसका अर्थ है—नारंगी का वृक्ष।
९. माली—वृक्ष-विशेष। आप्टे की डिक्शनरी में मालक का अर्थ निम्ब वृक्ष किया है।
१०. प्लक्ष—पाकर का वृक्ष।
११. तिंदुक—तेंदु। वह वृक्ष जिसकी पक्की लकड़ी आबनूस कहलाती है।
१२. पाटल—पाढर का वृक्ष।
१३. जंबु—जामुन का वृक्ष।
१४. अश्वत्थ—पीपल का वृक्ष।
१५. दधिपर्ण
१६. नंदि—तुन (तून) का पेड़ जिसके फूलों से पीला रंग बनता है।
१७. तिलक—तिल का पौधा।
१८. आम्र—आम्र वृक्ष।
१९. अशोक—वह वृक्ष जिसके पत्ते आम्रवृक्ष की तरह लंबे-लंबे और किनारे पर लहरदार होते हैं।
२०. चंपक—चंपक का वृक्ष।
२१. बकुल—मौलसिरी का वृक्ष।
२२. वेतस—बेंत का पौधा।
२३. धातकी—धव वृक्ष।
२४. शाल—साखू वृक्ष।

---

१. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा, ३३२, अवचूर्णी प्रथम विभाग, पृष्ठ २२७ :
अद्धतेरसकोडी, अक्कोसा तत्थ होइ वसुहारा।
अद्धतेरस लक्खा, जहण्णिआ होइ वसुहारा॥

२. हरिवंशपुराण, ९०/२५० :
अर्धत्रयोदशोत्कर्षाद्वसुधारासु कोटयः।
तावंत्येव सहस्राणि दशघ्नानि जघन्यतः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६९. सूत्र २३१ :

देखें—हरिवंशपुराण ६०/१८२-२०५ ।

७०. सूत्र २३३ :

प्रवचनसारोद्धार (३०७-३०९) में इनके नाम इस प्रकार हैं—

१. ब्राह्मी २. फल्गु ३. श्यामा ४. अजिता ५. काश्यपि ६. रति ७. सोमा ८. सुमना ९. वारुणी १०. सुयशा ११. धारिणी १२. धरणी १३. धरा १४. पद्मा १५. शिवा १६. शुभा १७. दामिनी १८. रक्षी १९. बंधुमति २०. पुष्पवती २१. अनिला २२. यक्षदत्ता २३. पुष्पचूला २४. चन्दना ।

७१. सूत्र २३४ :

अनेक हस्तलिखित आदर्शों में 'अश्वसेन' पाठ उपलब्ध नहीं है । वहां 'विश्वसेन' पाठ है । विश्वसेन पांचवें चक्रवर्ती के पिता का नाम था । किन्तु इन आदर्शों के आधार पर यदि हम 'अश्वसेन' पाठ स्वीकार नहीं करते हैं तो 'विश्वसेन' नाम चौथे चक्रवर्ती के पिता का ठहरता है । यह गलत है । आवश्यक निर्युक्ति में 'अश्वसेन' पाठ स्वीकृत है । वह उचित है ।[1]

७२. सूत्र २३६ :

भगवान् ऋषभ के समय में भरत, अजित के समय में सगर, धर्मनाथ और शांतिनाथ के अन्तराल काल में मघवा और सनत्कुमार, शांति-कन्थु और अर—ये तीनों चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर दोनों थे; अर और मल्ली के अन्तराल काल में सुभूम, मुनिसुव्रत के समय में पद्मनाभ, नमि के समय में हरिषेण, नमि और नेमि के अन्तराल काल में जय तथा अरिष्ट और पार्श्व के अन्तराल काल में ब्रह्म—ये चक्रवर्ती हुए ।[2]

७३. सूत्र २३८ :

प्रस्तुत गाथा स्थानांग ९/१९ से ली गई है । समवायांग की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में सोम के पश्चात् रुद्र का उल्लेख मिलता है ।[3] आवश्यक निर्युक्ति में भी यह गाथा प्राप्त है । उसमें एक नाम का भेद है । वहां 'महासिंह' के स्थान पर 'महाशिव' है ।[4]

७४. मध्यम (मज्झिम) सूत्र २४१ :

तीर्थङ्कर और चक्रवर्ती की तुलना में बलदेव-वासुदेव का बल, ऐश्वर्य आदि कम होता है और प्रतिवासुदेव की तुलना में उनका बल, ऐश्वर्य आदि अधिक होता है, इस प्रकार दो कोटियों के मध्यवर्ती होने के कारण उन्हें मध्यम पुरुष कहा गया है ।[5]

७५. प्रधान (पहाण) सूत्र २४१ :

अपने समय के मनुष्यों की अपेक्षा बलदेव-वासुदेव का शौर्य आदि अधिक होता है, इसलिए वे प्रधान-पुरुष कहलाते हैं ।[6]

---

१. (क) हस्तलिखित आदर्शों में गाथा द्वय :

उसभे सुमित्तविजए, समुद्दविजए य विस्ससेणे य ।
सूरिए सुदंसणे पउमुत्तर कत्तवीरिए चेव ॥१॥
महाहरी य विजए य, पउमे राया तहेव य ।
बम्हे बारसमे वुत्ता, पिउनामा चक्कवट्टीणं ॥२॥

(ख) आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ३९९, ४०० :

२. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ४१७-४१९ ।

३. समवायांग हस्तलिखित प्रति ।

४. आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ४११ ।

५,६. समवायांगवृत्ति, पत्र १४५ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. मरुदेश के वृषभ तुल्य (मरुयवसभकप्पा) सूत्र २४१ :

वृत्तिकार ने 'मरुयवसभकप्पा' का अर्थ 'मरुत्वृषभकल्प—देवराज तुल्य किया है।[१] किन्हीं आदर्शों में 'मरुय' के स्थान में 'मरुत' पाठ मिलता है। इस 'तकार' श्रुति के कारण ही संभवतः वृत्तिकार का ध्यान 'मरुत्'—देवता की ओर गया है। 'मरुय' का अर्थ 'मरुदेश' होता है। मरुदेश के वृषभ धुरा को वहन करने में अत्यन्त क्षम होते हैं। धुरा-वहन की क्षमता के कारण बलदेव-वासुदेव को मरुदेश के वृषभ की उपमा से उपमित किया गया है।

७७. सूत्र २४१ :

देखें—हरिवंश पुराण ६०/२८८, २८९।

७८. निदान (निदाण) सूत्र २४४ :

निदान का अर्थ है—तपोबल के आधार पर किया जाने वाला ऐहिक समृद्धि का संकल्प।

७९. द्यूत में पराजय (जुवे…पराइओ) सूत्र २४५ (१) :

यद्यपि गाथा में द्यूत का दूसरा स्थान है और संग्राम का तीसरा। किन्तु निदान-हेतुओं के सम्बन्ध की दृष्टि से संग्राम का स्थान दूसरा और द्यूत का तीसरा है। वासुदेव के पूर्वभव की नामसूचि में पर्वतक दूसरा और धनदत्त तीसरा वासुदेव है। इससे ज्ञात होता है कि यहां गाथा-रचना की दृष्टि से व्यत्यय किया गया है।[२]

८०. सूत्र २४५ :

समवायांग के वृत्तिकार ने इन निदान-कारणों की कोई व्याख्या नहीं की है। आवश्यकनिर्युक्ति की दीपिका (पत्र ९५) में उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :—

१. राजा विश्वभूति मुनि पर्याय में जब गाय के धक्के से गिर पड़ा तब उसने यह निदान किया—'भवान्तर में मैं अमित बल वाला होऊं।'

२. महाराज पर्वतक के पास एक रूपवती वेश्या थी। वन्ध्यशक्ति नाम के राजा ने उसकी मांग की। पर्वतक के इन्कार करने पर उससे संग्राम किया और उसे पराजित कर बन्दी बना लिया। कालान्तर में पर्वतक दीक्षित हुआ और यह निदान किया कि मैं भावीजन्म में वन्ध्य का वध करने की शक्ति प्राप्त करूं।

३. राजा बलि ने धनमित्र राजा को द्यूत में पराजित किया। धनमित्र ने दीक्षा ले राजा बलि को मारने का निदान किया।

४. राजा समुद्रदत्त ने अपनी पत्नी का हरण हो जाने पर हरण करने वाले के वध के लिए निदान किया।

५. राजा शैवाल जब रण में हार गया तब उसने विजयी राजा के वध के लिए निदान किया।

६. महाराज प्रियमित्र की भार्या का हरण हो जाने पर उन्होंने हरण करने वाले के वध के लिए निदान किया।

७. राजा ललितमित्र सभा में बैठा था। मंत्री ने कहा—राजकुमार राज्य योग्य हो गया है। उसे राज्य देना चाहिए। राजा ने इसे अपना अपमान समझा। दीक्षित होने पर उसने मंत्री के वध का निदान किया।

८. एक बार विद्याधर पुनर्वसु त्रिभुवनानन्द चक्रवर्ती की पुत्री को हरण कर जा रहा था। चक्रवर्ती ने अपने सैनिक भेजे। पुनर्वसु उनसे लड़ने लगा। कन्या हाथ से नीचे गिर पड़ी। उसे बहुत खेद हुआ। चक्रवर्ती की महान् ऋद्धि का उसे भान हुआ। दीक्षित हो उसने निदान किया कि मैं भवान्तर में इस लड़की (चक्रवर्ती की पुत्री) का पति बनूं।

९. एक सेठ का पुत्र था। उसका नाम था गंगदत्त। माता का अपमान देखकर उसने जनप्रिय राजा होने का निदान किया।

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १४७ :
मरुद्वृषभकल्पाः—देवराजोपमाः।

२. आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका, पत्र ९५ :
इह किल 'गावीजुए संगामे' ति पाठो दृश्यते, परं सम्बन्धेषु निदानहेतव एवं दृश्यन्ते, ततः प्राकृतत्वाद् व्यत्ययोऽपि घटते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरपुराण में निदान के कारण और वासुदेवों के पूर्वभववर्ती नाम भिन्न आए हैं। उनका संक्षेप इस प्रकार है—

१. विश्वनंदी (५७/७०-८२)—

मगध देश में राजगृह नाम का नगर था। विश्वभूति वहां का राजा था। उसकी रानी का नाम जैनी था। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम विश्वनंदी रखा गया। महाराज विश्वभूति के भाई का नाम विशाखभूति था। उसके पुत्र का नाम विशाखनंदी था। विश्वभूति ने अपने भाई को राज्य भार सौंपकर दीक्षा स्वीकार कर ली। राजगृह में एक नन्दन नाम का बगीचा था। वह विश्वनंदी को बहुत प्यारा था। एक बार विशाखनंदी ने जबरदस्ती उस उपवन को अपने अधीन कर लिया। विश्वनंदी और विशाखनंदी के मध्य युद्ध हुआ। विशाखनंदी हारकर भाग गया। विश्वनंदी का मन वैराग्य से भर गया और वह अपने चाचा विशाखभूति के साथ आचार्य संभूत के पास दीक्षित हो गया। एक दिन वह मथुरा में आया। वहां एक छोटे बछड़े वाली गाय ने क्रोध से उसे धक्का दिया। वह भूमि पर गिर पड़ा। विशाखनंदी, जो युद्ध में हारकर भाग गया था, वह उस समय वहीं एक वेश्या के घर पर झरोखे में बैठा था। मुनि विश्वनंदी को गिरते देख, वह हंसा और व्यंग से बोला—'तुम्हारा पराक्रम आज कहां गया ?'—ये शब्द मुनि को तीर की भांति चुभे और तत्काल उसने निदान किया, और मरकर महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर पोतनपुर नगर के राजा प्रजापति की रानी मृगावती के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम त्रिपृष्ठ रखा गया।

२. सुषेण, (५८/५६-७८) :

कनकपुर के राजा सुषेण के पास गुणमंजरी नाम की नर्तकी थी। वह अत्यन्त रूपवती और कला-कुशल थी। एक बार मलयदेश के राजा विन्ध्यशक्ति ने उस नर्तकी की मांग की। सुषेण ने दूत की भर्त्सना की। विन्ध्यशक्ति सुषेण से युद्ध करने कनकपुर आ पहुंचा। सुषेण पराजित हुआ। कुछ समय बाद वह विरक्त हो दीक्षित हो गया। किन्तु विन्ध्यशक्ति पर उसका क्रोध बढता रहा। अन्त में उसने निदान किया। वहां प्राण त्यागकर प्राणत स्वर्ग में अनुपम नामक विमान में देव बना। कालान्तर में वहां से च्युत होकर द्वारावती नगरी के राजा ब्रह्म की रानी उषा के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम द्विपृष्ठ रखा गया।

३. सुकेतु (५६/६३-८४) :

कुणाल देश में श्रावस्ती नाम का नगर था। वहां सुकेतु नाम का राजा राज्य करता था। वह द्यूत में आसक्त रहता था। एक बार उसने अपना सर्वस्व हार दिया। शोक से व्याकुल हो वह सुदर्शनाचार्य के पास पहुंचा और जैन दीक्षा ग्रहण कर ली। दीर्घकाल तक कठोर तपस्या करते हुए उसने अन्त में निदान किया कि 'इस तप के द्वारा मेरे कला, गुण, चातुर्य और बल प्रगट हों।'

४. वशुषेण (६०/४६-५६) :

पोतनपुर नगर के राजा वसुषेण की रानी का नाम नंदा था। वह अत्यन्त रूपवती थी। मलयदेश के राजा चण्डशासन ने उसका हरण कर लिया। दुःखी होकर राजा वसुषेण श्रेय नामक गणधर के पास दीक्षित हो गया। घोर तपस्या कर यह निदान किया कि—इस तपस्या का कुछ फल हो तो मैं ऐसा राजा बनूं, जिसका कोई अतिक्रमण न कर सके। मरकर बारहवें स्वर्ग में गया। वहां से च्युत होकर द्वारावती नगरी के राजा सोमपुत्र की रानी सीता के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम पुरुषोत्तम रखा गया।

५. श्रीविजय (६२/३७८-४०६) :

पूर्वभव में ये विद्याधर के अधिपति थे। इनका नाम श्रीविजय था। एक दिन इन्होंने अमरगुरु और देवगुरु नामक दो श्रेष्ठ मुनियों को नमस्कार किया और उनसे अपने तथा पिता के पूर्वभवों का संबंध पूछा। उन्होंने सारा वृतान्त कह सुनाया। उसे सुनकर श्रीविजय ने भोगों का निदान किया।

६. नाम अज्ञात (६५/१७४, १७५) :

पूर्वभव में इसने राजा सुकेतु के आश्रय से शल्य सहित तप किया था। इनका निदान का कारण प्राप्त नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. नाम अज्ञात (६६/१०२-१०५) :

पूर्वभव में वह अयोध्या नगर का राजपुत्र था। पिता के लिए यह प्रिय नहीं था, इसलिए पिता ने अपने छोटे भाई को युवराज पद दे दिया। उसने समझा कि यह सारा कार्य मंत्री ने किया है, इसलिए उस पर कुपित हुआ। कालान्तर में वह शिवगुप्त मुनि के पास दीक्षित हो गया। मंत्री के प्रति वैर बढ़ता गया। ग्रन्थकार ने निदान का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है।

८. चन्द्रचूल (६७/८६-१४४) :

मलयराष्ट्र में रत्नपुर नाम का नगर था। वहां प्रजापति नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम गुणकान्ता था। उसने एक पुत्र का प्रसव किया। उसका नाम इन्द्रचूल रखा गया। उसने एक सेठ की पुत्री से बलात्कार किया। राजा ने उसे मृत्यु-दंड दिया। मंत्री ने यह भार अपने ऊपर लिया और उसे एक मुनि के पास छोड़ दिया। उसने दीक्षा ले ली। एक बार वह खड्गपुर नगर के बाहर आतापना में स्थित था। उस समय वासुदेव पुरुषोतम दिग्विजय कर नगर में आ रहे थे। उनकी ऋद्धि को देखकर उसने निदान किया।

६. निर्नामक (७१/१६६-२६८) :

एक बार देवकी ने वरदत्त गणधर से पूछा—'भगवन् ! मेरे घर पर दो-दो कर छह मुनिराज भिक्षा के लिए आए थे। उनको देखकर मेरे मन में कुटुम्बियों जैसा स्नेह उत्पन्न हुआ था। इसका कारण स्पष्ट करें। गणधर ने सारा वृतान्त बताते हुए अन्त में कहा—'ये छहों व्यक्ति तेरे पुत्र थे। कंस के भय के कारण नैगमर्षि देव ने उन्हें अलका सेठानी के यहां रख दिया था। अलका ने उनका पालन किया है। ये इसी भव में मुक्त होंगे। ·········पूर्वभव में जो तेरा निर्नामक नाम का पुत्र था, उसने तपश्चर्या करते समय निदान करके मारने वाला कृष्ण हुआ है।

उत्तरपुराण में वासुदेवों तथा बलदेवों के पूर्वभविक नामों में अंतर है। इसी प्रकार वासुदेवों के पूर्वभविक धर्माचार्यों के नाम, निदान-भूमियां तथा निदान के कारण भी भिन्न रूप से उल्लिखित हैं—

वासुदेवों के पूर्वभविक नाम—

१. विश्वनंदी २. सुषेण ३. सुकेतू ४. वसुषेण ५. श्रीविजय ६. अज्ञात ७. अज्ञात ८. चन्द्रचूल ६. निर्नामक।

बलदेवों के पूर्वभविक नाम—

१. विशाखभूति २. वासुरथ ३. मित्रनंदी ४. महाबल ५. अपराजित ६. अज्ञात ७. अज्ञात ८. विजय ६. शंख।

वासुदेवों के पूर्वभविक धर्माचार्य—

१. सम्भूत २. सुव्रत ३. सुदर्शनाचार्य ४. श्रेय ५. नन्दन ६. अज्ञात ७. शिवगुप्त ८. महाबल ६. द्रुमसेन।

वासुदेवों के पूर्वभव की निदान-भूमियां—

१. मथुरा २. कनकपुर ३. श्रावस्ती ४. पोदनपुर ५. प्रभाकरी ६. अज्ञात ७ अयोध्या ८. खड्गपुर ६. अज्ञात।

वासुदेवों के निदान के कारण—

१. गाय के द्वारा गिरना २. युद्ध में पराजय ३. द्यूत में पराजय ४. स्त्री का हरण ५. भोग ६. अज्ञात ७. राज्य का अपहरण ८. परऋद्धि दर्शन ६. एश्वर्य दर्शन।

८१. प्रभराज (पहराए) (रण्णे?) सू० २४६ (१) :

समवायांग में दो स्थानों (प्रकीर्णक समवाय २४६ तथा २५७) पर 'पहराए' पाठ मिलता है। प्रथम स्थान में 'पहराय' सातवें प्रतिवासुदेव का नाम है और दूसरे स्थान में वह होने वाले पांचवें प्रतिवासुदेव का नाम है। इसका संस्कृत रूप 'प्रभराज' या 'पथराज' हो सकता है। आचार्य हेमचन्द्र ने सातवें प्रतिवासुदेव का नाम 'प्रल्हाद' माना है।[1] प्रल्हाद का प्राकृतरूप 'पल्हाए' हो सकता है। उसके लिए 'पहराए' रूप-निर्माण की आवश्यकता नहीं होती। हरिवंशपुराण में सातवें प्रतिवासुदेव का नाम 'प्रहरण' है। 'पहराए' का इस नाम से संबंध ज्ञात होता है। यहां ऐसी परिकल्पना करना असंगत नहीं

१. अभिधानचिन्तामणि कोषः ३/३६३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा कि मूलतः दोनों स्थानों में ही 'पहरणे' पाठ रहा है, किन्तु लिपि-परिवर्तन के काल में 'पहरणे' का 'पहराए' पाठ हो गया है

प्राचीनलिपि	**उत्तरकालीनलिपि**
पहराए (पहरणे)	पहराए

प्राचीनलिपि में एक एकार की मात्रा वर्ण के पूर्व लिखी जाती थी और एकार के आगे एक मात्रा और लिखने पर 'ण' का आकार बन जाता था। इस सादृश्य के कारण प्रस्तुत पाठ में परिवर्तन हुआ, यह मानना कोई जटिल परिकल्पना नहीं है।

८२. सू० २४६ :

हरिवंशपुराण (६०/२९१, २९२) में ये नाम इस प्रकार हैं—

१. अश्वग्रीव २. तारक ३. मेरुक ४. निशुंभ ५. मधुकैटभ ६. बलि ७. प्रहरण ८. रावण ९. जरासंध।

उत्तरपुराण (पर्व ५७ से ७२) के अनुसार ये नाम इस प्रकार हैं—

१. अश्वग्रीव २. तारक ३. मधु ४. मधुसूदन ५. दमितारि ६. निशुंभ ७. बलीन्द्र ८. रावण ९. जरासंध।

८३. सू० २४८ :

प्रवचनसारोद्धार (गाथा २९६-२९८) में इनके नाम इस प्रकार हैं—

१. बालचन्द्र २. श्रीसिचय ३. अग्निषेण ४. नन्दिषेण ५. श्रीदत्त ६. व्रतधर ७. सोमचन्द्र ८. दीर्घसेन ९. शतायु १०. सत्यकी ११. युक्तिषेण १२. श्रेयांस १३. सिंहसेन १४. स्वयंजल १५. उपशान्त १६. देवसेन १७. महावीर्य १८. पार्श्व १९. मरुदेव २०. श्रीधर २१. स्वामिकोष्ठ २२. अग्निसेन २३. अग्रदत्त (मार्गदत्त) २४. वारिसेन।

८४. सू० २४९ :

उत्तरपुराण (७/४६३-४६६) के अनुसार आगामी उत्सर्पिणी में सोलह कुलकर होंगे। उनके नाम इस प्रकार हैं—

१. कनक २. कनकप्रभ ३. कनकराज ४. कनकध्वज ५. कनकपुंगव ६. नलिनपुत्र ७. नलिनपुत्र ८. नलिनराज ९. नलिनध्वज १०. नलिनपुंगव ११. पद्म १२. पद्मप्रभ १३. पद्मराज १४. पद्मध्वज १५. पद्मपुंगव १६. महापद्म।

८५. सू० २५० :

स्थानांग १०/१४४ में ये नाम कुछ व्यत्यय के साथ मिलते हैं—

१. सीमंकर २. सीमंधर ३. क्षेमंकर ४. क्षेमंधर ५. विमलवाहन ६. सम्मति ७. प्रतिश्रुत ८. दृढ़धनु ९. दशधनु १०. शतधनु।

८६. सू० २५१ :

उत्तरपुराण (७६/४७७-४८१) में ये नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं—

१. महापद्म	२. सुरदेव	३. सुपार्श्व	४. स्वयंप्रभ	५. सर्वात्मभूत	६. देवपुत्र
७. कुलपुत्र	८. उदङ्क	९. प्रोष्ठिल	१०. जयकीर्ति	११. मुनिसुव्रत	१२. अरनाथ
१३. अपाय	१४. निष्कषाय	१५. विपुल	१६. निर्मल	१७. चित्रगुप्त	१८. समाधिगुप्त
१९. स्वयंभू	२०. अनिवर्ती	२१. विजय	२२. विमल	२३. देवपाल	२४ अनन्तवीर्य।

प्रवचन सारोद्धार (२९३-२९५) में ये नाम इस प्रकार हैं—

१. पद्मनाभ	२. सुरदेव	३. सुपार्श्व	४. स्वयंप्रभ	५. सर्वानुभूति	६. देवश्रुत
७. उदय	८. पेढाल	९. पोट्टिल	१०. शतकीर्ति	११. मुनिसुव्रत	१२. अमम
१३. निष्कषाय	१४. निष्पुलाक	१५. निर्मम	१६. चित्रगुप्त	१७. समाधि	१८. संवरक
१९. यशोधर	२०. विजय	२१. मल्लि	२२. देवजिन	२३. अनन्तवीर्य	२४. भद्रजिन।

हरिवंशपुराण ६०/५२८-५६२ **(भद्रकृत)**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८७. सू० २५२ :

उत्तरपुराण (७६/४७१-४७५) में ये नाम इस प्रकार हैं—

१. श्रेणिक	२. सुपार्श्व	३. उदङ्क	४. प्रोष्ठिल	५. कटप्रू	६. क्षत्रिय
७ श्रेष्ठी	८. शंख	९. नन्दन	१०. सुनन्द	११. शशाङ्क	१२. सेवक
१३. प्रेमक	१४. अतोरण	१५. रैवत	१६. वासुदेव	१७. भगलि	१८. वागलि
१९. द्वैपायन	२०. कनकपाद	२१. नारद	२२. चारुपाद	२३. सत्यकिपुत्र ।	

उत्तरपुराणकार ने ये तेईस नाम गिनाकर, 'एक अन्य' ऐसा उल्लेख कर चोईस की संख्या पूरी की है। 'एक दूसरे' से उनका क्या तात्पर्य था यह ज्ञात नहीं है।

८८. सू० २५४ :

उत्तरपुराण (७६/४८२-४८४) में ये नाम इस प्रकार हैं—

१. भरत	२. दीर्घदन्त	३. मुक्तदन्त	४. गूढदन्त	५. श्रीषेण	६. श्रीभूति
७. श्रीकान्त	८. पद्म	९. महापद्म	१०. विचित्रवाहन	११. विमलवाहन	१२. अरिष्टसेन ।

हरिवंशपुराण ६०/५६२-५६५ ।

८९. सू० २५६ :

उत्तरपुराण (७६/४८५-४८९) में ये नाम इस प्रकार हैं—

नौ नारायण (वासुदेव)—

१. नंदी २. नंदिमित्र ३. नंदिसेन ४. नंदिभूति ५. सुप्रसिद्धबल ६. महाबल ७. अतिबल ८. त्रिपृष्ठ ९. द्विपृष्ठ ।

नौ बलभद्र (बलदेव)—

१. चन्द्र २. महाचन्द्र ३. चक्रधर ४. हरिचन्द्र ५. सिंहचन्द्र ६. वरचन्द्र ७. पूर्णचन्द्र ८. सुचन्द्र ९. श्रीचन्द्र ।

९०. सू० २५८ :

ऐरवत में होने वाले तीर्थंकरों की नामावलि में चौबीस के स्थान पर पचीस नाम हैं। सिद्धार्थ नाम दो बार आया है। यदि एक स्थान में सिद्धार्थ को विशेषण माना जाए तो चौबीस तीर्थङ्करों के नाम शेष रह जाते है।

९१. सू० २६१ :

प्रस्तुत सूत्र में कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और दशार—इनके वंशों का प्रतिपादन किया गया है, इसलिए इसके उक्त नाम—कुलकरवंश, तीर्थंकरवंश, चक्रवर्तीवंश और दशारवंश—सार्थक हैं।

गणधर, ऋषि, यति और मुनि—इनके वंशों का प्रतिपादन 'कप्पस्स समोसरणं नेयव्वं' (प्रकीर्णक समवाय, सू० २१५) इस समर्पित सूत्र के द्वारा हुआ है, इसलिए इसके ये नाम—गणधरवंश, ऋषिवंश, यतिवंश और मुनिवंश—भी सार्थक हैं।

प्रस्तुत सूत्र के द्वारा त्रैकालिक अर्थो का अवबोध होता है, इसलिए यह 'श्रुत' है।

यह 'श्रुतपुरुष' का एक अंग है, इसलिए यह 'श्रुतांग' है।

इसमें अर्थों का संक्षेप में प्रतिपादन हुआ है, इसलिए यह 'श्रुतसमास' है।

इसमें श्रुत का समुदाय है, इसलिए यह 'श्रुतस्कन्ध' है।

इसमें जीव, अजीव आदि पदार्थों का समवायन (प्रतिपाद्य रूप में एकत्रीकरण) है, इसलिए यह 'समवाय' है।

इसमें पदार्थों का प्रतिपादन संख्या—आधारित है, इसलिए यह 'संख्या' है।

इस प्रकार सूत्रकार ने उपसंहार सूत्र में प्रस्तुत सूत्र के चौदह नामों का निर्देश किया है।

प्रस्तुत सूत्र में आचारांग और सूत्रकृतांग की भांति दो खंड नहीं हैं तथा इसमें उद्देशक आदि के विभाग नहीं हैं। इसकी समस्त (अखंड) अंग तथा अध्ययन के रूप में रचना की गई है।[1]

---

१. समवायांगवृत्ति, पत्र १४७,१४८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

पहला—तुलना

दूसरा—विशेषनामानुक्रम

तीसरा—विशेषनाम-वर्गानुक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १

तुलना

(समवाओ-ठाणं-प्रवचनसारोद्धार-आवश्यकनिर्युक्ति आदि)

समवाओ १।२	ओवाइयं तुलनात्मक परिशिष्ट	समवाओ २।१६	ठाणं २।४५०
१।४	ठाणं १।२	२।१७	२।४५१
१।६	१।३	२।१८	२।४५२
१।८	१।४	२।१९	२।४५३
१।१०	१।५	३।१	३।२४
१।११	१।६	३।२	३।२१
१।१२	१।७	३।३	३।३८५
१।१३	१।८	३।४	३।५०५
१।१४	१।११	३।६-१२	३।५२८,५२९
१।१५	१।१२	३।१४	३।१२६
१।१६	१।९	३।१५	३।१२७
१।१७	१।१०	४।१	४।७५
१।१८	१।१३	४।२	४।६०
१।१९	१।१४	४।३	४।२४१
१।२०	१।१५	४।४	४।५७८
१।२१	१।१६	४।५	४।२९०
१।२२-२५	४।४८१	४।७	४।६५४
१।२६	१।२५१	४।८	४।६५५
१।२७	१।२५२	४।९	४।६५६
१।२८	१।२५३	५।१	५।११५
२।१	२।७६	५।२	५।१
२।२	२।३६०	५।३ :	५।५ :
२।३ :	२।३६१ :	पंच कामगुणा पण्णत्ता,	पंच कामगुणा पण्णत्ता,
दुविहे बंधणे पण्णत्ते, तंजहा—	दुविहे बंधे पण्णत्ते, तंजहा—	तं जहा—	तं जहा—
रागबंधणे चेव, दोसबंधणे	पेज्जबंधे चेव दोसबंधे चेव।	सद्दा रूवा रसा गंधा	सद्दा रूवा गंधा रसा
चेव।		फासा।	फासा।
२।४	२।४४५	५।४ :	५।१०९ :
२।५	२।४४६	पंच आसवदारा पण्णत्ता,	पंच आसवदारा पण्णत्ता
२।६	२।४४३	तं जहा—	तं जहा—
२।७	२।४४४	मिच्छत्तं अविरई पमाया	मिच्छत्तं अविरती पमादं
२।११	२।४४९	कसाया जोगा।	कसाता जोगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवाओ	ठाणं
५।५ :	५।११० :
पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा— सम्मत्तं विरई अप्पमाया अकसाया अजोगा ।	पंच संवरदारा पण्णत्ता, तं जहा— सम्मत्तं विरती अपमादो अकसातित्तं अजोगित्तं ।
५।६ :	५।१२६ :
पंच निज्जरट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा— पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिन्नादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं ।	पंचहिं ठाणेहिं जीवा रतं वमंति, तं जहा— पाणातिपातवेरमणेणं मुसावायवेरमणेणं अदिण्णादाणवेरमणेणं मेहुणवेरमणेणं परिग्गहवेरमणेणं ।
५।७	५।२०३
५।८	५।१६६
५।९-१३	५।२३७
६।१	६।४७
६।२	६।६
६।३ :	६।६५ :
छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा— अणसणं ओमोदरिया वित्तिसंखेवो रसपरिच्चाओ कायकिलेसो संलीणया ।	छव्विहे बाहिरते तवे पण्णत्ते, तं जहा— अणसणं ओमोदरिया भिक्खातरिता रसपरिच्चाते कायकिलेसो पडिसंलीणता ।
६।४ :	६।६६ :
छव्विहे अब्भिंतरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा— पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं उस्सग्गो ।	छव्विहे अब्भंतरिते तवे पण्णत्ते, तं जहा— पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं विउस्सग्गो ।
६।६	६।९८
६।७	६।१२६
६।८	६।१२७
७।१ :	७।२७ :
सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा— इहलोगभए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवभए मरणभए असिलोगभए ।	सत्त भयट्ठाणा पण्णत्ता, तं जहा— इहलोगभते परलोगभते आदाणभते अकम्हाभते वेयणभते मरणभते असिलोगभते ।
७।२	७।१३८

समवाओ	ठाणं
७।३	७।७९
७।४	७।५१
७।५	७।५०
७।७	७।१४५
७।१३	७।९२
७।१४	७।९३
७।१७	७।१०२
७।१८	७।१०३
७।१९	७।१०४
८।१	८।२१
८।२ :	८।१७ :
अट्ठ पवयणमायाओ पण्णत्ताओ···	अट्ठ समितीतो पण्णत्ताओ···
८।४	८।६३
८।५	८।६४
८।६	८।९२
८।७ :	८।११४ :
अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते, तं जहा—	अट्ठसमतिते केवलिसमुग्घाते पण्णत्ते तं जहा—
पढमे समए दंडं करेइ, बीए समए कवाडं करेइ, तइए समए मंथं करेइ, चउत्थे समए मंथंतराइं पूरेइ, पंचमे समए मंथंतराइं पडिसाहरइ, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ, तत्तो पच्छा सरीरत्थे भवइ ।	पढमे समए दंडं करेति, बीए समए कवाडं करेति, ततिए समते मंथं करेति, चउत्थे समते लोगं पूरेति, पंचमे समए लोगं पडिसाहरति, छट्ठे समए मंथं पडिसाहरति, सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरति, अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरति ।
८।८ :	८।३७ :
पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—	पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणितस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं जहा—
सुंभे य सुंभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य । सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इय ।।	सुभे अज्जघोसे वसिट्ठे बंभचारी सोमे सिरिधरे वीरभद्दे जसोभद्दे ।
८।९	८।११९
९।१ :	९।३ :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समवाओ	ठाणं
नव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—	णव बंभचेरगुत्तीतो पण्णत्ताओ, तं जहा—
नो इत्थी-पसु-पंडग संसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ।	विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—णो इत्थिसंसत्ताइं णो पसुसंसत्ताइं णो पंडगसंसत्ताइं।
नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ।	णो इत्थीणं कहं कहेत्ता भवत्ति।
नो इत्थीणं ठाणाइं सेवित्ता भवइ।	णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति।
नो इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ।	णो इत्थीणमिंदिताइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति।
नो पणीयरसभोई भवइ।	णो पणीतरसभोती (भवति ?)
नो पाणभोयणस्स अतिमायं आहारइत्ता भवइ।	णो पाणभोयस्स अतिमातमाहारते सता भवति।
नो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरइत्ता भवइ।	णो पुव्वरतं पुव्वकीलियं सरेत्ता भवति।
नो सद्दाणुवाई नो रूवाणुवाई नो गंधाणुवाई नो रसाणुवाई नो फासाणुवाई नो सिलोगाणवाई।	णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती (भवति ?)।
नो सायासोक्ख-पडिबद्धे यावि भवइ।	णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति
९।२	९।४
९।३	९।२
९।४	९।५९
९।५	९।१५
९।६	९।१६
९।७	९।१७
९।८	९।१८
९।११	९।१४
१०।१	१०।१६
१०।३	१०।२९
१०।४	१०।७९
१०।५	१०।८०
१०।७	१०।१७०
१०।८ :	१०।१४२ :
अकम्मभूमियाणं मणुआणं दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया पण्णत्ता, तं जहा—	सुसमसुसमाए णं समए दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, तंजहा—

समवाओ १०।९	ठाणं	१०।१२५
१०।११		१०।१२४
१०।१२		१०।१२६
१०।१३		१०।१२७
१०।१४,१५		१०।१२८
१०।१७		१०।१२९
१०।१८		१०।१३०
१०।२०		१०।१३१
१०।२१		१०।१३२
११।१	दसासुयक्खंधो	दसा ६
१२।१		दसा ७
१३।१	सूयगडो	२।२
१४।७	ठाणं	७।६७,६८
१४।८		७।५२,५३
१६।२		४।८४-८७
१६।३	जंबुद्दीवपण्णत्ती	वक्खार ४
१७।९	ठाणं	२।४११-४१६
२०।१	दसासुयक्खंधो	दसा १
२१।१	,,	दसा २
२२।१	उत्तरज्झयणाणि	२।सू० ३
२५।१	आयारचूला	१५।४३-७८;
	पण्हावागरणाइं,	संवरदार
३०।१	दसासुयक्खंधो	दसा ९
३२।२	ठाणं	२।३५३-३६२, ३७९-३८४
३३।१	दसासुयक्खंधो	दसा ३
४२।२,३	ठाणं	४।३३०
४५।१-४		४।४८२
४९।१		७।१३
६४।१		८।१०४
७२।७	ओवाइयं	तुलनात्मक परिशिष्ट
८१।१	ठाणं	९।४१
९५।२		४।३२९
१००।१		१०।५१
पइण्णग १२		३।५३४
समवाओ १७		४।३०९
२०	ठाणं	४।६४८
२३		५।१५६
२५		५।१५९
२६		५।१६०
३०		५।२२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इण्णग ३१		६।१०७
समवाओ ३४		६।७८
३५		६।७६
३६		६।७९
३७		७।१०५
४३		८।११२
४५		८।११५
४६		८।११६
४७		८।११३
४८		९।६४
५१		९।६५
५५		१०।१५८
५८		१०।३६
७७		२।३२७
७९		४।३३६
८१		६।७७
८५		१०।७८
८८-१३४	नंदी	७९-१२६
२१६	ठाणं	७।६१
२१७ :	ठाणं	१०।१४३ :

सयंजले सयाऊ य,
अजियसेणे अणंतसेणे य ।
कक्कसेणे भीमसेणे,
महाभीमसेणे य सत्तमे ॥
दढरहे दसरहे सतरहे ॥

सयज्जले सयाऊ य,
अणंतसेणे त अजितसेणे त ।
कक्कसेणे भीमसेणे,
महाभीमसेणे त सत्तमे ॥
दढरहे दमरहे सयरहे ॥

२१८ : ७।६२

पढमेत्थ विमलवाहण,
चक्खुम जसमं चउत्थ-
मभिचंदे ।
तत्तो य पसेणइए,
मरुदेवे चेव नाभी य ॥

आ० नि० १५५

जंबुद्दीवपण्णत्ती, वक्खार २ :
सुमई पडिस्सुई सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे विमलवाहणे चक्खुमं जसमं अभिचंदे चंदाभे पसेणई मरुदेवे णाभी उसभे ।

२१९ ठाणं ७।६३
आ०नि० १५६

२२० आ०नि० ३८७-३८९
प्रव० ३२२-३२४
त्रि०पु०

२२१ आ०नि० ३८५, ३८६
प्रव० ३२०, ३२१
त्रि०पु०

पइण्णग २२३ : सप्त० ४४ :

समवाओ पढमेत्थ वइरणाभे,
विमले तह विमल-
वाहणे चेव ।
तत्तो य धम्मसीहे,
सुमित्ते तह धम्म-
मित्ते य ॥

वज्जनाह विमलवाहण
विउलबल महाबला अइबलो
य ।
अवराइयो य नंदी,
पउम महापउम पउमा य ॥

२२३ : सप्त० ४५, ४६ :

सुंदरबाहू तह दीहबाहू,
जुगबाहू लट्ठबाहू य ॥
दिण्णे य इंददत्ते,
सुंदर माहिंदरे चेव ॥
सीहरहे मेहरहे,
रुप्पी य सुदंसणे य बोद्धव्वे ।
तत्तो य नंदणे खलु,
सीहगिरी चेव वीसइमे ॥
अदीणसत्त संखे,
सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे ।
ओसप्पिणीए एए,
तित्थकराणं तु पुव्वभवा ॥

नलिणीगुम्मो पउमुत्तरो अ
तह पउमसेण पउमरहा ।
दढरह मेहरहावि अ,
सीहावह धणवई चेव ॥
वेसमणो सिरिवम्मो,
सिद्धत्थो सुप्पइट्ठ आणंदो ।
नंदण नामा पुव्वि,
पढमो चक्की निवा सेसा ॥

त्रि० पु०

वज्रनाभ, विमलवाहन (विमल), विमलकीर्ति (विमल वाहन), महाबल, पुरुषसिंह, अपराजित, नंदिसेण, पद्म, महापद्म, पद्मोत्तर, नलिन-गुल्म, पद्मोत्तर, पद्मसेन, पद्मरथ, दृढ़रथ, मेघरथ, सिंहावह, धनपति, महाबल, सुरश्रेष्ठ, सिद्धार्थ, संख, सुवर्णबाहु, नंदन ।

२२४ : सप्त० १५०-१५२ :

सीया सुदंसणा सुप्पभा य,
सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य ।
विजया य वेजयंती,
जयंती अपराजिया चेव ॥
अरुणप्पभ चंदप्पभ,
सूरप्पह अग्गिसप्पभा चेव ।
विमला य पंचवण्णा,
सागरदत्ता तह णागदत्ता य ॥
अभयकर णिव्वुतिकरी,
मणोरमा तह मणोहरा चेव ।
देवकुरु उत्तरकुरा,
विसाल चंदप्पभा सीया ॥

सिबिया सुदंसणा सुप्पभा य,
सिद्धत्थ अत्थसिद्धा य ।
अभयंकरा य निव्वुइकरा,
मणोहर मणोरमिया ॥
सूरपहा सुक्कपहा,
विमलपहा पुहवि देवदिन्ना य ।
सागरदत्ता तह नागदत्त,
सव्वट्ठ विजया य ॥
तह वेजयंतिनामा,
जयंति अपराजिया य देवकुरू ।
बारवई अ विसाला,
चंदपहा नरसहसवुज्झा ।

त्रि० पु०

२२४ : आ०चू० १५।२८ :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुव्विं उक्खित्ता,	पुव्विं उक्खित्ता,
माणुसेहि साहट्ठरोमकूवेहिं ।	माणुसेहिं साहट्ठरोमपुलएहिं ।
पच्छा वहंति सीयं,	पच्छा वहंति देवा,
असुरिंदसुरिंदनागिंदा ।।	सुरअसुरगरुलणागिंदा ।।
चलचवलकुंडलधरा,	पुरओ सुरा वहंती,
सच्छंदविउव्वियाभरणधारी ।	असुरा पुण दाहिणंमि पासंमि ।
सुरअसुरवंदियाणं,	अवरे वहंति गरुला,
वहंति सीयं जिणिंदाणं ।	णागा पुण उत्तरे पारे ।।
पुरओ वहंति देवा,	आ०भा० ९८,९९ :
नागा पुण दाहिणम्मि	
पासम्मि ।	पुव्विं उक्खित्ता,
पच्चत्थिमेण असुरा,	माणुसेहिं साहट्ठरोमकूवेहिं ।
गरुला पुण उत्तरे पासे ।।	पच्छा वहंति सीअं
	असुरिंदसुरिंदनागिंदा ।।
	चलचवलभूसणधरा,
	सच्छंदविउव्विआभरणधारी ।
	देविंददाणविंदा,
	वहंति सीअं जिणिंदस्स ।।
२२५	आ०नि० २२६
२२६	आ०नि० २२७
पइण्णग २२७	आ०नि० २२४,२२५
समवाओ	प्रव० ३८३[1],३८४
	आ०नि० २२८
२२८	आ०नि० ३२७-३२९ :
२२९ :	सिज्जंस बंभदत्ते,
सेज्जंसे बंभदत्ते,	सुरेंददत्ते य इंददत्ते अ ।
सुरिंददत्ते य इंददत्ते य ।	पउमे अ सोमदेवे,
तत्तो य धम्मसीहे,	महिंद तह सोमदत्ते अ ।।
सुमित्ते तह धम्ममित्ते य ।	पुस्से पुणव्वसू पुण नंद
पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद	सुनंदे जए अ विजए य ।
सुणंदे जये य विजये य ।	तत्तो अ धम्मसीहे,
पउमे य सोमदेवे,	सुमित्त तह वग्घसीहे अ ।।
महिंददत्ते य सोमदत्ते य ।।	अपराजिअ विस्ससेणे,

अपरातिय वीससेणे,	वीसइमे होइ बंभदत्ते अ ।
वीसतिमे होइ उसभसेणे य ।	दिण्णे वरदिण्णे पुण,
दिण्णे वरदत्ते,	धण्णे बहुले अ बोद्धव्वे ।।
धन्ने बहुले य आणुपुव्वीए ।।	सप्त० १६३-१६५
	त्रि पु०
पइण्णग २३० :	आ०नि० ३१९,३२०,३२१ :
समवाओ संवच्छरेण भिक्खा,	संवच्छरेण भिक्खा,
लद्धा उसभेण लोगणाहेण ।	लद्धा उसभेण लोगनाहेण ।
सेसेहिं बीयदिवसे,	सेसेहिं बीयदिवसे,
लद्धाओ पढमभिक्खाओ ।।	लद्धाओ पढमभिक्खाओ ।
उसभस्स पढमभिक्खा,	उसभस्स उ पारणए,
खोयरसो आसि लोगणाहस्स ।	इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स ।
सेसाणं परमण्णं,	सेसाणं परमण्णं,
अमयसरसोवमं आसि ।।	अमयरसरसोवमं आसी ।।
सव्वेसिपि जिणाणं,,	सव्वेहिंपि जिणेहिं,
जहियं लद्धाओ पढमभिक्खातो ।	जहिअं लद्धाओ पढम-
तहियं वसुधाराओ,	भिक्खाओ ।
सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ।।	तहिअं वसुहाराओ,
२३१ :	वुट्ठाओ पुप्फवुट्ठीओ ।।
णग्गोह-सत्तिवण्णे	सप्त० १८६,१८७ :
साले पियए पियंगु छत्ताहे ।	नग्गोह सत्तवन्नो,
सिरिसे य णागरुक्खे,	साल पिआलो पियंगु
माली य पिलंखुरुक्खे य ।।	छत्ताहे ।
तेंदुग पाडल जंबू,	सिरिसो नागो मल्ली,
आसोत्थे खलु तहेव दधिवण्णे ।	पिलुंख तिंदुयग पाडलया ।।
णंदीरुक्खे तिलए य,	जंबू असत्थ दहिवन्न
अंबयरुक्खे असोगे य ।।	नंदि तिलगा य अंबग असोगो ।
चंपय बउले य तहा,	चंपग बउलो वेडस
वेडसिरुक्खे धायईरुक्खे ।	धाइअ सालो अ नाणतरू ।।
साले य वड्ढमाणस्स,	त्रि० पु०
चेइयरुक्खा जिणवराणं ।।	न्यग्रोध, सप्तच्छद, साल,
	प्रियाल, प्रियंगु, वट, शिरीष,
	पुन्नाग, मालूर, प्लक्ष,
	अशोक, पाटला, जंबू, अशोक,
	दधिपर्ण, नंदिवृक्ष, तिलक,
	सहकार अशोक, चंपक,
	बकुल, वेतस, न्यग्रोध, शाल ।
पइण्णग २३१ :	सप्त० १८८ :
समवाओ बत्तीसइं धणूइं,	ते जिणतणुबारगुणा,
चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स ।	चेइअतरुणो वि नवरि
	वीरस्स ।

१. मल्लिस्त्रिभिः शतैः सह व्रतमग्रहीत्, अत्र च मल्लिस्वामी स्त्रीणां पुरुषाणां च प्रत्येकं त्रिभिस्त्रिभिः शतैः सह प्रव्रजितः, ततो मिलितानि षट् शतानि भवन्ति, यत्तु सूत्रे त्रिभिः शतैरित्युक्तं तत्र केवलाः स्त्रियः पुरुषा वा गृहीताः, द्वितीयः पुनः पक्षः सन्नपि न विवक्षित इति सम्प्रदायः, स्थानाङ्गटीकाया-मप्युक्तं "मल्लिजिनः स्त्रीशतैरपि त्रिभि" रिति । वृत्ति पत्र ९६ । स्थानाङ्गटीकायामीदृशः पाठो लभ्यते—तथा त्रिभिः पुरुषशतैः बाह्यपरिषदा त्रिभिश्च स्त्रीशतैरभ्यन्तरपरिषदाऽसौ संपरिवृतः परिव्रजित इति ज्ञातेषु श्रूयत इति, उक्तं च—"पासो मल्ली तिहिं तिहिं सएहिं" ति [पार्श्वोमल्ली च त्रिभिस्त्रिभिः शतैः] एवमन्येष्वपि विरोधाभासेषु विषयविभागाः सम्भवन्तीति निपुणैर्गवेषणीयाः । वृत्ति पत्र ३८० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिच्चोउगो असोगो,	सप्त० चेइअतरुवरि सालो,
ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ॥	एगारसधणुहपरिमाणो ॥
तिण्णे व गाउयाइं,	
चेयरुक्खो जिणस्स उसभस्स ।	
सेसाणं पुण रुक्खा,	
सरीरतो बारसगुणा उ ॥	
पइण्णग २३२ :	**प्रव०** ३०४-३०६ :
समवाओ पढमेत्थ उसभसेणे,	सिरिउसभसेण पहु सीहसेण,
बीए पुण होइ सीहसेणे उ ।	चारु वज्जनाहक्खा ।
चारू य वज्जणाभे,	चमरो पज्जोय वियब्भ,
चमरे तह सुव्वते विदब्भे ॥	दिण्णपहुवो वराहो य ॥
दिण्णे वाराहे पुण	पहुनंद कोत्थुहावि य,
आणंदे गोथुभे सुहम्मे य ।	सुभोम मंदर जसा अरिट्ठो य ।
मंदर जसे अरिट्ठे,	चक्काउह संबा कुंभ,
चक्काउह सयंभु कुंभे य ॥	भिसय मल्ली य सुंभो य ॥
भिसए य इंदे कुंभे,	वरदत्त अज्जदिन्ना,
वरदत्ते दिण्ण इंदभूती य ।	तहिंदभूई गणहरा पढमा ।
उदितोदितकुलवंसा,	सिस्सा रिसहाईणं,
विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ।	हरंतु पावाइं पणयाणं ॥
तित्थप्पवत्तयाणं,	
पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥	**सप्त०** २१४,२१५ :
	पुंडरिअ सीहसेणा चारूरू
	वज्जनाह चमरगणी ।
	सुज्ज विदब्भो दिन्नो वराहओ
	नंद कुच्छुभ सुभूमा ॥
	मंदरु जसो अरिट्ठो चक्काउह
	संब कुंभ भिसओ अ ।
	मल्ली सुंभो वरदत्त
	अज्जदिन्नि दभूइगणी ॥
	त्रि० पु०
	ऋषभसेन, सिंहसेन, चारु, वज्रनाभ, चमर, सुव्रत, विदर्भ, दत्त, वराह, आनंद, गोशुभ, सूक्ष्म, मंदर, यश, अरिष्ट, चक्रायुद्ध, स्वयंभू, कुंभ, भिषगइन्द्र, कुंभ, वरदत्त, आर्यदत्त, इन्द्रभूति ।
२३३ :	**प्रव०** ३०७-३०९ :
बंभी फग्गू सम्मा,	बंभी फग्गु सामा,
अतिराणी कासवी रई	अजिया तह कासवी रई
सोमा ।	सोमा ।

सुमणा वारुणि सुलसा,	सुमणा वारुणि सुजसा,
धारणि धरणी य धरणिधरा ॥	धारिणी धरिणी धरा पउमा ॥
पउमा सिवा सुई अंजू,	अज्जा सिवा सुहा दामणी य,
भावियप्पा य रक्खिया ।	रक्खी य बंधुमइनामा ।
बंधू-पुप्फवती चेव,	पुप्फवई अनिला जक्खदिन्न
अज्जा धणिला य आहिया ॥	तह पुप्फचूला य ॥
जक्खिणी पुप्फचूला य,	चंदण सहिया उ पवत्तिणीओ
चंदणऽज्जा य आहिया ।	चउवीसजिणवरिंदाणं ।
उदितोदितकुलवंसा,	दुरियाइं हरंतु सया,
विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया ॥	सत्ताणं भत्तिजुत्ताणं ॥
तित्थप्पवत्तयाणं,	
पढमा सिस्सी जिणवराणं	**सप्त०** २१६, २१७ :
	बंभी फग्गुणि सामा,
	अजिआ तह कासवी रई सोमा ।
	सुमणा वारुणि सुजसा,
	धारिणी धरणी धरा पउमा ॥
	अज्जसिवा सुइ दामिणि,
	रक्खिअ बंधुमइ पुप्फवइ अनिला
	जखदिन्न पुप्फचूला,
	चंदणबाला पवत्तणिया ॥
२३४	**आ०नि०** ३९९, ४००
	त्रि०पु०
२३५	**आ०नि०** ३९८
	त्रि०पु०
२३८	**ठाणं** ९।१९
	आ०नि० ४११
२३९	**आ०नि०** ४०९
२४०	**आ०नि०** ४१०
२४७ :	**आ०नि०** ४१३, ४१५, ४१४ :
एक्को य······	एगो य······
अणिदाण······	अनियाण······
अट्ठंतकडा रामा,	अठ्ठंतकडा रामा,
एगो पुण बंभलोयकप्पंमि ।	एगो पुण बंभलोगकप्पमि ।
एक्का से गब्भवसही,	उववन्नु तओ चइउं,
सिज्झिस्सइ आगमेस्साणं ॥	सिज्झिस्सइ भारहे वासे ॥
२४८ :	**प्र०सा०** २९६-२९९ :
चंदाणणं सुचंदं च,	बालचंदं सिरिसिचयं,
अग्गिसेणं च नंदिसेणं च ।	अग्गिसेणं च नंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं वयहारिं,	सिरिदत्तं च वयधरं,
वंदिमो सामचंदं च ॥	सोमचंदं जिणदीहसेणं च ॥
वंदामि जुत्तिसेणं,	वंदे सयाउ सच्चइ,
अजियसेणं तहेव सिवसेणं ॥	जुत्तिस्सेणं जिणं च सेयंसं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धं च देवसम्मं,
सययं निक्खित्तसत्थं च ॥
असंजलं जिणवसहं,
वंदे य अणंतयं अमियणाणिं ।
उवसंतं च धुयरयं,
वंदे खलु गुत्तिसेणं च
अतिपासं च सुपासं,
देवेसर-वंदियं च मरुदेवं ॥
णिव्वाणगयं च धरं,
खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥
जियरागमग्गिसेणं,
वंदे खीणरयमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसियपेज्जदोसं,
च वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥

सीहसेणं सयंजल,
उवसंतं देवसेणं च ॥
महविरिय पास मरुदेव,
सिरिहरं सामिकुट्ठमभिवंदे ।
अग्गिसेणं जिणमग्गदत्तं,
सिरिवारिसेणं च ॥
इय संपइजिणनाहा,
एरवए कित्तियासणामेहिं ॥

पइण्णग २४९ **ठाणं** ७।६४

समवाओ २५० : १०।१४४

विमलवाहणे सीमंकरे,
सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे ।

सीमंकरे सीमंधरे,
खेमंकरे खेमंधरे विमल-
वाहणे ।

दढधणू दसधणू,
सयधणू पडिसूई संमुइ त्ति ॥

संमुती पडिसुते,
दढधणू दसधणू सतधणू ॥

२५१ : **प्र०सा०** २९३-२९५ :

महापउमे सूरदेवे,
सुपासे य सयंपभे ।
सव्वाणुभूई अरहा,
देवउत्ते य होक्खति ॥
उदए पेढालपुत्ते य,
पोट्टिले सतएति य ।
मुणिसुव्वए य अरहा,
सव्वभावविदू जिणे ॥
अममे णिक्कसाए य,
निप्पुलाए य निम्ममे ।
चित्तउत्ते समाही य,
आगमिस्साए होक्खइ ॥
संवरे अणियट्टी य,
विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा,
अणंतविजए तिय ॥
एए वुत्ता चउवीसं,
भरहे वासम्मि केवली ।

जिणपउमनाह सिरिसुरदेव,
सुपास सिरिसयंपभयं ।
सव्वाणुभूइ देवसुय,
उदय पेढाल मभिवंदे ॥
पोट्टिल सयकित्तिजिणं,
मुणिसुव्वय अमम निक्कसायं च ।
जिणनिप्पुलाय सिरिनिममत्तं,
जिणचित्तगुत्तं च ॥
पणमामि समाहिजिणं,
संवरय जसोहरं विजय मल्लिं ।
देवजिण ऽणंतविरियं,
भद्दजिणं भाविभरहंमि ॥

आगमेस्साण होक्खंति,
धम्मतित्थस्स देसगा ॥

२५२ : **प्र०सा०** ४५८-६९

सेणिय सुपास उदए,
पोट्टिल अणगारे तह दढाऊ य ।
कत्तिय संखे य तहा,
नंद सुनंदे सतए य बोद्धव्वा ॥
देवई च्चेव सच्चइ,
तह वासुदेव बलदेवे ।
रोहिणि सुलसा चेव,
तत्तो खलु रेवई चेव ॥
तत्तो हवइ मिगाली,
बोद्धव्वे खलु तहा भयाली य ।
दीवायणे य कण्हे,
तत्तो खलु नारए चेव ॥
अंबडे दारुमडे य,
साई बुद्धे य होइ बोद्धव्वे ।
उस्सप्पिणी आगमेस्साए,
तित्थगराणं तु पुव्वभवा ॥

पढमं च पउमनाहं,
सेणियजीवं जिणेसरं नमिमो ।
बीयं च सूरदेवं,
वंदे जीवं सुपासस्स ॥
तइयं सुपासनामं,
उदायिजीवं पणट्ठभववासं ।
वंदे सयंपभजिणं,
पुट्टिलजीवं चउत्थमहं ॥
सव्वाणुभूइनामं,
दढाउजीवं च पंचमं वंदे ।
छट्ठं देवसुयजिणं,
वंदे जीवं च कित्तिस्स ॥
सत्तमयं उदयजिणं,
वंदे जीवं च संखनामस्स
पेढालं अट्ठमयं,
आणंदजियं नमंसामि ॥
पोट्टिलजिणं च नवमं,
सुरकयसेवं सुनंदजीवस्स ।
सयकित्तिजिणं दसमं,
वंदे सयगस्स जीवंति ॥
एगारसमं मुणिसुव्वयं च,
वंदामि देवईजीयं ।
बारसमं अममजिणं,
सच्चइजीवं जयपईवं ॥
निकसायं तेरसमं,
वंदे जीवं च वासुदेवस्स ।
बलदेवजिणं वंदे,
चउदसमं निप्पुलायजिणं ॥
सुलसाजीवं वंदे,
पन्नरसमं निम्ममत्तजिणनामं ।
रोहिणिजीवं नमिमो,
सोलसमं चित्तगुत्तंति ॥
सत्तरसमं च वंदे,
रेवइजीवं समाहिनामाणं ।
संवरमट्ठारसमं,
सयालिजीवं पणिवयामि ॥
दीवायणस्स जीवं,
जसोहरं वंदिमो इगुणवीसं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कण्हजियं गयतण्हं,
वीसइमं विजयमभिवंदे ॥
वंदे इगवीसइमं,
नारयजीवं च मल्लनामाणं ।
देवजिणं बावीसं
अंबडजीवस्स वंदेऽहं ॥
अमरजियं तेवीसं,
अणंतविरियाभिहं जिणं वंदे ।
तह साइबुद्धजीवं,
चउवीसं भद्दजिणनामं ॥

सच्चसेणे य अरहा,
आगमिस्साण होक्खइ ॥
सूरसेणे य अरहा,
महासेणे य केवली ।
सव्वाणंदे य अरहा,
देवउत्ते य होक्खइ ॥
सुपासे सुव्वए अरहा,
अरहे य सुकोसले ।
अरहा अणंतविजय,
आगमिस्साण होक्खइ ॥
विमले उत्तरे अरहा,
अरहा य महाबले ।
देवाणंदे य अरहा,
आगमिस्साण होक्खइ ॥
एए वुत्ता चउव्वीसं,
एरवयम्मि केवली ।
आगमिस्साण होक्खंति,
धम्मतित्थस्स देसगा ॥

सुव्वय सुपासनाहं,
सुकोसलं जिणवरं अणंतत्थं ।
विमलं उत्तर महरिद्धि,
देवयाणंदयं वंदे ॥

पइण्णग २५८ :

समवाओ सुमंगले य सिद्धत्थे,
णिव्वाणे य महाजसे ।
धम्मज्झए य अरहा,
आगमिस्साण होक्खइ ॥
सिरिचंदे पुप्फकेऊ,
महाचंदे य केवली ।
सुयसागरे य अरहा,
आगमिस्साण होक्खइ ॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य,
महाघोसे य केवली ।

प्र० सा० २९९-३०२ :

अहुणा भाविजिणिंदे,
नियणामेहिं पकित्तेमि ॥
सिद्धत्थं पुन्नघोसं,
जमघोसं सायरं सुमंगलयं ।
सव्वट्ठसिद्ध निव्वाणसामि,
वंदामि धम्मधयं ॥
तह सिद्धसेण महसेण,
नाह रविमित्त सच्चसेणजिणे ।
सिरिचंद दढकेउ,
महिंदयं दीहपासं च ॥

आ० नि०—आवश्यकनिर्युक्ति
त्रि० पु० —त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित्र
प्रव० —प्रवचनसारोद्धार
सप्त० —सप्ततिशतस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट २

विशेषनामानुक्रम

शब्द	वर्ग	प्रमाण
अइबल	व्यक्ति	प्र० २५६।१
अइर	व्यक्ति	प्र० २३५।१
अइरा	व्यक्ति	प्र० २२१।२
अंकलिवी	लिपि	१८।५
अंग	लौकिक-ग्रन्थ	२६।१
अंगुल	भूमि-मान	६६।३-८; प्र० १६०
अंजण	धातु	प्र० ६६
अंजणगपव्वय	पर्वत	प्र० ८४।८
अंजु	व्यक्ति	प्र० २३३।२
अंड	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
अंतगडदसा	ग्रन्थ	१।२; प्र० ८८; ६६
अंतलिक्ख	लौकिक-ग्रन्थ	२६।१
अंतोसल्लमरण	मरण	१७।६
अंबड	व्यक्ति	प्र० २५२।४
अंबयरुक्ख	वनस्पति	प्र० २३१।२
अकंपिय	व्यक्ति	११।४; ७८।२
अकाममरणिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
अक्ख	भूमिमान	६६।७
अक्खरपुट्ठिया	लिपि	१८।५
अग्गिउत्त	व्यक्ति	प्र० २४८।५
अग्गिभूति	व्यक्ति	११।४; ४७।२; ७४।१
अग्गिवेसायण	काल	३०।३
अग्गिसप्पभा	शिबिका	प्र० २२४।२
अग्गिसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।१,५
अग्गेणीय	ग्रन्थ	१४।२।१;प्र० ११२;११४
अजित	व्यक्ति	२३।३,४;२४।१;७१।३; ६०।२; ६४।२; प्र० २१ ४८
अज्ज	कला	७२।७
अट्टालय	गृहवर्ग	प्र० १४४
अट्ठपय	ग्रन्थ	प्र० १०२;१०३
अट्ठावय	कला	७२।७
अट्ठिजुद्ध	कला	७२।७
अणंत	व्यक्ति	२३।३,४;२४।१;५०।२
अणंतय	व्यक्ति	प्र० २४८।३
अणंतविजय	व्यक्ति	प्र० २५१।४;२५८।५
अणंतसेण	व्यक्ति	प्र० २१७।१
अणगारमग्ग	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
अणाहपव्वज्जा	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
अणिगण	वनस्पति	१०।८
अणुओग	ग्रन्थ	प्र० १००,१२६
अणुत्तरोववाइयदसा	ग्रन्थ	१।२; प्र० ८८; ६७
अणुराहा	नक्षत्र	४।७;७।१०;८।६
अण्णउत्थिय	अन्य-तीर्थिक	३४।१
अण्णतित्थियपवत्ताणु-जोग	लौकिक-ग्रन्थ	२६।१
अण्णविहि	कला	७२।७
अण्णाणियवाइ	अन्य-तीर्थिक	प्र० ६०
अतिपास	व्यक्ति	प्र० २४८।४
अतिराणी	व्यक्ति	प्र० २३३।१
अत्थिणत्थिप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।१; प्र० ११२, ११६
अद्दा	नक्षत्र	१।२६;१०।७;१५।४
अद्धभरह	जनपद-ग्राम	प्र० २४१
अद्धमागही	भाषा	३४।१
अपराइय	व्यक्ति	प्र० २४२।३;२५७।१
अपराइया	व्यक्ति	प्र० २४०।१
अपराजिया	शिबिका	प्र० २२४।१
अपरातिय	व्यक्ति	प्र० २२६।३
अप्पमाय	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
अभयकरी	शिबिका	प्र० २२४।३
अभिइ	नक्षत्र	२७।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिचंद	व्यक्ति	प्र० ३५; २१८।१
अभिणंदण	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; प्र०१५; २२२
अभियंद	काल	३०।३
अभिवड्डिय	काल	३१।४
अभीजि	नक्षत्र	३।९; ९।५,६
अमम	व्यक्ति	प्र० २५१।३
अमावसा	तिथि	६२।१
अम्मया	व्यक्ति	प्र० २३९।१
अयल	व्यक्ति	८०।३; प्र० २४१।२
अयलभाय	व्यक्ति	११।४; ७२।४
अर	व्यक्ति	२३।३, ४; २४।१; प्र० २२२; २३६।१
अरिट्ठ	व्यक्ति	प्र० २३२।२
अरिट्ठणेमि	व्यक्ति	१०।४; १८।२; २३।३,४; २४।१; ४०।१; ५४।२; प्र० १०;४०; ४७; ६१; २२२
अरिट्ठवरणेमि	व्यक्ति	प्र० २२५।१
अरुणप्पभा	शिबिका	प्र० २२४।२
अवंभ	ग्रन्थ	१४।२।३; प्र० ११२; १२३
अवरकंका	ग्रंथ-विभाग	१९।२
असंखय	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
असंजल	व्यक्ति	प्र० २४८।३
असलेसा	नक्षत्र	१५।४
असि	आयुध	प्र० ९८
असिणि	नक्षत्र	३।११
असिरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
असिलक्खण	कला	७२।७
असिलेसा	नक्षत्र	६।८
असोग	वनस्पति	३४।१; प्र० २३१।२,४
असोगललिय	व्यक्ति	प्र० २४२।३
अस्सग्गीव	व्यक्ति	प्र० २४६।१
अस्ससेण	व्यक्ति	प्र० २३४।१
अस्सिणी	नक्षत्र	९।६
अस्सेसा	नक्षत्र	१०।७
अहोरत्त	काल	३०।३; ९३।३
आइच्च	काल	३१।५
आइण्ण	ग्रन्थ-विभाग	१९।२
आगासपय	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८

आजीविय	अन्य-तीर्थिक	२२।२; ८८।२; प्र०१०९; १११
आणंद	व्यक्ति	प्र० २३२।२; २४१।२; २५६।२
आणंद	काल	३०।३
आतव	काल	३०।३
आभरणविहि	कला	७२।७
आयंतियमरण	मरण	१७।९
आयंसलिवी	लिपि	१८।५
आयप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।२; १६।५; प्र० ११२; ११९
आयरिय	पद	३०।१।२४, २५; प्र० ९८
आयार	ग्रन्थ	१।२; १८।४; २५।५; ५७।१; ८५।१; प्र० ८८; ८९
आयारचूलिया	ग्रन्थ	५७।१
आवध	काल	३०।३
आवासपव्वय	पर्वत	१७।४; ४२।२; ४३।३; ५२।२; ५७।२; ५८।३; ८७।१-४; ८८।३-६; ९२।३, ४; ९७।१; ९८।२
आवीइमरण	मरण	१७।९
आसरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
आससिक्खा	कला	७२।७
आससेण	व्यक्ति	प्र० २२०।३
आसाढ	मास	१८।८; २९।१
आसोत्थ	वनस्पति	प्र० २३१।२
आसोय	मास	१५।५; ३६।४
आहत्तहिय	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
इंगिणि-मरण	मरण	१७।९
इंद	व्यक्ति	प्र० २३२।३
इंदभूति	व्यक्ति	११४।; ९२।२; प्र० २३२।३
इत्थिपरिण्णा	ग्रंथ-विभाग	१६।१
इत्थीरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७; प्र० २५५; २५९
इत्थीलक्खण	कला	७२।७
इसिदिण्ण	व्यक्ति	प्र० २४८।१
ईसत्थ	कला	७२।७
ईसर	पातालकलश	७९।२
ईसाण	काल	३०।२
उक्खित्तणाय	ग्रंथ-विभाग	१९।१

उग्ग	कुल	प्र० २२७।२
उच्चत्तरिया	लिपि	१८।५
उडुविमाण	शिबिका	४५।३
उत्तरकुरा	शिबिका	४६।२; प्र० २२४।३
उत्तरकुरु	जनपद-ग्राम	४६।२
उत्तरज्झयण	ग्रन्थ	३६।१
उत्तरड्ढमणुस्सखेत्त	जनपद-ग्राम	६६।२
उत्तराफग्गुणी	नक्षत्र	२।५
उत्तराभद्दवया	नक्षत्र	२।७
उत्तरासाढ	नक्षत्र	४।६
उदगणाय	ग्रन्थ-विभाग	१६।२
उदय	व्यक्ति	प्र० २५१।२; २५२।१
उप्पल	वनस्पति	३४।१
उप्पाय	लौकिक-ग्रन्थ	२६।१
उप्पायपव्वय	पर्वत	१७।७, ८
उप्पायपुव्व	ग्रन्थ	१४।२।१;प्र० ११२, ११३
उमा	व्यक्ति	प्र० २३६।१
उरब्भिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
उवज्झाय	पद	३०।१।२४, २५
उवसंत	व्यक्ति	प्र० २४८।३
उवसंपज्जणसेणिया-परिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०६
उवसग्गपरिण्णा	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
उवसम	काल	३०।३
उवासगदसा	ग्रन्थ	१।२; प्र० ८८; ९५
उसभ	व्यक्ति	६३।१; ८३।४; ८४।२, १६, १७; ८६।१; प्र० २५;२२२;२२४; २२५।१; २२६।२; २३०।१, २;२३१।५; २३४।१
उसभसिरि	व्यक्ति	प्र० ८७
उसभसेण	व्यक्ति	८४।१७; प्र० २२६।३; २३२।१
उसुकार	पर्वत	३६।२; ६६।१
उसुकारिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
उस्सप्पिणी	कालचक्र	२०।७; २१।४;४२।१०; ५४।१; प्र० २१७; २४६; २५१; २५२; २५३; २५४; २५६
एकावलि	आभूषण	प्र० २४१

एगगुण	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८
एगट्ठियपय	ग्रन्थ	प्र० १०२, १०३
एरवय	जनपद-ग्राम	७।५; १४।६; ३४।२; ५४।१; प्र० २४८; २५८; २५८।७; २५६
ओगाहणसेणिया-परिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०५
ओवारियालेण	गृहवर्ग	१६।६
ओसप्पिणी	कालचक्र	२०।७; २१।३; २३।२, ३; ४२।६; ५४।१; ८६।१, २; प्र० २१६ २१८; २२०-२२२; २२३।४;२३४-२३६; २३८-२४१; २४८; २५०
ओहिमरण	मरण	१७।६
कंचणगपव्वय	पर्वत	५०।७;१००।८
कक्कसेण	व्यक्ति	प्र० २१७।१
कडगच्छेज्ज	कला	७२।७
कडिसुत्तग	आभूषण	प्र० २४१
कणग	धातु	प्र० १४६
कणग	आयुध	प्र० २४१
कणगवत्थु	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
कण्ह	व्यक्ति	१०।५; प्र० २४१।१; २४३।१; २४७।१; २५२।३
कण्हसिरि	व्यक्ति	प्र० २३७।१
कत्तवीरिय	व्यक्ति	प्र० २३४।१
कत्तिय	मास	२६।४; ३७।५; ४०।७
कत्तिय	व्यक्ति	प्र० २५२।१
कत्तिया	नक्षत्र	६।७
कप्प	ग्रन्थ	२६।१
कम्मपगडी	ग्रन्थ-विभाग	३६/१
कम्मप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।२; प्र० ११२; १२०
कयवम्म	व्यक्ति	प्र० २२०।२
कला	कला	७२।७
कवाड	गृहवर्ग	८।७; प्र० १४४
काकणिलक्खण	कला	७२।७
कागिणिरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायंदी	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
कालागुरु	धूपन	प्र० १४४
कालोय	समुद्र	४२।२; ६१।२
काविलिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६/१
कासवी	व्यक्ति	प्र० २३३।१
किरियावादि	अन्य-तीर्थिक	प्र० ६०
किरियाविसाल	ग्रन्थ	१४।२।३; प्र० ११२; १२५
कुंडल	आभूषण	प्र० २२४।६; २४१
कुंथु	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ३२।३; ३५।२; ३७।१; ८१।२; ६१।३; ६५।३; प्र० २२२; २३६।१
कुंदुरुक्क	धूपन	प्र० १४४
कुंभ	व्यक्ति	प्र० २२०।३; २३२।२,३
कुक्कुडलक्खण	कला	७२।७
कुडभी	गृहवर्ग "पताका"	३४।१
कुम्भ	ग्रन्थ-विभाग	१६।१।१
कुरुमई	व्यक्ति	प्र० २३७।१
कुल	कुल	प्र० ६६; २२०।४; २३२।३; २३३।३; २४१
कुसीलपरिभासिय	ग्रन्थ-विभाग	१६/१
कुसुम	वनस्पति	३४।१, प्र० २४१
कूडसामली	वनस्पति	८।५
केउ	पातालकलश	७६।२
केउ	गृहवर्ग 'ध्वजा'	प्र० २४१
केउक	पर्वत	५२।३,५८।४
केउभूय	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८
केउय	पर्वत	५७।३
केउभूयपरिग्गह	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८
केकई	व्यक्ति	प्र० २३६।१
केवलिमरण	मरण	१०।२! १७।६
केसरि	व्यक्ति	प्र० २५७।१
केसरिदह	जलाशय	प्र० ६६
कोंच	प्राणी	प्र० २४१
कोट्टय	गृहवर्ग	प्र० १४४
कोरव्व	व्यक्ति	प्र० २३६।१
कोलावास	प्राणी	२१।१
कोसंबी	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
कोसेय	वस्त्र	प्र० २४१
खंडगप्पवायगुहा	गुफा	५०।६

खंधावारनिवेस	कला	७२।७
खंधावारमाण	कला	७२।२
खत्तिय	कुल	प्र० २२०।१से३; २२७।२
खरसाहिया	लिपि	१८।५
खरोट्ठिया	लिपि	१८।५
खलुंकिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
खात	सुरक्षा-साधन	प्र० १४४
खेमंकर	व्यक्ति	प्र० २५०।१
खेमंधर	व्यक्ति	प्र० २५०।१
खोम	वस्त्र	प्र० ६८
गंगदत्त	व्यक्ति	प्र० २४२।१; २४३।१;
गंगा	नदी	१४।८; २४।५; २५।७
गंडियाणुओग	ग्रन्थ	प्र० १२७; १२६
गंथ	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
गधजुत्ति	कला	७२।७
गंधव्व	काल	३०।३
गंधव्वलिवी	लिपि	१८।५
गंधमादण	पर्वत	प्र० २७
गंधहत्थि	प्राणी	१।२; प्र० ६७
गणधर	पद	८।८; ११।४; ३७।१; ४८।२; ५४।४; ५६।२; ६२।२; ६६।३; ७४।१; ८३।२; ८४।१६; ८६।१; ६०।२,३; ६३।१; ६५।१; प्र० ६२; १२८; २१५
गणिपिडग	ग्रन्थ	१।२; ५७।१; प्र० ८८; ६२; १३१-१३४
गणिय	कला	७२।७
गणियलिवी	लिपि	१८।५
गद्दभ	प्राणी	३०।१।१३
गय	प्राणी	प्र० ६६; २४१
गया	आयुध	प्र० २४१
गयलक्खण	कला	७२।७
गरुल	प्राणी	३४।१; प्र० २२४।७; २३१।६
गव	प्राणी	३०।१।१३; प्र० १५०
गहचरिय	कला	७२।७
गाउय	भूमि-मान	४।३; २५।३, ७, ८; १००।६, ७, ८; प्र० ५; १७; १८; २३; २७; ५६; ५८; १६१; २३१।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाम	वसति के प्रकार	३०।१।१६; ६६।१; प्र० १६६
गावी	प्राणी	प्र० २४५।१
गाहा	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
गाहा	कला	७२।७
गाहावइरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
गिद्ध	प्राणी	३०।१।१२
गिद्धपिट्ठमरण	मरण	१०।६
गीय	कला	७२।७
गुत्तिसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।३
गूढदंत	व्यक्ति	प्र० २५४।१
गेहागार	वनस्पति	१०।८
गोउर	गृहवर्ग	प्र० १४४
गोणलक्खण	कला	७२।७
गोथुभ	पर्वत	८७।१; ८८।३; ९२।३; ९७।१; ९८।२
गोथुभ	व्यक्ति	प्र० २३२।२
गोथुभ	रत्न	प्र० २४१
गोथूभ	पर्वत	४२।२; ४३।३; ५२।२; ५७।२; ५८।३
गोयम	व्यक्ति	६७।३; प्र० १४१; १४३; १४४; १४६; १४८-१५१; १५३-१५६; १५८-१६०; १६२; १६४-१६७; १६९; १७२-१७७; १७९; १८१; १८३; १८४; १८६-१८८; १९०; १९६-१९८; २०९-२११
गोयमकेसिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
गोयमदीव	द्वीप	६९।२
गोसीस	विलेपन	प्र० १४४
घणोदहि	समुद्र	२०।३; ७९।३; ८६।३
घर	गृहवर्ग	प्र० ९०
चउप्पय	प्राणी	३४।१
चंद	ग्रह .	८।९; ९।५, ६; १५।३; ३२।२; ४२।४; ४५।७; ५६।१; ६२।३; ६६।१, २; ७२।५; प्र० १४१; १४३; १४९
चंद (संवच्छर)	काल	५९।१
चंदकंता	व्यक्ति	प्र० २१९
चंदचरिय	कला	७२।७
चंदजसा	व्यक्ति	प्र० २१९
चंदणा	व्यक्ति	प्र० २३३।३
चंददिण	काल	२९।८
चंदप्पह	व्यक्ति	३।२१; २३।३,४; २४।१; ९३।१; प्र० २२२
चंदप्पभा	शिबिका	२२४।२, ३
चंदसंवच्छर	काल	७१।१
चंदाणण	व्यक्ति	प्र० २४८।१
चंदिया	ग्रन्थ-विभाग	१९।१
चंपय	वनस्पति	प्र० २३१।३
चक्क	आयुध	३४।१; प्र० २४१; २४६।२
चक्कजोहि	योद्धा	प्र० २४६; २५७
चक्करयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
चक्कलक्खण	कला	७२।७
चक्कवट्टि	राजा-प्रकार	१।२; १४।७; २३।४; ३४।२; ४८।१; ५४।१; ६४।६; ६८।३, ६; ७१।४; ७२।६; ७७।१; ८३।५; ८९।३; ९६।१; ९७।४; प्र० २२; २६; ८१; २३४; २२४।२; २३५-२३७; २५४; २५५; २५८
चक्कहर	राजा-प्रकार	प्र० ९२
चक्काउह	व्यक्ति	प्र० २३२।२
चक्कि	राजा-प्रकार	प्र० ८२
चक्खुकंता	व्यक्ति	प्र० २१९।१
चक्खुम	व्यक्ति	प्र० २१८।१
चमर	व्यक्ति	प्र० २३२।१
चमरचंचा	जनपद-ग्राम	३३।२
चम्मरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
चम्मलक्खण	कला	७२।७
चरणविहि	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
चरिय	गृहवर्ग	प्र० १४४
चाउरंगिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार	कला	७२।७
चारु	व्यक्ति	प्र० २३२।१
चित्तउत्त	व्यक्ति	प्र० २५१।३
चित्तग	वनस्पति	१०।८
चित्तकूट	पर्वत	प्र० ५७
चित्तरस	वनस्पति	१०।८
चित्तसंभूय	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
चित्ता	नक्षत्र	१।२७; ८।६; १०।७
चुयाचुयसेणियापरिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०८
चुलणी	व्यक्ति	प्र० २३५।१
चुल्लहिमवंत	पर्वत	७।४; २४।२; १००।७; प्र० ३२
चूलिया	ग्रन्थ	प्र० १००; १३०
चेइयरुक्ख	वनस्पति	८।३; प्र० २३१; २३१।३-६; २५३
चेत्त	मास	१५।५; ३६।४
छउमत्थमरण	मरण	१७।६
छत्तरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
छत्तलक्खण	कला	७२।७
छत्ताह	वनस्पति	प्र० २३१।१
छरुप्पगय	कला	७२।७
जंत	आयुध	प्र० १४४
जंबु	वनस्पति	८।४; प्र० २३१।२
जंबुद्दीव	द्वीप	१।२२; ८।६; ९।८; ११।३; १२।७; १४।८; १६।२,४; २३।२-४; २७।२; ३४।२-४; ४२।२; ४३।३; ५६।१; ६५।१; ७६।४; ८०।७; ८२।१; प्र० ६; २१६-२१८; २२०-२२२; २३४-२३६; २३८-२४१; २४८-२५१; २५४; २५६; २५८
जंबूदीप	द्वीप	१२।७; प्र० ७६; ८२
जक्खिणी	व्यक्ति	प्र० २३३।३
जणपय	वसति-प्रकार	प्र० ९३
जणवाय	कला	७२।७
जणणविज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
जमईय	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
जमग	पर्वत	प्र० ५६
जयंत	व्यक्ति	प्र० २५६।२
जयंती	शिबिका	प्र० २२४।१
जयंती	व्यक्ति	प्र० २४०।१
जय	व्यक्ति	प्र० २२९।२; २३६।२
जया	व्यक्ति	प्र० २२१।१; २३७।१
जरासंध	व्यक्ति	प्र० २४६।१
जलयर	प्राणी	१३।५
जवणालिया	लिपि	१८।२
जस	व्यक्ति	८।८; प्र० २२३।२; २४१
जसम	व्यक्ति	प्र० २१८।१
जसवती	व्यक्ति	प्र० २३५।१
जाला	व्यक्ति	प्र० २३५।१
जियसत्तु	व्यक्ति	प्र० २२०।१
जियारि	व्यक्ति	प्र० २२०।१
जीवाजीवविभत्ती	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
जुग	काल	६१।१; ६२।१; ६७।१;
जुग	भूमिमान	९६।६
जुगबाहु	व्यक्ति	प्र० २२३।२
जुत्तिसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।२
जुद्ध	कला	७२।७; प्र० २४१
जुद्धातिजुद्ध	कला	७२।७
जूय	कला	७२।७
जूय	पातालकलश	७९।२
जेट्ठ	नक्षत्र	९८।७
जेट्ठा	नक्षत्र	३।८, ८।९; १५।४
जोइ	वनस्पति	१०।८
जोगाणुजोग	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
जोयण	भूमि-मान	१।२२-२५; ४।६; ८।३-६; ९।७, १०; १०।३; ११।२,३; १२।४ ६,७,१०; १३।३,८; १४।६; १६।६,७; १७।३-८; १८।७; १९।२; २०।३; २४।२; २५।३; २७।४; ३१।२, ३; ३३।३,४; ३४।१; ३५।५; ३६।२; ३७।२, ३; ३८।२,३; ४०।२; ४२।२; ४३।३; ४५।१, ५०।४,६,७; ५२।२;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

		५३।१,२;५५।२;५७।२, ५; ५८।३; ६१।२; ६४।४; ६७।२, ३; ६९।२; ७३।१; ७४।२; ७९।१, ३,४; ८०।५, ७; ८२।३; ८४।७-१०; ८५।२,४; ८६।३; ८७।१-४,६; ८८।३-६; ९०।५; ९१।२;९२।३; ९४।१; ९५।२; ९७।१; ९८।१,२,४; ९९।१-७; १००।७,८; प्र० ५; ८; ११; १७; १८; २३; २४; २७-३२; ३८; ४१; ४३; ४४; ४६; ४८; ४९; ५२; ५३; ५५; ५६; ५८; ५९; ६३; ६४; ६७-७०; ७२-७७; ७९; ८०; ८२;१४१;१४३; १४४; १४८-१५०; १६०
ठाण	ग्रन्थ	१।२;५७।१; प्र० ८८; ८१
डाय	वनस्पति	३३।१
णंद	व्यक्ति	प्र० २५२।१; २५६।१
णंदण	व्यक्ति	३५।४; प्र० २२३।४; २४१।२; २५६।२
णंदिरुक्ख	वनस्पति	प्र० २३१।२
णक्खत्तमास	काल	२७।३; ६७।१
णग्गोह	वनस्पति	प्र० २३१।१
णट्ट	कला	३२।६; ७२।७
णदी	जलाशय	प्र० ९१।१
णमि	व्यक्ति	१५।२;२३।३,४,२४।१; ३९।१;४१।१; प्र०२२२
णागदत्ता	शिबिका	प्र० २२४।२
णागरुक्ख	वनस्पति	प्र० २३१।१
णायाधम्मकहा	ग्रन्थ	प्र० ८८; ९४
णिव्वुतिकरी	शिबिका	प्र० २२४।३
तउ	धातु	प्र० ९९
तट्ठव	काल	३०।३
तब्भवमरण	मरण	१७।९
तरुणीपडिकम्म	कला	७२।७
तवणिज्ज	धातु	प्र० १४९
तवोमग्ग	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
तारय	व्यक्ति	प्र० २४६।१
तिगिंछिकूड	पर्वत	१७।७
तिगिंछिद्दह	जलाशय	७४।२
तिगिच्छ	जलाशय	प्र० ६९
तिगुण	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८
तिट्ठ	काल	३०।३
तित्थंकर	पद	३४।४
तित्थकर	पद	१।२; १९।५;२३।३,४; २४।१; ५४।१; प्र० ८६; ९२; ९७; ९८; २२०-२२२; २२३।४; २२४; २२४।१; २२९; २३१-२३३; २४८; २५१; २५२; २५२।४; २५३; २५८
तिमिस्सगुहा	गुफा	५०।६
तिरीड	आभूषण	प्र० २४१
तिलय	आभूषण	प्र० १४९; २४१
तिलय	वनस्पति	प्र० २३१।२
तिलय	व्यक्ति	प्र० २५७।१
तिविट्ठु	व्यक्ति	८०।२,४; ८४।५; प्र० २४१।१; २५६।२
तिसला	व्यक्ति	प्र० २२१।२
तुंब	ग्रन्थ-विभाग	१९।१
तुडिअंग	वनस्पति	१०।८।१
तुरुक्क	धूपन	प्र० १४४
तेंदुग	वनस्पति	प्र० २३१।२
तेत्तली	ग्रंथ-विभाग	१९।२
तेरासिय	अन्य-तीर्थिक	२२।४; ८८।२; प्र० १०९; १११
तोरण	गृहवर्ग	प्र० १४४; २३१।६
थूभिअग्ग	गृहवर्ग	१२।१०
थूभियाग	गृहवर्ग	प्र० १४९
थेर	पद	३०।२; ४७।२; ६५।२; ७२।२; ७४।१; ७८।२; ८३।३; ९२।२; ९५।५; १००।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंड	भूमिमान	९६।३
दंडजुद्ध	कला	७२।७
दंडरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
दंडलक्खण	कला	७२।७
दगमट्टिय	कला	७२।७
दढधणु	व्यक्ति	प्र० २५०।१
दढरह	व्यक्ति	प्र० २१७
दढाउ	व्यक्ति	प्र० २५२।१
दत्त	व्यक्ति	३५।३; प्र० २४१।१; २४९।१
दधिमुह	पर्वत	६४।४
दधिवण्ण	वनस्पति	प्र० २३१।२
दसधणु	व्यक्ति	प्र० २५०।१
दसरह	व्यक्ति	प्र० २१७।१; २२०; २३८।१
दसा	ग्रन्थ	२६।१
दामिली	लिपि	१८।५
दार	गृहवर्ग	प्र० १४४
दारुमड	व्यक्ति	प्र० २५२।४
दावद्दव	ग्रंथ-विभाग	१९।२
दाहिणड्ढभरह	जनपद-ग्राम	प्र० ७४
दाहिणड्ढमणुस्सखेत्त	जनपद-ग्राम	६६।१
दिट्ठिवाय	ग्रंथ	१।२; २२।२; ४६।१; ८८।२; प्र० ८८; १००; ११३
दिण्ण	व्यक्ति	प्र० २२३।२; २२९।३; २३२।२, ३
दीव	वनस्पति	१०।८
दीवायण	व्यक्ति	प्र० २५२।३
दीहदंत	व्यक्ति	प्र० २५४।१
दीहबाहु	व्यक्ति	प्र० २२३।२; २५६।१
दीहवेयड्ढपव्वय	पर्वत	२५।३; १००।६
दुगुण	ग्रंथ	प्र० १०२-१०८
दुप्पय	प्राणी	३४।१
दुमसेण	व्यक्ति	प्र० २४३।१
दुमपत्तय	ग्रंथ-विभाग	३६।१
दुवालसंग	ग्रंथ	१।२; प्र० ८८; ९२; १३१-१३४
दुविट्ठु	व्यक्ति	प्र० २४१।१; २५६।२
दूस	वस्त्र	प्र० २२६।१
देवई	व्यक्ति	प्र० २३९।१; २५२।२
देवउत्त	व्यक्ति	प्र० २५१।१; २५८।४
देवकुरु	जनपद-ग्राम	४९।२; ५३।१
देवकुरु	शिबिका	प्र० २२४।३
देवसम्म	व्यक्ति	प्र० २४८।२
देवाणंद	व्यक्ति	प्र० २५८।६
देवी	व्यक्ति	प्र० २२१।२; २३५।१ २३७।१
दोभाकर	कला	७२।७
दोसऊरिया	लिपि	१८।५
धणदत्त	व्यक्ति	प्र० २४२।१
धणिट्ठा	नक्षत्र	५।१३
धणिला	व्यक्ति	प्र० २३३।२
धणु	भूमि-मान	१०।४-६; १५।२; २०।२; २५।२; ३०।४; ३५।२-४; ४०।३; ४५।५; ५०।२, ३; ६०।३; ७०।३; ८०।१-३; ९०।१; ९६।४; १००।३; प्र० १; ४; ७; ९; १३; १५; १६; २१; २२; २५; २६; ३५; ५१; २३१।४
धणुव्वेय	कला	७२।७
धन्न	व्यक्ति	प्र० २२९।३
धम्म	ग्रंथ-विभाग	१६।१
धम्मज्झय	व्यक्ति	४।२
धम्ममित्त	व्यक्ति	प्र० २२३।१; २२९।१
धम्मसीह	व्यक्ति	प्र० २२३।१; २२९।१
धम्मसेण	व्यक्ति	प्र० २४२।३
धर	व्यक्ति	प्र० २२०।१; २४८।४
धरणि	व्यक्ति	प्र० २३३।१
धरणिधरा	व्यक्ति	प्र० २३३।१
धातुपाग	कला	७२।७
धायईसंड	जनपद-ग्राम	६८।१, २; ८५।२; प्र० ७९; ८२
धायइरुक्ख	वनस्पति	प्र० २३१।३;
धारणी	व्यक्ति	प्र० २३३।१
धुवराहु	ग्रह	१५।३
धूव	धूपन	प्र० १४४
नंदग	आयुध	प्र० २४१
नंदण	पर्वत	२९; ६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नंदणवण	वन	८५।४;९८।१;६६।२,३
नंदमित्त	व्यक्ति	प्र० २५६।१
नंदा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
नंदावत्त	ग्रंथ	प्र० १०२-१०८
नंदिसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।१
नंदीफल	ग्रंथ-विभाग	१६।२
नगर	वसति-प्रकार	प्र० ६४-६७; ६६; १४८
नगरनिवेस	कला	७२।७
नगरमाण	कला	७२।७
नमिपव्वज्जा	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
नयन	राज-कर्मकर	३०।१।१०
नरकंता	नदी	१४।८
नाणप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।१, प्र० ११२,
नाभि	व्यक्ति	प्र० २१८।१
नायधम्मकहा	ग्रन्थ	१।२
नारय	व्यक्ति	प्र० २५२।३
नारायण	व्यक्ति	प्र० २४१।१
नारिकंता	नदी	१४।८
नालिया	भूमिमान	९६।५
नालियाखेड्ड	कला	७२।७
निजुद्ध	कला	७२।७
निज्जीव	कला	७२।७
निण्हइया	लिपि	१८।५
निप्पुलाय	व्यक्ति	प्र० २५१।३
निम्मम	व्यक्ति	प्र० २५१।३
निरयविभत्ती	ग्रन्थ-विभाग	१६।१
निसढ	पर्वत	७।४, ६३।३, ७४।२, ६४।१, प्र० १७, १८, ४६, ५३
निसहकूड	पर्वत	प्र० ४६
निसुंभ	व्यक्ति	प्र० २४६।१
नीलवंत	पर्वत	७।४, ६३।४, प्र० १७, १८, ५४
पउम	व्यक्ति	प्र० २२६।२, २४१।२, २५४।२, २५६।२
पउमद्दह	जलाशय	प्र० ६४
पउमप्पभ	व्यक्ति	२३।३-४, २४।१, प्र० ७, २२२
पउमसिरि	व्यक्ति	प्र० २४७।१
पउमा	व्यक्ति	प्र० २२१।२, २३३।२
पउमुत्तर	व्यक्ति	प्र० २३४।२

पंचवण्णा	व्यक्ति	प्र० २३४।२
पंचवण्णा	शिबिका	प्र० २२४।२
पंडयवण	वन	९८।१
पंडितमरण	मरण	१७।६
पक्ख	काल	
पक्खि	प्राणी	३४।१
पच्चक्खाण	ग्रन्थ	१४।२।२;प्र० ११२,१२
पट्टण	वसति-प्रकार	४८।१
पडागा	गृहवर्ग	३४।१; प्र० १४८; १४६; २०२; ६३१।६
पडिचार	कला	७२।७
पडिदुवार	गृहवर्ग	प्र० १४४
पडिरूवा	व्यक्ति	प्र० २५०।१
पडिवूह	कला	७२।७
पडिसूइ	व्यक्ति	प्र० २५०।१
पण्हावागरण	ग्रन्थ	१।२; प्र० ८८; ६८
पण्हावागरणदसा	ग्रन्थ	प्र० ६८
पत्तगच्छेज्ज	कला	७२।७
पत्तच्छेज्ज	कला	७२।७
पति	परिवार-सदस्य	प्र० २१६।१
पभावई	व्यक्ति	प्र० २२१।२
पभास	व्यक्ति	११।४
पमायठाण	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
पयावती	व्यक्ति	प्र० २३८।१
परिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १००; १०१; १०६
परीसह	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
पलंब	काल	३०।३
पवत्तिणी	पद	प्र० १२८
पसु	प्राणी	६।१,२; २५।१; ३४।१
पहराय	व्यक्ति	प्र० २४६।१; २५७।१
पहराइया	लिपि	१८।५
पहेलिया	कला	७२।७
पाओवगमणमरण	मरण	१७।६
पागार	सुरक्षा-साधन	३७।३; प्र० ११
पाउल	वनस्पति	प्र० २३१।२
पाढ	ग्रन्थ	प्र० १०२-१०८
पाणविहि	कला	७२।२
पाणाउ	ग्रन्थ	१४।२।३; प्र० ११२; १२७
पाणि	प्राणी	३०।१।३,२०
पायव	वनस्पति	३४।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालय	यान	१।२४
पावसमणिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
पास	व्यक्ति	८।८; ६।४; १६।४; २३।३,४; २४।१; ३०।६; ३८।१; ७०।२; १००।४; प्र० १४; ३४; ६२; ६३; ६६; ७८; २२२; २२७।१; २२८।१
पियंगु	वनस्पति	प्र० २३१।१
पियदंसण	व्यक्ति	१६।३।१
पियमित्त	व्यक्ति	प्र० २४२।१
पियय	वनस्पति	प्र० २३१।१
पियर	परिवार-सदस्य	प्र० ६४-६७; ६६; २२०।४; २३४; २३८; २५३; २५५; २५६; २५९
पिलंखुरुक्ख	वनस्पति	प्र० २३१।१
पुंडरीय	वनस्पति	१८।१५; २३।१; प्र० १४६; २४१; २४१।१
पुंडरीयद्दह	जलाशय	प्र० ६४
पुक्खरगय	कला	७२।७
पुक्खरद्ध	द्वीप	७२।५
पुट्ठसेणियापरिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०४
पुणव्वसु	व्यक्ति	प्र० २२९।; २४२।१
पुणव्वसु	नक्षत्र	५।१०
पुण्णघोस	व्यक्ति	प्र० २५८।३
पुण्णणंद	व्यक्ति	प्र० २२६।२
पुण्णमासिणी	तिथि	४०।६
पुण्णिमा	तिथि	४०।७; ६२।१
पुप्फ	वनस्पति	३४।१
पुप्फकेउ	व्यक्ति	प्र० २५८।१
पुप्फचूला	व्यक्ति	प्र० २३३।२
पुप्फदंत	व्यक्ति	७५।१; ८६।१; १००।३
पुप्फवंती	व्यक्ति	प्र० २३३।२
पुरिसपुंडरीय	व्यक्ति	प्र० २४१
पुरिसलक्खण	कला	७२।७
पुरिसविज्जा	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
पुरिससीह	व्यक्ति	प्र० ८५; २४१।१
पुरिसुत्तम	व्यक्ति	प्र० २४१
पुरिसोत्तम	व्यक्ति	५०।२
पुरोहियरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
पुव्वगय	ग्रन्थ	प्र० १००; ११२; १२६
पुव्व	ग्रन्थ	१३।६; १५।६; १६।५; १८।६; २०।६; २५।६; प्र० ११-१२६;
पुव्वाफग्गुणी	नक्षत्र	२।४
पुव्वाभद्दवय	नक्षत्र	२।६
पुव्वासाढ	नक्षत्र	४।८
पुस्स	नक्षत्र	२०।७
पेढालपुत्त	व्यक्ति	प्र० २५१।२
पोंडरीय	ग्रंथ-विभाग	१९।२
पोंडरीय	वनस्पति	१।२; प्र० ६५
पोक्खरकण्णिया	गृहवर्ग	प्र० १४४
पोट्टिल	व्यक्ति	प्र० ८६; २५१।२; २५२।१
पोयण	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
पोरिसी	काल	२७।६; ३६।४; ३७।५; ४०।६
पोरेकव्व	कला	७२।७
पोलिंदी	लिपि	१८।५
पोस	मास	१८।८; २६।५
फग्गु	व्यक्ति	प्र० २३३।१
फग्गुण	मास	२६।६; ४०।६
फल	वनस्पति	३०।१।६
फलिह	सुरक्षा-साधन	प्र० १४४
बंधु	व्यक्ति	प्र० २३३।२
बंभ	काल	३०।३
बंभ	व्यक्ति	प्र० २३८।१
बंभदत्त	व्यक्ति	प्र० २२६।१; २३६।२
बंभयारि	व्यक्ति	८।८
बंभी	लिपि	१८।५; ४६।२
बंभी	व्यक्ति	८४।३; प्र० २३३।२
बम्ह	व्यक्ति	प्र० २३४।२
बलकूड	पर्वत	प्र० २९; ६०
बलदेव	व्यक्ति	१०।६; १२।५; ३५।४; ५१।४; ५४।१; ६८।३, ६; ७३।२; ८०।३। प्र० २३८; २४०; २४२।१; २५२।२; २५६; २५७; २५९
बलभद्द	व्यक्ति	प्र० २५६।१

बलि	व्यक्ति	प्र० २४६।१
बहुल	व्यक्ति	प्र० २२९।३
बहुलपक्ख	पक्ष	१५।३; ६२।३
बारवई	जनपद-ग्राम	प्र० २२५।१
बहुसुयपूया	ग्रंथ-विभाग	३६।१
बालपंडितमरण	मरण	१९।९
बालमरण	मरण	१७।९
बाहुजुद्ध	कला	७२।७
बाहुबलि	व्यक्ति	८४।३
बुद्ध	व्यक्ति	प्र० २४८।२
भज्जा	परिवार-सदस्य	प्र० २४५।२
भत्तपच्चक्खाणमरण	मरण	१७।९
भद्द	व्यक्ति	प्र० २४१।२; २५६।२
भद्दवय	मास	२९।३
भद्दा	व्यक्ति	प्र० २३५।१; २३७।१; २४०।१
भयाली	व्यक्ति	प्र० २५२।३
भरणि	नक्षत्र	३।१२
भरह	व्यक्ति	७७।१; ८३।५; ८४।३; प्र० २६; ८१; २५४।१
भवण	गृहवर्ग	प्र० ९१।१; १४४
भाणु	व्यक्ति	प्र० २२०।२
भारह	जनपद-ग्राम	२३।२; प्र० २१६-२१८; २२०; २२१
भारिया	परिवार-सदस्य	प्र० २१९
भावियप्पा	काल	३०।३
भिंग	वनस्पति	१०।८
भिसय	व्यक्ति	प्र० २३२।३
भीम	कुल	प्र० प्र० २५७।१
भीमसेण	व्यक्ति	प्र० २५७।१
भुयपरिसप्प	व्यक्ति	४२।५
भूमइ	काल	३०।३
भाग	प्राणी	प्र० २२७।२
भोगवइया	लिपि	१८।५
भोम	गृहवर्ग	९।९; ३३।२; ६५।३
भोम	लौकिक-ग्रंथ	२९।१
मंगला	व्यक्ति	प्र० २२१।१
मंडलियपव्वय	पर्वत	८५।३
मंडलियराय	राजा-प्रकार	२३।४
मंडिय	व्यक्ति	११।४
मंडियपुत्त	व्यक्ति	३०।२; ८३।३

मंडुक्क	ग्रंथ-विभाग	१९।२
मंतगय	कला	७२।७
मंताणुजोग	लौकिक-ग्रंथ	२९।१
मग्ग	ग्रंथ-विभाग	१६।१
मघव	व्यक्ति	प्र० २३६।१
मच्छ	प्राणी	९।८
मणि	रत्न	६४।६; प्र० ९८; १४९
मणिअंग	वनस्पति	१०।८
मणिपाग	कला	७२।७
मणिरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
मणिलक्खण	कला	७२।७
मणुस्सखेत्त	जनपद-ग्राम	प्र० १६९
मणुस्ससेणियापरिकम्म	ग्रंथ	प्र० १०१; १०३
मणूस	प्राणी	१५।७; ४७।१
मणोरमा	शिबिका	प्र० २२४।३
मणोहरा	शिबिका	प्र० २२४।३
मत्तंगय	वनस्पति	१०।८
मधुसित्थ	कला	७२।७
मरण	मरण	१७।९; ८९।१, २; प्र० ६३; ९४; ९९
मरुतवसभ	प्राणी	प्र० २४१
मरुदेव	व्यक्ति	प्र० २१८।१; २४८।४
मरुदेवा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
मरुदेवी	व्यक्ति	प्र० २१९।१
मल्लि	व्यक्ति	२३।३, ४; २४।१; २५।२; ५५।१; ५७।४; ५९।३; प्र० २२२; २२७।१; २२८।१
मल्लि	ग्रंथ-विभाग	१९।१
महसिह	व्यक्ति	प्र० २३८।१
महसेण	व्यक्ति	प्र० २२०।१
महाघोस	व्यक्ति	प्र० २१६।१; २५८।३
महाचंद	व्यक्ति	प्र० २५८।२
महाजस	व्यक्ति	प्र० २५८।१
महा	नक्षत्र	७।७
महापउम	जलाशय	प्र० ६७
महापउम	व्यक्ति	प्र० २३६।२; २५१।१; २५४।२
महापुंडरीयदह	जलाशय	प्र० ६७
महाबल	व्यक्ति	प्र० २५६।१; २५८।१
महाबाहु	व्यक्ति	प्र० २५६।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाभद्द	व्यक्ति	१६।१३	मिगचारिया	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
महाभीम	व्यक्ति	प्र० २५७।१	मिगसर	नक्षत्र	३।६
महाभीमसेण	व्यक्ति	प्र० २१७।१	मिगालि	व्यक्ति	प्र० २५२।३
महाविदेह	जनपद-ग्राम	७।५; ३३।३; ३४।२	मित्त	काल	३०।३
महाविमाण	शिबिका	१।२५; १२।१०; ३३।११; ५३।३	मित्तदाम	व्यक्ति	प्र० २१६।१
			मियावई	व्यक्ति	प्र० २३६।१
महावीर	व्यक्ति	१।२; ७।३; १४।४; १८।३; ३०।७; ३३।११; ३६।३; ४२।१; ५३।३; ५४।३; ५५।४; ७०।१ ७२।३; ८२।२; ८३।१; ८६।२; प्र० १२; २०; ३८; ३९; ४५; ८६; ८७	मिहिलपुरी	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
			मुट्ठिजुद्ध	कला	७२।७
			मुणिसुव्वय	व्यक्ति	२०।२; २३।३,४; २४।१; ५०।१; प्र० २२२; २५१।२
			मुत्ता	रत्न	६४।६
			मुत्तावलि	आभूषण	२५।७,८; ७४।२
			मुसल	भूमिमान	९६।८
			मुसल	आयुध	प्र० १४४; १४१
महावीरत्थुई	ग्रंथ-विभाग	१६।१	मुसुंढि	आयुध	प्र० १४४
महासेण	व्यक्ति	प्र० २५८।४	मुहुत्त	काल	९।५; १५।४,५; १८।८; २३।२; २९।८; ३०।३; ४५।७; ६०।१; ७७।४; ८८।७,८; ९८।५,६; प्र० १७९; १८३
महाहरि	व्यक्ति	प्र० २३४।२			
महाहिमवंत	पर्वत	७।४; ५३।२; ५७।५; ८२।३; ८७।६; प्र० ५; ४१			
महिंददत्त	व्यक्ति	प्र० २२९।२			
महुकेढव	व्यक्ति	प्र० २४६।१	मूल	नक्षत्र	१०।३,७; ११।५; १२।६, ७; ५०।४; १००।८; प्र० २४; २८; ५६; ५८; ५९
महुरा	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१			
माउयापय	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०३			
मागंदी	ग्रन्थ-विभाग	१९।१			
मागहिया	कला	७२।७	मूलपढमाणुओग	ग्रन्थ	प्र० १२७; १२८
माणुसुत्तर	पर्वत	१७।३	मेतज्ज	व्यक्ति	११।४
मायर	परिवार-सदस्य	प्र० २२१; २३५; २३९; २४०; २४०।१; २५३; २५५; २५६; २५९	मेरय	व्यक्ति	प्र० २४६।१
			मेरा	व्यक्ति	प्र० २३५।१
			मेरु	पर्वत	१६।३।१
			मेह	व्यक्ति	प्र० २२०।१
मालि	वनस्पति	प्र० २३१।१	मेहरह	व्यक्ति	प्र० २२३।३
मास	काल	१५।५; १८।८; २१।१; २९।२-७; ३१।४,५; ३६।४; ७०।१; ८८।७, ८; ९८।,६; प्र० १८१	मोक्खमग्गगई	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
			मोरियपुत्त	व्यक्ति	११।४; ६५।२; ९५।५
			रई	व्यक्ति	प्र० २३३।१
			रक्खस	काल	३०।३
माहिंद	काल	३३।३	रक्खिया	व्यक्ति	प्र० २३३।१
माहिंदर	व्यक्ति	प्र० २२३।२	रत्तवत्ती	नदी	१४।८; २४।६; २५।८
माहेसरी	लिपि	१८।७	रत्ता	नदी	१४।८; २४।६; २५।८
मिंढयलक्खण	कला	७२।७	रम्मयवास	जनपद-ग्राम	६३।३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणि	भूमि-मान	७।३; ६।४; प्र० १६६
रहनेमिज्ज	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
रहस्सगय	कला	७२।७
राइण्ण	कुल	प्र० २२७।२
राम	व्यक्ति	१०।६; १२।५; प्र० २४१; २४१।२; २४७।२,३; २५६; २५९
रामा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
राय	राजा-प्रकार	१४।७; १७।८; २०।४; ४८।१; ६४।३,६; ७१।४; ७२।६; ७७।१, २; ८३।५; ८९।३; ९६।१; ९७।४; प्र० २२; २६; ८१; ९४-९७; ९९; २१०।३; २३४।२; २४१
रायगिह	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
रायललिय	व्यक्ति	प्र० २४२।३
रायहाणी	वसति-प्रकार	१२।४; ३३।२; ३७।३; ६८।१,४
रावण	व्यक्ति	प्र० २४६।१
राहुचरिय	कला	७२।७
रिसभ	काल	३०।३
रुप्पकूला	नदी	१४।८
रुप्पि	पर्वत	७।४; ५३।२; ५७।५; प्र० ५
रुप्पि	व्यक्ति	प्र० २२३।३
रुयगिंद	पर्वत	१७।८
रुयय	पर्वत	८५।६
रूव	कला	७२।७
रेवइ	नक्षत्र	३२।५
रेवई	व्यक्ति	प्र० १५१।२
रोद्द	काल	३०।३
रोद्द	व्यक्ति	प्र० २३८।१
रोहिअंसा	नदी	१४।८
रोहिअंसा	नदी	१४।८
रोहिया	नदी	१४।८
रोहिणी	व्यक्ति	प्र० २४०।१; २५२।२
रोहिणी	नक्षत्र	५।९
लक्खण	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
लक्खणा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
लच्छिमई	व्यक्ति	प्र० २३७।१; २३९।१
लट्ठबाहु	व्यक्ति	प्र० २२३।२
ललियमित्त	व्यक्ति	प्र० २४२।१
लवणसमुद्द	समुद्र	१४।८; ९५।२,३
लेणविहि	कला	७२।७
लेसज्झयण	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
लेह	कला	७२।७
लोगबिंदुसार	ग्रन्थ	१४।२।३; प्र० १२२
लोहजंघ	व्यक्ति	प्र० २५७।१
वइरजंघ	व्यक्ति	प्र० २५७।१
वइरणाभ	व्यक्ति	प्र० १२२।३
वइसाह	मास	२९।७
वउल	वनस्पति	प्र० २३१।३
वंजण	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
वक्खारपव्वय	पर्वत	प्र० १८; २३; २७; २८
वज्जणाभ	व्यक्ति	प्र २३२।१
वट्टखेड्ड	कला	७२।७
वट्टवेयड्ढपव्वय	पर्वत	९०।५; प्र० ५८
वड्ढइरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
वणप्फइ	वनस्पति	प्र० २०३; २१२
वण्हि	कुल	प्र० २५६।२
वत्थुनिवेस	कला	७२।७
वत्थुमाण	कला	७२।७
वद्धमाण	व्यक्ति	२३।३; ४; २४।१; प्र० ८७; २२२; २३१।४
वप्पा	व्यक्ति	प्र० २२१।२; २३५।
वरदत्त	व्यक्ति	प्र० २२९; २३२।३
वरुण	काल	३०।३
वलयामुह	पातालकलश	७९।१
वलायमरण	मरण	१७।९
ववहार	ग्रन्थ	२६।१
वसट्टमरण	मरण	१७।९
वसिट्ठ	व्यक्ति	८।८
वसुंधरा	व्यक्ति	प्र० २३७।१
वसुदेव	व्यक्ति	प्र० २३८।१
वसुपुज्ज	व्यक्ति	प्र० २२०।२
वाइय	कला	७२।७
वाउ	काल	३०।३
वामा	व्यक्ति	५।१९; प्र० १४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वायावच्च	काल	३०।३
वायुभूति	व्यक्ति	प्र० २३२।२; २४२।३
वाराह	व्यक्ति	प्र० २३२।२; २४२।३
वारिसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।५
वारुणी	व्यक्ति	प्र० २३३।१
वासधरपव्वय	पर्वत	२४।२; ५३।२; ५७।५; ६९।१; ७४।२; ८८।३; १००।७, प्र० ५; १७; १८; ३२; ४१; ४९; ५३
वासुदेव	व्यक्ति	१०।५; ३५।३; ५०।३; ५४।१; ६८।३;, ६; ८०।२, ४; ८४।५; ९०।४; प्र० ८५; २३८; २३९; २४२-२४६; २५२; २५६; २५७; २५९
वासुपुज्ज	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ६२।२; ७०।३; प्र० ३६; २२२; २२६।१; २२८।१
विअत्त	व्यक्ति	११।४
विकहाणुजोग	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
विचित्तकूट	पर्वत	प्र० ५७
विजय	व्यक्ति	७३।२; प्र० २२०।३; २२९।३; २३४।२; २४१।२; २५१।४; २५६।२
विजय	काल	३०।३
विजया	जनपद-ग्राम	१२।४
विजया	व्यक्ति	प्र० २२१।१; २३७।१; २४०।१
विजया	शिविका	प्र० २२४।१
विज्जागय	कला	७२।७
विज्जाणुजोग	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
विज्जाणुप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।३; प्र० ११२; १२२
विज्जुप्पभ	पर्वत	प्र० २७
विणयसुय	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
विणीया	जन्पद-ग्राम	प्र० २२५।१
विण्हु	व्यक्ति	प्र० २२०।२; २२१।१

विदब्भ	व्यक्ति	प्र० २३२।१
विप्पजहणसेणिया-परिकम्म	ग्रंथ	प्र० १०१; १०६
विपुलवाहण	व्यक्ति	प्र० २५४।८
विमल	व्यक्ति	२३।३, ४; २४।१; ४४।२; ५६।२; ६०।३; ६८।७? प्र० २२२; २२३।१; २५१।४; २५८।६
विमलघोस	व्यक्ति	प्र० २१६।२
विमलवाहण	व्यक्ति	प्र० ५१; २१८।१; २२३।१; २५०।१; २५४।२
विमला	शिविका	प्र० २२४।२
वियाह	ग्रंथ	प्र० ९३
वियाहपण्णत्ति	ग्रंथ	१।२; ८१।३; ८४।११; प्र० ८८
विवागसुय	ग्रंथ	१।२; प्र० ८८; ९९
विसनंदी	व्यक्ति	प्र० २४२।२
विसाला	शिविका	प्र० २२४।३
विसाहा	नक्षत्र	५।१२
विस्सभूइ	व्यक्ति	प्र० २४२।१
विस्ससेण	व्यक्ति	प्र० २२०।२; २३४।१
वीर	व्यक्ति	प्र० २२७।१
वीरिय	ग्रंथ	१४।२।१; प्र० ११२; ११५
वीससेण	व्यक्ति	प्र० २२९।३
वीससेण	काल	३०।३
वूह	कला	७२।७; प्र० ९०
वेजयंती	शिविका	प्र० २२४।१
वेजयंती	व्यक्ति	प्र० २४०।१
वेडस	वनस्पति	प्र० २३१।३
वेणइयवाइ	अन्य-तीर्थिक	प्र० ९०
वेणइया	लिपि	१८५
वेयालिय	ग्रंथ-विभाग	१६।१
वेसमण	काल	३०।३
वेहायसमरण	मरण	१७।९
सउणरुय	कला	७२।७
संकरिसण	व्यक्ति	प्र० २५६।२
संख	व्यक्ति	प्र० २२३।४; २५२।१
संख	आयुध	प्र० २४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघाड	ग्रंथ-विभाग	१६।१
संजइज्ज	ग्रंथ-विभाग	३६।१
संभूत	व्यक्ति	प्र० २४३।१
संमुइ	व्यक्ति	प्र० २५०।१
संसारपडिग्गह	ग्रंथ	प्र० १०२; १०८
सच्च	काल	३०।३
सच्चइ	व्यक्ति	प्र० २५२।२
सच्चप्पवाय	ग्रन्थ	१४।२।२; प्र० ११२; ११८
सच्चसेण	व्यक्ति	प्र० २५८।३
सज्जीव	कला	७२।७
सणंकुमार	व्यक्ति	प्र० २३६।१
सतय	व्यक्ति	प्र० २५१।२; २५२।१
सतिग्घ	आयुध	प्र० १४४
सतरह	व्यक्ति	प्र० २१७।१
सतरिसभ	काल	३०।३
सत्तत	तिथि	२७।६; ३७।५
सत्ति	आयुध	प्र० २४१
सत्तिवण्ण	वनस्पति	प्र० २३१।१
सभास	कला	७२।७
सभिक्खुग	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
समताल	कला	प्र० ७२।७
समय	ग्रन्थ-विभाग	१६/१
समयखेत	जनपद-ग्राम	३६।२; ४५।१; ६६।१
समवाय	ग्रन्थ	१।२, ३; प्र० ८८; ९२
समाहिट्ठाण	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
समाही	ग्रन्थ-विभाग	१६/१
ससितीअ	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
समुद्द	जलाशय	१६।७; १७।५; ४२।४, ७; ६०।२; ७२।७; ९१।२; प्र० ७४; ७७; ८०; ९१।१; ९३
समुद्द	व्यक्ति	प्र० २४३।१
समुद्ददत्त	व्यक्ति	प्र० २४२।१
समुद्दपालिज्ज	ग्रंथ-विभाग	३६।१
समुद्दविजय	व्यक्ति	प्र० २२०।३; २३४।१
समोसरण	ग्रंथ-विभाग	१६।१
सयंजल	व्यक्ति	प्र० २१७।१
सयंपभ	व्यक्ति	प्र० २१६।१; २४६।१; २५१।१
सयंभु	व्यक्ति	९०।४; प्र० २३२।२; २४१।१
सयणविहि	कला	७२।७
सयधणु	व्यक्ति	प्र० २५०।१
सयभिसय	नक्षत्र	१००।२
सयय	व्यक्ति	प्र० २४८।२
सयाउ	व्यक्ति	प्र० २१७।१
सर	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
सरगय	कला	७२।७
सवण	नक्षत्र	३।१०
सव्वट्ठसिद्ध	काल	३०।३
सव्वाणंद	व्यक्ति	प्र० २५८।४
सव्वाणुभूइ	व्यक्ति	प्र० २५१।१
सहदेवी	व्यक्ति	प्र० २३५।१
साइबुद्ध	व्यक्ति	प्र० २५२।४
सागर	व्यक्ति	प्र० २४३।१
सागरदत्त	व्यक्ति	प्र० २४२।३
सागरदत्ता	शिविका	प्र० २२४।३
साति	नक्षत्र	१।२८
सामकोट्ठ	व्यक्ति	प्र० २४८।४
सामचंद	व्यक्ति	प्र० २४८।१
सामा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
सामायारी	ग्रन्थ-विभाग	३६।१
साल	वनस्पति	प्र० २३१।१
सालरुक्ख	व्यक्ति	प्र० २३१।४
सावण	मास	२७।६
सावत्थि	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
सिंधु	नदी	१४।८; २४।५; २५।७
सिद्धत्थ	व्यक्ति	प्र० २२०।३; २५८।१,३
सिद्धत्था	व्यक्ति	प्र० २२१।१
सिद्धत्था	शिविका	प्र० २२४।१
सिद्धसेणियापरिकम्म	ग्रन्थ	प्र० १०१; १०८
सिद्धावत्त	ग्रन्थ	प्र० १०२; १०८
सिरि	व्यक्ति	प्र० २३५।१
सिरिउत्त	व्यक्ति	प्र० २५४।१
सिरिकंता	व्यक्ति	प्र० २१९।१
सिरिचंद	व्यक्ति	प्र० २५८।२
सिरिभूइ	व्यक्ति	प्र० २५४।१
सिरिया	व्यक्ति	प्र० २२१।२
सिरिस	वनस्पति	प्र० २३१।१
सिरिसोम	व्यक्ति	प्र० २५४।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरीसिव	प्राणी	३४।१
सिलोग	कला	७२।७
सिव	व्यक्ति	प्र० २३८।१
सिवसेण	व्यक्ति	प्र० २४८।२
सिवा	व्यक्ति	प्र० २३३
सिहरि	पर्वत	७।४; २४।२; १००।७; प्र ३३
सीओदा	नदी	१४।८; ७४।२; प्र० ३३
सीता	नदी	१४।८; ७४।३; प्र० ३३; १२८; १७२।१; २२४।१, ३-६; २३९।१
सीतल	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ७५।२; ८३।२; ९०।१; प्र० २२२
सीमंकर	व्यक्ति	प्र० २५०।१
सीमंधर	व्यक्ति	प्र० २५०।१
सीसग	धातु	प्र० ९९
सीह	प्राणी	१।२; प्र० २४१
सीहगिरि	व्यक्ति	प्र० २२३।३
सीहरह	व्यक्ति	प्र० २२३।२
सीहसेण	व्यक्ति	प्र० २२०।२; २३२।१
सुइ	व्यक्ति	प्र० २२३।२
सुंदर	व्यक्ति	प्र० २२३।२
सुंदरबाहु	व्यक्ति	प्र० २२३।२
सुंदरी	व्यक्ति	८४।३
सुंसुमा	ग्रन्थविभाग	१९।२
सुकोसल	व्यक्ति	प्र० २५८।५
सुक्कपक्ख	पक्ष	१५।३; ६२।३
सुग्गीव	व्यक्ति	प्र० २२०।२; २५७।१
सुघोस	व्यक्ति	प्र० २१६।१
सुचंद	व्यक्ति	प्र० २४८।१
सुजसा	व्यक्ति	प्र० २२१।२
सुणंद	व्यक्ति	प्र० २३७।१
सुत्त	ग्रन्थ	प्र० १००; १०१; १११
सुत्तखेड्ड	कला	७२।७
सुदंसण	व्यक्ति	प्र० २२०।३ २२३।३, ४; २३४।१; २४३।१; २५६।२
सुदंसणा	वनस्पति	८।४
सुदंसणा	शिविका	प्र० २२४।१
सुदंसणा	व्यक्ति	प्र० २४०।१
सुदाम	व्यक्ति	प्र० २१६।१
सुद्धदंत	व्यक्ति	प्र० २५४।१
सुनंद	व्यक्ति	प्र० २५२।१
सुपास	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ८६।२; ९५।१; प्र० ४; २१६।१; २२२; २४८।४; २५१।१; २५८।५
सुपीय	काल	३०।३
सुप्पभ	व्यक्ति	५१।४; प्र० २४१।२; २४९।१; २५६।१
सुप्पभा	शिविका	प्र० २२४।१
सुप्पभा	व्यक्ति	प्र० २४०।१
सुप्पसिद्धा	शिविका	प्र० २२४।१
सुबंधु	व्यक्ति	२४२।३; २४९।१
सुभद्द	व्यक्ति	२४३।१
सुभद्दा	व्यक्ति	२३७।१; २४०।१
सुभूम	व्यक्ति	प्र० २३९।१; २४६।१
सुमंगल	व्यक्ति	प्र० २५८।१
सुमंगला	व्यक्ति	प्र० २३५।१
सुमणा	व्यक्ति	प्र० २३३।१
सुमति	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; प्र० ९; २२२; २२८।१
सुमिण	लौकिक-ग्रन्थ	२९।१
सुमित्त	व्यक्ति	प्र० २२०।३; २३३।१; २२९।१
सुमित्तविजय	व्यक्ति	प्र० २३४।१
सुयसागर	व्यक्ति	प्र० २५८।२
सुरिंददत्त	व्यक्ति	प्र० २२९।१
सुरूवा	व्यक्ति	प्र० २१९।१
सुलसा	व्यक्ति	प्र० २३३।१; २५२।२
सुवण्णकूला	नदी	१४।८
सुवण्णपाग	कला	७२।७
सुविहि	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ७५।१; ८६।१; १००।३; प्र० २२२
सुव्वत	व्यक्ति	प्र० २३२।१
सुव्वया	व्यक्ति	प्र० २२१।२
सुसीमा	व्यक्ति	प्र० २२१।२
सुहम्म	व्यक्ति	११।४; १००।५; प्र० २३२।२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुहुम	व्यक्ति	प्र० २४९।१
सूयगड	ग्रन्थ	१।२; ५७।१; प्र० ८८; ९०
सूर	व्यक्ति	प्र० २३४।१
सूरचरिय	कला	७२।७
सूरदेव	व्यक्ति	प्र० २५१।१
सूरप्पभा	शिविका	प्र० २२४।२
सूरसिरि	व्यक्ति	प्र० २३७।१
सूरसेण	व्यक्ति	प्र० २५८।४
सेज्जंस	व्यक्ति	२३।३,४; २४।१; ६६।३; ८०।१; ८४।४; प्र० २२२; २२९।१
सेणा	व्यक्ति	प्र० २२१।१
सेणावइ	राज-कर्मकर	३०।१।१८
सेणावइरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
सेणिय	व्यक्ति	प्र० २५२।१
सेत	काल	३०।३
सेयंस	व्यक्ति	प्र० २४३।१
सेलअ	ग्रंथ-विभाग	१९।१
सेवाल	व्यक्ति	प्र० २४२।१
सेसवती	व्यक्ति	प्र० २२९।१
सोभाकर	कला	७२।७
सोम	व्यक्ति	प्र० २३८।१
सोमणस	पर्वत	प्र० २७
सोमदत्त	व्यक्ति	प्र० २२९।२
सोमदेव	व्यक्ति	प्र० २२९।२
सोमा	व्यक्ति	प्र० २३३।१
हत्थ	नक्षत्र	५।११
हत्थिणपुर	जनपद-ग्राम	प्र० २४४।१
हत्थिरयण	चक्रवर्ति-रत्न	१४।७
हत्थिसिक्खा	कला	७२।७
हयलक्खण	कला	७२।७
हरि	नदी	१४।८
हरि	पर्वत	प्र० २८; ५९
हरिएसिज्ज	ग्रंथ-विभाग	३६।१
हरिकंता	नदी	१४।८
हरिवास	जनपद-ग्राम	७।५; ६३।२; ७६।१ ९४।६; प्र० ७३
हरिसेण	व्यक्ति	८९।३; ९७।४; प्र० २३६।२
हरिस्सिह	पर्वत	प्र० २८; ५९
हल	आयुध	प्र० २४१
हलहर	राजा-प्रकार	प्र० ९२
हार	आभूषण	२५।७,८; ६४।६; ७४।
हिरण्णपाग	कला	७२।७
हेमंत	ऋतु	७१।१
हेमवत	जनपद-ग्राम	७।५; ३७।२; ३८।२ ६७।२
हेरण्णवत	जनपद-ग्राम	७।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ३

विशेषनाम-वर्गानुक्रम

१. अन्य-तीर्थिक

अण्णाणियवाइ
आजीविय
किरियावाइ
तेरासिअ
वेणइवाइ

२. आभूषण

एकावलि
कडिसुत्तग
कुंडल
तिरीड
तिलय
मुत्तावलि
हार

३. आयुध

असि
कणग
गया
चक्क
जंत
नंदग
मुसल
मुसुंढि
संख
सतग्घि
सत्ति
हल

४. ऋतु

हेमंत

५. कला

अज्ज
अट्ठावय
अट्ठिजुद्ध
अण्णविहि
असिलक्खण
आभरणविहि
आससिक्खा
इत्थीलक्खण
ईसत्थ
कडगच्छेज्ज
काकणिलक्खण
कुक्कुडलक्खण
खंधावार-निवेस
खंधावारमाण
गंधजुत्ति
गणिय
गयलक्खण
गहचरिय
गाहा
गीय
गोणलक्खण
चंदचरिय
चक्कलक्खण
चम्मलक्खण
चार
छत्तलक्खण
छरुप्पगय
जणवाय
जुद्ध
जुद्धातिजुद्ध
जूय
णट्ट
तरुणीपडिकम्म
दंडजुद्ध
दंडलक्खण
दगमट्टिय
दोभाकर
धणुव्वेय
धातुपाग
नगर-निवेस
नगरमाण
नालियाखेड्ड
निजुद्ध
निज्जीव
पडिचार
पडिवूह
पत्तच्छेज्ज
पत्तगच्छेज्ज
पहेलिया
पाणविहि
पुक्खरगय
पुरिसलक्खण
पोरेकव्व
बाहुजुद्ध
मंतगय
मणिपाग
मणिलक्खण
मधुसित्थ
मागहिया
मिंढयलक्खण
मुट्ठिजुद्ध
रहस्सगय
राहुचरिय
रूव
लेणविहि
लेह
वट्टखेड्ड
वत्थु-निवेस
वत्थुमाण
वाइय
विज्जागय
वूह
सउणरुय
सज्जीव
सभास
समताल
सयणविहि
सरगय
सिलोग
सुत्तखेड्ड
सुवण्णपाग
सूरचरिय
सोभाकर
हत्थिसिक्खा
हयलक्खण
हिरण्णपाग

६. काल

अग्गिवेसायण
अभियंद
अभिवड्ढिय
अहोरत्त
आइच्च
आणंद
आतव
आवध
ईसाण
उवसम
उस्सप्पिणी
ओसप्पिणी
गंधव्व
चंदसंवच्छर
चंददिण
जुग
णक्खत्तमास
तट्ठव
तिट्ठ
पलंब
पलिओवम
पोरिसी
बंभ
भावियप्पा
भूमह
माहिंद
मित्त
मुहुत्त
रक्खस
रिसभ
रोद्द
वाउ
वायावच्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय
वीससेण
वेसमण
सच्च
सतरिसभ
सव्वट्ठसिद्ध
सागरोवम
सुपीय
सेत

७. कुल

उग्ग
खत्तिय
भोग
राइण्ण
वण्हि

८. गुफा

खंडप्पवायगुहा
तिमिस्सगुहा

९. गृहवर्ग

अट्टालय
ओवारियालेण
कवाड
कुडभी
केउ
कोट्ठय
खंभ
गोउर
घर
चरिय
तोरण
थूभिअग्ग
थूभियाग
दार
पडागा
पडिदुवार
पोक्खरकण्णिया
भवण
भोम

१०. ग्रन्थ

अंतगडदसा
अग्गणीय
अट्ठपय
अणुओग
अणुत्तरोववाइयदसा
अत्थिणत्थिप्पवाय
अवंझ
आगासपय
आयप्पवाय
आयार
आयारचूलिका
उत्तरज्झयण
उप्पायपुव्व
उवसंपज्जणसेणियापरिकम्म
उवासगदसा
एगगुण
एगट्ठियपय
ओगाहणसेणियापरिकम्म
कप्प
किरियाविसाल
केउभूय
केउभूयपरिग्गह
गंडियाणुओग
गणिपिडग
चुयाचुयसेणियापरिकम्म
चूलिया
ठाण
णायाधम्मकहा
तिगुण
दसा
दुगुण
दुवालसंग
नंदावत्त
नाणप्पवाय
नायधम्मकहा
पच्चक्खाण
पण्हावागरणदसा
परिकम्म
पाढ
पाणायु
पुट्ठसेणियापरिकम्म
पुव्व
पुव्वगय
माउयापय
मूलपढमाणुओग
लोगबिंदुसार
ववहार
विज्जाणुप्पवाय
विप्पजहणसेणियापरिकम्म
वियाह
वियाहपण्णत्ति
विवागसुय
वीरिय
संसारपडिग्गह
सच्चप्पवाय
समवाय
सिद्धसेणियापरिकम्म
सिद्धावत्त
सुत्त
सूयगड

११. ग्रन्थ-विभाग

अंड
अकाममरणिज्ज
अणगारमग्ग
अणाहपव्वज्जा
अप्पमाय
अवरकंका
असंखय
आइण्ण
आहत्तहिय
इत्थिपरिण्णा
उक्खित्तणाय
उदगणाय
उरब्भिज्ज
उवसग्गपरिण्णा
उसुकारिज्ज
कम्मपगडी
काविलिज्ज
कुम्म
कुसीलपरिभासिय
खलुंकिज्ज
गंथ
गाहा
गोयमकेसिज्ज
चंदिमा
चरणविहि
चाउरंगिज्ज
चित्तसंभूय
जण्णइज्ज
जमईय
जीवाजीवविभत्ती
तवोमग्ग
तुंब
तेत्तली
दावद्दव
दुमपत्तयं
धम्म
नंदीफल
नमिपव्वज्जा
निरयविभत्ति
पमायठाण
परीसह
पावसमणिज्ज
पुरिसविज्जा
पोंडरीय
बहुसुयपूया
मंडुक्क
मग्ग
मल्लि
महावीरत्थुई
मागंदी
मिगचारिया
मोक्खमग्गगई
रहनेमिज्ज
रोहिणी
लेसज्झयण
विणयसुय
वीरिय
वेयालिय
संघाड
संजइज्ज
सभिक्खुग
समय
समाहिठाण
समाही
समितीअ
समुद्दपालिज्ज
समोसरण
सामायारी
सुंसुमा
सेलअ
हरिएसिज्ज

१२. ग्रह

चंद
धुवराहु
सूर

१३. चक्रवर्ति-रत्न

असिरयण
आसरयण
इत्थीरयण
कागिणिरयण
गाहावईरयण
चक्करयण
चम्मरयण
छत्तरयण
दंडरयण
पुरोहियरयण
मणिरयण
वड्ढइरयण
सेणावइरयण
हत्थिरयण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. जनपद-ग्राम

अद्धभरह
उत्तरकुरु
उत्तरड्ढमणुस्सखेत्त
एरवय
कणगवत्थु
कायंदी
कोसंबी
चमरचंचा
दाहिणड्ढभरह
दाहिणड्ढमणुस्सखेत्त
देवकुरु
धायइसंड
पुक्खरद्ध
पोयण
बारवई
भारह
मणुस्सखेत्त
महाविदेह
महुरा
मिहिलपुरी
रम्मयवास
रायगिह
विजया
विणीया
समयखेत्त
सावत्थि
हरिवास
हेमवत
हेरण्यवत

१५. जलाशय

केसरिदह
णदी
तिगिंच्छ
तिगिंछद्दह
पउमद्दह
पुंडरीयद्दह
महापउम
महापुंडरीयद्दह
समुद्द

१६. तिथि

अमावसा
पुण्णिमा
पुण्णिमासिणी
सत्तमी

१७. द्वीप

गोयमदीव
जंबुद्दीव
जंबूदीव

१८. धातु

अंजण
कणग
तउ
तवणिज्ज

१९. धूपन

कालागुरु
कुंदुरुक्क
तुरुक्क
धूव

२०. नक्षत्र

अणुराहा
अद्दा
अभीजि
असलेसा
असिणि
असिलेसा
अस्सिणी
अस्सेसा
उत्तराफग्गुणी
उत्तराभद्दवया
उत्तरासाढ
कत्तिया
चित्ता
जेट्ठ
जेट्ठा
धणिट्ठा
पुणव्वसु
पुव्वाफग्गुणी
पुव्वाभद्दवया
पुव्वासाढ
पुस्स
भरणि
महा
मिगसर
मूल
रेवइ
रोहिणी
विसाहा
सयभिसया
सवण
साति
हत्थ

२१. नदी

गंगा
नरकंता
नारिकंता
रत्तवती
रत्ता
रुप्पकूला
रोहिअंसा
रोहिया
सिंधु
सिओदा
सीता
सुवण्णकूला
हरि
हरिकंता

२२. पक्ष

बहुलपक्ख
सुक्कपक्ख

२३. पद

आयरिय
उवज्झाय
गणधर
तित्थंकर
थेर
पवत्तिणी

२४. परिवार-सदस्य

पति
पियर
भज्जा
भारिया
मायर

२५. पर्वत

अंजणगपव्वय
आवासपव्वय
उप्पायपव्वय
उसुकार
कंचणगपव्वय
केउक
केउय
गंधमादण
गोथूभ
चित्तकूट
चुल्लहिमवंत
जमग
तिगिच्छकूट
दधिमुह
दीहवेयड्ढपव्वय
नंदण
निसढ
नीलवंत
बलकूड
मंडलियपव्वय
महाहिमवंत
माणुसुत्तर
मेरु
रुप्पि
रुयगिंद
रुयय
वक्खारपव्वय
वट्टवेयड्ढपव्वय
वासधरपव्वय
विचित्तकूट
विज्जुप्पभ
सिहरि
सोमणस
हरि
हरिस्सह

२६. प्राणी

कुम्म
कोंच
कोलावास
गंधहत्थि
गद्दभ
गय
गरुल
गव
गावी
गिद्ध
चउप्पय
जलयर
दुप्पय
पक्खि
पसु
पाणि
भूयपरिसप्प
मच्छ
मणूस
मरुतवसभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरीसिव
सीह

२७. भाषा

अद्धमागही

२८. भूमि-मान

अंगुल
अक्ख
गाउय
जुग
जोयण
दंड
धणु
नालिया
मुसल
रयणि

२९. मरण-प्रकार

अंतोसल्लमरण
आयंतियमरण
आवीइमरण
इंगिणिमरण
ओहिमरण
केवलिमरण
गिद्धपिट्ठमरण
छउमत्थमरण
तब्भवमरण
पंडितमरण
पाओवगमणमरण
बालपंडितमरण
बालमरण
भत्तपच्चक्खाणमरण
मरण
वलायमरण
वसट्टमरण
वेहायसमरण

३०. मास

आसाढ
आसोय
कत्तिय
चेत्त
पोस
फग्गुण
भद्दवय
मास
वइसाह
सावण

३१. योद्धा

चक्कजोहि

३२. रत्न

गोथुभ
मणि
मुत्ता

३३. राज-कर्मकर

नयव
सेणावइ

३४. राजा-प्रकार

चक्कवट्टि
चक्कहर
चक्कि
बलदेव
मंडलियराय
राय
वासुदेव
हलहर

३५. लिपि

अंकलिवी
अक्खरपुट्ठिया
आयंसलिवी
उच्चत्तरिया
खरसाहिया
खरोट्ठिया
गंधव्वलिवी
गबियलिवी
जवणालिया
दामिली
दोसउरिया
निण्हइया
पहाराइया
पोलिंदी
बंभी
भोगवइया
महिसरी
वेणइया

३६. लौकिक-ग्रन्थ

अंग
अंतलिक्ख
अण्ण-तित्थिय-पवत्ताणुजोग
उप्पाय
जोगाणुजोग
भोम
मंताणुजोग
लक्खण
वंजण
विकहाणुजोग
विज्जाणुजोग
सर
सुमिण

३७. वन

नंदनवण
पंडयवण

३८. वनस्पति

अंबयरुक्ख
अणिगण
असोग
आसोत्थ
उप्पल
कुसुम
कूडसामली
गेहागार
चंपय
चित्तंग
चित्तरस
चेइयरुक्ख
छत्ताह
जंबू
जोइ
डाय
णंदिरुक्ख
णग्गोह
णागरुक्ख
तिलय
तुडिअंग
तेंदुग
दधिवण्ण
दीव
धायईरुक्ख
पाडल
पायव
पियंगु
पियय
पिलंखुरुक्ख
पुंडरीय
पुप्फ
पोंडरीय
फल
भिंग
मणिअंग
मत्तंगय
मालि
बउल
वणप्फइ
वेडसिरुक्ख
सत्तिवण्ण
साल
सालरुक्ख
सिरिस
सुदंसणा

३९. वसति-प्रकार

गाम
जणपय
नगर
पट्टण
रायहाणी

४०. वस्त्र

कोसेय
खोम
दूस

४१. विलेपन

गोसीस

४२. व्यक्ति

अइवल
अइर
अइरा
अंजु
अंबड
अकंपिय
अग्गिउत्त
अग्गिभूति
अग्गिसेण
अजित
अणंत
अणंतय
अणंतविजय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंतसेण
अतिपास
अतिराणी
अपराइय
अपराइया
अपरातिय
अभिणंदण
अभिचंद
अमम
अम्मया
अयल
अयलभाय
अर
अरिट्ठ
अरिट्ठनेमि
अरिट्ठवरणेमि
असंजल
असोगललिय
अस्सगीव
अस्ससेण
आणंद
आससेण
इंद
इंदभूति
इसिदिण्ण
उदय
उमा
उवसंत
उसभ
उसभसिरि
उसभसेण
कक्कसेण
कण्ह
कण्ह (दीवायण)
कण्हसिरी
कत्तवीरिय
कत्तिय
कयवम्म
कासवी
कुंथु
कुंभ

कुरुमई
केकई
केसरि
कोरव्व
खेमंकर
खेमंधर
गंगदत्त
गुत्तिसेण
गूढदंत
गोथुभ
गोयम
चंदकंता
चंदजसा
चंदणा
चंदप्पभ
चंदाणण
चक्काउह
चक्खुकंता
चक्खुम
चमर
चारु
चित्तउत्त
चुलणी
जक्खिणी
जयंत
जयंती
जय
जया
जरासंध
जस
जसम
जसवती
जाला
जियसत्तु
जियारी
जुगबाहु
जुत्तिसेण
णंद
णंदण
णमि
तारय

तिलय
तिविट्ठु
तिसला
दढधणु
दढरह
दढाऊ
दत्त
दसधणु
दसरह
दारुमड
दिण्ण
दीहदंत
दीहबाहु
दुमसेण
दुविट्ठु
देवई
देवउत्त
देवसम्म
देवाणंद
देवी
धणदत्त
धणिला
धन्न
धम्मज्झय
धम्ममित्त
धम्मसीह
धम्मसेण
धर
धरणि
धरणिधरा
धारणी
नंदमित्त
नंदा
नंदिसेण
नाभि
नारय
नारायण
निप्पुलाय
निम्मम
निसुंभ
पउम

पउमप्पभ
पउमसिरि
पउमा
पउमुत्तर
पडिरूवा
पडिसूइ
पभावई
पभास
पयावती
पहराय
पास
पियदंसण
पियमित्त
पुणव्वसु
पुण्णघोस
पुण्णनंद
पुप्फकेउ
पुप्फचूला
पुप्फदंत
पुप्फवती
पुरिस-पुंडरीय
पुरिससीह
पुरिसुत्तम
पुरिसोत्तम
पुस्स
पेढालपुत्त
पोट्टिल
फग्गु
बंधु
बंभ
बंभदत्त
बंभयारि
बंभी
बम्ह
बलदेव
बलभद्द
बलि
बहुल
बाहुबलि
बुद्ध
भद्द

भद्दा
भयाली
भरह
भाणु
भिसय
भीम
भीमसेण
मंगला
मंडिय
मंडियपुत्त
मघव
मरुदेव
मरुदेवा
मरुदेवी
मल्लि
महसिह
महसेण
महाघोस
महाचंद
महाजस
महापउम
महाबल
महाबाहु
महाभद्द
महाभीम
महाभीमसेण
महावीर
महासेण
महाहरि
महिंददत्त
महुकेतव
माहिंदर
मिगाली
मित्तदाम
मित्तवाहण
मियावई
मुणिसुव्वय
मेतज्ज
मेरय
मेरा
मेह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेहरह
मोरियपुत्त
रई
रक्खिया
राम
रामा
रायललिय
रावण
रुप्पि
रेवई
रोद्द
रोहिणी
लक्खणा
लच्छिमई
लट्ठबाहु
ललियमित्त
लोहजंघ
वइरजंघ
वइरणाभ
वज्जणाभ
वद्धमाण
वप्पा
वरदत्त
वसिट्ठ
वसुंधरा
वसुदेव
वसुपुज्ज
वामा
वायुभूति
वाराह
वारिसेण
वारुणी
वासुदेव
वासुपुज्ज
विअत्त
विजय
विजया
विण्हु
विदब्भ
विपुलवाहण
विमल

विमलघोस
विमलवाहण
विसनंदी
विस्सभूइ
विस्ससेण
वीर
वीरसेण
वेजयंती
संकरिसण
संख
संभव
संभूत
संमुइ
सच्चइ
सच्चसेण
सणंकुमार
सतय
सतरह
समुद्द
समुद्ददत्त
समुद्दविजय
सयंजल
सयंपभ
सयंभु
सयधणु
सयय
सयाउ
सव्वाणंद
सव्वाणुभूइ
सहदेवी
साइबुद्ध
सागर
सागरदत्त
सामकोट्ठ
सामचंद
सामा
सिद्धत्थ
सिद्धत्था
सिरि
सिरिउत्त
सिरिकंता

सिरिचंद
सिरिभूइ
सिरिया
सिरिसोम
सिव
सिवसेण
सिवा
सीतल
सीमंकर
सीमंधर
सीहगिरि
सीहरह
सीहसेण
सुइ
सुंदर
सुंदरबाहु
सुंदरी
सुकोसल
सुग्गीव
सुघोस
सुचंद
सुजसा
सुणंद
सुदंसण
सुदंसणा
सुदाम
सुद्धदंत
सुनंद
सुपास
सुप्पभ
सुप्पभा
सुबंधु
सुभद्द
सुभद्दा
सुभूम
सुमंगल
सुमंगला
सुमणा
सुमति
सुमित्त
सुमित्तविजय

सुयसागर
सुरिंददत्त
सुरूवा
सुलसा
सुवण्णकूला
सुविहि
सुव्वत
सुव्वया
सुसीमा
सुहम्म
सुहुम
सूर
सूरदेव
सूरसिरि
सूरसेण
सेज्जंस
सेणा
सेणिय
सेयंस
सेवाल
सेसवती
सोम
सोमदत्त
सोमदेव
सोमा
हरिसेण

४३. शिबिका

अग्गिसप्पभा
अपराजिया
अभयकरी
अरुणप्पभा
उडुविमाण
उत्तरकुरा
चंदप्पभा
जयंती
णागदत्ता
णिव्वुतिकरी
देवकुरु
पंचवण्णा

मणोरमा
मनोहरा
महाविमाण
विजया
विमला
विसाला
वेजयंती
सागरदत्ता
सिद्धत्था
सुदंसणा
सुप्पभा
सुप्पसिद्धा
सूरप्पभा

४४ समुद्र

कालोय
घणोदहि
लवणसमुद्द

४५ सुरक्षा-साधन

खात
पागार
फलिह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org